विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका UGC Approved Journal - UGC Care Review
ISSN NUMBER : 2455-9717 RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929
शिवना प्रकाशन
वर्ष : 8, अंक : 30
जुलाई-सितम्बर 2023
मूल्य 50 रुपये

शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

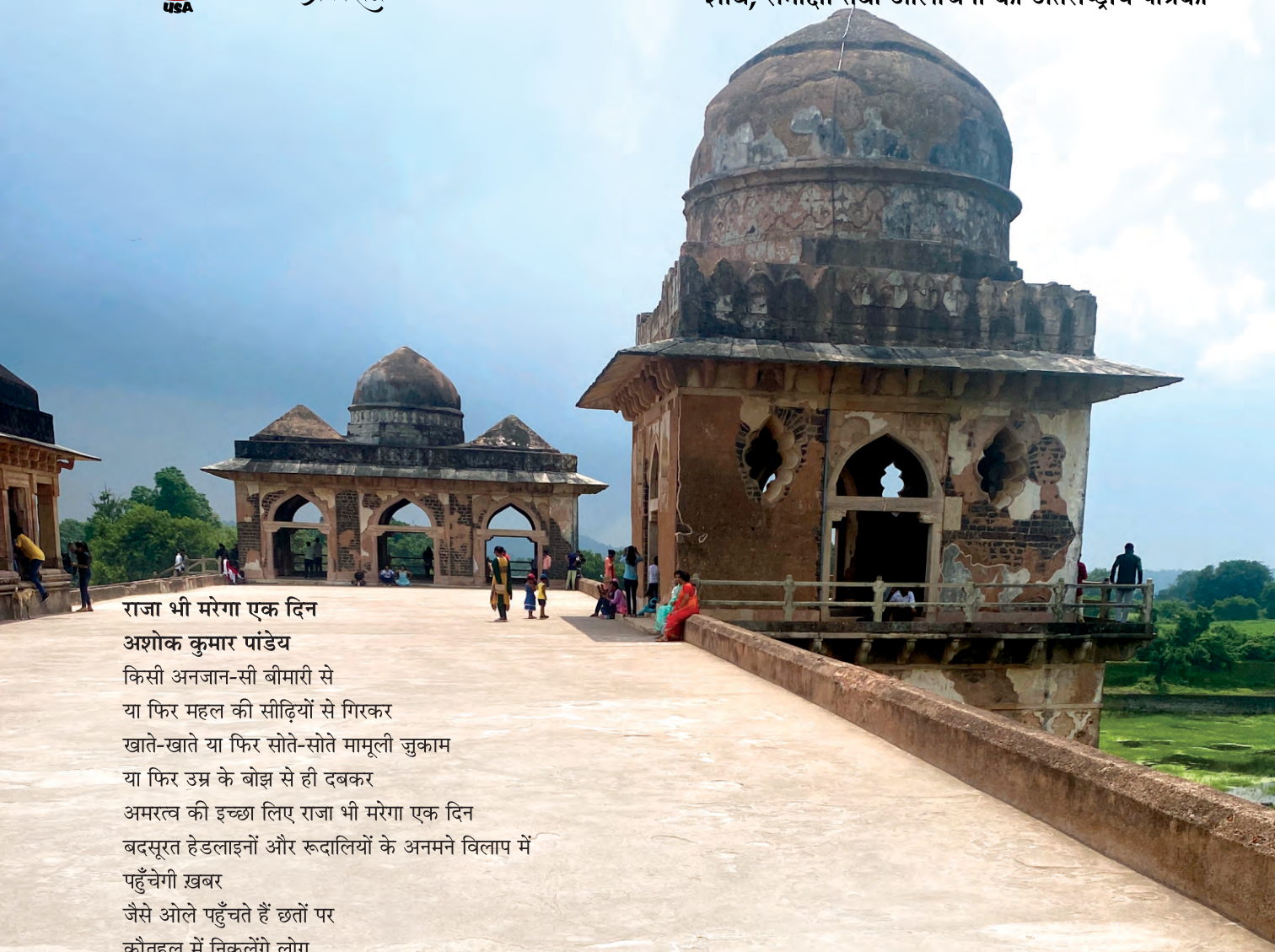

राजा भी मरेगा एक दिन

अशोक कुमार पांडेय

किसी अनजान-सी बीमारी से
या फिर महल की सीढ़ियों से गिरकर
खाते-खाते या फिर सोते-सोते मामूली ज़ुकाम
या फिर उम्र के बोझ से ही दबकर
अमरत्व की इच्छा लिए राजा भी मरेगा एक दिन
बदसूरत हेडलाइनों और रूदालियों के अनमने विलाप में
पहुँचेगी ख़बर
जैसे ओले पहुँचते हैं छतों पर
कौतूहल में निकलेंगे लोग
बच्चे खेलना छोड़ देखेंगे इधर उधर अचरज में
औरतें चौके से बाहर निकल टी.वी. निहारेंगी थोड़ी देर
मर्द उत्तराधिकारी पर चर्चा करते हुए मनाएँगे छुट्टी
महल के वीरान कक्षों में चलेंगी तलवार-सी ज़बानें
उदासी का केंचुल उतार उम्मीदें करेंगी परवाज़
ठीक वैसे ही सड़ेगी राजा की लाश
जैसे मुझ-सी परजा की जलेगी आग
धुआँ हो जाएगी देह अस्थियाँ चटकेंगी
तस्वीरों में मुस्कुराता चेहरा सुतली बम की तरह फटेगा
मानव गंध से मचल उठेगा श्मशान का कुत्ता
दक्षिणा बटोरता पंडित घर लौटते ही उतार फेंकेगा गंभीरता का मुखौटा
हज़ार लाशों का बोझ लिए
राजा भी मरेगा एक दिन

शिवना प्रकाशन के सम्मानों की घोषणा

वर्ष 2021 तथा 22 के लिए

अंतर्राष्ट्रीय शिवना सम्मान

हरि भटनागर
'दो गज़ जमीन'
वर्ष 2021 हेतु
'अंतर्राष्ट्रीय शिवना सम्मान'

नीलेश रघुवंशी
'शहर से दस किलोमीटर'
वर्ष 2022 हेतु
'अंतर्राष्ट्रीय शिवना सम्मान'

वर्ष 2021 तथा 22 के लिए

शिवना कृति सम्मान

अवधेश प्रताप सिंह
'विधानमण्डल पद्धति एवं प्रकिया'
वर्ष 2022 हेतु
'शिवना कृति सम्मान'

ओमप्रकाश शर्मा
'नर्मदा के पथिक'
वर्ष 2021 हेतु
'शिवना कृति सम्मान'

आदित्य श्रीवास्तव
'वायरस से वैक्सीन तक'
वर्ष 2021 हेतु
'शिवना कृति सम्मान'

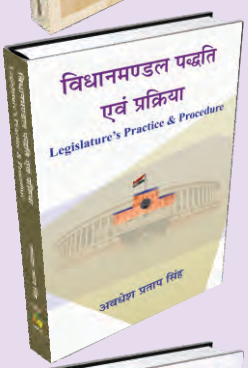

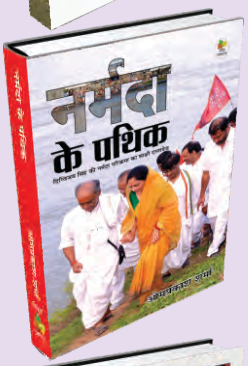

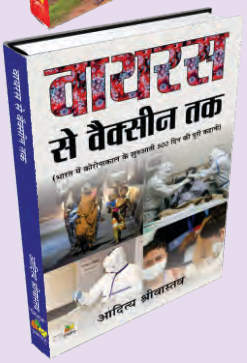

वर्ष 2021 के लिए 'अंतर्राष्ट्रीय शिवना सम्मान' शिवना प्रकाशन से प्रकाशित उपन्यास 'दो गज़ ज़मीन' के लिए हिन्दी के प्रतिष्ठित कथाकार हरि भटनागर को प्रदान किया जायेगा। वर्ष 2021 के लिए 'शिवना कृति सम्मान' दो पुस्तकों- यात्रा संस्मरण 'नर्मदा के पथिक' के लिए लेखक ओमप्रकाश शर्मा को तथा शोध रिपोर्ताज 'वायरस से वैक्सीन तक' युवा पत्रकार, लेखक आदित्य श्रीवास्तव को संयुक्त रूप से प्रदान किया जायेगा। वर्ष 2022 के लिए 'अंतर्राष्ट्रीय शिवना सम्मान' राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित उपन्यास 'शहर से दस किलोमीटर' के लिए हिन्दी की प्रतिष्ठित कवयित्री नीलेश रघुवंशी को प्रदान किया जायेगा। वर्ष 2022 के लिए 'शिवना कृति सम्मान' विधानसभा तथा लोकसभा की कार्यवाही को लेकर प्रकाशित महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'विधानमण्डल पद्धति एवं प्रकिया' के लिए मध्यप्रदेश विधानसभा के प्रमुख सचिव अवधेश प्रताप सिंह को प्रदान किया जायेगा।

शिवना प्रकाशन विभोम-स्वर SHIVNA CREATIONS Dhingra Family Foundation USA Dhingra Family Foundation India शिवना साहित्यिकी

संरक्षक एवं सलाहकार संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

कार्यकारी संपादक एवं क़ानूनी सलाहकार
शहरयार (एडवोकेट)

सह संपादक
शैलेन्द्र शरण, आकाश माथुर

डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, सुनील पेरवाल, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 2-7
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर
मध्य प्रदेश 466001
दूरभाष : +91-7562405545
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल- shivnasahityiki@gmail.com

ऑनलाइन 'शिवना साहित्यिकी'
http://www.vibhom.com/shivnasahityiki.html
फेसबुक पर 'शिवना साहित्यिकी'
https://www.facebook.com/shivnasahityiki
एक प्रति : 50 रुपये, (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष)
11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)
बैंक खाते का विवरण-
Name: Shivna Sahityiki
Bank Name: Bank Of Baroda,
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000313
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यावसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्य प्रदेश) रहेगा।

शिवना प्रकाशन

शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका
वर्ष : 8, अंक : 30, त्रैमासिक : जुलाई-सितम्बर 2023
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका
(UGC Approved Journal - UGC Care Review)
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929
ISSN : 2455-9717

आवरण कविता
अशोक कुमार पाण्डेय

आवरण चित्र
पंकज सुबीर

इस अंक में

आवरण कविता / अशोक कुमार पाण्डेय

संपादकीय / शहरयार / 3

व्यंग्य चित्र / काजल कुमार / 4

शोध आलोचना

सर्जना का मांगल्य

ज्योति जैन / सूर्यकांत नागर / 5

समर्पयामि

डॉ. नर्मदा प्रसाद उपाध्याय / डॉ. गरिमा संजय दुबे / 10

केंद्र में पुस्तक

रूदादे-सफ़र

कैलाश मंडलेकर, रेखा भाटिया, डॉ.सीमा शर्मा, पंकज सोनी पंकज सुबीर / 13

पुस्तक समीक्षा

पाँव के पंख

डॉ. उषा किरण / शिखा वार्ष्णेय / 21

सिर्फ़ नक़्शे क़दम रह गये...

विनय उपाध्याय / श्याम मुंशी / 23

हिन्दी व्यंग्य की प्रवृत्तियाँ और परिवेश

शैलेन्द्र शरण / कैलाश मंडलेकर / 25

सींग वाले गधे

सुधीर ओखदे / प्रेम जनमेजय / 27

हाँडी भर यातना

डॉ. उपमा शर्मा / शोभानाथ शुक्ल / 29

नींव के पत्थर

विजय कुमार तिवारी / दीपक गिरकर / 31

कभी देर नहीं होती

गोविन्द सेन / आशा पाण्डेय / 33

किरकिरी

सृष्टि उपाध्याय / ममता सिंह / 35

करवट

रमेश शर्मा / संजय कुमार सिंह / 37

सुद में हरसूद

अजय बोकिल / वसंत सकरगाए / 39

मन की नदी से भीगे शब्द

ममता त्यागी / रेखा भाटिया / 40

खिड़कियों से झाँकती आँखें

कमल चंद्रा / सुधा ओम ढींगरा / 41

ख़त मौसम का बाँच

प्रकाश कांत / ओम वर्मा / 42

न कोई मील न कोई पत्थर

नीरज नीर / डॉ. विद्याभूषण / 43

शोध आलेख

वर्तमान यथार्थ की प्रस्तुति: नीरज की ग़ज़लें / डॉ. आकाश वर्मा / 44

सुधा ओम ढींगरा की कहानियों में... / सरिता जिलेदार बिन्द / 46

अदब के सिर पर मुकुट-सा है इलाहाबाद / डॉ. महेश दवंगे / 48

नागार्जुन: यथार्थ चेतना एवं लोक दृष्टि / सरिता कुमारी / 51

भारत में साम्यवादी दल एवं साम्यवादी दल... / अभिषेक सचान / 54

जबलपुर में स्थापित पत्रकारिता का... / गोविन्द पाण्डेय / 57

हिन्दी कथा साहित्य अध्ययन: किन्नर विमर्श / राखी / 60

नागार्जुन के उपन्यासों की... / डॉ. रूपेन्द्र कुमार झा / 63

अमृतलाल नागर की कहानियों का अनुशीलन / डॉ. निशान सिंह / 66

मधु कांकरिया के कथा साहित्य में... / स्नेह लता / 69

कृषि विपणन की मण्डियों का समीक्षात्मक अध्ययन / दीपा वर्मा / 72

दलित समाज में निहित अंतर्विरोध... / अविनाश बनर्जी / 75

गीतांजलि श्री के उपन्यास 'माई' में... / सीमा कुमारी साव / 78

किसान आत्महत्या, कारण एवं निदान... / वर्षा रानी पाटले / 81

गांधीवादी कविताओं के आदर्श... / राजीव कुमार दास / 84

बदली मानसिकता का आगाज़... / डॉ. मेरली. के. पुन्नूस / 87

संगठनों के लिए आपदा प्रबंधन... / डॉ. अजय डी पटेल / 90

जनजातीय क्षेत्र भरमौर... / भरत सिंह, नवनीत कौशल / 93

उच्च-शिक्षा में मध्यप्रदेश... / अनुज कुमार पाण्डेय / 96

निराला की कहानियों में... / हरिओम कुमार द्विवेदी / 98

कोरोना... / डॉ. अरुण कुमार, डॉ. राजीव रंजन कश्यप / 100

सामाजिक यथार्थ और निराला / डॉ. ज़रीना सईद / 102

हिन्दी ग़ज़ल की सामाजिक चेतना / विनीत कुमार यादव / 104

वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में... / कविता / 107

समकालीन हिन्दी कविता... / डॉ. प्रियंका कुमारी / 110

संत साहित्य में जीवन-मूल्य : एक विवेचन / डॉ. भरत लाल / 113

पितृसत्तात्मक समाजों में.../ पूनम सिवाच / 116

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और मैला आँचल / बिन्दु डनसेना / 119

मोहनलाल महतो वियोगी... / शालिन साहू / 122

हिन्दी कविता में भूमण्डलीकरण... / उर्मिला / 125

हिन्दी कविता में भूमण्डलीकृत... / संतोष कुमारी / 128

सुभद्रा कुमारी चौहान... / दिग्विजयसिंह सी. झाला / 131

शिवमहिम्न: स्तोत्र में शिवतत्व / डॉ. आर. डी. पटेल / 134

हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में... / सोलंकी दक्षा बहन / 136

भारत में हिन्दी की स्थिति / डॉ. विनीता कुमारी / 138

भारत में सांस्कृतिक परिवर्तन... / पवन कुमार / 140

Russia Ukraine War / Dr. Pareshbhai J. Rabari / 142

Great Personality of the Worlds Mohands Karamchand Gandhi / Dr. Chhayaben R. Suchak / 145

Priti Sengupta's Travel / Dr. Priti Lavkesh Patel / 147

Socio Political And Cultural Analysis Of Khushwant Singh's Train To Pakistan / Patel Priyankaben Manglabhai / 150

संपादकीय

जब किसी भाषा के लेखक की ही भाषा ख़राब होने लगे, तो समझिए उस भाषा पर गहन संकट है

शहरयार
शिवना प्रकाशन, पी. सी. लैब,
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र.
466001,
मोबाइल- 9806162184
ईमेल- shaharyarcj@gmail.com

लेखक की भाषा को हमेशा से उस भाषा में मानक का दर्जा दिया जाता रहा है। उसकी वर्तनी को देख कर दूसरे लोग अपनी वर्तनी सुधारते रहे हैं, तथा शब्दों को ठीक प्रकार से लिखना सीखते रहे हैं। पहले कुछ समाचार पत्र भी ऐसे होते थे, जिनको भाषा का मानक समझा जाता था। यदि किसी शब्द को लेकर कोई उलझन होती थी, तो लोग उन समाचार पत्रों में उस शब्द को तलाशते थे, और वहाँ शब्द जिस प्रकार लिखा होता था उसे ही मानक मान लेते थे। या फिर किसी लेखक को तलाशते थे, सही और ग़लत का फ़ैसला करने के लिए। तब न तो हर किसी के पास शब्दकोश होते थे, और इंटरनेट जैसी सुविधा भी नहीं थी, कि वहाँ तलाश कर लिया जाये। किन्तु अब स्थिति वैसी नहीं है, अब न तो लेखक की भाषा मानक रह गयी है और न किसी समाचार पत्र की। बल्कि लेखक की भाषा और वर्तनी तो अब सामान्य व्यक्ति की भाषा और वर्तनी से भी ज़्यादा ख़राब हो गयी है, जबकि अब तो लेखक के पास ऑनलाइन शब्दकोश की सुविधा उपलब्ध है, जहाँ तुरंत किसी भी शब्द का मानक प्रारूप तलाश किया जा सकता है। लेकिन लेखक ने अब यह मान लिया है कि लेखक होने के लिए बस एक बात ही आवश्यक होती है और वह है लिखना। लेखक होने के लिए भाषा की परंपरा, उसको व्यवहार में लाने का तरीक़ा, शब्दों का उपयोग, शब्दों की सही वर्तनी, जैसी बातों की कोई आवश्यकता ही नहीं है। जब भी किसी भाषा का लेखक भाषा के उपयोग में लावरवाह होने लगता है, तब उस भाषा पर सबसे ज़्यादा संकट होता है। इस दृष्टि से देखा जाये तो हिन्दी इस समय सबसे अधिक संकट में है। भाषा ऐसे ही समाप्त होती है। भाषा के मानक रूप के संवाहक होते हैं लेखक और पत्रकार। पत्रकारिता की तो बात छोड़ ही दी जाये, क्योंकि अब तो हर समाचार पत्र के कार्यालय में पत्रकार के ठीक सामने एक सूची लगी होती है कि हिन्दी के किस शब्द का उपयोग नहीं करना है, तथा उसके स्थान पर अब अंग्रेज़ी के किस शब्द का उपयोग करना है। यथा- अब महाविद्यालय नहीं लिखा जा सकता, कॉलेज ही लिखना होगा, विश्वविद्यालय नहीं लिखा जा सकता, यूनिवर्सिटी ही लिखना होगा। यदि कोई पत्रकार अपने समाचार में महाविद्यालय या विश्वविद्यालय का उपयोग कर लेता है तो उसे तुरंत कारण बताओ पत्र प्राप्त हो जाता है। पत्रकारिता की भाषा तो दस-पन्द्रह साल पहले से ही ख़राब होनी प्रारंभ हो चुकी थी, मगर अब पिछले कुछ सालों से लेखकों की भाषा भी ख़राब होनी शुरू हो गयी है। बात केवल टंकण के दौरान हुई त्रुटियों की हो तो लेखक को क्षमा किया जा सकता है, लेकिन जो त्रुटियाँ सामने आ रही हैं, उनको केवल टंकण की त्रुटियाँ कह कर टाला नहीं जा सकता है। स्थिति इतनी गंभीर हो चुकी है कि 'और' तथा 'ओर' में लेखक को अंतर नहीं पता, 'मैं' तथा 'में' में उसको अंतर नहीं पता। वह एक ही रचना में शब्दों को अलग-अलग तरीक़े से उपयोग करता है। किसी शब्द पर कहीं वह चंद्रबिंदु लगाता तो उसी रचना में आगे कहीं उसी शब्द पर केवल बिंदु लगा कर काम चला लेता है। कहीं अनुनासिक में एक स्थान पर केवल बिंदु लगा देता है तो कहीं बाक़ायदा आधे वर्ण का उपयोग करता है। उदाहरण के रूप में- वह कहीं 'भूकंप' लिखता है तो कहीं 'भूकम्प'। बात सही और ग़लत की नहीं है, बात केवल निरंतरता की है। कम से कम एक रचना में तो वर्तनी के प्रयोग की निरंतरता बनाये रखिए। सबसे दिलचस्प बात यह है कि आजकल लेखक हाथ से नहीं बल्कि कीबोर्ड से लिखते हैं, जहाँ ग़लतियों के सुधार की अधिक सुविधा होती है, जबकि पहले के लेखक जो हाथ से लिखते थे, उनकी रचनाएँ आज भी जब हस्तलिखित प्राप्त होती हैं, तो वर्तनी की किसी भी त्रुटि से एकदम मुक्त, बिलकुल साफ होती हैं। चाहे हाथ से लिखें या कीबोर्ड से, बस इतना ध्यान रहे कि आपका लिखा मानक माना जाता है, आपकी एक 'ग़लती' समाज में 'सही' होकर स्थापित होगी। **आपका ही**

शहरयार

व्यंग्य चित्र-

काजल कुमार
kajalkumar@comic.com

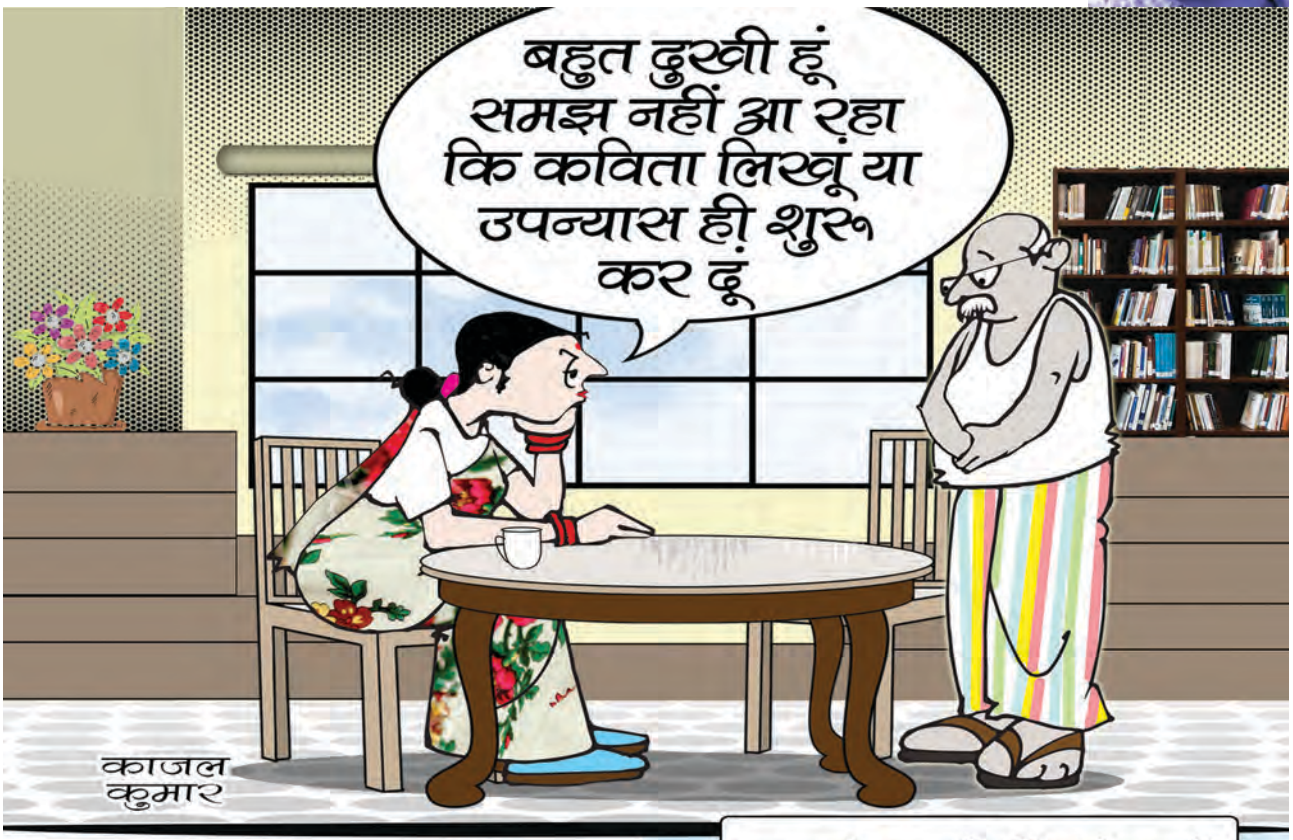

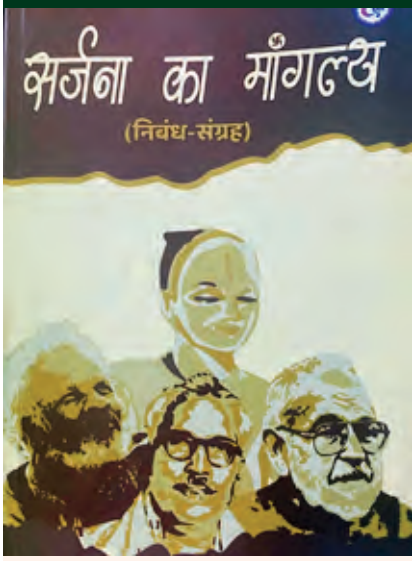

(निबंध संग्रह)

सर्जना का मांगल्य

समीक्षक : ज्योति जैन

लेखक : सूर्यकांत नागर

प्रकाशक : अद्रिक प्रकाशन, नई दिल्ली

ज्योति जैन
1432/24,नंदानगर
इन्दौर-452011
मोबाइल- 9300318182

दुनिया में सत्य कई लोग लिखते या कहते हैं, लेकिन जब सच सलीक़े से लिखा जाए यानि सलीक़े से साहस के साथ सत्य लिखा जाए तब जो सृजन होता है, डॉ. नर्मदा प्रसाद उपाध्याय के शब्दों में- 'वही मणिकांचन संयोगों का सृजन होता है।' ऐसा ही सृजन रचा है उम्र को धता बताते साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर वरिष्ठ साहित्यकार सूर्यकांत नागर ने, 'सर्जना का मांगल्य' निबंध संग्रह में। पहले ही निबंध 'साहित्य का सांस्कृतिक विवेक' में सूर्यकांत नागर स्पष्ट कर देते हैं कि साहित्य का काम समाज की बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना जागृत करना है। हम समझ सकते हैं कि साहित्यकार की ज़िम्मेदारी कितनी महत्त्वपूर्ण है। गंगातट से लेकर लद्दाख तक, तो तुलसी से लेकर प्रेमचंद, दिनकर, नरेश मेहता से नईम तक की कृतित्व पर आपने कलम चलाई है।

दूसरा निबंध 'द्विवेदीजी के निबंधों में सांस्कृतिक सुगंध' है, जिसमें सूर्यकांत नागर ने आचार्य जी के प्रकृति प्रेम के बारे में भी बात की है। हम निसंदेह ये जानते हैं कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भारतीय संस्कृति और साहित्य के प्रकांड विद्वान थे, कितनी ही भाषाओं पर उनका समान अधिकार था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का प्रकृति प्रेम सर्वविदित है, तभी शायद इसी पृष्ठ भूमि के कारण अशोक के फूल, शिरिष के फूल, कुटल, देवदारु, आम फिर बौरा गए और वसंत आ गया जैसे निबंधों पर उनका विशेष प्रेम रहा। आचार्य जी के कृतित्व और व्यक्तित्व पर तो सूर्यकांत नागर ने कलम चलाई ही है, साथ ही आचार्य जी के व्यक्तित्व के बारे में भी बात की है। उनका विश्वास था कि साहित्य का मुख्य लक्ष्य जो है उसका सीधा संबंध मनुष्यता से है और एक बेहतर इंसान के निर्माण से है। और कुछ उनकी हल्की फुल्की रचना लगती है लेकिन इसी रचना के बहाने आचार्य जी ने लेखक और आलोचक पर करारा व्यंग्य किया है जिसका शीर्षक था कि क्या आपने मेरी रचना पढ़ी?

तीसरा निबंध है जनवादी काव्य का प्रतिनिधि कवि: नागार्जुन। इसमें बाबा नागार्जुन यानि बैजनाथ मिश्र के बारे में बहुत सारा, उनके रचना संसार के बारे में, उनके संवादों के बारे में सूर्यकांत नागर ने बहुत विस्तार से इस निबंध में लिखा है। फक्कड़ा यायावार और मस्त तबीयत के माने-जाने वाले, लेकिन बाद में बीमारियों से जूझते प्रगतिशील कवि नागार्जुन ने निजी जीवन में भी कष्ट, भूख और दरिद्रता नहीं झेली, साहित्य-जगत् ने भी कई अवसरों पर उनके साथ अच्छा सलूक नहीं किया। कई बार उनके काव्य सामर्थ्य और प्रतिबद्धता को लेकर सवाल खड़े किए, जिसके बारे में सूर्यकांत नागर ने इस निबंध में विस्तार से लिखा है। जैसा कि मैंने कहा कि सच लिखना भी बहुत साहस का कार्य है। और बाबा नागार्जुन सच लिखकर भी तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी के कोपभाजन भी बने और 'मंत्र' कविता के विरुद्ध उन्हें काशी के पंडितों का भी विरोध झेलना पड़ा। और यही नहीं दुख:मोचन उपन्यास के प्रकाशन के बाद पटना के कम्युनिस्टों ने बिना पृष्ठभूमि जाने नाराज़गी व्यक्त की। पाठ्यपुस्तकों में भी निरालाजी, दिनकर जी आदि स्थान पा गए लेकिन बाबा नागार्जुन उपेक्षित ही रहे। उनके दर्द को, उनकी पीड़ा को सूर्यकांत नागर ने अपने इस निबंध में भलीभाँति उकेरा है।

अगला निबंध हिन्दी आलोचना: आज पर उन्होंने लिखा है। वैसे तो आलोचना विवादास्पद और ऐसी विधा मानी गई है जो बिल्कुल उर्वरक नहीं है। इसलिए उस पर समग्रता से विचार करना आवश्यक है। और आज आलोचक की सबसे बड़ी चुनौती विश्वास की है। रचना के साथ न्याय करने के लिए आलोचक का भरपूर ज्ञान होना अनिवार्य है। क्योंकि आलोचना आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से प्रारंभ हुई तो आचार्य हजार प्रसाद द्विवेदी, नंद दुलारे वाजपेयी, राम निवास शर्मा, विद्यानिवास मिश्र और डॉ. नामवर सिंह से होते हुए वर्तमान मुकाम पर पहुँची है। आचार्य शुक्ल के बौद्धिक प्रस्थान से हिन्दी आलोचना को वैचारिक आधार मिला और उसका ग्राफ धीरे-धीरे उपर उठता गया। पर आलोचना कभी भी प्रयोजित नहीं हो, तभी वो स्वयं के साथ न्याय कर पाती है। कई आलोचक पूर्वाग्रह से ग्रसित रहते हैं। लेकिन इस संदर्भ में बाबा नागार्जुन अपनी कविता में लिखा भी है कि- अगर कीर्ति का फल चखना है तो आलोचक को ख़ुश रखना

है...।" लेकिन लेखक को आलोचक की विपरीत टिप्पणी से नाख़ुश नहीं होना चाहिए बल्कि उसे स्वस्थ सोच से लेना चाहिए।

अपने अगले निबंध में लेखक ने अज्ञेय:एक अन्वेषी कवि की काव्य दृष्टि के बारे में बात की है। निसंदेह अज्ञेय हिन्दी कविता में प्रयोगवादी नूतन काव्य धारा के प्रवर्तक के रूप में जाने जाते है। अज्ञेय द्वारा संपादित तार सप्तक 1943 में प्रकाश में आया और इन संकलनों में सम्मिलित कवियों मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा, भरतदुषण अग्रवाल, रघुवीर सहाय आदि की कविताओं से पाठकों को नई कविताओं के ध्येय और भावबोध का पता चला, जिसमें पुरानी परंपराओं को नकारकर प्रयोग को ही काव्य जीवन माना गया। अज्ञेय की रचनाओं के केन्द्र में मनुष्य रहे लेकिन साथ ही वे रचनामय अविष्कार करते चलते हैं। नए-नए शब्दों का, नए शिल्प का और नए विचारों का। अज्ञेय ने एक नई काव्य भाषा को रचा। वे समाज की बात कम और संस्कृति की ज़्यादा करते रहे। वैसे इतिहास, पुराण, धर्म, दर्शन आदि के गहन अध्ययन से उनका रचनात्मक संसार व्यापक हुआ है। उन्होंने लिखा था कि कवि का साहस उसकी आवाज़ का सत्य है और यह सत्य व्यक्तिबद्ध नहीं व्यापक है। और सत्य जितना व्यापक होगा, काव्य उतना ही उत्कर्षकारी होगा। कितनी सुंदर बात अज्ञेय जी की यहाँ सूर्यकांत नागर ने उल्लेखित की है। उनकी डायरियों के अध्ययन से समझा जा सकता है कि कवि के चिंतन की दिशा क्या है। कवि की कला दृष्टि क्या है। वो कौन से सरोकार हैं जो उनके सृजनात्मक संघर्ष को धारदार बनाते हैं। डायरियों से कवि का सृजनशील व्यक्तित्व सामने आता है। वे कहते हैं कि लेखक के नाते अज्ञेय अपनी रचना यात्रा को काफी अकेले मानते थे लेकिन क्या रचनाकार सचमुच अकेला होता है। शायद नहीं, क्योंकि वो अनुभव को भोगते हुए, उस पर चिंतन करते हुए वो पूरे विश्व को अपने साथ ले लेता है। तो निश्चित रूप से रचना निजी न होकर विस्तार पा लेती है। अज्ञेय की अनेक रचनाओं में प्रेमानुभूति की भी अभिव्यक्ति हुई है और ऐसी कतिपय प्रारंभिक रचनाओं में छायावादी प्रवृत्तियाँ तो बात की कविताओं में प्रयोगवाद और अस्तित्ववाद की प्रवृतियाँ देखने को मिली। वे जानते थे कि जीवनशिल्प को जाने बिना रचनाशिल्प की बात करना व्यर्थ है और इसीलिए कला और जीवन को अलग-अलग करके नहीं देखा जा सकता।

सूर्यकांत नागर का अगला आलेख उत्तराधुनिकता को लेकर है। उत्तर आधुनिकता:एक चिंतन है। जिसके माध्यम से आधुनिकतावाद के समर्थकों के विचार प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं कि गांधी जी ने भी पश्चिमी आधुनिकता को छोड़कर स्थानीयता पर ध्यान दिया। क्योंकि उत्तराधुनिकता का या पोस्ट मॉडर्निज़्म को एक निश्चित फ्रेम वर्क में बाँधकर परिभाषित करना मुश्किल है। क्योंकि उत्तरआधुनिकता वाद पर विमर्श गंभीर, जटिल, विवादास्पद, बहुआयामी और अनेकार्थी है। और साथ ही कुछ अंतरविरोध भी है। वैसे भारतीय संदर्भ में आधुनिकता बोध एकदम नई अवधारणा नहीं है। कारण कि इसके बीच गांधी जी के हिन्द स्वराज द्वारा देश को स्वतंत्र कराने के सिद्धांत में ही पड़ गए थे। वे कहते हैं कि क्या हमारा राष्ट्रीय आंदोलन जो स्वदेशी केन्द्रित था आधुनिक और यूनिक नहीं था...? और बारीकी से अध्ययन किया जाए तो आधुनिकता का बोध तो प्रेमचंद्र की रचनाओं में भी आ चुका था। उदाहरण के लिए कफन कहानी में आधुनिक सोच को इस प्रकार रेखांकित किया गया कि व्यवस्था जब लंबे समय तक शोषण करती है तो मनुष्य किस हद तक असंवेदनशील, हृदयहीन और अमानवीय हो जाता है कि पत्नी के कफन के लिए जुटाए गए पैसों की भी शराब पी जाती है। इसी तरह उनकी कई रचनाओं में पाखंड को उजागर करने की कोशिश की गई है। साथ ही महाजनी सभ्यता ने जिस तरह से सर्वाहारा वर्ग पर अत्याचार किए उसी तरह क़र्ज़ में डूबे किसान आज भी तो आत्महत्या कर रहे हैं। महानगरी जीवन में जहाँ-जहाँ भी विसंगतियों का चित्रण तब हुआ था वो संत्रास, वो घुटन और वो अवसाद आज भी देखा जाता है। भूमंडलीय करण और उससे उपजे बाज़ारवाद ने उत्तराधुनिकता के लिए उत्प्रेरक का काम किया है। संस्कृति, साहित्य, राजनीति यहाँ तक की स्त्री विमर्श भी.. कोई भी इससे अछूता नहीं रहा है और युवा पीढ़ी इसकी चकाचौंध से अक्रांत है उदारीकरण का मूल उद्देश्य बराबरी लाना होता है, लेकिन यह समझना आवश्यक होगा यहाँ कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों का ध्येय बराबरी लाना नहीं बल्कि अविकसित देशों में अपने पैर पसारना है और अधिक मुनाफा कमाना है। वैश्वीकरण या ग्लोबलाइजेशन का लाभ केवल कुछ लोगों को मिल रहा है सब लोगों को नहीं। उत्तराधुनिकता वाद में नारीवादी विमर्श का रूप भी बदल गया है और स्त्री के हर स्तर पर आज़ाद होने की बात कही जा रही है। यह समाज में पुरुष की सत्ता को समाप्त करने का प्रयास है। ऐसा कह सकते हैं, जिसमें प्राय: पुरुष स्त्री पर अपना प्रभुत्व जमाता है और आज का नारीवादी आंदोलन इसी असमानता को दूर करने पर टिका हुआ है। उत्तराधुनिकता का एक ओर पक्ष है विखंडनवाद या डिकन्सट्रक्शन। यह माना जाता है कि अभिजात्य वर्ग द्वारा दलितों और शोषितों को अपने लेखन में उपेक्षित रखा गया, उन्हें हीन माना गया है। उत्तराधुनिकता वाद अभिजात्य वर्ग के इस षड्यंत्र को तोड़ना चाहता है। प्रश्न इतना रहता है कि उत्तराधुनिकता हो या अर्थ तंत्र से जुड़ा कोई ओर मुददा उन्हें हम अपनी परिस्थितियों और आवश्यकतानुसार कितना और कैसे ग्रहण करें। इसलिए आग्रह इतना भर है कि उत्तराधुनिकता पर उसकी समग्रता में विचार करें और इस युक्ति का अनुसरण करें कि- " सार-सार को गही लहे.. थोता देई उड़ाय।"

सृजन एक बेचैन कवायद में लेखक ने सृजन की छटपटाहट को.. उसकी बेचैनी को उकेरा है। वह कहते हैं कि वैसे तो लेखक खुली आँखों से चीज़ों को देखता है और चिड़िया की चोंच की तरह बहुत सारी चीज़ों में से काम की चीज़ को उठाकर, चुनकर अपने अंदर जज़्ब कर लेता है। यह रचना का पहला जन्म होता है। लंबे अनुभव तक जब वह भाव

अंदर पकता है और सृजन का रूप स्पष्ट होकर बाहर आता है, यह रचना का दूसरा जन्म होता है। और वही अनुभूति जब कागज़ पर उतरती है तो रचना का तीसरा जन्म होता है। लगता है लेखन स्वयं ही एक बेचैन कवायद होती है।

गत चार दशकों में स्त्री जीवन की यात्रा का लेखा-जोखा नारी संवेदना के नए द्वार खोलता स्त्री लेखन इस निबंध में सूर्यकांत नागर ने लिया है। मेरा मानना है कि केवल स्त्री गर्भधारण करती है, प्रसव पीड़ा सहती है और शिशु को अमृतपान कराती है। इसीलिए पुरुष और स्त्री लेखन की संवेदनाओं के बीच में एक बाल बराबर फर्क तो आ ही जाता है। क्योंकि इस संदर्भ में स्त्री के अनुभव अधिक गहरे और प्रमाणिक होते हैं। रचनात्मकता ज़्यादा विश्वसनीय होती है। हालाँकि यह आवश्यक नहीं है कि ये चिंतन स्त्रियों द्वारा ही हो, पुरुषों के द्वारा भी होता है लेकिन फिर भी स्त्री लेखन के बारे में सूर्यकांत नागर ने यहाँ खुलकर बातें की हैं। सुधा अरोड़ा से लेकर सुर्यबाला, मन्नु भंडारी, मैत्रेयी पुष्पा आदि लेखिकाओं के बारे में लिखते हुए कहते हैं कि अधिकांश लेखिकाओं ने पुरुषवादी सोच के ख़िलाफ़ अपने मत व्यक्त किए हैं और प्रतिरोध भी। प्रतिरोध का स्वर कहीं तीव्र है जो लगता है कि अपनी मर्यादा का उल्लंघन कर रहा है लेकिन कहीं मर्यादा में रहते हुए भी है। यहाँ वे कहते हैं कि पुरुष नहीं चाहता कि औरत का कद उससे बड़ा हो। स्त्री लता बनकर वृक्ष से लिपटे, लिपटकर चाहे वृक्ष के ऊपरी सिरे पर पहुँच जाए, चलेगा लेकिन यदि पेड़ बन जाए तो लोग कुल्हाड़ी उठाकर उसे काटने को दौड़ते हैं। विवाह के समय भी लडक़ी की योग्यता उसकी देहयष्टि, रूप, रंग से आँकी जाती है न कि उसकी प्रतिभा से और ये नारी अस्मिता का निश्चित रूप से अपमान है। अनेक लेखिकाओं ने इस प्रवृत्ति का विरोध अपने लेखन में किया है और वो अनिवार्य भी है क्योंकि वस्तुत: भारतीय समाज में आरंभ से लड़की की कंडीशनिंग की जाती है। हम कहते हैं कि हालात बदले हैं लेकिन क्या पूरी तरह...? नहीं ! आज भी औरत का एक पैर चौखट के अंदर है, एक पैर बाहर है। और देखने में आता है कि भारतीय समाज में लड़की को अपने हिस्से का आकाश देने में भी कंजूसी बरती जाती है। आज भी कई क्षेत्रों में ठहाके मारकर लड़की या औरत को हँसते देखकर लोग आश्चर्य चकित होकर उसकी तरफ घूरकर देखते हैं। ये मत करो, ये मत करो, ये मत करो, ये मत करो, हर चीज़ में रहता है ये मत करो। क्या करना है ये कोई नहीं सोचता। महिला रचनाकारों के संसार के बारे में सूर्यकांत नागर ने विस्तार से बात करते हुए उषा किरण खान, नासिरा शर्मा, निहारिका आदि लेखिकाओं के बारे में बात करते हैं। स्त्री अधिकार और नारी सत्ता के भाव के तहत् अनेक कथा लेखिकाओं ने अपनी कहानियों में नारी मुक्ति और देह आज़ादी का मुद्दा उठाया है। कृष्णा जी की आत्मकथा का ज़िक्र करते हुए वो पुरुष की भोगवादी प्रवृत्ति और स्त्री की भावनात्मक कमज़ोरी का चित्रण करते हैं। कथा लेखिकाओं के बारे में बात करते हुए सूर्यकांत नागर बहुत साहस के साथ ये सच कहते है कि कथा लेखिकाओं के विशाल समूह में पद्मश्री मालती जोशी अलग खड़ी दिखाई देती है। उनके कथा संसार भारतीय परिवेशों के जीवंत परिवेश हैं। वे मध्यमवर्गीय नारी की प्रवक्ता हैं, बहुपठित हैं लेकिन साथ ही उनकी जो नायिकाएँ हैं बेशक मध्यमवर्गीय है या घरेलू हैं लेकिन उनकी नारी ताकत के साथ अपनी बात कहती हैं। अपनी अस्मिता को बचाए रखने का.... बनाए रखने का पुरज़ोर प्रयास करती है। वो सकारात्मक रहती है। मालती जी कहानियों की नायिकाएँ बेशक उघड़ी नहीं दिखती हैं... लेकिन उनका दिमाग़ खुला हुआ है। मालती जी की नायिकाएँ देह नहीं, संवेदना और दिमाग़ पर अधिक ज़ोर देती हैं। मालती जी कहती भी हैं कि जिस परिवेश का उन्हें अनुभव नहीं, वे उस पर क्यों लिखें? क्योंकि वे उधार की दुनिया पर नहीं लिखती। उर्मिला शिरीष आज भी सक्रिय हैं और जेंडर के आधार पर लेखन की पक्षधर नहीं है, बावजूद इसके वे मानती है कि महिला कथाकारों की रचनाओं में स्त्री जीवन की अनुभूतियाँ अधिक घनीभूत होती है। सूर्यकांत नागर कहते हैं कि नई नारी का उदय आज के महिला लेखन की सबसे बड़ी सफलता है।

एक गीत की एक पंक्ति है कि जिस कवि की कल्पना में ज़िंदगी हो प्रेम गीत तो उस कवि को आज तुम नकार दो, लेकिन इन सबको नकारते हुए सूर्यकांत नागर का अगला निबंध है, प्यार का कोई व्याकरण नहीं होता। ये सच है कि प्यार वो अहसास है जो लगता है कि पूरा जीवन ही है। कुछ देखा, कुछ अनदेखा, कुछ व्यक्त, कुछ अव्यक्त। मुझे लगता है जब मुखरता ना हो मौन हो तब भी प्यार, प्यार है और जब मौन मुखर हो जाए तो भी वो प्यार ही रहता है। बेशक सच्चे प्यार में शोर नहीं होता। लेखन हो या प्यार दोनों की प्रभावी अभिव्यक्ति में शोर बाधक है। बेशक प्रदर्शनकारी होने पर प्रेम अपनी महत्ता शुचिता और पुण्य ही खो देता है। प्रेम हृदय से होता है और इज़हार आँखों से। ज़ुबाँ कभी होती है कभी नहीं। प्यार अनायास का अवदान है जो कि बिना दरवाज़े पर घंटी बजाए प्रवेश कर जाता है और वह सशर्त भी नहीं होता। कहते है न कि प्यार में सौदा नहीं। ये बिल्कुल सच है और प्रेम वो है जिसमें सतर्कता नहीं होती, अगर सतर्कता है तो प्रेम नहीं है। ऑस्ट्रेलियाई लेखक के कथन से वे कहते भी हैं कि दुनिया की सबसे महत्त्वपूर्ण चीज़ है प्रेम। प्रेम के अलग-अलग रूप हैं एक द्वेत है एक अद्वेत का है। दुनिया से जुड़ा होने के बावजूद वहाँ एकाकी रूप मैं और तुम का भाव होता है। कृष्ण ने गोपियों को इसी भाव से छोड़ा था कि वे द्वेत के निर्मल तेज़स्वी तत्व से गूँथी हों और अद्वेत की सीमा में बंधी एंद्रिक कामना से मुक्त हो सकें। कृष्ण के प्रति राधा और गोपियों का प्रेम आध्यात्मिक है और सोलह श्रृंगार के अंतर्गत सूर्य ने उनके प्रेम को अलग ही रूप दिया है। मीरा का कृष्ण प्रेम आध्यात्मिक था। लौकिक अर्थ से भिन्न। मीरा कृष्ण रंग में इस कदर रंगी हुई थी कि उन्हें पति मान ख़ुद को उन्हीं को समर्पित कर दिया। उस प्रेम में देह की ग़ुलामी का बंधन नहीं था। मीरा ने उस काल में स्त्री अस्मिता का जो उदाहरण पेश किया उसका सानी इतिहास में मिलना मुश्किल क्या असंभव ही है। लोक लाज और

सामाजिक आलोचना की चिंता किए बगैर वे कृष्ण प्रेम में डूबी रहीं और राजसी ऐश्वर्य को ठुकराया। स्त्री स्वातंत्र और प्रेम की शक्ति का बिगुल तो उन्होंने करीब 500 वर्ष पहले ही बजा दिया था। कि मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई। उनकी भक्ति में काव्य में श्रद्धा है। मीरा का काव्य दरअसल आत्ममुक्ति का काव्य है और वो ये बता देता है कि प्रेम का कभी कोई व्याकरण नहीं होता। प्रेम की परिभाषा नहीं होती। कोई नाम न दिया जाए तब भी प्रेम, प्रेम ही रहेगा।

मुखिया मुख सो चहिए खान-पान में एक, पाले-पोसे सकल अंग तुलसी सहित विवेक। ऐसे शब्दों के कुशल कथा -शिल्पी तुलसी ये सूर्यकांत नागर का अगला निबंध है, वे कहते हैं कि रामचरित मानस जैसा वृहद् ग्रंथ रचकर तुलसीदास ने सिद्ध कर दिया कि वे न केवल एक सिद्ध कवि हैं बल्कि कुशल कथाकार भी थे। लगभग साढ़े चार सौ वर्ष पूर्व रची गई उस कहानी, आज की कहानी के समान तत्व चाहे न हों मगर कहानी का मूल तत्व उसमें है। वैसे आस्था के लिए किसी भी तर्क और श्रद्धा के प्रति संदेह की गुंजाइश नहीं होती है। पूरी कथा में निरंतरता और अविछिन्नता विद्यमान है, कहीं जोड़ नहीं दिखाई देते। तुलसी की विशेषता थी कि कथा में आए पुराने प्रसंगों को नए प्रसंगों से किस तरह जोड़ना। इस तरह जोड़ना कि कहीं कोई कमी महसूस न हो। उन्होंने जल्दबाज़ी न करते हुए धैर्य पूर्वक कथा को आगे बढ़ाया और यह धैर्य ही एक कथाकार को पूर्ण बनाता है। सीता जी को जब हनुमान भगवान् राम की मुद्रिका भेंट करते हैं तब वे प्रसन्नता और दुख को किस तरह महसूस करती हैं, तुलसी दास यहाँ लिखते हैं कि- "चकित चितैं मुद्रिका पहचानी/ हर्ष विषाद हृदय अकुलानी।" मुद्रिका मिलने पर हर्ष के साथ विषाद क्यों कर हुआ। क्योंकि सीताजी के मन में यह आशंका उपजी कि कहीं राम को मारकर या चोट पहुँचाकर तो मुद्रिका नहीं लाई गई। इसलिए वे पहले मुद्रिका देखकर प्रसन्न होती है और बाद में दुखी होती है। तुलसी के मानस में मनुष्य जीवन को लेकर कई प्रसंग है। शील और गुण से रहित ब्राम्हण भी पूजने योग्य है शूद्र भले ही गुणों की खान और ज्ञानवान हो, उनकी पूजा नहीं करनी चाहिए, ऐसा तुलसी कहते हैं। लेखक समकालीन वेश और परिस्थितियों से प्रभावित होता है और इस पक्ष को ध्यान में रखें तो शेष राम कथा एक उत्कृष्ट दृष्टि सम्पन्न कवि कथाकार के सार्थक सृजन के रुप में हमारे समक्ष आती है। रामचरित मानस की गिनती विश्व के सर्वश्रेष्ठ भक्ति साहित्य में यूँ ही नहीं हो जाती।

अपने अगले निबंध में सूर्यकांत नागर अख़बारी पत्रकारिता पर चंद सवाल उठाते हैं। सवाल उठाते हुए वे कहते हैं कि पत्रकारिता मिशन न रहकर अब व्यवसाय बन गई है। एक उद्योग, एक उत्पाद। अब पत्रकारिता लोकतांत्रिक और नैतिक मूल्यों की स्थापना जन संघर्ष में भागीदारी और राष्ट्रीय विवेक की अभिरक्षक बनने की अपनी भूमिका से विमुख होती जा रही है। बड़े-बड़े संस्थान पत्र पत्रिकाओं के प्रकाशन को एक उद्योग की तरह लेने लगे हैं। हम देखते हैं कि जो पत्रिकाएँ घाटे का सौदा थीं वे बेहतरीन पत्रिकाएँ, सर्वश्रेष्ठ पत्रिकाएँ, दिनमान, रविवार, नंदन, धर्मयुग जैसी पत्रिकाएँ काल कल्वित हो गई हैं, इसी वजह से। क्योंकि अख़बारों में अब विवेकशील संपादकों की बजाय पीआरओ की आवश्यकता अधिक है, जो अख़बार की बिक्री बढ़ाने और विज्ञापन बटोरने में सहायक हो सके। ऐसे-ऐसे उप संपादक नियुक्त किए जा रहे हैं, जो कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा लॉन्च किए जा रहे प्रोडक्ट की लॉन्चिंग समारोह को कवर कर सकें। एक बहुत बड़ी चुनौती है स्वच्छ पत्रकारिता करना, क्योंकि कुछ धंधेबाज़ पत्रकार पत्रकारिता को कलंकित करते हैं, यहाँ तक कि व्यापारियों को डरा-धमकाकर और रसूख का चरित्र हनन कर उन्हें ब्लैकमेल तक करते हैं। समाचार पत्रों की बढ़ती प्रतिस्पर्धा में जो गिरावट आई है, उसका एक कारण यह भी है कि अपनी लकीर बड़ी करना तो दूसरों की लकीर को पहले मिटा दो जबकि होना ये चाहिए कि आप अपनी लकीर बड़ी करने में निरंतर सृजनरत रहें। लेकिन ऐसा हो नहीं रहा, क्योंकि लक्ष्मी पुत्र सरस्वती पुत्र बनने की कोशिश कर रहा है, तो इस तरह का संकट आना स्वाभाविक है। पहले समाचार पत्रों से जुड़े लोग साहित्यकार भी होते थे, साहित्यिक पत्रिकाओं के संपादक लगभग सभी साहित्यकार भी होते थे। साहित्य की उन्हें समझ रहती थी। वर्तमान में ज्वलंत प्रश्न अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का भी है। कुछ लोग अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर खतरा मानते हैं लेकिन बावजूद इसके वो कुछ भी लिख देते है, छपता है और उन पर कोई कार्रवाई नहीं होती। लेकिन फिर भी चूँकि सरकार का विरोध करना है तो ये कहना अनिवार्य हो जाता है कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता खतरे में हैं। अफवाहों को सच की तरह परोसने की कोशिश की जाती है।

इसके साथ ही आज मीडिया पर भाषा को भ्रष्ट करने का भी आरोप है। कई हिन्दी समाचार पत्रों में अंग्रेज़ी शब्दों की भरमार है। अख़बार अंग्रेज़ी का मोह नहीं त्याग पा रहा है, या यूँ कह लीजिए कि हिन्दी को अपना नहीं पा रहे। राष्ट्रभाषा के प्रति जो स्वाभिमान होना चाहिए, अपनी भाषा को श्रेष्ठ मानने का जो भाव होना चाहिए वह नहीं है। आज अपनी साख बनाने के लिए यह भी अनिवार्य है कि दुनिया की मज़बूत और समृद्ध पंक्ति में खड़ा होना है तो हिन्दी को अपनी ताक़त और नए तेवर के साथ विश्व पटल पर फैलाना होगा, क्योंकि हम देख रहे हैं कि विश्व समझ चुका है कि हिन्दी का क्या महत्त्व है। हम इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की कई चीज़ों में देखते हैं कि हिन्दी अनुवाद हुए जा रहे हैं क्योंकि दुनिया जानती है कि इन चीज़ों को हिन्दी में लाना ही अनिवार्य है, तब ही उनकी ताक़त बढ़ेगी। लेकिन विडंबना है कि हम ही हिन्दी की ताक़त को नहीं पहचान पा रहे हैं। अपनी भाषा और संस्कृति के प्रभाव को फैलाने के लिए हिन्दी को मजबूत बनाना अनिवार्य होगा।

अपने निबंध साहित्यिक पत्रकारिता: चुनौतियाँ अनेक हैं में लेखक ने अख़बारी पत्रकारिता और साहित्यिक पत्रकारिता में अंतर बताया है कि एक सूचना प्रमुख है तो दूसरी विचार प्रमुख। हमें यह ध्यान रखना

होगा कि हमारे यहाँ पत्रकारिता की शुरुआत मुख्यत साहित्यिक पत्रकारिता से ही हुई थी। भारतेन्दु हरीशचन्द्र से लेकर निराला, प्रसाद, दिवेदी, प्रेमचंद जैसे दिग्गजों ने साहित्यिक पत्रिकाओं का संपादन किया था। डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने कहा भी था कि पत्रकारिता साहित्य पर आधारित होगी तो वह नए मूल्यों का निर्माण करेगी। वे साहित्यिक पत्रिकाएँ निश्चित रूप से अधिक मान्य और सिद्ध होती हैं जिनका संपादन साहित्य के व्यसन की तरह होता है। आज हम देख रहे हैं कि साहित्य समाचार पत्रों से तो नदारद ही हो रहा है। पहले भरपूर पेज साहित्य के लिए होते थे अब वे या तो विलुप्त हो चुके हैं या सिमट कर बहुत छोटे होते जा रहे हैं। जबकि पत्रिका के हर पृष्ठ पर संपादकीय दृष्टि होना चाहिए, अब ऐसा हो नहीं रहा है। सारी कवायदें शब्दों को घटाने में लगी रहती हैं और इस तरह का एडिट रचना को कई बार तहस नहस कर देता है। कई बार संपादक पर उनके मालिकों का दबाव होने लगा है। अब तो समाचार पत्र देखकर साफ समझ आता है कि ये सत्ता के पक्ष में लिख रहे हैं या विपक्ष में है। कई अख़बार आप देखकर ही समझ जाते हैं कि ये सरकार के विरुद्ध ही कमर कस के खड़ा हुआ है। और कई अख़बार देखकर समझ में आ जाता है कि ये सरकार या सत्ता के चरण स्पर्श क्या साष्टांग दंडवत करने को आतुर हैं। यही चुनौती आज पत्रकारिता के सामने है। इससे किस तरह से बाहर निकल जाए? संपादक की प्रतिबद्धता के उदाहरण आजकल विरले ही मिलते हैं और इसीलिए इनके बिना न तो साहित्य का भला होता है न पाठक का भला।

गोपाल का वेणू में सूर्यकांत नागर ने बहुत ही ख़ूबसूरती के साथ बाँसुरी की व्याख्या की है। कृष्ण के सारे नामों का उल्लेख करते हुए वे कहते है कि उनके सारे नाम सांकेतिक और अर्थ बोधक होते थे। गो-पालनहार,गोपाल, गोविंद गोवर्धन पर्वत धारण करने वाले गिरधारी, मुरलीधर या बंसीधर, निलवर्णी या श्यामवर्णी होने के कारण श्याम सुंदर। इसी प्रकार वेणू शब्द संस्कृत का है, जिसका अर्थ है बाँस। और जब बाँस से सुर निकलने लगे तो बाँसुरी। इसीलिए हर प्रसंग में बाँसुरी के लिए वेणू शब्द का प्रयोग हुआ है। वस्तुत: वेणू कृष्ण भक्ति की प्रतीक है। वेणू में छिद्रों का बड़ा महत्त्व है। हम आमतौर देखते है कि किसी वस्तु में छेद हो जाना अच्छा लक्षण नहीं माना जाता, वह चाहे कपड़े में हो, छाते में, जूते में। निर्धनता और दरिद्रता का प्रतीक माना जाता है छेद। लेकिन बाँसुरी में छिद्रों की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है, जिसमें उँगलियों का हल्का सा स्पर्श पाकर रागिनियाँ खिल उठती है। वे बंसी बजाते हुए कृष्ण का चित्रण भी बहुत बारीकी से करते हैं। प्रेम और भक्ति की रसानुभुति कराती वेणू की इस परंपरा को आधुनिक काल के हमारे मूर्धन्य बाँसुरी वादकों ने जीवित रखा हुआ है। नए-नए प्रयोग भी हुए हैं, पर मूल भाव तो वही है। इसी दिशा में वे मूर्धन्य बाँसुरी वादक श्री पन्नालाल घोष, श्री रघुनाथ सेठ,पंडित हरिप्रसाद चौरसिया, पंडित नित्यानंद हल्दीपुर आदि का उल्लेख करते हैं। वे कहते हैं कि चाहे मुरली मुरलीधर की हो या लोक जीवन की, जब अधरों का स्पर्श पाकर थिरकती है तो श्रोता को आनंदातिरेक से भर देती है। एक अलग ही विश्व में ले जाती है जहाँ केवल प्रेम है, ब्रह्मानंद है और समरसता है।

सूर्यकांत नागर के अगले निबंध में यही पीड़ा उजागर होती है कि कहानियों से लोक विलुप्त होता जा रहा है। ग्रामीण परिवेश पर लिखी जाने वाली कहानियाँ कम होती जा रही हैं। कारण लगता है कि गाँवों से निकले लेखक महानगरों में आ बसे और धीरे-धीरे अपनी ज़मीन से कटते गए। कहानियों में गाँव अब नाम मात्र को रह गया है। जबकि प्रेमचंद्र की कहानियों में तो गाँव आत्मा तक जुड़ा हुआ था। या शायद गाँव के ज़्यादातर लोग पहले भोले, सहज और संवेदनशील होते थे, जो शायद अब नहीं हैं। या शहर अपने पैर गाँव में पसारता जा रहा है। ग्रामीण परिवेश की कहानियाँ बिल्कुल अलग डिजाइन की होती थी, जब हम कहानियाँ पढ़ते थे तो आँखों के सामने उस वर्णन से ही गाँव जीवंत हो उठता था। उनके घरों का, बरामदों का, पहनावे और मेले का जब भी वर्णन करते तो आँखों के सामने गाँव आकर के खड़ा हो जाता था। खेत खलिहान, खेत की मेड़, कुएँ, सारे कथा का हिस्सा हुआ करते थे। अभी वो धीरे-धीरे कम होते जा रहे हैं या समाप्त होते जा रहे हैं।

अपने अंतिम निबंध नई चमक के साथ उपस्थित है कविता में कुछ ऐसे ही भाव सूर्यकांत नागर ने अभिव्यक्त किए हैं। कविता की प्रासंगिकता के प्रति उनकी चिंता स्वाभाविक है। क्योंकि एक समय था जब काव्यानुशासन के अंतर्गत छंद युक्त छायावादी लेखन आम बात थी। पंत, प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा इस धारा के प्रतिनिधि कवि थे। छायावाद की छाया सुभद्रा कुमारी चौहान की कुछ रचनाओं में देखी जा सकती है, लेकिन वहाँ न उस तरह की आध्यात्मिकता है, न रहस्य। उनकी भाषा और शैली सहज और अकृत्रिम है। मुक्तिबोध ने कहा भी था कि सुभद्राजी का छायावादी व्यक्तित्व एक विशेष प्रकार की भाव सघनता लेकर हमारे सामने उपस्थित होता है। देश विभाजन से उपजी त्रासदी में तब साम्प्रदायिकता के संबंध में उम्दा कविताएँ लिखी गई थी। काल और परिस्थति के साथ चीज़ें बदलती हैं। परिवर्तित परिस्थितयों का प्रभाव साहित्य और समाज दोनों पर पड़ता है। साहित्य की विधा कोई भी हो वह अपने समय से संवाद करती है इसलिए बदलते यथार्थ के साथ कविता के रचनात्मक स्वरूप को सामने लाने के लिए उसमें रूपात्मक परिवर्तन भी हुआ। कविता अपने समय का सच है। कविता के बिम्बों, प्रतीकों और रूपकों को लेकर भी बहस छिड़ी है, जहाँ इसके समर्थकों का तर्क है कि इन उपकरणों के माध्यम से भी विचार या अनुभव संक्षिप्त और प्रभावी हो जाते हैं वही विपक्ष का मत है कि इसके बिना भी सशक्त अभिव्यक्ति संभव है।

कुल मिलाकर एक सौ अट्ठाईस पृष्ठों मे पन्द्रह निबंध विस्तार से शोधपत्र की भाँति लिखे गए हैं। मेरा मानना है कि यह पूरी पुस्तक एक पाठशाला है, जो हर लेखक को इस पुस्तक रूपी पाठशाला का विद्यार्थी बनकर पढ़ना चाहिए।

000

(निबंध संग्रह)

समर्पयामि

समीक्षक : डॉ. नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

लेखक : डॉ. गरिमा संजय दुबे

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल - 9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

डॉ. नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
85, इंदिरा गांधी नगर,
पुराने आर टी ओ के पास
केसरबाग रोड़,
इंदौर 452005 मप्र
मोबाइल - 9425092893

ललित निबंध का केन्द्र मनुष्य ही है और उसका मूल स्वर यही है कि मनुष्यता का निरंतर उन्नयन कैसे हो, परिष्कार कैसे हो, विकास कैसे हो। इस परिप्रेक्ष्य में डॉ. गरिमा संजय दुबे के ये निबंध इस निकष पर मुझे खरे प्रतीत होते हैं। इनमें व्यक्ति की अभ्यर्थना नहीं है, व्यक्ति के माध्यम से अपने समय को दिए गए स्वर हैं, अपने समय की पहचान है तथा यह लालसा भी कि इस समय को और कैसे सुंदर बनाया जाए। उनके इन निबंधों में सर्वत्र अपनी माटी की महक है और उससे जुड़े रहने की उत्कंठा और आग्रह। अलग-अलग स्वभाव के इन निबंधों का सौष्ठव गरिमाजी के लेखन की परिपक्वता का ही नहीं बल्कि उनके बहुआयामी सोच को भी अभिव्यक्त करता है। प्रत्येक निबंध का अपना स्वभाव है, शैली है और स्वर भी क्योंकि ये निबंध इतने मुखर हैं कि इन्हें पढ़ो तो ये कानों में गूँजने लगते हैं। सार्थक लेखन स्वरविहीन नहीं होता। उनका एक निबंध है, 'क्योंकि काँटों को मुरझाने का ख़ौफ़ नहीं होता', इस निबंध में उन्होंने सैलाना के कैक्टस गार्डन में देखी गई नागफनियों को केन्द्र में रखा है। विभिन्न प्रकार के विलोम की गणना की है और एक फंतासी भी रची है कि कैसे रंग-बिरंगे सुगंधित फूलों को देखकर जब काँटे और कटीले पौधे अपने धूसर रंग और गंधहीन होने पर दु:खी हुए और वे अपनी व्यथा लेकर जब विधाता के पास पहुँचे तो विधाता ने इनमें वह अमूर्त सौन्दर्य प्रतिष्ठित कर दिया जो आँखों को सबसे अधिक लुभाता है। इस निबंध में कैक्टस के इसी सौन्दर्य को उन्होंने अपनी प्रवहमान शैली में भावों के उद्दाम वेग के साथ रच दिया है। व्यक्तिव्यंजक निबंध की यही विशेषता भी है।

इसी तरह उनका एक और निबंध शरद को लेकर है, 'श्वेत शुभ शरद: तू वसंत से क्या कम है'। हिन्दी में ऋतुओं को लेकर बहुत लेखन हुआ है लेकिन इस निबंध में जहाँ एक ओर प्रकृति की सम्पन्नता का वर्णन है तो दूसरी ओर आध्यात्मिक आभा से पूरित इस ऋतु का आख्यान भी। इसमें यदि दिनकर और शैले जैसे कवियों की उपस्थिति है, तो कास का शोभागान करते कालिदास भी तथा शरद में खंजन के आगमन का अभिनंदन करते तुलसीदास भी। इसमें यदि मानसरोवर के हंस हैं तो ज्योतिष के हंस योग और सरस्वती योग भी। इस निबंध में आयुर्वेद से लेकर चन्द्रमा के उस स्वरूप को भी प्रस्तुत किया गया है जिसमें चन्द्रमा वैद्य भी है और योगी भी।

सर्वत्र शुभ्रता के शुभ का आख्यान करने वाला यह निबंध अपनी प्रवाहमान तथा सुंदर भाषा शिल्प के रहते सहज और संप्रेषणीय है। इस निबंध में झरते प्रपात का सौन्दर्य भी है और उसकी शुभ्रता का निनाद भी। इस निबंध से ललित निबंधकार के मन की उस कुलांच का अनुमान लगाया जा सकता है जिसका उल्लेख मैंने आरंभ में किया है।

आम पर केन्द्रित उनका निबंध कहीं आम को सामान्य से जोड़ने की पहल है जिसमें वे कहती हैं कि, 'हमने तो आम से एक ही दर्शन सीखा है। अगर ख़ास होना है तो आम हो जाइए, दिलों पर राज करने का बस यही एक रास्ता है।'

चाँद को लेकर उनकी कल्पना में कई बिम्ब आते हैं और ये बिम्ब ऐसे हैं जो अनेक उपादानों को जोड़ते हुए चन्द्रमा को व्यंजित कर देते हैं। उनकी दृष्टि में चाँद हमारा सबसे प्राचीन खिलौना है, किसी भी बच्चे की आँख में उभरने वाला पहला कौतुक।

एक निबंध है 'सुवर्णलता की इच्छा'। यह निबंध एक भिन्न प्रकृति का निबंध है जिसमें कहानी के तत्व हैं, स्त्री विमर्श भी। लेकिन जब वे इस पात्र को व्यंजित करती हैं तो यह व्यंजना एक सहज मनोवैज्ञानिक प्रश्न उपस्थित करती है। खुशियों की बात करते हुए वे कहती हैं, भीतर के विचलन की चिकित्सा क्या बाहर से संभव है? वे आगे कहती हैं, 'पहाड़ पर रहने वाला समंदर को देखने को भागता है, समंदर के क़रीब वाला रेगिस्तान की रेत का मुरीद है और रामेश्वरम् वाले केदार की ओर दौड़ते हैं। पर्यटन तक तो बात समझ में आती है लेकिन उससे जीवन में खुशी आ जाएगी या कि आपके भीतर के विचलन संयत हो जाएँगे यह नहीं कहा जा सकता।

इस कृति में एक निबंध है, 'इन दिनों सब मुझसे बात करते हैं'। यह एक आत्मपरक निबंध है जिसमें वर्तमान कोरोना काल के संबंध में जो अनुभूतियाँ हैं उन्हें व्यक्त किया गया है। चश्मे पर लिखा गया निबंध 'अथ: श्री ऐनक कथा', उनकी स्वयं की आपबीती का चित्रण है। इसमें एक व्यंजक वाक्य है, 'मास्टर्स करते-करते चश्मा किशोर हो गया तब लड़की की उम्र इक्कीस वर्ष थी।' इस संवाद में व्यंजना का सहज अनुभव किया जा सकता है। हम स्वयं चश्मा बनकर क्या अनुभव कर सकते हैं और फिर उस अनुभव से अपने आपको कैसे जोड़कर अपना अनुभव व्यक्त कर सकते हैं यह देखने योग्य है।

बुद्धि के बारे में अपने निबंध 'बुद्धि का अतिरेक खुशियों का शत्रु' में वे कहती हैं कि बुद्धि का भी आतंक होता है जो खुशियों का क़त्ल कर देता है। अफसोस कि खुशियों के इस तरह सरेआम क़त्ल पर कोई खुशी आयोग सक्रिय नहीं है।

इस संग्रह में एक दिलचस्प फैंटेसी है गौरय्या पर। निबंध का शीर्षक है, 'पृथ्वी का भविष्य और गौरय्या'। इसमें एक स्थल पर वे कहती हैं, 'अगले दिन म्यूज़ियम में जाना तय हुआ। मुझे हँसी आई हम सब भी तो म्यूज़ियम की चीज़ हैं।'

जैसा कि मैंने संकेत किया है उनके निबंधों के भिन्न-भिन्न विषय हैं। एक सुंदर निबंध है जिसका भाषा सौष्ठव और शिल्प बहुत आकृष्ट करता है, वह है अनलॉक ज़िन्दगी पर। इसमें उनका कथन है, 'जीवन की आमद ने, जिजीविषा के उदाहरणों ने आश्वस्त किया तो मृत्यु के पंजों ने डराया भी, लेकिन जीवन चक्र के स्वाभाविक क्रम ने हमें सांत्वना भी दी। उड़ती चिड़िया के पंख कह रहे थे कुछ भी लॉक नहीं है, हाँ केवल हमारी अनावश्यक बाहरी दौड़ ठहरी थी, आपाधापी, भागम-भाग पर विराम लगा था। फूल खिल रहे थे, प्रकृति गा रही थी, नदियाँ बह रही थीं, बादल छाए, अमलतास के झूमर और गुलमोहर के चटख रंग पर कौन सा लॉकडाउन था भला। सब कुछ अनलॉक ही था इसलिए ताले तो खुलने ही थे।'

उनका एक निबंध है, 'मिल जा कहीं समय से परे'। इसमें वे कहती हैं, 'कुछ धारणाएँ कभी भी बुद्धि का विषय न होकर अनुभव का विषय होती हैं और वैज्ञानिक रूप से उसका कोई ठोस उत्तर नहीं होता। होता भी है तो वह जन सामान्य को संतुष्ट नहीं कर पाता। क्या पता प्रयोगशालाओं में साबित करने वाले वैज्ञानिकों को भी चकित करता हो, किन्तु वे अपनी वैज्ञानिकता के अहंकार में ऐसे लिप्त रहते हैं कि चमत्कार या कौतुक उनके लिए होते ही नहीं। सच भी है एक सामान्य इन्सान के लिए सब चमत्कार और एक वैज्ञानिक के लिए सब विज्ञान।' यह कथन एक सामान्य व्यक्ति और एक वैज्ञानिक सोच वाले व्यक्ति के बीच की स्पष्ट विभाजक रेखा है। इस निबंध में उन्होंने शून्य, गुरुत्वाकर्षण और तरंग से लेकर टाइम मशीन तक की चर्चा की है। वे अतीत की उन घटनाओं से साक्षात्कार करना चाहती हैं जो विभिन्न युगों में घटित हुईं। वे अतीत के इन महत्त्वपूर्ण युगों को एक बार जीना चाहती हैं। इसे नॉस्टेल्जिया कहा जा सकता है, लेकिन यह भी लगता है जैसे यह एक नवजागरण के लिए देखा जा रहा स्वप्न भी हो।

एक निबंध चेतना के आवागमन पर है जो माँ पर केन्द्रित है। इस निबंध में वे पुरुष और स्त्री के संबंध में उनकी चेतना के ब्रह्माण्ड की ऊर्जा से जुड़ने को लेकर एक महत्त्वपूर्ण तथ्य रेखांकित करती हैं। वे कहती हैं कि स्त्री इस ब्रह्माण्ड की ऊर्जा से दो बार जुड़ती है। एक बार तब जब वह भ्रूण के रूप में होती है और एक बार तब जब वह माँ बनने की प्रक्रिया में होती है। यह निबंध उस आध्यात्मिक अनुभव के उस स्तर से परिचय कराता है जो अनुभव सर्जनात्मकता का स्रोत है।

उनका एक निबंध शिव के नारीवादी होने को लेकर केन्द्रित है। यह एक महत्त्वपूर्ण निबंध है जिसमें उन्होंने शिवत्व के आत्मतत्व को प्रस्तुत किया है। वे शिव के जिन गुणों की अभ्यर्थना करती हैं वास्तव में वे गुण शिव को नारी गरिमा के आदि अधिष्ठाता के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। उन्होंने इस निबंध में शिव क्यों पति के रूप में सर्वाधिक स्वीकार्य हैं यह भी स्पष्ट किया है। वास्तव में शंकर, राम और कृष्ण से भिन्न हैं। राम के जीवन में विराग नहीं विवशता से उपजा बिछोह है और कृष्ण के पास तो स्थिरता ही नहीं है वे तो अनुराग और विराग के बीच दोलायमान बने रहते हैं। उनमें राग का चरम है, अनुराग का भी और विराग का भी। शंकर में विराग का परम उत्कर्ष है

इसीलिए अनुराग की चरम अभिव्यक्ति है और अनुराग का यह प्रवाह इतना अविरल है कि वह शिव और पार्वती के आदर्श दाम्पत्य की सृष्टि करता है और इसीलिए कालिदास कहते हैं कि वे वाणी और अर्थ की तरह अभिन्न हैं। अर्द्धनारीश्वर स्वरूप की व्यंजना यही है कि अनुराग तभी अनुराग है जब उसमें पुरुष और प्रकृति दोनों की बराबर सहभागिता हो। अनुराग अपनी चिन्मय अस्मिता में एकाकी कहाँ होता है ? हो भी नहीं सकता। शिव और पार्वती के दाम्पत्य को उन्होंने इस निबंध में सुंदर विस्तार दिया है।

राम और सीता को लेकर भी उन्होंने एक निबंध रचा है, 'राम सीता के बाद और शेष क्या ?' इसमें रामायण के बारे में उनका कथन है कि रामायण पुरुषार्थ, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की मर्यादा, मनुष्य जीवन के सूत्र, भारतीय परम्परा के मौलिक मूल्य, अहिंसा, शांति, सद्भावना, चरित्र, मर्यादा, प्रेम, न्याय, त्याग, तपस्या, ब्रह्मचर्य के महत्त्व को पुन: प्रतिष्ठित करती है। वास्तव में राम अविराम हैं। वे हमारे जीवन प्रवाह में निरंतर बहते हैं और जिन गुणों का रामायण के संदर्भ में गरिमाजी उल्लेख करती हैं वस्तुत: उन गुणों की प्रतिष्ठा ही रामत्व का पर्याय है।

विसर्जन के मांगलिक पक्ष पर भी उनका निबंध है, 'विसर्जन मांगलिक हो'। इसमें वे कहती हैं कि 'भारतीय धर्म में समापन की जगह विसर्जन शब्द का प्रयोग किया जाता है क्योंकि शाश्वत सत्ता में समापन जैसा कुछ है ही नहीं।' विसर्जन उसी तरह है जैसे राग के आगे वि संयुक्त हो तो वह विराग हो जाता है। सर्जन या सृजन ही विसर्जन के मूल में है। इसलिए विसर्जन का आशय कहीं सृजन का समापन नहीं है बल्कि वह पुन: सृजन के रूप में प्रकट होने की उद्भावना है।

संग्रह में एक निबंध कृष्ण पर है, 'कृष्णम वन्दे जगत्गुरुम'। इसमें वे सच कहती हैं कि कृष्ण भारत की प्रज्ञा हैं, मेधा हैं, उनका सम्पूर्ण जीवन ही एक पाठशाला है। कृष्ण के बारे में बहुत विस्तार से लिखा और पढ़ा गया है। उनके जैसा निराला और बहुआयामी चरित्र हमारी परम्परा में इकलौता है। वे विरोध के एक्य हैं। अद्भुत हैं कृष्ण। डॉ. राममनोहर लोहिया ने लिखा था कि राम के पीछे चलने का मन होता है लेकिन कृष्ण को प्यार करने की विवशता होती है। यह इस देश के स्वभाव में है, और जहाँ प्यार करने की विवशता है वह विवशता वस्तु नहीं भाव है इसलिए विद्यानिवासजी इतिहासपुरुष कृष्ण को भावपुरुष कहते हैं। कृष्ण का अर्थ अनेक प्रकार से प्रकट किया जाता है। वह जिसका स्वभाव आकृष्ट करने का हो, वह जो हरी भरी फसल की तरह श्यामल हो, वह जो प्रकाश के सघन केन्द्र बिन्दु होने के करण आँखों को न दिखाई दे और इसलिए श्याम हो और वह जिसका अर्थ हो खींचना, धरती में बीज वहन करने की क्षमता उत्पन्न करना, वह जो स्थिति और गति दोनों को खींचने में समर्थ हो, वह जो तमाम आवरणों और अभिमानों को नकार दे और वह जो सबसे अधिक आत्मीय भी हो और सबसे अधिक इस आत्मीयता के बंधन का भंजक भी। कृष्ण की उपस्थिति और अनुपस्थिति के अनेक भाव भागवत से लेकर गीतगोविन्द तक में वर्णित हैं। वे सोलह कलाओं वाले पूर्णतर पुरुष हैं। कृष्ण सबके लिए अपने स्व का विजर्सन करने का पर्याय हैं।

इसलिए कृष्ण पर जितना भी सोचें या लिखें वह अधूरा ही होगा क्योंकि कृष्ण स्वयं अधूरेपन का ही पर्याय हैं भले वे सोलह कलाओं वाले पूर्ण पुरुष हों। वे राधा जैसी अभिलाषा की चिरअभिलाषा करने वाले ऐसे मानव हैं जिन्हें हम ईश्वर कह देते हैं। कृष्ण के साथ ही साथ उन्होंने राम का भी स्मरण अपने निबंध 'विरह तप जब फले' में किया है। यह निबंध रामचरितमानस पर है जिसे वह विरह ग्रंथ कहती हैं। इसमें उन्होंने राम के विरह पक्ष को बड़े सुंदर रूप में व्यंजित किया है। जैसा कि मैंने पूर्व में कृष्ण के संबंध में उल्लेख किया वैसे ही राम के बारे में भी विस्तार से बहुत लिखा और पढ़ा गया है और रामचरित मानस वह ग्रंथ है जो राम के व्यक्तित्व और कृतित्व को समग्रता में बड़े सम्प्रेष्णीय रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है और यह तुलसी का ही चमत्कार है कि वे लोकातीत सौन्दर्य से लेकर लोकातीत मनोदशा तक को भाषा में बाँध देते हैं। उनका प्रयास लोक को राममय बनाने का है और राममय बनाने का अर्थ लोक को मंगलमय बनाना है। अपने निबंध में वे राम के जिस पक्ष का आख्यात करती हैं वह राम के चरित्र का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है।

अभ्यंग जैसी स्थूल क्रिया द्वारा अभंग का संधान करने वाला निबंध अपने आप में अनूठा है और एक बार पुन: आध्यात्मिक भाव भूमि पर ललित निबंध के सृजन का मनोहारी उदाहरण है, यह अदभूत जानकारी परक निबंध भी है। सावन का रोचक वर्णन है तो, बसंत पर लिखे निबंध में उन्होंने बसंत, नारी दिवस व महाशिवरात्रि के संगम से बहुत सुंदर दृश्य खींचे हैं, शिव के कल्याण स्वरूप, स्त्री अस्मिता व देवी सरस्वती के आह्वान के साथ बसंत ऋतु का सौन्दर्य वर्णन पाठक को अलौकिक अनुभूति देता है। समग्रता में ये निबंध विविधता से भरपूर हैं जो इस प्रकृति के निबंधों की विशेषता है।

जैसे हर एक फूल का रंग, रूप, गंध और आकार अलग-अलग होता है तथा एकाकिता में उसकी पहचान भी एक अलग संज्ञा होती है लेकिन जब ऐसे फूल एक साथ उपवन में खिलते हैं तो उनकी संज्ञा पाटल, जूही, मोगरा, चम्पा या मौलश्री नहीं होती, उपवन हो जाती है। उसी तरह इस कृति में ये निबंध पुष्प खिलकर शब्द उपवन हो गए हैं। समर्पयामि इस निबंध संग्रह का शीर्षक मेरी इस बात को सत्य साबित करता है कि इन गठरियों में भिन्न भिन्न भावों के प्रति समर्पण की महक उपस्थित है।

पहचान उत्स से नहीं बनती, प्रवाहमान यात्रा से बनती है। गंगोत्री के गोमुख से और अमरकंटक के नर्मदा कुण्ड से फूटने वाली जलधार गंगा या रेवा नहीं है वह इस फूटने वाली जलधार की प्रवाहमान यात्रा ही है जो गंगा और रेवा की संज्ञाओं से गंगोत्री और नर्मदा कुण्ड को विभूषित कर देती है।

इन निबंधों को पढ़कर मुझे लगा जैसे एक यात्रा आरंभ हुई और इस यात्रा के कारण इसके यात्री को पहचान मिली।

000

केंद्र में पुस्तक

(उपन्यास)

रूदादे-सफ़र

समीक्षक : कैलाश मंडलेकर, रेखा भाटिया, डॉ.सीमा शर्मा, पंकज सोनी

लेखक : पंकज सुबीर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

कैलाश मंडलेकर
15-16, कृष्णपुरम कॉलोनी, जेल रोड, माता चौक खंडवा म. प्र. 450001
मोबाइल- 9425085085, 9425086855
ईमेल- kailash.mandlekar@gmail.com

रेखा भाटिया
9305 Linden Tree Lane, Charlotte, North Carolina -28277, U.S.A.
मोबाइल - 704-975-4898
ईमेल- rekhabhatia@hotmail.com

डॉ. सीमा शर्मा
शास्त्रीनगर, मेरठ, उ.प्र. - 250004
मोबाइल- 9457034271
ईमेल- sseema561@gmail.com

पंकज सोनी
आयांश, 172, साकार सिटी, अम्बेडकर वार्ड, मंगली पेठ, सिवनी, 480661 मप्र
मोबाइल- 8226030402
ईमेल- pankajsoni20052001@gmail.com

रूदादे-सफ़र - देहदान की अंतर्कथा

कैलाश मंडलेकर

पंकज सुबीर हमारे आसपास के कथाकार हैं। उनके कथा संसार में रिश्तों के सघन ताने बाने और आपसदारी की महक है। उनकी औपन्यासिकता में न तो महानगरीय संत्रास दिखाई देता है और न वे मंगलग्रह से जुड़ी कोई अबूझ फैंटसी साधते हैं। वे हद दर्जे के लोकल हैं। उनके पात्र अक्सर हमारे इर्द गिर्द देवास, कन्नोद अथवा बैतूल के बाशिंदे हैं जो किसी भी हाट बाज़ार में झोला लटकाए सब्जी खरीदते हुए नमूदार हो सकते हैं। चौंकिए नहीं, कभी आप भी उनकी कथा के किरदार हो सकते हैं। पंकज सुबीर से सावधान रहने की ज़रूरत है। यदि आपने उनके पहले उपन्यास "अकाल में उत्सव" से लेकर "रूदादे-सफ़र" तक के औपन्यासिक फलक को देखा है तो इस बात की ताईद करनी होगी कि पंकज की कथा भूमि का विस्तार सीहोर से भोपाल तक लगभग 30 से 40 किलोमीटर के एरिये में प्रशस्त है। दरअसल एक जेनुइन और समयसिद्ध रचनाकार को सीमाओं और दायरों की परवाह नहीं होती। वह गली कूचों में भी अपने पात्र ढूँढ़ लेता है जहाँ मध्यवित्त परिसरों में असंख्य कथानक बिखरे होते हैं। अपने अंचल के लोगों के प्रति यह प्रेम, सम्मोहन और आशक्ति पंकज को एक बड़े कथाकार की हैसियत प्रदान करती है, और यदि न भी करे तो उन्हें इस बात की परवाह नहीं है। वे नेमावर के घाट पर पैंट के पाँयचे चढ़ाकर नर्मदा के उथले जल में चुल्लू से पानी पीते हुए पूरी तरह तृप्त हो सकते हैं और अपने पाठकों को भी इस तृप्ति का एहसास दिला सकते हैं। पंकज के कथा कौशल में स्थानिकता का यह आग्रह, "आंचलिकता" के पारंपरिक मुहावरे के व्यामोह का बायस नहीं है, बल्कि इसके पीछे एक ईमानदार कथाकार का नेचुरल कम्फर्ट है जो अपनी जानी बूझी जगहों और चरित्रों के आचरण और मनोव्यवहार का आख्यान रचता है।

"रूदादे-सफ़र" पंकज सुबीर की नई औपन्यासिक कृति है। रूदादे-सफ़र का मूल कथानक यों तो देहदान पर केन्द्रित है पर रचना का औपन्यासिक फ़लक अपने भीतर अनेक उपकथाएँ सँजोये हुए है। भारतीय समाज में मध्य वित्त परिवारों में माता पिता और संतान के बीच रिश्तों की महीन बुनावट, इस कथा में एक ऐसे भाष्य को रचती है जो वर्तमान दौर की सामाजिक टूटन के बरअक्स प्रेम और वात्सल्य तथा बंधन और मुक्ति जैसे मूल्यों की स्थापना के लिए कटिबद्ध है। कथा का समूचा ताना बाना इस तरह बुना गया है कि सारे पात्र सजीव लगते हैं और पढ़ने वाले को लगता है, मानों वह सामने स्क्रीन पर सब कुछ घटित होते हुए देख रहा है। कतिपय स्थलों पर भावुक कर देने वाले प्रसंग भी आते हैं जो आँखें गीली कर जाते हैं। फिक्शन को यथार्थ में तब्दील कर देने वाली इस भाषा और विन्यास पर चकित हुआ जा सकता है। पर यह कथा सिर्फ चौंकाने भर के लिए नहीं है, इसमें व्यक्ति और समाज का वह चेहरा भी दिखाई देता है जो इधर सोशल मीडिया के प्रचार तंत्र से प्रभावित है। दरअसल, देहदान के संदर्भ में भारतीय चरित्र की एक ख़ासियत यह भी है कि वह यों तो देह की नश्वरता का राग सदियों से अलापता रहा है और अक्सर देहदान की सार्वजनिक तौर पर घोषणा भी कर डालता है पर मृत्यु

के उपरान्त परिजनों का मोह उसकी इस "अंतिम" इच्छा को पूरी नहीं करता। डॉ अर्चना कहती है "मरने वाले की इच्छा से कुछ नहीं होता असल में परिवार वालों की इच्छा से होता है। हमारे यहाँ धार्मिक संस्कार इतने ज़्यादा हैं कि परिवार वाले अपने ही परिजन की इच्छा उसके मरने के बाद पूरी नहीं करते। मरने वाला तो चला गया। अब उसकी मर्ज़ी तो चलनी नहीं है। ज़्यादातर मामलों में परिवार वाले ही मना कर देते हैं। मोरल ऑफ़ स्टोरी इस दिस कि मरने वाले की इच्छा कोई माने नहीं रखती। उसके परिवार वालों की इच्छा ही मायने रखती है। जब तक माइंड सेट नहीं बदलेगा तब तक कैडेवर की कमी तो बनी रहेगी।"

बेटियों को समर्पित इस औपन्यासिक कृति की केन्द्रीय पात्र डॉ. अर्चना भार्गव है जो हमीदिया कॉलेज में एनाटॉमी की प्रोफ़ेसर है। कथा का सूत्रपात भोपाल के हमीदिया कॉलेज के डिसेक्शन रूम से होता है जहाँ कैडेवर को देखने के दौरान शिवानी नाम की एक स्टूडेंट बेहोश हो जाती है। मुझे याद आता है आठवें दशक के दौरान हमारे परिवार के कुछ बच्चे, चचेरे या ममेरे भाइयों के बेटे जो उन दिनों एम बी बी एस की पढ़ाई के लिए गाँव से शहरों में चले गए थे। वे जब छुट्टियों में घर आते थे तब अपने डिसेक्शन के अनुभवों को घर की महिलाओं के साथ साझा करते, तो हमारी माँ तथा भाभियों के चेहरे पर अजीब सा भय, जुगुप्सा और विस्मय के भाव घिर आते थे। दरअसल हमारी परम्परा में मृत मानव शरीर शुरू से ही भय का प्रतीक रहा है, लेकिन चिकित्सा की शिक्षा में कैडेवर एक अनिवार्य प्राथमिकी है जिसके बिना मेडिकल की पढ़ाई मुकम्मिल नहीं हो सकती। उपन्यासकार ने यहाँ कैडेवर के साथ किये जाने वाले प्रयोगों की अत्यंत सूक्ष्म और गहरी जानकारी प्रदान की है।

डॉ. अर्चना के बचपन से लेकर एनाटामी के प्रोफ़ेसर होने तक का तवील सफ़र अपने पिता डॉ. राम भार्गव तथा माँ श्रीमती पुष्पा भार्गव के संरक्षण में गुज़रता है। वह, पिता के सघन वात्सल्य की छाँव में रहते हुए जीवन की बड़ी -बड़ी चुनौतियाँ स्वीकार करती है। वे हर बार उसे आगे बढ़ने का हौसला देते हैं। जबकि श्रीमती पुष्पा भार्गव आम गृहणी है। जिसे अपने पति की रुचियों के प्रति हमेशा ही शिकायत रहती है, जो मेडिकल जैसे कमाऊ पेशे के बावजूद घर पर प्रेक्टिस नहीं करते और संगीत तथा कलाओं की दुनिया में खोये रहते हैं। अर्चना की रुचियाँ भी अपने पिता से बहुत मेल खाती हैं। पिता और बेटी के इस निष्कलुष वात्सल्य की उपन्यासकार ने गहरी विवेचना की है। एक जगह अर्चना कहती है "पता है रेहाना हम अपने पिता से इतना ज़्यादा कनेक्ट रहते हैं कि कई बार हम स्वीकार ही नहीं कर पाते कि कोई दूसरा आकर हमारे जीवन से पिता को विस्थापित कर दे।"

पिता के प्रति बेटी के इस अगाध प्रेम और वात्सल्य का उदाहरण उस वक्त भी पेश आता है जब चिकित्सा शिक्षा मंत्री के ससुर के शव को भोपाल से उनके गाँव जो महाराष्ट्र का कोई गाँव रहता है, ले जाया जाता है। शवपरिक्षण अथवा एम्बालिंग के दौरान जब मृत शरीर को कट लगाने का वाकिया दरपेश आता है तो मंत्री की पत्नी करुणा से द्रवित हो उठती है और अपने बाबा के शरीर को इस तरह काटने से मना कर देती हैं। "नहीं बाबा को कुछ मत कीजिए। वे तो इंजेक्शन तक लगवाने में डरते थे। कुछ मत कीजिए आप उनको दर्द होगा। मत कीजिये कुछ। अर्चना के अंदर उस महिला को देख कर कुछ उमड़ गया। अर्चना के सामने एक बेटी खड़ी है जिसका पिता सामने फर्श पर निर्जीव पड़ा हुआ है। दर्द को महसूस करने वाली आत्मा शरीर से निकल चुकी है मगर बेटी अभी भी अपने पिता को होने वाले दर्द से दुखी है। बेटियों और पिता के बीच जाने कौन सा तार जुड़ा होता है जो दर्द के एहसास को यहाँ से वहाँ तक पहुँचाता रहता है।"

"रूदादे-सफ़र" के कथा वितान के आधारभूत पात्रों में महिलाओं की आत्यन्तिक उपस्थिति तथा कथा वृन्तात को गति देने में उनकी सक्रिय भूमिका को स्त्री विमर्श के ताज़ा और तत्कालीन नेरेटिव के रूप में भी देखा जा सकता है। यह संयोग नहीं है कि इस उपन्यास की केन्द्रीय पात्र एक स्त्री है फिर रेहाना, रुकमणी, डॉ. नेहा सिंह, डॉ. सुषमा प्रधान, कलेक्टर की बहन रेखा, मंत्री की पत्नी आदि की निर्णायक भूमिकाएँ इस बात का साक्ष्य है कि नए दौर की स्त्री तेजी से बदल रही है तथा पुरुष वर्चस्व अथवा पितृ सत्तात्मकता के बरख़िलाफ़ अपने व्यक्तित्व को तेजी से स्थापित कर रही है। और यह सब इतनी शाइस्तगी और स्वाभाविक रूप में हो रहा है कि हमें ज़रा भी अनकम्फर्ट या अजूबा नहीं लगता। संयोग या कोइन्सिडेन्स की ही बात की जाए तो मुझे डॉ. अर्चना भार्गव का ब्राह्मण होना तथा उसकी सबसे प्रिय और आत्मीय कलीग तथा दोस्त रेहाना का मुस्लिम होना भी संयोग नहीं लगता। इन दोनों की गहरी आत्मीयता को वर्तमान राजनीतिक विषमता और साम्प्रादायिक वैमनस्य के बरअक्स पारम्परिक "कंपोजिट कल्चर" की पुनर्स्थापना के रूप में भी देखा जाना चाहिए।

बहरहाल भोपाल की पृष्ठ भूमि पर लिखे गए इस उपन्यास में पंकज ने भोपाल की अनेक चीज़ों और मुख्तलिफ़ जगहों का बहुत प्यार और आत्मीयता से ज़िक्र किया है। रविन्द्र भवन, पोलिटेक्निक चौराहा, पीरगेट, ईदगाह हिल्स तथा कोहेफ़िज़ा को हम एक बार फिर उपन्यासकार की नज़रों से देखते हैं और शायद उन स्मृतियों में लौटते हैं जो इन जगहों से वाबस्ता रही हैं। निर्मल वर्मा ने कहा है कि "कहानी कुछ पाने का भ्रम देती है जबकि उपन्यास ढूँढ़ने की लम्बी यात्रा है।" रूदादे-सफ़र में पंकज सुबीर ने आधुनिकता की चमक दमक में गुम हो चुके भोपाल को फिर से ढूँढ़ने की कोशिश की है और वे कामयाब भी हुए हैं। "तालाब के किनारे जिस तरह दुनिया भर के प्रवासी पक्षी आते हैं उसी तरह दुनिया भर की कलाएँ भी यहाँ आती हैं"। उपन्यास का अंत एक नाटकीय मोड़ के साथ होता है। सारे वातावरण में एक अनकही उदासी की परत बिछ जाती है। देहदान जैसे संवेदनशील विषय पर लिखी गई इस प्रेमल और आत्मीय औपन्यासिक कृति के लिए पंकज सुबीर को बहुत शुभकामनाएँ।

000

देहदान कहानी का नायक है

रेखा भाटिया

पर्दा उठता है और शुरू हो जाता है जीवन का खेल, रिश्तों की दीवाली, उसके बाद रिश्तों का चले जाना ! पीछे छोड़ जाते हैं एकाकीपन का घुप्प अँधियारा। जीवन का गूँगा-बहरा एकाकीपन ग़ुबार बन दिल में तूफ़ान मचाता है लेकिन उस तूफ़ान की रफ़्तार दिल की दीवारों से टकराकर उन दीवारों को घायल करती जाती है, दिल के बाहर एकाकीपन और दर्द के उस तूफ़ान का किसी को इल्म नहीं है। अर्चना का जीवन उम्र के उस मोड़ पर ठहर गया है, जहाँ से वह चाहकर भी उस अकेलेपन और दर्द से छुटकारा नहीं पा सकती क्योंकि उसी अकेलेपन और दर्द के तूफ़ान को उसने अपना साथी बना लिया है। वर्षों गुज़र चुके हैं डॉ. अर्चना के जीवन का इंद्रधनुष अकेलेपन के बादलों में सिमट धुँधला गया है। डॉ. अर्चना अपने वर्तमान से भूत और भूत से फिर वर्तमान में हिचकौले लेते जीवन गुज़ार रही है। ऐसा नहीं है वह जीवन से ख़ुश नहीं है, उसने जीवन का वह मुकाम हासिल किया है जिसका अर्चना और उसके पिता ने कभी अर्चना के लिए सपना देखा था।

एनॉटोमी विभाग की हेड ऑफ डिपार्टमेंट डॉ. अर्चना बहुत मेहनती, शालीन, सभ्य और समझदार है। दिन में वह मेडिकल के फर्स्ट ईयर के स्टूडेंट्स, उनकी ज़रूरतों, उनके भविष्य और कैडेवर, देहदान करने वालों के परिवार के लिए, उनके भले के लिए भागदौड़ करती है; लेकिन शाम को, रातों को उसके जीवन की दिशा बदल जाती है और जीवन की दशा उस गीत की तरह हो जाती है- "ज़िंदगी का सफ़र है ये कैसा सफ़र, कोई समझा नहीं, कोई जाना नहीं !"

उसके जीवन के दो प्रमुख पात्र माँ अब दुनिया में नहीं है और पिता कहीं खो गए हैं। अर्चना को अपने पिता की प्रतीक्षा है। अर्चना कैडेवर के साथ रहते-रहते, दिन भर भागदौड़ करते-करते भावहीन हो चुकी है, ऐसा नहीं है। समय-समय पर कैडेवर के परिवार वालों के दर्द के एहसास से उसके भीतर के दर्द का ज्वार भावनाओं का सैलाब बन उमड़ पड़ता है और कसकर पकड़े जीवन दर्द की डोर खिंचकर लहूलुहान कर जाती है।

पिता-पुत्री के रिश्ते पर आधारित इस मार्मिक उपन्यास में दोनों के अनोखे रिश्ते की प्रगाढ़ता, गहराई, निष्ठा और प्रेम उपन्यास की कहानी का हृदय है। बेहद मार्मिक और भावुक उपन्यास में पंकज सुबीर की क़िस्सागोई कमाल की है। कहीं भी पकड़ ढीली नहीं पड़ती है।

भोपाल शहर उपन्यास का नवाब है, जो दिलों पर राज करता है। पूरे उपन्यास में भोपाल शहर के विभिन्न इलाक़ों का बहुत विस्तार से वर्णन है। झीलों के शहर भोपाल की ख़ूबसूरती पर लेखक ने कमाल का प्रयोग किया है। अर्चना के जीवन की कहानी के साथ भोपाल शहर की कहानी समानान्तर बेहद सुचारु रूप से साथ-साथ चलती है। भोपाल के गांधी मेडिकल कॉलेज के एनॉटोमी विभाग के भीतर साँस लेती, सिसकती आत्मा के इर्दगिर्द कहानी का तानाबाना बुना गया है। इस कहानी में मौत एक आवश्यक पात्र है और मौत के बाद किया जाने वाला देहदान इस कहानी का हीरो है। देहदान की ज़रूरत, उसके फ़ायदे, उसकी अनिवार्यता को लेखक ने एक हीरो की तरह पेश किया है। जो माहौल उपन्यास में रचा गया है, वह यथार्थ के इतना क़रीब है कि कहीं से भी वह बनावटी, कृत्रिम या काल्पनिक नहीं लगता है। कोई भी पात्र दूसरे पात्र पर हावी नहीं होता है, वरन एक-दूसरे के पूरक हैं। उपन्यास की यात्रा कई बार इतना भावुक कर जाती है कि पाठक अनेकों बार रोने, सुबकने से स्वयं को रोक नहीं पाता।

हिन्दी साहित्य में एनॉटोमी, देहदान, पिता-पुत्री के रिश्ते, और पुत्री का पिता के प्रति कर्त्तव्य, पिता का पूर्ण समर्पित निष्ठावान प्रेम, मेडिकल कॉलेज का वातावरण, डॉक्टरों की ज़िंदगी का बेहद बारीकी से विश्लेषण, एक अनोखा प्रयोग शायद पहली बार किया गया है। इस उपन्यास को लिखने में लेखक पंकज सुबीर की तीखी तेवर वाली क़लम ने एक नया भावुक, अति सुलझा, मानव-मन के मर्म को बेहद बारीकी से समझने वाला एक नया अवतार लिया है।

गीतों की यात्रा, कला और संगीत पूरे उपन्यास की कहानी को बाँहों में थाम हर यात्रा, हर दर्द को शुरू से लेकर अंत तक दुलारता है। एक अच्छा इंसान भले ही इतना गुणी या बुद्धिमान न हो कि एक अच्छा डॉक्टर बन सके लेकिन एक डॉक्टर का एक संवेदनशील और अच्छा इंसान होना समाज, देश, विश्व और मानवता के हित के लिए कितना परम आवश्यक है, लेखक ने इस तथ्य को बहुत उम्दा और ज़ोरदार तरीक़े से उभारा है और सफल रहे हैं।

रिश्ते आपको पूरी तरह से शोषित कर अंत में अकेला और अधूरा छोड़ देते हैं। कई बार ऐसा होता है जीवन में जब रिश्तों को पूरी तरह से निभाने में ही जीवन झोंक दिया जाता है, अंत में वह रिश्ते चले जाते हैं और अधूरा, अकेला और असहाय छोड़ जाते हैं। लेकिन इस उपन्यास की कहानी में छोड़ कर गया रिश्ता अधूरा नहीं है, वरन् अंत तक सम्पूर्णता का एहसास देता रहता है और बेटी को अंत तक एक संवेदनशील मददगार इंसान बनाए रखता है।

पंकज सुबीर ने इस उपन्यास को रचने से पहले ख़ूब मेहनत की है, बहुत ज़्यादा शोध किया है, उसके पुख्ता प्रमाण पूरे उपन्यास में मिलते हैं। अंत चौंकाने वाला है, भौंचक्का कर जाता है, आत्मा को झकझोरता है। पुत्री के अधूरे प्रेम का दर्द एक पिता के हृदय को किस तरह झंझोड़ता है, एक पिता किस हद तक पुत्री के दर्द को समझता है और पुत्री को समझाता है और एक कठोर निर्णय लेता है। असहाय हो जाता है उस निर्णय को लेने के लिए, यह एक मातृत्व हृदय के लेखक पंकज सुबीर के बस की बात थी। एक परिपक्व लेखक एक कठिन विषय को बहुत सुघड़ता से निभा पाये। एक भावुक और मार्मिक उपन्यास में भी पंकज सुबीर जैसे जागरूक लेखक ने सिस्टम की कमज़ोरियों को, कड़वे सच को और भ्रष्टाचार को उजागर करने में कोई ढील नहीं ली है। किसी भी क्षेत्र में यह सोच "कौन जंजाल में पड़ेगा", बढ़ते भ्रष्टाचार के विरुद्ध यदि अच्छे, ईमानदार, कर्त्तव्यनिष्ठ लोग संघर्षों या असफलता से

डरकर हथियार डाल दें तब सच्चाई, अच्छाई और ईमानदारी को एक ऐसा अँधेरा घेर लेता है, जिसके कल का कोई सूरज नहीं होता। व्यवस्था को बदलना है तब डटकर सामना करना है। पलायन समस्याओं को यथार्थ में शाश्वत सत्य बना देता है। लेखक ने आगाह किया है, देहदान के बहाने राजनीतिक पार्टियों के तमाशे का खोखलापन उजागर किया है। यह हमारे संस्कार ही हैं जो देहदान को कठिन बनाते हैं, देहदान जितना महत्त्वपूर्ण है उतना कठिन भी। जनता से सिर्फ फार्म भरवाकर साइन करवाना गिनती बढ़ाने के लिए उससे कुछ ख़ास हासिल नहीं होता। गंभीर विचार-विमर्श का विषय है।

मानव मनोविज्ञान, मन, मस्तिष्क, संवेदनाओं, रिश्तों, और मानसिकता की बहुत गहराई से जाँच-पड़ताल करता एक बेजोड़ उपन्यास। भाषा का लहजा और पकड़ बहुत मज़बूत है। सरल और सहज भाषा से शुरू होता उपन्यास जिससे पाठक बिना अधिक श्रम या कष्ट के जुड़ जाता है और कहानी के साथ बहना शुरू कर देता है। बहुत विस्तार और बारीकी से कैडेवर और मेडिकल स्टूडेंट की डॉक्टर बनने से पहले की यात्रा का वर्णन है। मेडिकल स्टूडेंट एक अनजान मृत शरीर के पास बैठते हैं, फिर छूते हैं, महसूस करते हैं, फिर एक दिन उसे चीरते-फाड़ते हैं, उसके शरीर विज्ञान का वास्तविक ज्ञान और तजुर्बा लेते हैं।

सरल और सहज भाषा में लिखे उपन्यास में अँग्रेज़ी शब्दों का बहुत स्वाभाविक प्रयोग किया है पंकज सुबीर ने, जो उपन्यास की अनिर्वायता थी।

उपन्यास के हर पहलू पर बहुत शोध किया है लेखक ने। उपन्यास में इसके कई उदहारण मिलते हैं जैसे एक जगह लेखक ने लिखा है हमारे भीतर शौक़ क्यों जागते हैं ! जीवन में मिले अभावों से शुरू के पच्चीस सालों में हमारा व्यक्तित्व बन जाता है। पुष्पा भार्गव अक्सर राम भार्गव से उलझती रहती है कि राम जीवन में महत्त्वाकांक्षी नहीं है। बेटी अर्चना को वह जीवन में अधिक सफल देखना चाहती है, उसे व्यावहारिक बनाना चाहती है क्योंकि जीवन में उसने बहुत अभाव देखे थे। राम भार्गव एक सच्चे व्यक्तित्व के मालिक हैं और यह बात वह जानती है। जीवन के अंत में उसे स्वीकार भी करती है। अर्चना अक्सर माँ से असहमत रहती है और उलझती है, वह पिता के ज़्यादा क़रीब है। लेकिन उसे उसके पिता ही समझाते हैं कि क्यों पुष्पा भार्गव के व्यवहार में रूखापन है "माँ को बच्चों का प्रेम चाहिए, ग़ुस्सा नहीं।" लेखक ने माँ के महत्त्व और सम्मान को कहीं भी कमतर नहीं किया है।

अक्सर कहा जाता है बेटियाँ बाप की होती हैं, पिता-पुत्री के रिश्ते पर आधारित उपन्यास पढ़ते समय हर पाठक को ऐसा आभास होता है, यह उनकी अपनी कहानी है। पुत्र माता-पिता की सारी ज़िम्मेदारियों का निर्वाह करता है लेकिन पुष्पा भार्गव उसके जाने के बाद यह ज़िम्मेदारी पुत्री पर डालती है। उसे पक्का यक़ीन होता है अर्चना इस ज़िम्मेदारी का निर्वाह बहुत अच्छे ढंग से करेगी।

उपन्यास से ही, "अर्चना के सामने एक बेटी खड़ी है, जिसका पिता सामने फ़र्श पर निर्जीव पड़ा हुआ है। दर्द को महसूस करने वाली आत्मा शरीर में से निकल चुकी है, मगर बेटी अभी भी अपने पिता को होने वाले दर्द में दुःखी हो रही है। बेटियों और पिता के बीच जाने कौनसा तार जुड़ा होता है जो दर्द के एहसास को यहाँ से वहाँ पहुँचाता रहता है।" भावुकता और दर्द चरम पर है। लेखक ने पिता और पुत्री के गहरे जुड़ाव और परिस्थितियों से उत्पन्न दर्द को पुरज़ोर तरीक़े से उभारकर पाठकों की आत्मा को नम कर दिया।

मौत अंतिम दर्द लेकर आती है वह मौत चाहे किसी कलेक्टर के घर पर हो या किसी मंत्री के घर, राजा के या आम आदमी के घर पर हो। मंत्री की पत्नी के पिता की मृत्यु, कलेक्टर के पिता की मृत्यु के बहाने पंकज सुबीर ने अर्चना के दर्द को उभारने का अनोखा प्रयोग सफलतापूर्वक किया है। दिन भर कैडेवर को देखते, उनकी चीरफाड़ करते रहने का असर अर्चना के मानसिक स्वास्थ पर पड़ सकता था मुख्य पात्र अर्चना के जीवन, जीवन शैली और सोच से लेखक ने डॉक्टर बनने की जटिल प्रक्रिया को ख़ूब विस्तार से वर्णित किया है। बावजूद इन सब के बीच अर्चना के स्वभाव में शुष्कता को बढ़ने से बचाया है जबकि एक जगह रेहाना अर्चना से कहती है अर्चना ने जीते जी अपने आप को कैडेवर बना लिया है। उसकी रगों में जीवनरस नहीं बहता, वरन् अर्चना का ही बनाया हुआ एम्बाल्मिंग फ्लूइड बहता है।

जीवन की विभिन्न परिस्थितियों को शेर, ग़ज़लों, गीतों द्वारा लेखक ने जीवन के दर्शन और विभिन्न परिस्थितियों को बड़े ही दार्शनिक अंदाज़ में लिखकर समझाया है। अर्चना का एकाकीपन कोई मज़बूरी या दर्द-सा उसके साथ सदा मौजूद रहता है। यह दर्द और एकाकीपन अर्चना ने स्वयं चुना है। अर्चना जीवन में आए प्रेम से स्वेच्छा से अलग हो जाती है, उसके अपने कारण हैं। लेखक समाज की मान्यताओं से प्रभावित हुए बिना अपने स्वयं के विचार देने में स्वत्रंत हुआ है। बहुत गंभीर विषय पर आधारित उपन्यास होने पर भी लेखक ने मोनोटोन और नीरसता से पाठक को बचाए रखा है। जब-जब अर्चना के जीवन की कहानी अतीत में झाँकती है पिता-पुत्री का चुलबुला रिश्ता, पति-पत्नी की नोंकझोंक, माँ का ताना मारना, कुल मिलाकर उपन्यास को बहुत जीवंत और रोचक बनाता है। डॉ. भार्गव और अर्चना का हास्य, व्यंग्य में बात करना हर घर की रोज़मर्रा की आम ज़िंदगी के क़रीब लगता है, उसे ख़ास बनाता है। यह पंकज सुबीर के क़लम का कमाल है पाठक को वास्तविकता के साथ एक रहस्यमयी उदासी का एहसास होता है।

एक लेखक के रूप में पंकज सुबीर ने मानव के आधारभूत स्वभाव, उसकी सोच, और व्यवहार पर बहुत शोध कर सूक्ष्म और विस्तार से गणना की है। उनका लेखन और कार्य सराहनीय है। पितृसत्तात्मक समाज में माँ का कोमल हृदय लिए "पिता" और बेटे से बढ़कर एक "बेटी" के रिश्ते पर आधारित एक बेजोड़ मार्मिक उपन्यास हिन्दी के पाठकों को उपहार में देने के लिए पंकज सुबीर को और शिवना प्रकाशन अनंत बधाई!

000

पठनीय और विचारणीय उपन्यास

डॉ. सीमा शर्मा

पंकज सुबीर वर्तमान साहित्य जगत् में एक सुपरिचित नाम हैं और अपनी किसी-न-किसी रचना, कभी उपन्यास तो कभी कहानी के कारण चर्चा में बने रहते हैं। इन दिनों अपने नवीनतम प्रकाशित उपन्यास 'रूदादे-सफ़र' को लेकर चर्चा में हैं। उपन्यास 'रूदादे-सफ़र' का दूसरा संस्करण मेरे पास है। यह अलग बात है कि इसका तीसरा संस्करण भी अब प्रकाशित हो चुका है।

'रूदादे-सफ़र' एक अनूठा उपन्यास है, इसे किसी एक विषय पर केंद्रित मानकर देखना उचित नहीं है, क्योंकि यह एकांगी लेखन नहीं है, इसमें कई परतें हैं जो समाज को बहुत सूक्ष्मता से देखती हैं। छोटे-छोटे प्रकरणों के द्वारा लेखक ने समाज की उन समस्याओं पर विचार किया है, जिन पर आज बात करना बहुत आवश्यक है। इसमें यदि हम देखें तो परिवार की सुरक्षा, परिवार की बुनावट, समाज और परिवार के अंत:संबंध परिवार और परिजनों के बीच व्यवहार जैसे कई महत्त्वपूर्ण विषय इस उपन्यास में उभर कर सामने आते हैं।

ऊपर से जब हम इस उपन्यास को देखते हैं, तो हमें यहाँ दो विषय प्रमुखता से दिखाई देते हैं, एक एनाटॉमी विभाग, उसकी कार्यप्रणाली तथा पिता और पुत्री के भावनात्मक संबंधों का बहुत मार्मिक वर्णन। इन्हीं दोनों बिंदुओं पर इस उपन्यास की सर्वाधिक चर्चा भी की जा रही है। नि:संदेह यह सत्य भी है किन्तु मैंने जब इस उपन्सास को पढ़ा तो इन विषयों से इतर भी बहुत कुछ ऐसा दिखाई दिया, जिस पर बात ज़रूर की जानी चाहिए।

चिकित्सा के एक बड़े विभाग 'एनाटॉमी' का लेखक ने बहुत सूक्ष्म और शोधपरक चित्रण किया है। यह विशेषता पंकज सुबीर की लगभग सभी रचनाओं में देखने को मिलती है फिर चाहे 'अकाल में उत्सव' हो या 'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था' या 'रूदादे-सफ़र'। लेखक की शोधवृत्ति रचनाओं की विश्वसनीयता को बढ़ा देती है, जिससे उनकी पठनीयता में वृद्धि स्वाभाविक है। 'एनाटॉमी' ऐसा क्षेत्र है जिस पर समस्त चिकित्सा व्यवस्था निर्भर करती है। यदि 'एनाटॉमी विभाग' न हो तो कुशल चिकित्सकों का निर्माण सम्भव नहीं है किन्तु यह ऐसा विषय है कि इसको लेकर युवाओं में वैसा आकर्षण नहीं दिखाई देता जैसा कि अन्य चिकित्सकीय विशेषज्ञताओं को लेकर उनमें साफ दिखाई देता है। इसके कई अलग-अलग कारण हो सकते हैं।

समीक्ष्य उपन्यास हिन्दी पाठक के शब्दकोश और ज्ञान के दायरे को कुछ और समृद्ध कर जाता है। जैसे- कैडेवर, एम्बाल्मिंग (शवलेपन अर्थात विज्ञान की सहायता से मानव अवशेषों के संरक्षण करने की कला) एम्बाल्मिंग फ्ल्यूड, स्कैलपल (सर्जिकल ब्लेड), डिसेक्शन आदि कई ऐसे शब्द और चिकित्सकीय प्रक्रियाओं से जुड़ी तकनीकी शब्दावली जिनकी आवश्यकता उसे अपने जीवन में सामान्यत: नहीं होती किन्तु उसे यह जानकारी विस्मित करती है। मेडिकल कॉलेज के एनाटॉमी विभाग की कार्यप्रणाली का बहुत सूक्ष्म चित्रांकन लेखक ने किया है।

उपन्यास की प्रथम पंक्ति देखिए- "मैम, डिसेक्शन-रूम में एक लड़की बेहोश हो गई।" यह प्रथम वाक्य एनाटॉमी विभाग का प्रवेश द्वार है। इसके बाद इस विभाग का ऐसा सजीव चित्रण है कि पाठक इसे किसी चलचित्र की तरह अनुभूत करता है। वहाँ की अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया, कैडेवर की आवश्यकता और उसका संरक्षण, मृत शरीर को सम्मान के साथ देखने का भाव, देहदान की प्रक्रिया, इस प्रक्रिया में आने वाली जटिलताएँ, प्रशिक्षु चिकित्सकों की प्रतिक्रियाएँ, दधीचि पथ और 'साइटस इनवर्सस' जैसी जानकारियाँ। डॉ. अर्चना भार्गव जैसे पाठक के लिए भी शिक्षक बन जाती हैं और उनके संवादों के द्वारा पाठक भी बहुत कुछ सीख जाता है। यह इस उपन्यास की एक उपलब्धि है।

समीक्ष्य उपन्यास में चिकित्सा व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार को भी लेखक ने परत-दर-परत उजागर किया है और भविष्य में संभावित वृद्धि पर 'अस्पताल कसाईखानों में बदल जाएँगे' कह कर यह भी संकेत किया किया कि इस भ्रष्टाचार का अंत निकट भविष्य में तो नहीं दिखाई देता है। लेखक नैराश्य में जाकर पलायन के मार्ग को उचित नहीं मानता बल्कि उससे जूझने की बात करता है- 'भागने से कुछ होने वाला, भागने से तो हालात और ख़राब हो जाएँगे, हमें उपस्थित रहकर बदलने की कोशिश करनी है। बदलने के लिए उपस्थित रहना सबसे आवश्यक है, पलायन किसी समस्या का हल नहीं है।" डॉ. राम भार्गव और डॉ. अर्चना भार्गव के द्वारा लेखक ने इस संघर्ष को जीवित रखने का प्रयास किया है। उपन्यास के इन दोनों प्रमुख पात्रों में यह संघर्ष उनके सम्पूर्ण जीवन में परिलक्षित होता है। ये दोनों अपना सम्पूर्ण जीवन सही अर्थ में संघर्षरत बने रहते हैं।

पंकज सुबीर के इस उपन्यास को केवल देहदान और पिता पुत्री के संबंधों तक सीमित करना उचित नहीं होगा क्योंकि इस उपन्यास का विस्तार इससे कहीं अधिक है। इसे सामाजिक और मनोवैज्ञानिक स्तर पर 'केस स्टडी' की तरह भी देखा जा सकता है। वर्तमान सामाजिक ढाँचा तीव्रता के साथ परिवर्तित हो रहा है। हम सभी भौतिकता की दौड़ में बहुत तेज़ गति से दौड़ रहे हैं और इस दौड़ में वही हमसे छूटता जा रहा है जिसकी चाह में हैं, अर्थात् मानसिक शांति, प्रसन्नता और सुख अनुभूति क्योंकि इसका कोई तय फार्मूला नहीं है। केवल भौतिक दौड़ से तो यह बिलकुल भी सम्भव नहीं है। इस दौड़ में पारिवारिक विघटन एक बड़ी समस्या बनकर उभरा है और यह समस्या अभी और बढ़ेगी ऐसा मुझे लगता है।

लेखक के लिए भी यह विषय विचारणीय है और उसकी संवेदना इससे जुड़ी है। 'रूदादे-सफ़र' की कथा में कहीं माता-पिता के अलग होने की कथा नहीं आती, फिर भी लेखक ने डॉ. अर्चना भार्गव के माध्यम से प्रश्न किया है- "पापा मैं कभी-कभी सोचती हूँ कि अगर आपको और मम्मी को जोड़ने वाला यह एक तार नहीं होता, तो क्या होता? अगर

आप और मम्मी किसी मोड़ पर एक दूसरे से अलग गए होते? उसके आगे का सफ़र कैसा होगा? मैं वैसी ही होती क्या जैसी आज हूँ? एक बेटी के लिए सबसे डरावना सपना क्या होता है? यह कि किसी दिन वह सोकर उठी तो घर में नहीं, किसी जंगल में है। उसके माँ और पिता उसे छोड़कर अलग-अलग दिशाओं में चले गए। अब वो जहाँ है वहाँ आसपास एक भी परिचित चेहरा नहीं है, अनजान अपरिचित चेहरों से घिरी हुई वह बैठी हुई रो रही है। अचानक उठकर भागना शुरू कर देती है, भागती जाती है, भागती जाती है। चीख-चीख कर रोती हुई बस भागती ही जाती है।"

यह सपना केवल किसी लड़की के लिए डरावना नहीं है बल्कि लड़कों के लिए भी उतना ही डरावना है। मन्नू भंडारी के बहुचर्चित उपन्यास 'आपका बंटी' को एक उदाहरण के रूप में देख सकते हैं। एक बालक की असुरक्षा के भाव को साकार कर लेखक समाज को जैसे कांता सम्मित उपदेश देते हुए वैचारिक स्तर पर परिष्कार करता चलता है- "माँ और पिता का अलगाव कभी नहीं चाहिए... कभी नहीं होना चाहिए...।" इसके साथ ही लेखक वैचारिक भिन्नता को पति-पत्नी के अलगाव के कारण के रूप में नहीं देखता- "विचार अलग हों पर मन के तार जुड़े रहें, तो साथ बना रहता है, ज़रूरी नहीं कि विपरीत विचार वालों के बीच रिश्ता हो ही नहीं सकता।"

डॉ. राम भार्गव उनकी पत्नी पुष्पा और इन दोनों की बेटी डॉ. अर्चना भार्गव, ये तीन चरित्र ऐसे हैं जो समीक्ष्य उपन्यास के प्रतिनिधि पात्र हैं जो सामाजिक और मनोवैज्ञानिक स्तर पर घटित व्यवहार को उजागर करने का माध्यम बनते हैं। कथा मूलत: इन्हीं की है। कहानी को आगे बढ़ाने में कई और महत्त्वपूर्ण पात्र आते हैं जिनमें डॉ. रेहाना और कलेक्टर प्रवीण गर्ग आदि के नाम लिए जा सकते हैं। ये ऐसे पात्र हैं जो कहानी को नीरस और बोझिल नहीं बनने देते और पाठकों के मन में कई संभावनाओं को बनाए रखते हैं। इनके माध्यम से पाठकों की कल्पना को भी एक उड़ान मिलती है तथा वह कई संभावनाएँ खोजने लगता है। यह अलग बात है कि उपन्यास का अंत उसकी कल्पनाओं से नितांत भिन्न तरीक़े से घटित होता है। अंत इतना स्तब्धकारी है कि उसकी समस्त कल्पनाएँ धरी की धरी रह जाती हैं। वह भौंचक्का सा देखता रह जाता है, जो अंत में हुआ, उसकी तो उसने कल्पना भी नहीं की थी।

इस विशिष्टता के साथ-साथ समीक्ष्य उपन्यास में पिता-पुत्री के संबंधों की एक अनोखी कथा है जिसे लेखक ने बहुत गहन, सूक्ष्म और भावात्मक स्तर पर बुना है। पिता और पुत्री के रिश्ते की गहनता को शब्दों की सीमा में समेटना कठिन है; यह भावनात्मक संबंध है। लेखक ने इसे उसी भावनात्मक आत्मीयता, स्नेह और संतुलन के साथ रचा है।

डॉ. राम भार्गव अपनी पुत्री के साथ जिस तरह आत्मीय व्यवहार रखते हैं जहाँ स्नेह है, वैचारिक खुलापन है, किसी तरह का कोई प्रतिबंध भी नहीं है फिर भी उसके जीवन को सही दिशा देने का कार्य वे बड़ी कुशलता के साथ करते हैं। उपन्यास में डॉ. राम भार्गव एक ऐसे पात्र के रूप में उभर कर आता है जो अनायास ही 'पेरेंटिंग' सिखाता सा जान पड़ता है। यहाँ मुझे नेल्सन मंडेला का एक कथन याद आता है, जब वे कहते हैं- "किसी समाज की सबसे अच्छी पहचान इसी से होती है कि वह अपने बच्चों के साथ कैसा व्यवहार करता है।"

इन दोनों पिता और पुत्री के बीच की कड़ी पुष्पा है, जो एक तुलादंड सी इन दोनों को संतुलित बनाए रखती है। 'पुष्पा' जैसा चरित्र गढ़ने के लिए अतिरिक्त प्रयास की आवश्यकता होती है क्योंकि तनिक संतुलन बिगड़ने पर यह चरित्र नकारात्मक बन सकता है। चिड़चिड़ा सा पात्र जो अधिकांश बातों में अपने पति से वैचारिक रूप से भिन्न है किंतु फिर भी वह एक महत्त्वपूर्ण पात्र है। उसकी खीज, चिड़चिड़ाहट कहीं भी उसे नकारात्मक चरित्र में नहीं बदलने पाती है। यह लेखक का कौशल है, अन्यथा बहुत सरलता से डॉ. राम भार्गव को महान् और डॉ. अर्चना की माँ पुष्पा को एक नकारात्मक पात्र के रूप में दिखाया जा सकता था, किंतु ऐसा नहीं होता। इसके पीछे लेखक की एक स्पष्ट दृष्टि है जो ऊपरी तह पर तो नहीं दिखाई देती, किंतु उपन्यास जब आगे बढ़ता है और परिवार के महत्त्व को लेखक रेखांकित करता है तब यह स्पष्ट होने लगता है कि दो विरोधी चरित्रों को इस कथानक का अंग क्यों बनाया गया है? ऊपर से जो कथा दिखाई देती है उसे बाहरी तौर पर देखें तो 'एनाटॉमी विभाग' और 'पिता-पुत्री' के मधुर संबंधों का भावात्मक चित्रण दिखाई देता है, पर जब कथानक की आंतरिक परतें खुलती हैं तो एक सूक्ष्म संश्लेषण की प्रक्रिया दिखाई देती है। पिता-पुत्री के मधुर संबंधों के बहाने तथा पति-पत्नी के हिचकोले खाते रिश्तों के माध्यम से परिवार व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने की दृष्टि इसमें निहित है। वह इस उपन्यास का ऐसा सूत्र है, जो आदि से अंत तक बना रहता है। इस विशिष्टता के कारण यह उपन्यास बहुत-बहुत महत्त्वपूर्ण बन जाता है।

परिवार का महत्त्व युवा जोड़े संभवत: है उतना नहीं समझ सकते जितना एक लंबा जीवन जी चुके दंपत्ति या अलग रह रहे स्त्री और पुरुष समझ सकते हैं। जैसे डॉ. राम को उनकी पत्नी मृत्यु के बाद अनुभव होता है। कैसे उनकी पत्नी का चले जाना उनका अधूरा हो जाना है। जबकि वह वैचारिक रूप से उनसे पूर्णतया भिन्न थी। डॉ. राम भार्गव के शब्दों में यह भाव और भी स्पष्ट हो जाता है- 'विचार अलग हों पर मन की तार जुड़े रहे हैं, तो साथ बना रहता है। ज़रूरी नहीं है कि विपरीत विचार वालों के बीच रिश्ता को ही नहीं सकता।"

साहित्य सृजन सोद्देश्य प्रक्रिया है और उद्देश्यपूर्ण साहित्य ही पाठक को प्रभावित करता है। इस संबंध में प्रेमचंद द्वारा कथित पंक्तियाँ आज भी प्रासंगिक हैं जहाँ वह कहते हैं- "हम साहित्य को केवल मनोरंजन और विलासिता की वस्तु नहीं समझते। हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य

का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सचाइयों का प्रकाश हो, जो हममें गति और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं, क्योंकि अब और ज़्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।" (प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य) इस दृष्टि से देखें तो पंकज सुबीर का उपन्यास 'रूदादे-सफ़र' पूर्णत: सोद्देश्य रचना है, जो पाठक के अंदर बेचैनी पैदा करती है उसे विचार के लिए विवश करती है। साथ ही यह भी स्थापित करती है कि हमारी प्रसन्नता और दु:ख बाँटने के लिए हमें परिवार की आवश्यकता होती है। जीत पर सराहना और हार पर सांत्वना भी परिवार से ही प्राप्त होती है। अत: परिवार के साथ ही मनुष्य की पूर्णता है। छोटी-छोटी मत भिन्नताओं के कारण पारिवारिक विघटन बड़ी समस्या के रूप में समाज में उभर रहा है। इस विषय पर गंभीरता से विचार करना अत्यंत आवश्यक है।

वर्तमान समाज में अकेलापन भी उभरती हुई समस्या है। डॉ. अर्चना भार्गव भी उस अकेलेपन के साथ जीने को अभिशप्त है। डॉ. रेहाना के शब्दों में इसे अनुभूत किए जा सकता है- "अप्पी, आपने अपने अंदर भी एम्बॉल्मिंग कर ली है। नसों में जो ज़िंदगी का रस था उसे पूरा ड्रेन कर दिया है और उसकी जगह अकेलेपन का फार्मेलीन भर लिया है। आपकी नसों में ज़िंदगी का रस नहीं बहता अब, अब वहाँ आपका अपना बनाया हुआ एम्बॉल्मिंग फ़ल्यूड बहता है। आप ने उस दिन कहा था न अपने देहदान के बारे में, लेकिन आपने तो अपने को जीते जी ही कैडेवर बना लिया है।" इस समस्या के मूल में भी कहीं-न-कहीं परिवार का भाव है। लेखक ने इस विषय पर भी सार्थक टिप्पणी करते हुए इसके कारणों की और संकेत किया है- "हम अपने आस-पास, अलग-अलग दूरी के कुछ दायरे खींच देते हैं। सबसे अंदर के दायरे तक किसी को आने नहीं देते क्योंकि यहीं आकर कोई हमसे प्रश्न पूछ सकता है। इन दायरों के सबसे अंदर हम किसी नाभिक की तरह बैठे रहते हैं। भूल जाते हैं कि दायरे ही दूरियाँ उत्पन्न करते हैं और दूरियाँ ही हमें अंतत: हमें एकाकी कर देती।"

डॉ. राम भार्गव और डॉ. रेहाना दोनों ऐसे पात्र हैं जो लेखक के विचारों के वाहक बनते हैं। उपन्यास के पूर्व भाग मं। डॉ. राम भार्गव इस दायित्व का निर्वाह करते हैं और पश्च भाग में विभिन्न महत्त्वपूर्ण विषयों पर डॉ. रेहाना के संवादों के द्वारा यह कार्य सम्पादित किया जाता है। उदाहरण के रूप में- "अप्पी ज़िंदगी में एक्सक्यूज़ नहीं होते, जो कुछ भी हम कर रहे होते हैं उसके लिए हम ही ज़िम्मेदार होते हैं। कोई दूसरा उसके लिए जवाबदार नहीं होता। दुनिया तो वही है, जिसमें दूसरे सारे लोग रह रहे हैं और हज़ारों साल से रह रहे हैं। हमें अगर वही दुनिया रहने लायक़ नहीं लग रही, तो हमें अपने अंदर ज़रूर झाँकना चाहिए।"

पंकज सुबीर की लेखन शैली अद्भुत है। सरस-सरल और रुचिकर जहाँ वे गीत-ग़ज़लों का उपयोग खुलकर करते हैं। एक उदाहरण- "भूल जाता हूँ मैं सितम उसके, वो कुछ इस सादगी से मिलता है।" तथा "अब जहाँ भी हैं वहीं तक लिखो रूदादे-सफ़र, हम तो निकले थे कहीं और जाने के लिए.....।"

गीतों और ग़ज़लों ये की पंक्तियाँ कथा प्रवाह और उसकी रोचकता को बहुत बढ़ा देती हैं। रूदादे-सफ़र की निम्न दो पंक्तियाँ बिना किसी टिप्पणी के पाठकों के लिए उद्धृत कर रही हूँ- "बेटे पूरे शहर के होते हैं और बेटियाँ घर की होती हैं। बेटे जब लौटते हैं तो शहर के लिए लौटते हैं और बेटियाँ बस घर के लिए लौटती है।"

भोपाल शहर का बहुत मनोहर चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। कोहेफ़िज़ा, भारत भवन, भोपाल की झीलें, वहाँ के प्राकृतिक दृश्यों का बहुत सुरम्य वर्णन उपन्यास के सौंदर्य में श्रीवृद्धि करता और पाठक को अपनी ओर खींचता है। भाषा का जीवंत प्रयोग, पात्रों के अनुकूल संवाद इस कृति को और भी पठनीय बना देते हैं। समीक्ष्य उपन्यास इन सब विशिष्टताओं के कारण बहुत महत्त्वपूर्ण बन गया है। इसे अवश्य पढ़ा जाना चाहिए क्योंकि इसकी प्रासंगिकता समय के साथ और बढ़ेगी।

000

लेखकों से अनुरोध

'शिवना साहित्यिकी' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

shivnasahityiki@gmail.com

अनन्त प्रेम का झरना

पंकज सोनी

क्या आपके घर के आँगन में हमिंग बर्ड ने घोंसला बनाया है ? यदि बनाया है तो यक़ीन जानिए आप इस संसार के बेहतरीन लोगों में से एक हैं। यह नन्हीं-सी चिड़िया उसी घर के आँगन में अपना घोंसला बनाती है, जहाँ के वातावरण में उसको पॉजिटिव वाइब्स मिल रही होती है। जहाँ उसे पुरसुकून यक़ीन होता है कि इस घर में अच्छे लोग रहते हैं। शायद बेटियों के बाप को भी ईश्वर ऐसी ही कसौटियों पर कसता होगा। बेटियों का बाप होना बड़ा जिम्मेदारियों का काम है। बेटियों का बाप चाह कर भी लंपट, लापरवाह, बेलगाम और बिगड़ैल नहीं हो सकता।

वैसे तो पिता होना ही अपने आप में बहुत अलग अहसास होता है लेकिन बेटी का बाप होते ही यह अहसास रूहानी हो जाता है। जब से पंकज सुबीर का उपन्यास 'रूदादे-सफ़र' पढ़ा है, मैं यह बात शिद्दत से महसूस कर रहा हूँ। पिता और बेटी के रिश्तों पर बहुत कम लिखा गया है। यह एक ऐसा रिश्ता है, जो अनकहा और अव्यक्त रह गया है। औलाद बेटा हो या बेटी, पिता तो पिता ही होता है। चुपचाप अपने फ़र्ज़ को निभाता हुआ ऊपर से सख्त और भीतर से बेहद नर्म और भावुक। बेटों के मन में माँ की तमाम स्मृतियाँ होती हैं। पर पिता की स्मृति में सिर्फ सख्ती और डाँट ही होती है। बेटों के लिए पिता कड़वी गोली की तरह होता है और माँ मीठे शहद की तरह इसलिये यह लाज़िमी है कि हमें शहद याद रह जाता है पर गोलियों की कड़वाहट हम याद नहीं करना चाहते। लेकिन बेटियों की स्मृतियों में पिता ऐसे नहीं होते। बेटे और बेटी की परवरिश में यही अंतर होता है। बेटे से पिता अपने जज़्बात छुपा कर चलते हैं लेकिन बेटी के सामने उनके भीतर बहता यह अनन्त प्रेम का झरना बाँध तोड़कर बाहर आ जाता है। पिता हमारे साहित्य में लगभग अव्यक्त रह गया है।

पंकज सुबीर का यह नया उपन्यास 'रूदादे-सफ़र' एक बेटी की स्मृतियों के इस सफ़र की अनूठी दास्तान है। यह एक बाप बेटी के रिश्ते की सुंदर कहानी है। जिसमें एक पिता है जो उसका सरपरस्त और ख़ैरख्वाह भी है और उसका सखी हातिम भी है। एक ऐसा दोस्त, जिसके सामने बेटी अपना दिल खोलकर रख देती है। एक ऐसा पिता जिसके सीने में माँ का दिल है। जिसके काँधे पर सिर टिका कर मौन भी अभिव्यक्त किया जा सकता हो। बेटी जब बड़ी हो जाती है, तब यही पिता बच्चा बन जाता है। शायद बेटियों का पिता ऐसा ही होता है। उपन्यास में इन पिता और पुत्री की ही कहानी नहीं है। यदि आपका जन्म 70 या 80 दशक में हुआ है, तो आप इस उपन्यास को पढ़कर उस दौर का नास्टेल्जिया भी फील कर सकते हैं। उपन्यास पढ़ते समय भोपाल हमारे सीने में धड़कता रहता है। इसमें भोपाल एक पात्र की तरह उपस्थित है। पंकज आपको भोपाल की आँकी-बाँकी गलियों की सैर भी करा देते हैं। सब कुछ इतना जीवंत है कि मनोहर डेरी के स्वादिष्ट छोटे भटूरों का ज़ायक़ा आपकी ज़ुबान पर उतर आता है। पोहे का वर्णन इतना सजीव है कि उसकी ख़ुशबू भी महसूस होती है। उपन्यास की नायिका अर्चना भार्गव के मन में चल रहे द्वंद्वों को फिल्मी गीतों और ग़ज़लों के द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। गीतों और ग़ज़लों का कलेक्शन बताता है कि लेखक का टेस्ट कितना बढ़िया है। उपन्यास का घटना केंद्र भोपाल का गांधी मेडिकल कॉलेज का एनाटॉमी डिपार्टमेंट है। मेडिकल कॉलेज पर मैंने अब तक दो ही हिन्दी नॉवेल पढ़े हैं एक है ज्ञान चतुर्वेदी का नर्कयात्रा और दूसरा यह रूदादे-सफ़र।

एनाटॉमी यानी 'शरीर रचना विज्ञान ' जो कि मेडिकल साइंस का वह विभाग होता है, जहाँ विद्यार्थियों को मानव शरीर के आंतरिक अंगों के बारे में पढ़ाया जाता है। जहाँ डिसेक्शन रूम में एक टेबल पर कैडेवर याने मृत शरीर रखा होता है। यह मृत शरीर मेडिकल कॉलेज के स्टूडेंट्स का पहला गुरु होता है। क्योंकि इसे ही छूकर, उसे चीर-फाड़ कर उसके आंतरिक अंगों को देखकर वे शरीर रचना को समझ पाते हैं। उस रूम में रहना आसान नहीं है। वहाँ हमेशा फॉर्मेलिन की दुर्गंध आती रहती है। शरीर विज्ञान की थ्योरी और प्रेक्टिकल में ज़मीन-आसमान का अंतर होता है। पहली बार किसी मृत शरीर को चीर कर उसके आंतरिक अंगों को देखने में अच्छे-ख़ासों के पसीने छूट जाते हैं। उपन्यास के इस अंश को पढ़ते समय आपको फ़िल्म मुन्ना भाई एम.बी.बी.एस का वो सीन याद हो जाएगा जब संजय दत्त लाश पर ब्लेड चलाने से पहले ही चक्कर खाके गिर पड़ता है। एनाटॉमी डिपार्टमेंट की इतनी डिटेलिंग लेखक ने की है मानों वहाँ वर्षो रहे हों। बहुत सी ऐसी टर्मिनोलॉजी प्रयोग हुई हैं जो मुझ जैसे आर्ट्स के स्टूडेंट ने पहली बार सुनी थी। उन तमाम दृश्यों का इतना जीवंत वर्णन इस उपन्यास में हुआ है कि सब कुछ आँखों के सामने घटता महसूस होता है। उपन्यास पढ़कर ही यह समझ आया कि मेडिकल स्टूडेंट्स के लिए यह कैडेवर क्यों इतना ज़रूरी है। और मेडिकल कॉलेज में उसकी कितनी कमी है। देहदान के इस मसले को एक मुद्दे की तरह उठाया गया है। देहदान के प्रति उदासीनता और जागरूकता की कमी एक जीवंत मामला है। अंतिम संस्कार डेथ बॉडी को डिस्पोज़ करने का एक इज़्ज़तदार तरीक़ा ही तो है। मरकर किसी के काम आना ही सच्चा मोक्ष है। पुराणों में वर्णित इन कर्मकांडों का हवाला देकर जो लोग हमें हमारे परिजनों के मृत शरीर को मेडिकल कॉलेज में दान देने से रोकते हैं। वो यह भूल जाते हैं कि महर्षि दधीचि की कथा भी हमारे पुराणों में ही वर्णित है। इस उपन्यास को पढ़कर पाठकों के मन में यह चेतना अवश्य आएगी। उस हिसाब से देखें तो उपन्यास अपने उद्देश्य में सफल रहा है। और अंत में.....

उपन्यास को पढ़कर मुझे युवा कवयित्री शेफ़ाली शर्मा की पिता पर लिखी यह कविता बार बार याद आती रही- पापा / मेरे शब्दकोश में / बहुत कम शब्द हैं / खुशी / उम्मीद / हिम्मत / तजुर्बा / सुकून / ऐसे तमाम शब्दों का अर्थ है पापा / और / दुख / तकलीफ़ / डर / हार / अकेलापन / ऐसी तमाम ध्वनियों के लिए / केवल एक प्रतिध्वनि है / पापा...

000

पुस्तक समीक्षा

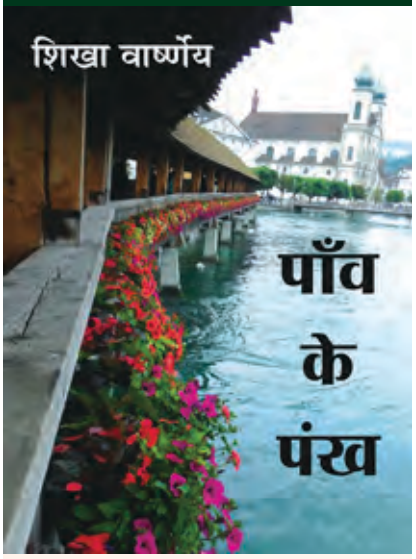

(यात्रा संस्मरण)

पाँव के पंख

समीक्षक : डॉ. उषा किरण

लेखक : शिखा वार्ष्णेय

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल - 9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

डॉ. उषा किरण
399/1 लेन नं. 11, प्रभात नगर, मेरठ
पिन-250001 उ.प्र.
मोबाइल - 9412702551
ईमेल - usha791957@gmail.com

यात्रा तो सभी करते हैं परन्तु जब कोई लेखक जो साथ में पत्रकार और घुमक्कड़ भी हो तो मन में ही नहीं पाँव में भी पंख लग जाते हैं और जब वे यात्रा संस्मरण लिखने बैठती हैं तो उसमें कुछ विशेष तो होना ही है। शिखा की पिछली दो पुस्तकें 'स्मृतियों में रूस' और 'देसी चश्मे से लंदन डायरी' भी बेहद रोचक व ज़रा हट कर थीं। अब यात्रा वृत्तांत पर उनकी नई पुस्तक आई है 'पाँव के पंख'।

"पाँव के पंख का" नाम सुनते ही सबसे पहले तो मुस्कुराते हुए होठों ने ये नाम कई बार दोहराया और फिर जब पुस्तक हाथ में आई तो इसके बाह्य आवरण की ख़ूबसूरती को मुग्ध आँखों से आगे, पीछे से देर तक निहारा क्योंकि मेरे लिए पुस्तक पढ़ने के लिए ये दो चीज़ें प्रेरक का काम करती हैं। वस्तुत: यह शिखा की 2009 -2023 तक की यूरोप यात्राओं के बेहद मनोरंजक व ज्ञानवर्धक संस्मरणों से सजी हुई पुस्तक है।

जो लोग भी शिखा से मिल चुके हैं वे निस्संदेह उनके मस्तमौला परन्तु गहरे स्वभाव, विनोदप्रियता व बेफ़िक्र उन्मुक्त हँसी से अवश्य ही परिचित होंगे। पुस्तक पढ़ते समय आपको उनके इस स्वभाव का भी यदा-कदा परिचय मिलता रहेगा। मौका मिलने पर उनका जहाँ भी आत्मालाप चलता है वे चुटकी लेने से बाज़ नहीं आती हैं, उनके मन की गुदगुदी शब्दों में उतर आती है। जैसे वे लिखती हैं कि-"अब हमें तो राजकुमार की शादी की ख़ास तैयारियाँ करनी नहीं थीं और दुनिया भर से लोग लन्दन आ रहे हैं तो सोचा कि उनके लिए कुछ स्थान खाली कर दिया जाए और दो दिन के लिए कहीं लन्दन से कहीं बाहर घूम आया जाए।"

शिखा बहुत बारीकी से आत्मसात कर अपने अन्दाज़ में ऐतिहासिक, भौगोलिक या आर्थिक स्थितियों को भी सहजता से वर्णित कर देती हैं। शिखा की इस पुस्तक की सबसे बड़ी ख़ासियत है उनकी सरल, सहज, रोचक और आकर्षक भाषा शैली। शिखा की प्रवाहमयी शैली पाठकों को बाँधे रखने में समर्थ है। रोचक मुहावरों के प्रयोग के कारण यात्रा वृत्तांत होने पर भी पुस्तक पढ़ते समय कहीं भी ऊब नहीं होती है, रोचकता बनी रहती है और आप बहुत मस्ती के मूड में पढते हुए महसूस करते हैं जैसे आप भी डंडा-डोला लेकर पाँव में पंख लगाए लेखिका के साथ हो लिए हैं।

मुझे तो कई बार पढ़ते-पढ़ते इतना आनन्द आया कि जब इस मानसिक यात्रा से मन नहीं भरता था तो मैं यूट्यूब पर खोल कर कभी गायरोज़, मस्तिखा, गजपाचो की रेसिपी देखने बैठ जाती तो कभी शिखा के रोचक वर्णन को पढ़ते-पढ़ते उत्साहित होकर उत्सुकतावश फ्लेमेंका डाँस देखने लगती। जिसे देखकर मुझे भी लगा कि उनकी कत्थक से मिलती नृत्य मुद्राओं, पैरों की थाप व हावभाव में भारत का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इसी कारण इस कुल 144 पृष्ठों की पुस्तक को मज़े लेते हुए मैं कई दिनों में पूरा पढ़ सकी।

शिखा का मत है कि "यात्रा किसी स्थान पर जाकर सिर्फ़ वहाँ के दर्शनीय स्थलों के सामने खड़े होकर फ़ोटो खिंचवाने का नाम नहीं, यात्रा का आनन्द तभी है जब आप उस स्थान को आत्मसात् करके देखें। उस परिवेश में रम कर वहाँ का आनन्द लें..!" और उन्होंने ऐसा ही किया भी है। इसको पढ़ते समय आपको यह भाव महसूस होता है कि ये सिर्फ़ जगहों को देख कर नहीं अपितु डूब कर, आत्मसात् करने के बाद लिखी किताब है। इसी कारण इस रोचक किताब से आपका भी तादात्म्य जुड़ जाता है।

सर्वप्रथम हमको शिखा वेनिस ले जाती हैं और गंडोले की सैर कराते जब आपको बॉलीवुड मूवी 'द ग्रेट गैम्बलर' के गाने दो लफ्जों की है..." की याद दिलाती हैं, तो आपके होठों पर बरबस मुस्कान तैर जाती है। तभी आप समझ जाते है कि ये सफ़र काफी रोचक होने वाला है। इस गाने को देखते हुए शायद हम सभी ने अपनी आँखों में एक बार वेनिस जाने का सपना ज़रूर पाला होगा। इसके अलावा 'लॉन्गालीट' जहाँ मोहब्बतें फ़िल्म की शूटिंग हुई थी पढ़ते हुए फ़िल्म का गुरुकुल याद आ जाता है। स्पेन में शिखा 'ज़िंदगी न मिलेगी दुबारा' फिल्म की भी याद दिलाती चलती हैं। सच है कि बॉलीवुड ने हमारी फिल्मों के माध्यम से न जाने कितने देशों की सैर करवा दी है और कभी वहाँ जाने का सपना हम भारतीय अपने दिल में पाल लेते हैं।

पढ़ी-सुनी बातों की जगह वे स्वयम् विश्लेषण करती हैं। साँस्कृतिक व ऐतिहासिक विषयों पर उनका लम्बा विचार-मंथन निरन्तर चलता रहता है।

शिखा कहती हैं कि वे एक फूडी हैं। वे जहाँ भी गई हैं वहाँ के खानपान की जानकारी भी दी है।

कितना अजीब है कि वैसे तो इस संसार में हर आदमी की फितरत और स्वभाव अलग होता है, लेकिन इंसान जिस भी परिवार, शहर या देश में रहता है वहाँ की हवा, पानी, वहाँ की रिवायतों का अक्स उसमें उतर जाता है और जब हम कई शहरों या विभिन्न देशों की यात्राएँ करते हैं तो ये सांस्कृतिक विभिन्नताओं का फर्क बहुत करीब से महसूस होता है।

भ्रमण के बीच रिश्तों की ख़ूबसूरती के अहसास को भी वे नोटिस कर ख़ूब सराहती हैं। सेंटोरनी की यात्रा में रेस्टोरेन्ट में माँ- बेटे के बीच का प्यार उनको भावुक कर देता है उसका वर्णन करना भी नहीं भूली हैं।

चलते-फिरते, भागते-दौड़ते या खाते-पीते भी शिखा वार्ष्णेय का खोजी पत्रकार मन कहीं से भी कहानी चुगना नहीं भूलता। लेखिका जहाँ भी जाती है उसका दिल व दिमाग़ मन ही मन उस जगह का भारतीय संस्कृति व सभ्यता से तुलनात्मक अध्ययन करना भी नहीं छोड़ता। इससे पता चलता है कि बेशक वे सालों से लंदन में रहती हैं परन्तु अभी भी 'दिल है हिन्दुस्तानी!'

उनके अनुभव को पढ़ कर लगता है कि हमें विदेशी लोगों के साथ बहुत विनम्रतापूर्वक व दोस्ताना व्यवहार करना चाहिए, क्योंकि किसी एक के द्वारा किये गए दुर्व्यवहार या सदव्यवहार से पूरा देश बदनाम होता है या सम्मान पाता है। जैसा कि शिखा ने लिखा भी है-"यह तय है कि भाषा, खान-पान परिवेश बेशक कुछ भी हो परन्तु किसी देश को लोकप्रिय और समृद्ध बनाने में उसके नागरिकों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

शिखा क्योंकि कवयित्री भी हैं तो घूमते हुए सहज ही कविता भी बीच-बीच में उमड़ जाती हैं। वेनिस घूमते हुए लिखती हैं- "जल में बहता एक गाँव-सा / सुंदर नावों के पाँव सा / तन- मन जहाँ प्रफुल्लित हो / कैसे भूलें वो दिन रात / वेनिस की वो सुरमई शाम।"

वे प्रत्येक देश के इतिहास के साथ-साथ वहाँ के मिथक, भौगोलिक स्थिति, प्राकृतिक सम्पदा, खान-पान, वेशभूषा, जलवायु, वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों और वहाँ की ऐतिहासिक इमारतों के बारे में उनके इतिहास सहित सरल और रोचक ढंग से जानकारी देना शिखा के लेखन की विशेषता है। कला, साहित्य यानि कि विभिन्न संस्कृतियों के प्रति खोजी प्रवृत्ति होने के कारण काफी लगाव रखती हैं व उत्सुकता से प्रत्येक चीज़ को नोटिस करके हमें बताती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे कहीं भी जाने से पूर्व व वापिस आकर भी वहाँ के इतिहास व संस्कृति के बारे में जम कर अध्ययन करती हैं।

शिखा बेहद ईमानदारी व दिलचस्प तरीके से स्पष्ट बताती हैं कि कहाँ उन्होंने खाने- पीने व हवाई यात्रा में कटौती करके बजट का सन्तुलन बनाए रखा और कहाँ आराम या खाने के लिए कुछ अतिरिक्त पैसे खर्च कर विलासितापूर्ण ऐश किया गया। जहाँ ग़लत होटल का चुनाव किया तो उससे होने वाली परेशानियों को विस्तार से बताकर हमें सचेत भी करती हैं। परिवार के साथ यात्राओं में सबके बीच कौन सी जगह देखी जाए इस विषय में कैसे सन्तुलन बैठाया जब ये बताती हैं तो लेखिका कहीं अपनी सी नज़र आती हैं।

पुस्तक के पीछे शिखा ने अपनी यात्राओं के कुछ चित्र भी दिए हैं जिनसे पाठक इन यात्राओं से और भी जुड़ाव महसूस करता है। वस्तुत: ये चित्र पुस्तक को समृद्ध तो करते ही हैं और भी रोचकता बढ़ाते हैं।

इनमें से कई जगहों की यात्राएँ मैंने भी की हैं परन्तु शिखा के चश्मे से उन जगहों को एक बार पुन: देखा तो और बहुत कुछ वो दिखा जो पहले नहीं दिखा था। और निश्चित ही अगली यात्राओं में शिखा की इस सीख को भी अपनी गाँठ में सहेज लूँगी- "अगर आप वाकई किसी भी यात्रा का आनन्द लेना चाहते हैं तो उस स्थान के हृदय में पहुँच कर देखिए, स्ट्रीट फूड खाइए, बीच शहर में डेरा जमाइए और स्थानीय लोगों से जी भर कर बातें कीजिए, यात्रा का आनन्द तो तब है जब आप ख़ुद को एक निश्छल शिशु-सा खुला छोड़ दें।"

शिखा लिखती हैं- "गर पाने हों मोती सच्चे तो उतरो गहरे सागर में, जो देखना हो शहर तो गलियों से गुज़र कर देखो।"

मेरा विचार है, यह पुस्तक सभी को अपने पुस्तक-संग्रह में अवश्य शामिल करना चाहिए और यक़ीन मानिए यात्राओं के शौक़ीन किसी भी मित्र अथवा परिजन को देने के लिए इससे बेहतर गिफ्ट हो नहीं सकता। यूरोप भ्रमण से पूर्व या भ्रमण करते समय गूगल गाइड के साथ इस पुस्तक का भी अध्ययन बहुत लाभकारी होगा क्योंकि जो जानकारी आपको इसमें मिलेगी वह अन्यत्र दुर्लभ है। एक अच्छी, रोचक पुस्तक के लिए शिखा वार्ष्णेय को हार्दिक बधाई। आप यूँ ही निरन्तर देश विदेश की यात्राएँ करती रहें और अपने साथ- साथ हमारे भी ज्ञानकोश को समृद्ध करती रहें।

अन्त में मुझे इस पुस्तक में उद्धृत की गई कुछ पंक्तियाँ यात्राओं के लिए प्रोत्साहित करती हैं -

"मस्तूल तन चुके हैं बहती बयार में / बाहें फैलाए दुनियाँ तेरे इंतज़ार में।"

000

पुस्तक समीक्षा

(शहरनामा)

सिर्फ़ नक़्शे क़दम रह गये...

समीक्षक : विनय उपाध्याय
लेखक : श्याम मुंशी
प्रकाशक : आइसेक्ट पब्लिकेशंस, भोपाल

विनय उपाध्याय
एम एक्स 135, ई-7, अरेरा कॉलोनी
भोपाल 462016 मप्र
मोबाइल- 9826392428
ईमेल- vinay.srujan@gmail.com

निगाहें नक़्शे पर जाकर अटकती हैं। सरहद की खींच दी गई रेखाओं में क़ैद कोई शहर धरती का एक टुकड़ा भर दिखाई देता है। क्या उस शहर का वजूद सिर्फ़ इतना और यही है? बेशक पहचान का यह पैमाना बहुत छोटा है। समय के फैले हुए विस्तार में एक शहर कई तरह से साँसे लेता है और उसकी धड़कनें मुसलसल एक बड़ी विरासत का फ़लसफ़ा रच देती हैं। इस विरसे को अपने किरदार में थामती है वहाँ की अवाम। तहज़ीब अपना घर बसाती है। परम्पराएँ आने वाली नस्लों में मुस्कुराती हैं। नए चेहरे पहनकर वे पाँव पसारती हैं। तमाम सलवटों के बावजूद भूली हुई सी यादों को पुकारती कोई आवाज़ वादियों में तैरने लगती है। शहर अपनी तारीख़ और तासीर में पहचान की पुरानी रंगोमहक लिए स्मृतियों में जाग उठता है।

भोपाल की क़िस्मत की कहानी भी कुछ ऐसी ही है। हिन्दुस्तान के दिल में बसे सूबे मध्यप्रदेश के तक़रीबन बीच में ताल-तलैयों और पहाड़ियों से घिरा वो शहर जिसके हुस्न पर यहाँ का वाशिंदा ही नहीं, आने वाला हर सैलानी भी हैरान रहा है। इसकी बसाहट और इसके आबाद इतिहास से जुड़े बेशुमार क़िस्से हैं जो आज भी पटियों और गली-चौराहों की गुमटियों पर गुलज़ार हैं लेकिन बस, क़िस्सों में अब ज़िंदा है भोपाल। आहिस्ता-आहिस्ता वो पीढ़ियाँ इस दुनिया-ए-फ़ानी से कूच कर गईं जिनके क़िरदार में यह शहर अपनी निखालिस पहचान के साथ ज़िंदा था। ये पहचान क्या थी? अदब और तहज़ीब के रौशन नुमाइंदों की महफ़िलों के क्या जलवे थे? सियासत और समाज की बागडोर थामने वाले राजा-नवाबों और उस्तादों की वो कैसी फ़ितरतें थीं? वो दौर तो गुज़र गया लेकिन नक़्शे क़दम छूट गए। शहर भोपाल की ऐसी ही रूहानी सदाओं को सुनते-जीते और साझा करते हुए कुछ बरस पहले इसी सरज़मीं के वाशिंदे श्याम मुंशी ने जब अपने सफ़हों पर उतारा तो किताब ने शक्ल ली- 'सिर्फ़ नक़्शे क़दम रह गए'।

इससे पहले कि किताब के मुख्तलिफ़ पहलू खुलासा किये जाएँ, इसे मुकम्मल बनाने वाले इसके लेखक का परिचय बेहद मौजू है। ....उनकी शख्सियत के इतने रंग-रूप कि कोई हद नहीं... और उसे समेट दो, तो सिर्फ़ एक नाम- श्याम मुंशी। चाहत का भी भला कोई पैमाना होता है। शिद्दत से किसी को चाहा जाए तो मोहब्बत को तराज़ू की दरकार नहीं। बस, वो तो खुश्बुओं की मानिंद हवाओं में फैल जाती है। यक़ीनन श्याम मुंशी एक ऐसा ही किरदार थे।

बेपनाह दोस्ती से लबरेज इंसान। भोपाल की सरजमीं की उस अदब-ओ-तहज़ीब के नुमाइंदे थे श्याम, जो तमाम फ़िरक़ापरस्ती को तौबा कर 'दो आब' के इस शहर से अपना राब्ता बनाए हुए थे।

दो बरस पहले जब सारे जहाँ पर विपदा की गठरी थामे एक महामारी ने पाँव पसारे तो झील-पहाड़ियों के शहर की जद में भी वो ज़हर चला आया। श्याम मुंशी भी बदनसीबी से उसके शिकंजे में आ गए। दुनिया-ए-फ़ानी से रुख़सत हो गए अपनों के श्याम भाई। किसे मालूम था कि अपनी किताब 'सिर्फ़ नक्शे क़दम रह गए' का शीर्षक रचते हुए अचानक एक दिन वो ख़ुद इन अल्फाजों के पर्याय बन जाएँगे! श्याम मुंशी की यादें भोपाल के बाशिंदों के सीने में कुछ इसी तरह नक़्श छोड़ती आज भी धड़क रही है। वे अठहत्तर बरस जिये। हर लम्हा तबीयत से जिया उन्होंने। बेलौस, बेफ़िक्र। अपने शौक फ़रमाते हुए अपनी मसर्रत में मसरूफ़। उर्दू और हिन्दी अदब के जितने गहरे कद्रदान उतने ही मौसीक़ी पर निहाल। साफ़गोई इतनी कि सामने वाले में सब्र न हो तो उनका कहा नागवार भी गुज़रता। दरअसल ये मस्तमौला तबीयत उन्होंने अपने पुरखों से पायी जिनकी एक जमाने में भोपाल रियासत के नवाबों के यहाँ आवाजाही थी और बैठकों के दौर पर दौर चलते। उनके वालिद मुंशी सुन्दनलाल और उनके भी पुरखे फ़ारसी-उर्दू के बड़े जानकार थे। लिहाज़ा श्याम मुंशी के लबों पर उर्दू का जुबानी असर कुछ ऐसा तैरता गोया कि ग़ालिब की ख़ानदान में पैदा हुए हों। मकबूल सारंगी नवाज उस्ताद अब्दुल लतीफ खाँ की गहरी सोहबत का ही नतीजा था कि 'लतीफ सारंग' नाम से एक छोटी सारंगी ही बना डाली। भोपाल के थिएटर को रौशन किया तो रेडियो नाटकों में भी बरसों भागीदारी की। कलम चलाई तो लेखकों की बिरादरी में आगे की जगह पायी। ठाठ का रहन-सहन और रौबदार पेशकश।

एक क़िस्सा....। सिने अभिनेता ओमपुरी को पद्मश्री मिलने की ख़बर आई। भोपाल के ही सिने पटकथाकार-निर्देशक रूमी जाफ़री ने

अपने (भोपाल के) घर में ओमपुरी के सम्मान में एक महफ़िल सजाई। अन्नू कपूर भी थे। जब महफ़िल का संचालन कर रहे श्याम मुंशी को उर्दू में बोलते ओमपुरी ने सुना तो उठकर श्यामजी को गले से लगा लिया।

रूमी जाफ़री लड़कपन में ही श्याम मुंशी के सम्पर्क में आ गए थे। जब श्यामजी के इंतकाल की ख़बर उन्हें मिली तो उन्हें गहरा आघात पहुँचा। म्यूज़िक, थिएटर, शायरी, स्पोर्ट्स हर फील्ड में श्याम भाई उस्ताद थे। घोड़ो और कुत्तों की नस्ल की जो मालूमात उन्हें रही किसी दूसरे शख़्स में नहीं देखी। खेती और मैनेजमेंट का इलाका भी उनसे न छूटा। रूमी कहते हैं कि मैं उन ख़ुश नसीबों में से हूँ जिन्हें श्याम भाई की सोहबत, कुर्बत, मोहब्बत और नसीहत मिली। उनकी ज़ुबाँ ऐसी कि उनके साथ रहने से ही आपका तलफ़्फ़ुज ठीक हो जाता। वे जिगर का शेर सुनाते हैं- "एक लफ़्ज़े मोहब्बत का अदना यह फसाना है, सिमटे तो दिल-ए-आशिक, फैले तो जमाना है"। बस, कुछ इसी तरह थे श्याम।

ज़िंदा होते श्याम मुंशी तो अपनी अस्सीवीं सालगिरह का जश्न मनाते। लेकिन उनकी जिस्मानी ग़ैरमौजूदगी में उन्हें रूहानी तौर पर याद करते हुए एक बड़ा उत्सव उनकी जीवन संगिनी नृत्यांगना लता मुंशी ने अभी बीस मई को भोपाल के रवीन्द्र भवन में रचा। इस मौक़े पर साथ जुड़ा संस्कृति महकमा, आईसेक्ट पब्लिकेशन, टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र, विश्वरंग और शहर का वो कुनबा जिसका राब्ता श्याम मुंशी से बहुत गहरी मोहब्बत से भरा था। लता और श्याम के ही रचनात्मक सपनों के साथ चहकती रही यमन फाईन आर्ट्स अकादेमी के बुलावे पर श्याम मुंशी के मुरीद मशहूर पार्श्व गायक हरिहरन और उनके मित्र शागिर्द सिने पटकथाकार-निर्देशक रूमी जाफ़री भी मुंबई से इस जश्न में शरीक हुए। दोनों ने मिलकर श्याम मुंशी के फारसी-उर्दू ज़ुबानों के ज्ञान और भोपाल के तारीख़ी इतिहास पर उनकी ज़बर्दस्त याददाश्त का बड़े एहतराम से सामयिन के सामने खुलासा किया। रंगकर्मी राहुल रस्तोगी ने एक बड़ा ही रोचक और भावुक बिंब मंच पर रचा जिसके आखिरी सिरे पर श्याम मुंशी और उनका बेटा यमन एक संधि पर विरासत और उत्तराधिकार में समरूप हो जाते हैं। लता मुंशी का इस दृश्य पर पिघलना स्वाभाविक था लेकिन, अनेक दर्शकों की आँखें भी भीग उठीं।

बहरहाल, 'सिर्फ़ नक़्शे क़दम रह गए' कुल जमा 240 पृष्ठों की किताब है जिसमें एक दर्जन के करीब आलेख और रिपोर्ताजों में भोपाल के अक्स नुमाया होते हैं। उर्दू-हिन्दी की जुबानी संगत में श्याम हमें उन इलाकों में ले जाते हैं जहाँ अनेक किरदार रेशा-रेशा अपने शहर की तस्वीर बुन रहे हैं।

भोपाल के इतिहास पर ये पहली किताब नहीं है। कई सारे दस्तावेज़ों में भोपाल कई तरह से नुमाया हुआ है लेकिन 'सिर्फ़ नक़्शे क़दम रह गए' इस मायने में जुदा है कि इसमें न तो सियासत की बेगमों और नवाबों और न ही उनके कारिंदों के क़िस्से हैं, न ही दरबार की तवील दस्तानें है। किताब के ब्लर्ब में भोपाल के पुराने रहवासी कवि राजेश जोशी अपनी रौ में लिखते हैं कि ये क़िस्से इस शहर के जीवन और उनकी ख़ुसूसियतों के रोचक क़िस्से हैं। इस किताब को किसी भी शहर में पढ़ो, लगता है जैसे भोपाल में हैं। राजेश जोशी के कहे में यह जोड़ने को जी चाहता है कि इस किताब के पन्नों से अब श्याम मुंशी भी झाँकते से नज़र आने लगे हैं।

000

पुस्तक समीक्षा

(आलोचना)

हिन्दी व्यंग्य की प्रवृत्तियाँ और परिवेश

समीक्षक : शैलेन्द्र शरण

लेखक : कैलाश मंडलेकर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल - 9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

शैलेन्द्र शरण
79, रेल्वे कॉलोनी, इन्दिरा पार्क के पास
आनंद नगर, खंडवा 450001 (मप्र)
मोबाइल- 8989423676, 9098433544
ईमेल- ss180258@gmail.com

आलोचना की किताब की समीक्षा या समालोचना की जाना उचित और मध्यमार्गी उपाय है। कैलाश मंडलेकर की हाल ही में प्रकाशित किताब इस अर्थ में महत्त्वपूर्ण और उपयोगी है कि प्रथम तो यह व्यंग्य लेखकों पर केन्द्रित है, द्वितीय इस किताब में हरीशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, रवीद्र नाथ त्यागी, अजातशत्रु, ज्ञान चतुर्वेदी, विजय बहादुर सिंह, प्रेम जनमेजय, सूर्यबाला, जवाहर चौधरी, सुशील सिधार्थ, यशवंत व्यास, शांतिलाल जैन पर महत्त्वपूर्ण आलेख हैं। इसके अतिरिक्त पीयूष पाण्डे, विजी श्रीवास्तव, कमलेश पाण्डेय, मुकेश राठौर, विवेक रंजन श्रीवास्तव, सुधीर कुमार चौधरी, विनोद साव आदि व्यंग्य लेखकों के लेखन को समग्रता से दृष्टिगत किया गया है।

इस किताब की भूमिका में कैलाश मंडलेकर ने व्यंग्य और व्यंग्य की वर्तमान स्थितियों पर खुल कर वैचारिक विमर्श किया है। यह कहा जा सकता है भूमिका से, आरंभ से ही कैलाश जी ने व्यंग्य के प्रति अपने दायित्व को पूरी शिद्दत से पूरा किया है। वे लिखते हैं "हिन्दी के समकालीन व्यंग्य पर आत्मसंतुष्टि, दोहराव और आत्म मुग्धता के गहरे आरोप लगाए जाते हैं। मैं जानता हूँ कि ये आरोप केवल फैशन के तौर पर नहीं लगाये गए हैं। इनमें सचाई भी है। पर नया व्यंग्यकार जैसे जीवन की अन्य सचाइयों को नकारता है, वैसे ही इन आरोपों को भी इग्नोर करते चलता है। इसके अतिरिक्त नया व्यंग्यकार अपने लिखे को कौतुहल से देखते हुए अख़बार के किसी कोने में ढाई तीन सौ शब्दों का व्यंग्य लिखकर ख़ुद को व्यंग्यकार मानने और मनवाने में मुब्तिला है। अखबारों ने भी व्यंग्यकारों के इस कौतुहल और ख़ुशफहमी का इस्तेमाल शुरू कर दिया है। धीरे धीरे व्यंग्य का दायरा संकुचित होता जा रहा है और व्यंग्यकार ख़ुद व्यंग्य के पात्र की तरह नज़र आता है। इधर आधुनिकता और तकनालाजी की कोख से जन्में सोशल- मीडिया ने अनेक लोगों को लिखने के लिए प्रेरित किया है। यह एक ऐसा प्लेटफार्म है जहाँ आप लिखने के लिए परम स्वतंत्र हैं, कोई रोक टोक करने वाला नहीं है। व्यंग्य के इलाके में बढ़ती जा रही स्वैच्छाचारिता ने चुटकुलेबाजी और सतही हास्य को भी जन्म दिया। आज जब हमारे सामने परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल या ज्ञान चतुर्वेदी एक कसौटी के रूप में उपस्थित हैं, तब हर एक व्यंग्यकार की यह जिम्मेदारी बनती है कि वह इन मुद्दों की तरफ गंभीरता से सोचे। वह सोचे कि व्यंग्य का ताज़ातरीन मुहावरा क्या हो ? वह सोचे कि परसाई जिसे व्यापक परिवेश कह रहे हैं उसके क्या निहितार्थ हैं।"

इस किताब का पहला आलेख "मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ में हिन्दी व्यंग्य – एक अवलोकन" शीर्षक से है जिसमें अखंड मध्यप्रदेश के लगभग सभी व्यंग्यकारों की रचनात्मकता और उनकी लेखन सफलता को रेखांकित किया गया है। हरी शंकर परसाई जी पर इस किताब में दो आलेख हैं। "परसाई की व्यंग्य चेतना" शीर्षक लेख में कैलाश मंडलेकर लिखते हैं "परसाई जी का रचना संसार वृहद और व्यापक है। उन्होंने विश्व राजनीति, भारतीय समाज और मनुष्य के मनोविज्ञान पर बहुत चिंतन परक लेखन किया है। परसाई जी अपने लेखन में चिरंतनता और अमरता जैसी बातों को जगह नहीं देते। शाश्वत लेखन की सलाह देने वालों पर वे जमकर प्रहार करते हैं। उन्हें मालूम है कि जो शाश्वत लेखन करते हैं, वे सट्टे का फिगर रोज़ नया लगाते हैं। वे उन्हें वाल्मिकी की तरह दीमक के बमीटे में बैठे दिखाई देते हैं। परसाई जी, बसंत की अगवानी छायावादी कवियों की तरह रूमानी भावुकता में नहीं करते वरन समाज के मौजूदा हालातों में उन्हें बसंत लहुलुहान दिखाई देता है। अपने सर पर पहला सफ़ेद बाल देख कर वे समूची पीढ़ी के भविष्य की चिंता करते हैं। वह पीढ़ी जिसके बाल जन्म से ही सफ़ेद हैं।"

शरद जोशी -परिक्रमा से प्रतिदिन तक ! शीर्षक आलेख में शरद जोशी जी के लेखन का स्पष्ट और सजग आकलन करते हुये मंडलेकर जी लिखते हैं "समसामयिक व्यंग्य साहित्य के सर्वाधिक चर्चित तथा वैज्ञानिक दृष्टि सम्पन्न व्यंग्यकार शरद जोशी ने हिन्दी व्यंग्य को एक नई दिशा और नई अर्थवत्ता प्रदान की है। भारतीय जीवन मूल्यों तथा सांस्कृतिक क्षरण को सर्वथा मौलिक ढंग से देखने और समझने वाले इस चेतना सम्पन्न व्यंग्यकार ने समाज के विभिन्न

हिस्सों में व्याप्त असंगतियों, असामंजस्य और अंतर्विरोधों तथा व्यक्ति के जीवन को घेरने वाली पोंगा पंथी परम्पराओं और जड़ता पर जम कर प्रहार किया है। व्यंग्य में पौराणिक और एतिहासिक मिथकों का प्रयोग कर शरद जोशी ने हिन्दी व्यंग्य को उचाइयाँ प्रदान की तथा अभिव्यक्ति का जैसा तीखा और मार्मिक संसार रचा वह अद्‌भुत और अप्रतिम है।" अपने अगले लेखक श्रीलाल शुक्ल के रागदरबारी पर बेहद वैचारिक और विश्लेषणपरक लेख में कैलाश जी "रागदारबारी" की पृष्ठभूमि तथा इस उपन्यास के प्रकाशन के पूर्व और पश्चात की बहुत सी सच्चाईयों को बताते हुये लिखते हैं - श्रीलाल जी ने जिन पात्रों और घटनाओं के मार्फत पूरी कथा का ताना बना बुना है, वे इतने मुखर हैं कि अलग से किसी सूत्रधार की ज़रूरत नहीं बचने दी। कथा में व्याप्त स्थितियाँ ही इतनी वैविध्यपूर्ण और कम्प्लीट हैं कि सब कुछ अपने आप घटते चले जाता है और पाठक लगभग अवाक सा देखते रह जाता है। वस्तुत: राग दरबारी आज भी एक ऐसी कृति है जिसे एक बार हाथ में लें तो फिर छोड़ना मुश्किल है। "हिन्दी के अप्रतिम व्यंग्यकार - रवीन्द्रनाथ त्यागी !" यशस्वी व्यंग्यकार और विविध विधा के सम्पन्न लेखक रवीन्द्रनाथ त्यागी को शामिल करने से आलोचना की इस किताब का मूल्य और स्तर बढ़ा है। "एक समाजचेता लेखक का न तो जीवन व्यर्थ जाता है और न मृत्यु। रवीन्द्रनाथ त्यागी ने अपने व्यंग्य में भारत के आम और भोक्ता नागरिक की तकलीफों को जिस संवेदनशीलता से रेखांकित किया है वह शताब्दियों तक हमारी स्मृतियों में अवगाहन करता रहेगा और फिर-फिर उन जख्मों की तरफ इशारा करता रहेगा जो इस दौर की राजनीति और नौकरशाही ने अपनी मस्ती और मदान्धता के चलते दिए हैं। रवीन्द्रनाथ त्यागी के व्यंग्य निबंधों में इस युग की तस्वीर बेहद साफ़ नज़र आती है। स्थतियों की विकरालता और चारित्रिक पतन की शर्मनाक प्रवृत्तियों पर उन्होंने अपने शताधिक निबंधों में तीक्ष्ण कशाघात किये हैं। रवीन्द्रनाथ त्यागी के ललित गद्य को पढ़ना मानो किसी मनोरम हरी दूब के बगीचे में टहलने जैसा है जहाँ चारों ओर सुवासित फूलों और कलियों की भरमार है और जहाँ एक भी कंटीली झाड़ी नहीं है। इतना डिलाइटफुल प्रोज हिन्दी में सिर्फ त्यागी जी ही दे पाए हैं। रवीद्र नाथ त्यागी जी के लेखन का समग्र आकलन करता यह लेख किताब का अत्यंत समृद्ध आलोचना लेख है।

अजातशत्रु साहित्य समाज के ऐसे लेखक हैं जिन्हें नाम, दाम, फेम, सम्मान पुरस्कार आदि की कभी कोई चिंता नहीं रही। उनके लेखन और व्यक्तित्व को लेकर शामिल दृष्टिसंपन्न लेख को पढ़ना अत्यंत सुखद है। लेख के आरंभ में ही अजातशत्रु पर यह टिप्पणी है "अजातशत्रु की रचना प्रक्रिया और जीवन दर्शन को सीधी और सरल रेखा में नहीं मापा जा सकता। उनका रचनात्मक वैविध्य बहुआयामी है तथा इन आयामों को स्पर्श करने पर सहज ही कहा जा सकता है कि वे हिन्दी के सर्वाधिक विश्लेषण परक और चिन्तनशील व्यंग्यकार हैं। यह अलहदा बात है कि उनके वैयक्तिक तथा सामाजिक संघर्षों, व्यापक अध्ययनशीलता तथा सूक्ष्म वैज्ञानिक अंतर्दृष्टि को अभी ठीक से समझा नहीं गया है।" इस आलेख में अजातशत्रु के साथ लेखक का वैचारिक साक्षात्कार भी है। एक प्रश्न के जवाब अजातशत्रु कहते हैं "कविता की तरह शायद व्यंग्य ही एक मात्र विधा है जिसे आप गढ़ नहीं सकते, डिक्टेट नहीं कर सकते, फार्मूले नहीं बाँध सकते। कहीं-कहीं कविता से ज़्यादा जटिल होकर वह अपने आप फूटता है और काव्यात्मक विजन का रूप ले लेता है। ऐसा व्यंग्य परसाई के बाद अभी तक नहीं आया। कहीं-कहीं फंतासियाँ रची गई हैं मगर वे कोल्ड हैं। वे व्यंग्यात्मक वर्णन अधिक हैं फूटा हुआ सृजनात्मक एसेंस कम। हाँ ज्ञान चतुर्वेदी ज़रूर हैं जो मुझे फितरत से व्यंग्यकार मालूम पड़ते हैं। समकालीन व्यंग्यकारों में वे अकेले ध्यान खींचते हैं और एक ध्वस्त मठ के फटे हुए झंडे को बचाए हुए हैं। प्रश्न यह भी है कि परसाई जैसा व्यंग्यकार हमारे पास क्यों नहीं आया, इसका कारण यह है कि परसाई लेखक होने से ज़्यादा विचारक थे।" यह साक्षात्कार अजातशत्रु जी की दर्शनिकता और विद्वता को शत प्रतिशत सिद्ध करता है। हम न मरब कस्बाई जीवन का महाआख्यान ! ज्ञान चतुर्वेदी के उपन्यास का आकलन करते हुये कैलाश जी लिखते हैं "दरअसल ज्ञान चतुर्वेदी का स्फूर्त गद्य हमारे इर्द गिर्द पसरी बोझिलता को एक तारो ताजा हवा में परिणत कर देता है। उन्हें पढ़कर पहले मुस्कुराया जा सकता है चिंतन और विचार के सोपान बाद में आते हैं। और उसके भी बाद एक गहरी उदासी आ सकती है कि कम्बख़त अभी-अभी जो आप बुक्का फाड़कर हँस रहे थे वस्तुत: वह आपको हँसाने के लिए वरन् आपके भीतर जो आदमीयत है उससे रूबरू कराने के लिए था। "हम न मरब पढ़कर" तो यही सब महसूस होता है।" ज्ञान चतुर्वेदी जी पर इस आलोचना ग्रंथ में दो आलोचनाएँ हैं और दोनों ही विशिष्ट और विश्लेषणपरक हैं। इनके बाद प्रेम जनमेजय, सूर्यबाला, जवाहर चौधरी, सुशील सिद्धार्थ, यशवंत व्यास, शांति लाल जैन तथा अन्य नए और स्थापित व्यंग्यकारों की किताबों और लेखन पर समीक्षात्मक विवेचन हैं। पुस्तक के अंत में पृथक तीन उप-शीर्षक दिखाई देते हैं। पहला है – भाषा। इसमें एक महतावपूर्ण लेख निमाड़ी भाषा को लेकर है जिसका शीर्षक है "भाषा द्वेष, निमाड़ी का लोक वैभव और आंचलिक रचनाशीलता"। "आलोचना का देशज विवेक" नामक लेख डॉ विजय बहादुर सिंह के कृतित्व पर आकलन परक महत्त्वपूर्ण आलेख है। सूर्यकांत नागर को इस किताब में रखकर लेखक ने कैलाश जी ने लेखकीय सजगता का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है। वहीं अपने महाविद्यालयीन गुरु सुरेश मित्र की शेष स्मृतियों को शिद्दत से स्थान दिया है। इस पीढ़ी का शायद ही कोई लेखक हो जिसका लगाव प्रभु जोशी जी से न हो। प्रभु दा पर केन्द्रित कैलाश मंडलेकर जी का लेखन गमगीन कर जाता है। हर स्तर पर आलोचना की यह किताब अपना विशिष्ट स्थान बनाने में सक्षम है।

000

पुस्तक समीक्षा

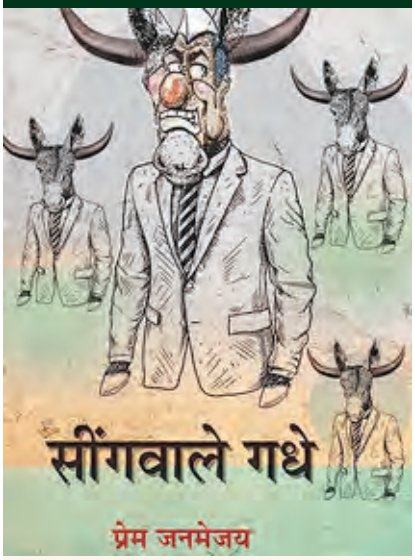

(व्यंग्य संग्रह)

सींगवाले गधे

समीक्षक : सुधीर ओखदे

लेखक : प्रेम जनमेजय

प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली

सुधीर ओखदे
"अव्यान", गट क्रमांक 561/2D/1/2,
प्लॉट क्रमांक 51, अनुराग स्टेट बैंक
कॉलनी, पवन हिल्स, जलगाँव
महाराष्ट्र 425002
मोबाइल- 9867537659
ईमेल- ssokhade@gmail.com

प्रेम जनमेजय जी का नवीनतम व्यंग्य संग्रह "सींगवाले गधे" अभी अभी समाप्त की है और व्यंग्य के एक ऐसे गलियारे से गुज़रने का मुझे अहसास हुआ है जहाँ विसंगति, विडंबना, विरूपता पर लगातार प्रहार हैं। इस व्यंग्य संग्रह में 41 व्यंग्य रचनाएँ हैं जो विषय विविधता के साथ व्यंग्य को नई उचाईं तक ले जाने में पूर्णत: सक्षम हैं। इस संग्रह की कई रचनाएँ "कोरोना काल" में लिखी गई प्रतीत होती हैं और उस समय प्रचलित कोरोना शब्दावली को रचनाओं में इतने स्वाभाविकता के साथ प्रवेश कराती हैं कि लगता है यह शब्दावली इन रचनाओं के लिये ही बनी है।

विगत कई वर्षों से भारतीय समाज के आचार-विचार में इतना आक्रामक परिवर्तन आया है कि उसका प्रत्यक्ष प्रभाव साहित्य विधाओं में पड़ना स्वाभाविक सा लगता है। आज विधा कोई भी हो उसका मूल स्वर व्यंग्य ही बन कर उभर रहा है। पीड़ा, त्रास, संत्रास, संवेदना, भ्रष्टाचार, अनाचार, अत्याचार, मानवीय व्यवहार का दोगलापन आज सामान्य व्यक्ति के दैनिक व्यवहार में इस सुगमता से प्रवेश कर गए हैं कि साहित्य जब भी अभिव्यक्त होता है, पीड़ा का एक व्यंग्य स्वर स्वाभाविक रूप से उसमें परिलक्षित होता है। कहानी, कविता, निबंध, नाटक, उपन्यास सभी में यह आक्रोशित स्वर अपनी पहचान बनाता नज़र आ रहा है।

क़रीब 20-25 वर्ष पहले प्रेम जनमेजय की रचना "राजधानी में गँवार" पढ़ी थी और इतना प्रभावित हुआ था कि इस लेखक की छुट-पुट रचनाएँ पत्र पत्रिकाओं में खोजने लगा था। मेरा सौभाग्य कि इस दौरान मेरा स्थानांतरण आकाशवाणी जलगाँव में हो गया था, जहाँ व्यंग्य के एक बड़े लेखक "शंकर पुणतांबेकर" भी रहते थे। एक दिन शाम को प्रेम भाई की "राजधानी में गँवार" रचना के साथ सर से चर्चा करने पहुँचा तो उन्होंने न सिर्फ़ प्रेम भाई के बारे में बताया अपितु मुझे उस समय के और किन किन लेखकों को पढ़ना चाहिए इसका भी मार्गदर्शन किया।

मुझे याद है उन्होंने मुझे प्रेम जनमेजय की राजधानी में गँवार के साथ साथ नरेंद्र कोहली की "अस्पताल", ज्ञान चतुर्वेदी की "सुअर के बच्चे और आदमी के", हरीश नवल की "विक्रमार्क बुढ़िया और सराय रोहिल्ला" रचनाएँ भी पढ़ने को दीं। साथ ही सूर्यबाला, सुरेश कांत, लतीफ़ घोंघी, ईश्वर शर्मा, सुभाष चंदर को भी गंभीरता से पढ़ने की सलाह दी। मुझे बताने में क़तई कोई संकोच नहीं कि मेरे लेखन में व्यंग्य की समझ और निखार इन सभी वरिष्ठ व्यंग्यकारों को पढ़ कर ही आया है, जिसके लिये मैं सदैव इन सभी का ऋणी रहूँगा।

संग्रह की शीर्षक रचना "सींगवाले गधे" कोरोना काल में लिखी गई कथा है। लॉकडॉउन, कंटोनमेंटज़ोन, इत्यादि शब्दों का मारक प्रयोग रचना में किया गया है। गधों के पास सत्ता हो और साथ में सींग भी हों तो वह ज़्यादा प्रभावी होता है। गधों के वर्णन में राजनीति, समाज, मानव, सभी की बखिया उधेड़ता यह मारक व्यंग्य है। इस व्यंग्य में लेखक की भाषा पर गौर करें - "कोरोना काल की महिमा न्यारी है। उसने मनुष्य को उसकी औक़ात बता दी है। इसने तो ईश्वर तक को उसकी औक़ात बता दी है।"

"गधा भी तभी प्रभु होता है जब वह दुधारू होता है"

"कभी राजा के सिर पर सींग उगे तो छुपाने पड़ते थे पर आजकल नक़ली लगाने पड़ते हैं।"

यहाँ "नक़ली लगाने पड़ते हैं" वाक्य एक साथ कितनी बातें कह जाता है। अद्भुत व्यंग्य।

एक और व्यंग्य "दो वैष्णवन की वार्ता" बुकर जैसे पुरस्कारों पर प्रश्नचिह्न लगाता सा कटाक्ष है। इस प्रकार के पुरस्कारों का मापदंड क्या है ? यह कैसे प्राप्त किया जाता है ?यह पुरस्कार किसी कृति को क्यों प्राप्त होते हैं ?उसका विदेश से क्या अंतरसंबंध है ? इन सभी बातों की पड़ताल इस व्यंग्य में की गई है। भारतीय लेखक जब अंग्रेज़ी में अनुवादित होता है तब उस पर दृष्टि पड़ती है और वह सम्मानित होता है। कितना कटु लेकिन सच्चा व्यंग्य है। राशि के

बंदरबाट पर भी लेखक ने संकेत दिये हैं। यह एक ऐसी पीड़ा है जो अभी तक अभिव्यक्त नहीं हुई थी।

मुझे इस संदर्भ में शंकर पुणतांबेकर जी का एक प्रसंग याद आता है। जब उनका एक वैश्विक व्यंग्य उपन्यास "जहाँ देवता मरते हैं" लिख कर पूरा हुआ तो वह पहले इसे हिन्दी में नहीं प्रकाशित करवाना चाहते थे। वह चाहते थे कि पहले इसका अनुवाद अंग्रेज़ी में हो और वह छपे। अपना नाम भी वे इस उपन्यास के लिये "पी. शंकर" देना चाहते थे। उन्हें इस उपन्यास से बहुत आशाएँ थीं। वह कहते थे यदि ये अंग्रेज़ी में पहले प्रकाशित हुआ और "पी. शंकर" के नाम से प्रकाशित हुआ तो वह पढ़ा भी जाएगा और मुझे ढूँढ़ कर सम्मानित किया जाएगा। कितनी पीड़ा है यह एक लेखक की। उपेक्षा की पीड़ा। बाद में हम सब के आग्रह पर यह हिन्दी में प्रकाशित हुआ पर...।

इस व्यंग्य में प्रेम जी ने जैसे उनकी भावनाओं को ही अभिव्यक्त किया है। प्रभावी विषय और उसका सुंदर निर्वहन करना कोई प्रेम जी से ही सीखे।

परसाई जी की रचना "जैसे उनके दिन फिरे" को आधार बना कर एक बहुत सुंदर रचना है "जैसे उनके दिन फिटे" आज की राजनीतिक अवस्था पर लिखी गई एक तीक्ष्ण रचना है। राधेलाल के माध्यम से सामान्य व्यक्ति की पीड़ा का प्रभावी प्रकटीकरण संपूर्ण रचना में दिखाई देता है।

घूरे के दिन भी फिर जाते हैं पर भारतवर्ष में सामान्य ग़रीब व्यक्ति के दिन कभी नहीं फिर सकते। राधेलाल न कुत्ता है न घूरा फिर वह अपने दिन बदलने की क्यों प्रतीक्षा क्यों कर रहा है ? लेखक और राधेलाल का यह व्यंग्य संवाद नि:संदेह आपको द्रवित करेगा और रचना के स्तर पर प्रभावित भी ।

"सभी नेताओं के चुनावी भाषणों को ध्यान से सुन। तेरे अच्छे दिन आने वाले हैं। जब घूरे के दिन फिर सकते हैं, तेरे भी फिरेंगे!"

"नहीं फिरेंगे !"

"क्यों नहीं फिरेंगे, राधेलाल ?"

"क्योंकि मैं घूरा नहीं राधेलाल हूँ। घूरा, घूरा होता है। उसका कोई नाम नहीं होता। घूरा, राधेलाल नहीं हो सकता और राधेलाल, घूरा नहीं हो सकता।

प्रेम भाई की इस रचना में एक और तीक्ष्ण संवाद है जो आज की वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था पर कितना सटीक बैठता है आप भी पढ़ें...

"पर राधेलाल ! चूहे इकट्ठे हो जाएँ तो बड़े से बड़े राजमहल की नींव खोद डालते हैं, उसे खंडहर कर देते हैं।"

"इकट्ठे हो जाएँ तब न ! कौन होने देगा उन्हें इकट्ठा ?

राधेलाल के इस सवाल का जवाब मेरे पास नहीं था"

प्रेमभाई की भाषा और शैली में इतनी विविधता है कि हर रचना नई सी और हर रचना में उनका लेखन भी नया सा लगता है। सामान्य से लगने वाले विषयों का जब वह अपनी रचना में निर्वाह करते हैं तो वह लेखकीय पीड़ा अपनी सी प्रतीत होती जान पड़ती है। भाषा में इतना प्रवाह है जो पाठक को लगातार रचनाएँ पढ़ने को बाध्य करता रहे।

"प्रभु बोर हो रहे हैं" रचना के माध्यम से धर्म, अंधश्रद्धा, मंदिर, पूजापाठ सभी पर चौतरफ़ा प्रहार किए गए हैं। कोरोना काल में लक्ष्मी जी अपने एक भक्त से संक्रमित हो कोरोना ग्रस्त हो जाती हैं और प्रभु के चरण दबाते-दबाते उन्हें भी संक्रमित कर देती हैं। पृथ्वी पर भगवान् भी कोरोंनटाइंन हैं। मंदिर बंद हैं। कितना नया विषय और अद्भुत व्यंग्य है।

एक और व्यंग्य कोरोना काल में अचानक अवतरित ऑनलाईन वेबिनार, ऑनलाईन गोष्ठियों इत्यादि पर भी है। साथ ही कमज़ोर लेकिन प्रसिद्ध लेखक की महत्वाकाँक्षा और स्वयं को वरिष्ठ कहलाने को आतुर लेखकों पर यह अद्भुत हास्य व्यंग्य है। शीर्षक है "लेखक का लॉकडाउन, लॉकडाउन में लेखक" इस व्यंग्य में प्रेम भाई वरिष्ठता को परिभाषित करते हुए लिखते हैं - "वरिष्ठ लेखक होना आज के ज़माने में किसी निर्भाया सा अपना सम्मान बचाने के लिये भयभीत ज़िंदगी जीना है।" कितना मार्मिक वाक्य है। पढ़ कर हँसी आती है पर संदर्भ जब ध्यान में आता है तो पीड़ा उभरती है।

"अविगत की गति" व्यंग्य में पुराने और नए के संघर्ष को रोचक तरीक़े से व्यक्त किया गया है। वेलंटाइन डे अब केवल 14 फ़रवरी को ही नहीं रहता अपितु यह प्रेम पर्व अलग अलग नामों से 14 दिन चलता है।

"अबे ओ मास्टर जी" रचना में दिल्ली की वर्तमान सरकार के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। लेखक ने प्रहार करते हुए इसे छुपाने की कोशिश भी नहीं की है बल्कि और प्रखरता से विसंगतियों पर प्रहार करते हुए अपने व्यंग्यकार कर्म को ईमानदारी से निभाने की कोशिश की है।

आज बाज़ार कैसे आपका शोषण कर रहा है, क्रेडिट कार्ड के नाम पर कैसी ठगी मची हुई है। खर्च करने की एक बार आपको आदत लग जाय बस फिर क्या है। वसूलना तो वह बखूबी जानते हैं। "अथ क्रेडिट कार्ड महिमा" रचना में एक सामान्य व्यक्ति की पीड़ा को महसूस करें।

"हमें तो लड़की तीन कपड़ों में चाहिए" से आरंभ हुआ लड़के वालों का वाक्य तब तक समाप्त नहीं हुआ, जब तक हमारे तन पर तीन कपड़े नहीं रह गए।"

धीरे धीरे मैं गोदान का होरी बन ग़ायब। मुझ मध्यमवर्गीय बाबू को किसानों के दर्द समझ आ गए।"

"यह कहानी है दिये की और..." यह व्यंग्य एक मध्यमवर्गीय व्यक्ति की व्यथा कथा है जो केवल इसलिये भयभीत है कि नोटबंदी की वर्षगाँठ आ रही है। उसकी पत्नी को डर है कि कहीं फिर नोटबंदी न हो जाए इसलीये वह घर में रखे सारे पैसे बाज़ार में उड़ा रही है। विनोदी शैली में लिखा गया यह व्यंग्य एक निरंतर पीड़ा की जन्म दे जाता है।

लिखने लायक़ ख़ूब है पर कहीं तो विराम लेना ही होगा। प्रेम जनमेजय वरिष्ठ व्यंग्यकार हैं। स्वयं व्यंग्य की पाठशाला हैं। नवोदितों को यदि व्यंग्य सीखना हो तो "सींगवाले गधे" व्यंग्य संग्रह उनके लिये उपयुक्त है।

000

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

हाँडी भर यातना

समीक्षक : डॉ. उपमा शर्मा

लेखक : शोभानाथ शुक्ल

प्रकाशक : साक्षी प्रकाशन संस्थान सुलतानपुर

डॉ. उपमा शर्मा
बी-1/248
यमुना विहार
दिल्ली 110053
मोबाइल - 8826270597

यथार्थ के प्रति सतर्कता, समय के प्रति सजगता और समाज की विद्रूप व्यवस्था को उद्घाटित करने की उद्दाम इच्छा डॉक्टर शोभनाथ शुक्ल को एक सचेत, सजग, सतर्क व संवेदनशील कहानीकार के रूप में हमारा परिचय कराती है। साहित्य जीवन की आलोचना है। वह संवेदात्मक भी है विचारात्मक भी। लेखन कर्म बिना संवेदना के संभव नहीं है। कहानीकार जब संवेदनाओं की गहराई में डूबकर सृजन करता है तब वह अपनी रचनाओं के माध्यम से अपनी व्यापक उपस्थिति दर्ज कराता है। 'हाँडी भरी यातना' आठ ऐसी कहानियों से समृद्ध कहानी संग्रह है जो देश परिवार, स्कूल, राजनीति की कलई खोलता है। शोभनाथ शुक्ल समाज, देशकाल पर पैनी नज़र रखते हैं।

कोई भी देश उन्नत तभी होता है जब उसका युवा वर्ग उन्नत होगा और युवा वर्ग कब उन्नत होगा जब वह शिक्षा और रोज़गार से समृद्ध होगा। दो जून की रोटी में उलझने वाला व्यक्ति देश समाज के लिए क्या ही सोच पायेगा ! 'कंडक्टर रामलाल' देश के हर उस युवा की कहानी है जो उच्च शिक्षा प्राप्त कर लाखों रुपये की रिश्वत न दे पाने पर ऐसी नौकरी भी करने को मजबूर होते हैं जो उनके मेयार की नहीं होती। बहुत आम सी बात हो गई है चपरासी की नौकरी के लिए योग्यता माँगते हैं बारहवीं पास और साक्षात्कार के लिए एमएस सी पास की लाइन लगी होती है। इतने पर भी नौकरी कौन ले जाता है किसी नेता का बहुत करीबी या चमचा। ऐसी स्थिति में युवाओं का शिक्षा से रुझान हटना लाज़िमी है। कंडक्टर रामलाल कहानी व्यवस्था की और भी परतें खोलती है। सरकारी बसों की जर्जर हालत, सवारी की अधिकता, बसों की कमी, जो बस उपलब्ध भी हैं उनकी यह हालत नहीं कि अधिक सवारी का बोझ उठा सकें। फिर भी संसाधन की कमी के कारण लोग इसमें सफ़र करने को मजबूर हैं। बस आधे रास्ते में ख़राब हो खड़ी हो जाती है तो सवारियों को बस को धक्का लगाना भी मजबूरी है। ऑफिस या किसी काम से निकलने वाला व्यक्ति जब इस तरह की परेशानियाँ उठा काम पर पहुँचेगा तो कितना सही से काम कर पायेगा। कंडक्टर रामलाल इन व्यवस्थाओं पर चोट करती एक सशक्त कहानी है जिसे कथा तंतुओं के सूक्ष्म जाल से बेहद ख़ूबसूरती से बुना गया है।

आज के दौर में कोई भी क्षेत्र राजनीति से अछूता नहीं है। जहाँ राजनीति है वहाँ भ्रष्टाचार, चाटुकारिता स्वयं ही उपस्थित हो जाते हैं। शिक्षा व्यवस्था भी इससे अछूती नहीं। जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली कहावत की तर्ज पर जिसके पास ताकत वो दबंगई दिखाता है। 'आया ऊँट पहाड़ के नीचे' की जिद्दी अक्खड़ मास्टरनी अपने दबंग जेठ के संरक्षण में स्कूल जाती ही नहीं। सेर को सवा सेर मिलता है और नई अध्यापिका दोनों को सबक सिखा स्कूल की व्यवस्था ठीक करने में अहम रोल निभाती है। 'पीक' संवेदना के बारीक तंतु से बुनी बेहद सशक्त कहानी है।

ऐसे तो हर शख्स ही गुमशुदा है। कोई किसी के मन से गुमशुदा, कुछ गली मोहल्लों को भूल जाते हैं। कुछ उन दोस्तों को जिनके साथ खेलते हुए बचपन बीता। कितने लोगों को सबने गुम होते हुए देखा है -अपनी वास्तविक ज़िंदगी में, अख़बारों में, गुमशुदगी के विज्ञापनों में,गलियों के नुक्कड़ों और बस स्टैंड पर लगे पोस्टरों में, जिन पर सरसरी नज़र डाल निस्पृह रूप से हम आगे बढ़ जाते हैं। यही कहानी 'शनीचरी, सायराबानो और सुजातो क्रिस्टी' का मूल है। राम संजीवन सब जगह उस गुमशुदा बच्ची की तलाश करता है जिसके खोने की फ़िक्र उसके परिवार को भी नहीं है।

कुछ गाँव ऐसे हैं जिनके लोगों को किसी ने खोजा ही नहीं। दो बूँद पानी, खाना सबकी जद्दोजहद में लगे यह लोग किसी को नज़र ही नहीं आते। इनके परिवार में रहने वाले बच्चे कहाँ गुमशुदा हैं नहीं पता। लेकिन अचानक जब इनके परिवार की बच्ची की खोज़ में राम संजीवन लग जाता है तब इन मीडिया वालों और धर्म के लोगों की आँखें चमकने लगती हैं। जिस ख़बर को कोई अख़बार छापने को तैयार नहीं था रातों रात उसकी फोटो भी छप जाती है जिसे किसी ने न देखा, न कोई उसका सही नाम जानता है। कहानी यहीं नहीं रुकती अपने दूसरे चरमबिन्दु को

छूती है जब अख़बार में फोटो देख अफरोज़, जॉन और मंदिर के पुजारी उसे अपने-अपने धर्म का हिस्सा बनाने की जद्दोजहद में लग जाते हैं। रामसंजीवन को यह अपने जीवन की सबसे बड़ी भूल लगने लगती है।

पठनीयता और विश्वसनीयता, जिन दो तत्वों पर कहानी का दारोमदार होता है, वो दोनों तत्व कहानी को ताकतवर बनाते हैं। संग्रह की कहानी 'दीपक तले अँधेरा' उजाले की राह दिखाती कहानी है। कहानी में गर्मजोशी है, विचार है, ज़िंदगी जीने का फलसफा है। कहानी के नायक को जब उसकी एक विद्यार्थी यह अहसास दिलाती है कि उसकी अपनी पत्नी साक्षरता से कोसों दूर है तब वह उसे साक्षर करने की ठान लेता है।

आज की विद्रूप राजनीति ने हिंदू मुस्लिम की पहचान बदल दी है। यह समाज अब उस तरफ जा रहा है जहाँ आपसी भाईचारा और प्रेम पर राजनीतिक धूल की मोटी परत चढ़ती जा रही है। आज हम उस दौर में पहुँच गए हैं जब सत्ता हमारे भगवान्, धर्म आदि की परिभाषा तय करती है। 'दंगा' कहानी राजनीति की ऐसी ही परतें उघाड़ती है। कहते हैं जीवन बड़ा अमूल्य है पता नहीं कितने जन्मों के बाद यह मानव का रूप मिलता है फिर इंसान की संवेदनाएँ कहाँ सुप्त हो जाता हैं। मानव जीवन इतना सस्ता क्यों है कि कोई भी जान लेकर चला जाए। क्यों भीड़ उन्मादी और तमाशाई बनती है? आज धर्म से मानवीय सरोकार लुप्त हो चुके हैं। हिंदू और मुस्लिम परिवार की मित्रता को तोड़ने को प्रयासरत लोग जब किसी भी तरह दोनों की मित्रता नहीं तोड़ पाते तब उन्मादी भीड़ से दोनों के घरों में आग लगवा देते हैं।

यह कहाँ आ गए हैं हम! एक ऐसे समाज में जहाँ सत्य और यथार्थ में एक झीना सा आवरण आ गया है। आज वास्तविकता और आभास के बीच की सीमा रेखा बहुत धुँधली जान पड़ती है। हम एक ऐसे समय में पहुँच गए हैं जहाँ बहुत कुछ आँखों के ठीक सामने घटित होते हुए भी अवास्तविक, अविश्वसनीय जान पड़ता है। राजनीति से लेकर परिवार, चेतना, आकांक्षाएँ, स्वप्न सभी कुछ बदलाव की बयार में है। लेकिन यह बदलाव रुचिकर न हो अरुचिकर हो चला है। समाज से बुजुर्गों के प्रति ख़त्म होती संवेदना, धोखा, भ्रष्टाचार, झूठ ने समाज को ऐसी जगह लाकर खड़ा कर दिया है जिससे किसी पर भी भरोसा करना अब आसान नहीं रहा है। पिछले कुछ वर्षों में संयुक्त परिवारों के छीजने और बिखरने का संकट बहुत तेज़ी से बढ़ा है। जिन बच्चों को पढ़ाने के लिए माता-पिता अपनी जान की भी परवाह नहीं करते वही बच्चे माता-पिता के अशक्त होने पर उन्हें दूध की मक्खी की तरह निकाल कर फेंक देते हैं। यह किस युग में जा रहे हैं हम। अपने जन्मदाता की ऐसी अवहेलना! जिनकी गोदी में झूले, जिन्होंने उँगली पकड़ चलना सिखाया विडम्बना है कि आजकल के बच्चों के लिए वही छायादार वृक्ष जैसे माता-पिता बोझ बन जाते हैं। 'न मरने की हठ' कहानी में बेटा अपने पिता की तबियत ख़राब पर बमुश्किल आता है और आता भी है तो इस उम्मीद से कि इस बार नहीं बचेंगे और बस सम्पत्ति मेरी। छुट्टी समाप्ति पर है। पिता अस्पताल में जीवित हैं। उसके लिए इंतज़ार इतना असहनीय हो जाता है कि वो अँगूठा लगवाने को आतुर हो उठता है। माँ का रुदन पिता को आँखें खोलने पर विवश कर देता है। कहानी का सुखद पक्ष है कि पिता अपनी जिजीविषा के साथ न सिर्फ उठ खड़े होते हैं अपितु वो बेटे को घर से निकाल बाहर कर देते हैं।

'हाँडी भरी यातना' बिना किसी पारिभाषिक या निर्णय परक शब्दावली का सहारा लिए हमारे समकाल में मानवीय संबंधों का सच जिस तरह उघाड़ती है, वह इसे उल्लेखनीय कहानी बनाता है। हम मूल्यों और नैतिकता से मानवीय संबंधों को बचाए रखने की उम्मीद करते हैं लेकिन पतन के वर्तमान दौर में क्या नैतिकता अप्रतिहत रह सकती है? बुढ़ापे में हाशिए तक सीमित रहने का दंश, उससे उबरने की कोशिशें, घटते संवाद, बेगाने होते पुत्र-पुत्रवधू इन स्थितियों को समेटती कहानी इस सवाल से भी जूझती है कि आख़िर जीवन है क्या ? पूँजी वस्तुओं, व्यक्तियों और संबंधों सबको अपदस्थ कर देती है।

संग्रह की कहानी 'हाँडी भर यातना' अंततः न चाहते हुए भी यह मानने को मजबूर कर देती है कि न केवल घर की सत्ता बदल गई है बल्कि उसके साथ ही नैतिक मूल्य गुम हो चुके हैं। ऐसे बंजर समय में जहाँ दो बेटे बहू बँटवारे की माँग कर ससुर को साथ रखने को तैयार नहीं होते, वहीं छोटी बहू और बेटे का ससुर की सेवा करना सुखद अनुभूति देता है। लेकिन समय बहुत निष्ठुर हो चुका है। कितना त्रासद है अपने ही पिता को कठघरे में खड़ा करते बेटे और बहुएँ न ख़ुद दो वक्त की रोटी देते हैं और जब छोटे बेटे बहू पिता की सेवा सुश्रुषा करते हैं तो उन पर भी आक्षेप लगाने से नहीं चूकते।

कहानी की सादी, मंथर, पारदर्शी भाषा पाठक को इस समय की तेज़ रफ्तार तले कहीं खो चुकी जीवन-लय से जुड़ने का अवकाश देती है। शोभनाथ शुक्ल की कहानियों की भाषा साधारण जन जीवन की भाषा है।ये कहानियाँ मानव जीवन से सहज संवाद करती प्रतीत होती हैं। लोकभाषा के शब्दों का उचित प्रयोग है जो अभिव्यक्ति को कहीं बाधित नहीं करता। इन कहानियों आम जीवन से जुड़े विषय पाठक को सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। लेखक ने अपनी कहानियों के विषय वस्तु आम जन से उठाये हैं और कहानी का ताने-बाने इतनी रोचकता से बुने हैं कि पाठक कब इनसे जुड़ जाता है पता ही नहीं चलता। लेखक की कहानियों के यह सिर्फ किरदार नहीं उन आम जन का संघर्ष और दुःख भी है।

ये कहानियाँ सघन संवेदनाओं से बुनी ऐसी ही कहानी हैं जो आज की दुनिया में गुम हुए मूल्यों को पुनर्स्थापित करने के प्रयास के लिए प्रतिबद्ध हैं। इस संग्रह की कहानियाँ अंतर्मन को ऐसे छूती हैं कि मानस पटल पर घर कर लेती हैं।

सहज भाषा और शिल्प में रची यह कहानियाँ हमारी विचार प्रक्रिया को आंदोलित कर हमारे अंतर्मन में कालजयी होकर चिरंतन रूप से घर बना लेती हैं।

000

पुस्तक समीक्षा

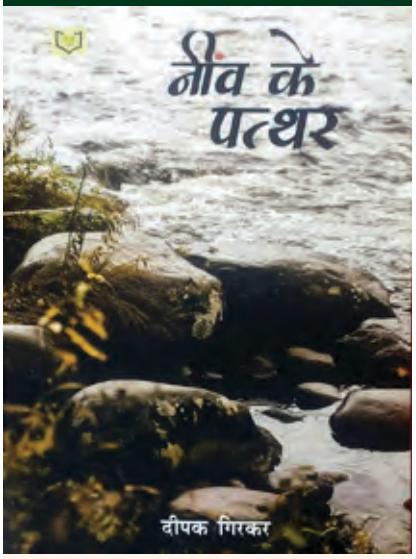

(निबंध संग्रह)

नींव के पत्थर

समीक्षक : विजय कुमार तिवारी
लेखक : दीपक गिरकर
प्रकाशक : इंडिया नेटबुक्स प्रा. लि., नोयडा

विजय कुमार तिवारी
फ्लैट - 1002
टाटा एरेना हाउसिंग टावर- 4,
पोस्ट - महालक्ष्मी विहार,
भुवनेश्वर - 751029 उड़ीसा
मोबाइल - 9102919190
ईमेल- vijsun.tiwari@gmail.com

दीपक गिरकर की पुस्तक "नींव के पत्थर" मेरे हाथों में है। इस संग्रह में दीपक गिरकर ने कुल 29 महत्त्वपूर्ण लेखों के माध्यम से सफल जीवन-सूत्रों को समझाया है जिन्हें समझकर हर पाठक के लिए जीवन जीना सहज-सुखद हो जाएगा। अपने प्रथम लेख 'नींव के पत्थर' में दीपक गिरकर जी लिखते हैं-मज़बूत मीनार गिर सकती है लेकिन नींव का पत्थर कभी नहीं गिर सकता। शिखर तक पहुँचाने में सबसे अधिक योगदान नींव के पत्थर का होता है। जीवन के लिए नींव के पत्थरों के रुप में हमारा चरित्र, अनुशासन, महत्वाकांक्षा, ईमानदारी, परिश्रम, कर्तव्य पालन, रचनात्मक दृष्टिकोण, वफादारी, समझदारी, नैतिक व व्यावहारिक बुद्धि, नैतिक साहस, शराफत, सृजनशीलता, एकाग्रता, आत्मसम्मान, आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास जैसे गुण-सद्गुण होते हैं। जीवन में संतुलन, अपनी भूलों से सीखना और सद्गुणों को जीवन में उतारना जैसे भाव-विचार अनेक महापुरुषों के उदाहरण के साथ गिरकर जी ने प्रस्तुत किया है। 'जीवनचर्या: जीवन निर्वाह की श्रेष्ठतम शैली' लेख में गिरकर जी बहुत सही कहते हैं - 'मनुष्य को जानने,उसके अन्तर्मन में झाँकने के लिए उसकी दिनचर्या ही सटीक और प्रामाणिक उदाहरण है।' हमारा दैनिक आचरण ही दिनचर्या है। महापुरुषों का जीवन,उनकी दिनचर्या ही हम सबके लिए प्रेरणादायक होती है। यह पुस्तक घर-घर में होनी चाहिए ताकि हमारा जीवन-निर्माण होता रहे। इसमें गिरकर जी ने उन सारी शिक्षाओं को संग्रहित किया है जिसे पढ़कर, जानकर, समझकर हर व्यक्ति आत्मोत्थान कर सकता है।

गिरकर जी अब्दुल कलाम को याद करते हैं, वे कहा करते थे-'सपने वे होते हैं जो रात में सोने नहीं देते। हमेशा ऊँचे सपने देखो। सपने तब तक देखते रहो जब तक कि वे पूरे न हो जाएँ।' डॉ. एपीजे कलाम का उदाहरण देते हुए उन्होंने सपनों को लेकर महत्त्वपूर्ण चिन्तन दिखाया है और पाठकों को प्रेरित कर रहे हैं। उनका लेख 'आत्मविश्वास सफलता की पहली सीढ़ी है' हमारे भीतर आत्मविश्वास जगाता है। गिरकर जी के इन ललित निबंधों में दुनिया भर के महापुरुषों का उदाहरण भरा पड़ा है जिनके व्यक्तित्व से हर किसी का मन प्रभावित होता है। इसमें धैर्य,लगन और साहस की कथाएँ भी हैं। 'दृढ़ इच्छाशक्ति:सफलता का मंत्र' लेख हमारे भीतर दृढ़ इच्छाशक्ति का संदेश देता है। देश के कोने-कोने से बहुत लोगों ने अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति के बल पर सफलताएँ अर्जित की हैं। गिरकर जी के पास ऐसे अनेक लोगों के उदाहरण हैं। वे लिखते हैं-दृढ़ इच्छाशक्ति, उच्च आत्मबल और समर्पित भाव से अपने लक्ष्य की ओर निरंतर गति से बढ़ने पर निश्चित ही सफलता मिलती है।

उनका अगला लेख है-'सादगी और शालीनता।' ये आभूषण हैं जो मनुष्य को आदर और सम्मान दिलाते हैं। उन्होंने प्रथम राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद, सरदार वल्लभ भाई पटेल और लाल बहादुर शास्त्री जी के सादगी और शालीनता भरे प्रसंगों से मार्गदर्शन किया है। वे लिखते हैं 'स्थायी सफलता का आधार है उत्कृष्ट चरित्र।' यही मानव जीवन की कसौटी है। उत्तम चरित्र वाला व्यक्ति समाज के लिए एक बहुत बड़ी संपत्ति है। रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों में प्रतिभा से भी उच्च है चरित्र का स्थान। गिरकर जी ने अपने हर लेख में विस्तार से गुणों की महत्ता का उल्लेख किया है। उन्होंने अनुशासन को आदर्श जीवन जीने की कला कहा है और श्लोकों, दोहों के माध्यम से समझाने का प्रयास किया है। वे अगला लेख लिखते हैं-'संसार की सारी सफलताओं का मूलमंत्र:संकल्प शक्ति।' मेहनत को प्रेरित करने वाला तत्व 'संकल्प शक्ति' है। गाँधी जी के अनुसार जिन व्यक्तियों में संकल्प शक्ति है, जो दृढ़ निश्चयी हैं, वे ही जीवन के संग्राम में सफल होते हैं। इस संग्रह का महत्त्वपूर्ण निबंध है-'लक्ष्य निर्धारण'। उन्होंने लिखा है-'सबसे पहले अपना लक्ष्य निर्धारित करें, लक्ष्य ऊँचा रखें, चरणबद्ध योजना बनाएँ,संकल्पित हों और हमेशा अपने लक्ष्य पर ध्यान केन्द्रित करें।' अपने लेखों में दीपक गिरकर जी प्रमाण के रूप में दुनिया भर के महान् लोगों के कथनों को लिखा और समझाया है। उन्होंने स्वयं बहुत पढ़ा है और जीवन भर के प्राप्त अनुभवों को हम सभी के लिए इस संग्रह में संग्रहित किया है।

कड़ी मेहनत ही सफल व्यक्तित्व की कुंजी है। कड़ी मेहनत से किस्मत का दरवाज़ा खुलता

है, मिट्टी सोना बन जाती है और सफलता कदम चूमने लगती है। गिरकर जी नाना उदाहरण-प्रसंगों से श्रम की सार्थकता सिद्ध करते हैं, बताते हैं कि श्रमशील मनुष्य का समाज में आदर होता है और श्रमशील मनुष्य थकता नहीं बल्कि परिश्रम को मनोरंजन समझता है। ''अच्छे नेतृत्व के गुण'' लेख में गिरकर जी चाणक्य-चन्द्रगुप्त का उदाहरण देते हैं। अच्छे नेतृत्व के लिए बताते हैं कि उसकी करनी-कथनी एक हो, लक्ष्य को पूरा करे, स्वयं अनुशासित हो, श्रम को पूजा माने, जिम्मेदारी उठाए, ग़लतियों को स्वीकार करे और उससे सीखे। यहाँ उन्होंने कलाम साहब के जीवन संघर्षों और कुशल नेतृत्व को रेखांकित किया है। अपनी क्षमताओं पर विश्वास, स्वयं पर विश्वास 'आत्मनिर्भरता' है। स्वावलम्बन का मार्ग महानता की ओर ले जाता है। गाँधी जी कहा करते थे, 'दुखी वही है जो दूसरों पर निर्भर है।' अब्राहम लिंकन स्वावलम्बन से ही अमेरिका के राष्ट्रपति बने थे। उन्होंने ईश्वरचंद विद्यासागर के जीवन का प्रसंग लिखा है जब उन्होंने किसी युवक का सामान उठाया था और कहा था-'तुम देश के भविष्य हो, अपना काम स्वयं करो। अगर अपनी अटैची का बोझ नहीं उठा सकते तो देश की जिम्मेदारी कैसे उठाओगे?'' गिरकर जी ने लिखा है-'जीवन में सफलता ईमानदारी की नींव पर आधारित है।' ईमानदारी का कोई विकल्प नहीं है। स्वामी रामतीर्थ ने कहा है-'यदि आपका हृदय ईमानदारी से भरा है,तो एक शत्रु क्या, सारा संसार आपके सम्मुख हथियार डाल देगा। उनका अगला लेख है-'एकाग्रता सिद्धि का सर्वोत्तम उपाय' न्यूटन, विवेकानन्द के प्रसंगों की चर्चा करते हुए गिरकर जी ने जीवन में एकाग्रता के महत्त्व को समझाया है। उनका लेख 'कर्तव्य पालन' बहुत ही महत्त्वपूर्ण संदेश देता है। बिड़ला जी, सरदार पटेल,महात्मा गाँधी,लाल बहादुर शास्त्री जैसे महान् लोगों के दृष्टान्तों से गिरकर जी ने कर्तव्य पालन के बारे में लिखा है।

'गर्भ संस्कार' इस संग्रह का महत्त्वपूर्ण लेख है। हमारे हिन्दू धर्म में 16 संस्कारों की चर्चा होती है जिसमें 'गर्भ संस्कार' प्रथम है। यजुर्वेद में इस संस्कार के महत्त्व का उल्लेख है। गर्भवती महिला की दिनचर्या, आहार, प्राणायाम, ध्यान, गर्भस्थ शिशु की देखभाल आदि का चिन्तन इसके अन्तर्गत होता है ताकि शिशु स्वस्थ और श्रेष्ठ मन-भाव का हो। व्यावहारिक जीवन की चर्चा करते हुए दीपक गिरकर जी लिखते हैं - 'कामयाब होना है तो बहरा बनो'। इसका आशय यही है कि अपने दिल की सुनो, दुनिया की बातों में मत उलझो। अगला लेख 'महत्त्वाकांक्षा' है जिसका मतलब है, कुछ बड़ा, कुछ नया करने का भाव। महत्त्वाकांक्षी होना हमारा स्वाभाविक गुण है। ऐसा व्यक्ति कुछ बड़ा सोचता है, बड़े के लिए कार्य करता है और स्वयं को बड़ा बना लेता है। यह मानव हृदय की शक्तिशाली अभिलाषा है। गिरकर जी ने इसके गुण-अवगुण दोनों पक्षों की विवेचना की है और संतुलन पर बल दिया है। वे जीवन में 'रचनात्मक दृष्टिकोण' पर बल देते हैं। गीता में लिखा है - समस्या और समाधान साथ-साथ जन्म लेते हैं। गिरकर जी विस्तार से '333 की कहानी' सुनाते हुए रचनात्मक दृष्टिकोण' की व्याख्या करते हैं। ''लगन इंसान के अंदर अपार ऊर्जा भर देती है'' लेख में उन्होंने अनेक उदाहरणों द्वारा 'लगन' के गुणों की चर्चा की है और सफलता का मार्ग दिखाया है। 'संगत का असर' लेख में उन्होंने जीवन में संगति के महत्त्व को बताया है। सीधी सी बात है, अच्छी संगति से मनुष्य का जीवन सुखी रहता है और बुरी संगति से हानि होती रहती है। गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं-'' सठ सुधरहिं सतसंगति पाई, पारस परस कुधात सुहाई।'' अनेक उदाहरणों से संगति के महत्त्व की चर्चा इस लेख में दीपक गिरकर जी ने किया है।

'आत्म संतोष जीवन का सबसे बड़ा धन' लेख संदेश देता है कि संतोषी व्यक्ति हर तरह से सदा सुखी रहता है। यह जीवन के मनोविज्ञान का व्यापक पहलू है। चाणक्य पत्नी की सुंदरता,भोजन और धन को लेकर संतोष करने का उपदेश देते हैं और अध्ययन, दान, जप के लिए सर्वथा असंतुष्ट रहने की सलाह देते हैं। संतोष धारण करने की तरह गिरकर जी 'सकारात्मक सोच' शीर्षक से जीवन में सकारात्मक सोच की व्यापक महत्ता बताते हैं और विविध उदाहरणों से अपने चिन्तन को प्रमाणित करते हैं। हेलेन केलर का प्रसंग आँखें खोलने वाला सकारात्मक चिन्तन का बेहतरीन उदाहरण है। नकारात्मक सोच वाले दुखी रहते हैं और समस्याओं में घिरे रहते हैं। 'सफलता का ताला खोलती है संघर्ष की चाबी' जीवन संघर्ष पर आधारित सुंदर भाव-विचार का लेख है। सारांश यही है - हमारा संघर्ष ही हमें सफलता के शिखर तक पहुँचाता है। कोशिश करने वाला हमेशा सफल होता है। संघर्ष करना,प्रयत्न करते रहना हमारे स्वभाव में होना चाहिए तभी जीवन में सुख-शान्ति हो सकती है। यहाँ भी गिरकर जी ने अनेक लोगों की सफलता के पीछे संघर्ष करने की कथा लिखी है। वैसे ही अगले लेख ''सहनशीलता मानव का दिव्य आभूषण है'' में सहनशील स्वभाव के लाभों की चर्चा हुई है। सहनशीलता एक तपस्या है। यह मानव का उत्कृष्ट गुण है। सहनशील व्यक्ति धैर्य और संयम से काम लेता है, वह अनुशासित होता है और उसे कोई पराजित नहीं कर सकता। दीपक गिरकर जी अपने लेख ''सृजनशीलता का महत्त्व'' में लिखते हैं-'सृजनात्मक व्यक्ति जिज्ञासु, साहसी,दृढ़ निश्चयी, संवेदनशील, दूरदर्शी, कल्पनाशील और भविष्यद्रष्टा होता है। उनमें विरोध सहने की अधिक क्षमता होती है और उनके कार्य मौलिक होते हैं। इस लेख के संदेश पाठकों को चमत्कृत करने वाले हैं। संग्रह के अंतिम लेख ''मानवीय मूल्यों की शिक्षा'' में गिरकर जी ने जीवन में मानवीय मूल्यों पर विवेचनात्मक चिन्तन किया है। आज शिक्षा में ह्रास हुआ है, हमें मानवीय मूल्यों की समझ नहीं है परिणाम स्वरुप समाज में विघटन अधिक है। विस्तार से गिरकर जी ने मानवीय मूल्यों को लेकर चिन्तन किया है और उनके संदेशों को समझने की आवश्यकता है। ''नींव के पत्थर'' गिरकर जी का श्रेष्ठ लेखन है जिसके संदेश मानव जीवन के उत्थान में सहायक होने वाले हैं। उनकी सहज भाषा और संदेशात्मक शैली प्रभावित करने वाली है।

000

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

कभी देर नहीं होती

समीक्षक : गोविन्द सेन

लेखक : आशा पाण्डेय

प्रकाशक : भावना प्रकाशन, नई दिल्ली

गोविन्द सेन
193 राधारमण कॉलोनी, मनावर-454446,
जिला-धार (म.प्र.)
मोबाइल- 9407348703
ईमेल- govindsen2011@gmail.com

"

"हमारी पीढ़ी वो पीढ़ी है जिसने अपने से बड़ों का भी सहा और अब अपने बच्चों का भी सहना पड़ रहा है...।"

"कौन कहता है कि बेटियाँ साथ नहीं छोड़तीं। छोड़ती हैं, बल्कि पूरी तरह छोड़ देती हैं।"

उक्त दोनों उद्धरण आशा पाण्डेय के चौथे कहानी संग्रह 'देर कभी नहीं होती' की 'इंतज़ार' कहानी से लिए गए हैं। यह अपनी बेटी की बेरुख़ी से आहत और टूटी हुई माँ की मर्मस्पर्शी कहानी है।

आशा पाण्डेय स्त्री-सरोकारों से जुड़ी एक समर्थ कहानीकार हैं। सद्य प्रकाशित यह संग्रह इस तथ्य को पुष्ट करता है। उनकी कहानियों में फगुनी, नइका, दुर्गा जैसी ग्रामीण अनपढ़ ग़रीब स्त्रियों के दारुण दुखों, टूटन और उनके जीवट को बख़ूबी व्यक्त किया गया है। इसके साथ ही आशा जी मध्यम वर्ग की शोषित स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को भी अपनी कहानियों में यथार्थपरक ढंग से चित्रित करती हैं।

कहानी के अधिकतर पात्र मेहनतकश ग्रामीण और ग़रीब तबके के हैं। कोई लड़का गाँव से शहर आकर होटल में काम कर रहा है तो कोई छोटे-मोटे मज़दूरी के काम में लगा है। स्त्रियाँ भी झाड़ू, बरतन और कपड़े आदि जैसे काम करके अपना और अपने परिवार का पेट भरने की जुगत में लगी हुई हैं।

ग़रीब और अनपढ़ स्त्री हमेशा छली जाती है। कहानी 'डेढ़ सेर चाँदी' इसी बात को पुष्ट करती है। अक्सर अनुचित सरकारी योजनाओं के शिकार ग़रीब-गुरबे ही होते हैं। जबरन नसबंदी के कारण भग्गू गूँगा हो जाता है। उसकी पत्नी नइका को अपने पति भग्गू का भार ढोना पड़ता है। मुसीबत में उसकी डेढ़ सेर चाँदी भी काम नहीं आती। नइका का भला चाहने का दम भरने वाले चचेरे जेठ-जिठानी ही ज़मीन और बची-खुची रकम को हड़प कर उसे बर्बाद करने में कोई

कसर नहीं छोड़ते।

'इंतज़ार' कहानी में बेटी माँ को छोड़ कर चली जाती है किन्तु 'देर कभी नहीं होती' की बेटी छूटी हुई और अपने पिता द्वारा प्रताड़ित माँ को अपने साथ ले जाने की प्रबल इच्छा जाहिर करती है। कहानी का अंत अत्यंत मर्मस्पर्शी है। उस बेटी के प्रति गर्व के भाव जागते हैं। यह विचलित करने वाला सच है कि एक शराबी पति अपनी पत्नी को उपभोक्ता वस्तु की तरह एक सत्यनारायण की कथा करने वाले बूढ़े को केवल हज़ार रुपये में बेच देता है।

'ढोलकी' कहानी को पढ़ते हुए फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी ठेस की याद आती है। ढोलक बजाने के कारण चेतन का नाम ढोलकी ही पड़ जाता है। ढोलक बजाने का काम मिल जाने से उसकी बेकारी एक हद तक दूर हो जाती है। उसे अपना मन पसंद काम मिल जाता है। ढोलकी कलाकार है और कलाकार भावुक और संवेदनशील होते हैं। उन्हें छोटी-सी बात से भी ठेस लग जाती है। कहानी पढ़कर पाठक जान सकता है कि ढोलकी को किस बात की ठेस लगती है और वह उस पर अपनी प्रतिक्रिया किस तरह व्यक्त करता है। छोटे कलेवर की यह कहानी अत्यंत पठनीय है।

'सम्राट की पोशाक' बेरोज़गार युवक विजय राठोल की कहानी है जो योग्य होने के बावजूद पीछे छूट जाने को अभिशप्त है। हर काल में सामाजिक और आर्थिक रूप से सशक्त लोग हमेशा आगे रहे हैं। कहानी में अच्छा रूपक बाँधा गया है। इस कहानी में उच्च शिक्षा की दयनीय दशा और विसंगतियों की भी एक झलक मिलती है।

कहानी 'नेह बंध' में दुर्गा अपनी गाय लाली के साथ रहती है। दोनों के बीच अटूट प्रेम है। वह अपनी लाली को छोड़कर अपने बेटे के साथ शहर नहीं जाना चाहती है। पशु भी जब मानव के प्रेम के बंधन में बँध जाते हैं तो विछोह बर्दाश्त नहीं कर पाते।

'दुनिया चाहे कितनी भी भरी हो, पर अपना दिल खाली हो तो सब ओर खाली ही खाली लगता है।' यह 'खोज' कहानी का पहला वाक्य है जो पाठक को अपने साथ अनायास खींच ले जाता है। इसका मुख्य पात्र होटल में रोज़ बारह घंटे काम करने वाला छोटू है। उसके नाज़ुक कन्धों पर अपनी अर्ध विक्षिप्त और मंदबुद्धि माँ की देखभाल का भी जिम्मा है। होटल से वह अपने और अपनी माँ के लिए दो खुराक खाना लेकर घर आता है। भटकती माँ को बाहर से घर लाता है। उसके हाथ धुलवाकर खाना खिलाता है। यह कहानी तलछट के जीवन को जीते बेटे और माँ के मजबूत संबंधों को पूरी मार्मिकता के साथ प्रस्तुत करती है।

'इतनी-सी बात' मध्यमवर्गीय स्त्री सुकेशिनी की कहानी है। इस कहानी में मर्दवादी समाज में किस तरह एक स्त्री के अस्तित्व को बौना बना दिया जाता है, इसका बख़ूबी चित्रण है। उसे अपने पति और सास की बेमतलब धौंस और अमानवीय व्यवहार को सहना पड़ता है। उस पर ढेरों अपेक्षाओं और जिम्मेदारियों का बोझ लाद दिया जाता है। कोई भी उसके मन की व्यथा को समझ नहीं पाता। अंत में स्वाभिमानी सुकेशिनी अपना एक रास्ता तलाश ही लेती है।

'एक कतरा हँसी' कहानी में क्षेत्रवाद की समस्या उठाई गई है। मुंबई वासियों में यूपी, बिहार जैसे प्रदेशों से आने वाले मज़दूरों और कामगारों के प्रति अपार घृणा का भाव है। उनका आरोप है कि ये लोग उनकी रोज़ी-रोटी छीनते हैं, उनके पेट पर लात मारते हैं। इसी समस्या के इर्द-गिर्द इस कहानी को कुशलता से बुना गया है। रोज़ी-रोटी की तलाश में कोई लड़का अपने ही देश के किसी दूसरे प्रदेश में नहीं जा सकता है? परोक्ष रूप से यह कहानी बेरोज़गारी के सवाल को भी उठाती है।

करोना के दौरान गरीबों ने अंतहीन दुःख भोगे हैं। कहानी 'भरोसा' का बूढ़ा घरों में रंगाई-पुताई का काम करता है जबकि उसकी घरवाली दूसरे घरों में झाड़ू, बरतन, कपड़े का काम किया करती थी। करोना में उनका काम बंद हो जाता है। जवान बेटा भी कोरोना की भेंट चढ़ जाता है। पैसे की किल्लत है। बैंक से पैसे भी नहीं निकल पा रहे हैं। कोरोना में अनपढ़, ग़रीब मज़दूरों और बूढ़ों ने सबसे अधिक कष्ट उठाया है।

'हारा हुआ राजा' युद्ध के कारण परिवार के छूट जाने की वैश्विक कहानी है। इसमें उस शख्स के दर्द को शिद्दत से उकेरा गया है जिसको रंगून में अपनी पत्नी और दूध पीते बच्चे को छोड़कर भारत आना पड़ता है। फिर वह वापस रंगून नहीं जा पाता। वह बच्चों को कहानियाँ सुनाकर ख़ुद को बहलाता रहता है। कहानी हृदय में एक टीस छोड़ जाती है। युद्ध से मानवता का कभी भला नहीं हुआ।

'ऊँचा पीढ़ा' में फगुनी अपने भाई और भौजाई को ऊँचा पीढ़ा देकर विपरीत स्थितियों को अपने अनुकूल ढाल लेती है। वह अपनी माँ से कहती है –'माँ, दुश्मन को ऊँचा पीढ़ा देना चाहिए...कभी तो पसीजेगा वह। काम कर लेने से मेरा क्या घट जाएगा?' फगुनी की जिजीविषा और समझदारी लाजवाब है।

'सूखता मौसम मुरझाते फूल' में पुरुष को धोखा देने वाली नायिका है। स्त्री धोखा खाती ही नहीं, कभी-कभी वह धोखा देती भी है। इस कहानी में अदिति, सार्थ जैन को अपने स्वार्थ के लिए धोखा देने में नहीं हिचकती है।

समीक्ष्य संग्रह 'कभी देर नहीं होती' में विविध रंगों की कुल तेरह कहानियाँ हैं। एक-दो कहानी को छोड़कर हर कहानी में स्त्री प्रमुखता से मौजूद है। कहीं वह स्त्री नितांत ग्रामीण और अनपढ़ है तो कहीं शहरी और पढ़ी-लिखी।

समीक्ष्य कहानी संग्रह के ज़रिए आशा पांडेय ने दुनिया की इस आधी आबादी की मनोव्यथा, द्वन्द्व, आशा-निराशा, बेबसी, बेचैनी, आकांक्षा, शोषण और जिजीविषा को वाणी देने का सफल प्रयास किया है। आर्थिक रूप से विपन्न गाँव और शहर के जीवन में रची-बसी स्त्री और निम्न वर्ग के पात्रों के असीम कष्टों से लेखिका भलीभाँति परिचित हैं। इसीलिए उनका चित्रण सजीव, विश्वसनीय और मर्मस्पर्शी है।

ये कहानियाँ स्त्री और दबे-कुचले वर्ग के लिए मनुष्यता और समानता की माँग करती हैं। निश्चित ही ये कहानियाँ पाठकों को प्रभावित करेंगी।

000

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

किरकिरी

समीक्षक : सृष्टि उपाध्याय

लेखक : ममता सिंह

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

सृष्टि उपाध्याय
फ्लैट नं 305, मालव कुंज, ए ब्लाक,
संवाद नगर, इंदौर (म.प्र.) 452001
मोबाइल- 9407348703
ईमेल- shrishtiupadhyay0304@gmail.com

"किरकिरी" ममता सिंह का नया कहानी संग्रह है, जिसमें दस कहानियों का संकलन है। अलग अलग तरह का आस्वाद लिए इन कहानियों में इंसान की बेबसी और लाचारी के चित्रण के साथ ही साथ प्रेम की तरल आकांक्षाओं का संगीत भी है। किसी भी कृति की पूर्णता इस बात से मानी जाती है कि संग्रह की कौन सी कहानी ने पाठक के सामने कैसे-कैसे प्रश्नचिह्न खड़े किए और पाठक को सोचने पर विवश किया।

संग्रह की पहली कहानी - "हथेली पर पिघलता चाँद" कार्यस्थल पर होने वाली कूटनीति का चित्रण है। जैसे-जैसे कहानी आगे बढ़ती है, अल्ताफ वानी के साथ-साथ पढ़ने वाले के मन में भी एक छटपटाहट चलने लगती है। जी जान से नाटक की तैयारी करवाने के बाद प्रिंसिपल साहब का अल्ताफ वानी को यह कहना कि तुम्हारी जगह अब चौबे जी जाएँगे - मन को टीसता है। किसी भी संस्थान में इस तरह की विडंबना का होना कोई नई बात नहीं है, कौन कब किसको पीछे धकेलकर उसके परिश्रम का श्रेय अपने नाम कर ले कोई नही जान सकता। अल्ताफ वानी यह समझ गए है और गहरी पीड़ा में हैं। दिखाई देने वाले दर्द कम तकलीफ देते हैं, पर उस दर्द की दवा कोई कैसे करे जो मन के अंदर छिपे हैं। यह वानी के साथ-साथ पाठक भी शिद्दत से महसूस करते हैं। "हथेली पर पिघलता चाँद" कड़वे सच से रूबरू कराती है और पाठक के सामने एक प्रश्नचिह्न छोड़ जाती है।

आजकल के युवा जहाँ एक ओर जागरूकता के मुहाने पर सबसे आगे की कतार में खड़े हैं, वहीं दूसरी ओर महत्त्वकांक्षा के जाल में इस कदर उलझे हैं कि अपने आसपास की ज़मीन को भूल बैठे हैं। कॅरियर की चाह के चलते वे दूसरे देश में पैर रखने को मजबूर भी है और भ्रमित भी। कुछ युवाओं के लिए विदेश जाकर पढ़ना एक अच्छे कॅरियर की चाह है तो कुछ के लिए पैसा बड़ी मजबूरी है। यहाँ अपने देश से विदेश पढ़ाई के मामले में सस्ता ज़रूर है मगर किस कीमत पर? सपनों के पंख कब झुलस जाएँ नहीं पता। कभी कोई प्राकृतिक आपदा इन छात्रों के भविष्य को अधर में छोड़ देती है तो कभी युद्ध की विभीषिका। यह इस संग्रह की कहानी है "बंकर" जिसकी नायिका है प्राची। कहानी उन छात्र-छात्राओं की है जो यूक्रेन में पढ़ाई करने गए हैं पर अचानक रूस के हमले की वजह से अब यूक्रेन के एक शहर में फँस गए हैं। लेखिका ने युद्ध के अनुभव को किसी चित्रपट के दृश्य की तरह सिलसिलेवार इस तरीके से गूँथा कि पाठक की रोचकता कहानी के अंतिम पृष्ठ तक बनी रहती है ..।

"दहकते पलाश की छाँव में" एक ऐसे प्रेमी जोड़े की कहानी है जहाँ उम्र के फासले को लेकर अनेक तरह की दुष्चिंता नायक के मन में है और यह मानसिक विचलन तब और घनीभूत रूप से गहराने लगता है जब उसके साथ के दोस्त शैला को उसके साथ पार्क में देखने पर तंज स्वर में कहते हैं "अरे ये कौन तुम्हारी बेटी साथ रहने आ गई क्या", इंसान के तयशुदा पैमाने से दीक्षित बाबू क्षुब्ध हैं। हर इंसान के मन में एक डार्करूम होता है जहाँ विचारों की गहन उथल-पुथल चलती रहती है और समय समय पर उन विचारों की जीन कसना भी अत्यंत ज़रूरी हो जाता है, "दहकते पलाश की छाँव में" यह दो लोगों के संग साथ के प्रेम की वो दास्तां है जहाँ उम्र का फासला कोई मायने नहीं रखता, मौन प्रेम की हृदय स्पर्शी कहानी क्योंकि मुखर होने पर प्रेम अपनी पवित्रता खो देता है।

वक्त की चाक पर रिसती इस संग्रह की सबसे मार्मिक और नाज़ुक कहानी है "तूझी मी वाट पाहते" कहानी के अंत तक आते आते राघव से हम अपने घर के सदस्य की तरह जुड़ जाते हैं, कहानी की नायिका की तरह राघव के वापस आने का इंतज़ार मुझे भी है। क्या कोई भी पाठक राघव को कभी भूल सकेगा?

संग्रह की अगली कहानी "मन का सिस्टम शट-डाउन नहीं होता" में नायक देबू अतीत के उन गलियारों में भटक रहा है जब वह बच्चा था। पिता कहीं दूर अब्रॉड में है, माँ घर और ऑफ़िस के बीच में पेंडुलम की तरह झूल रही है। देबू को उसकी माँ रोज़ क्रेच में छोड़कर अपने दफ्तर जाती है। देबू के लिए वो क्रैच (आईचा ठिकाना) न होकर एक कैद है, और उस ठिकाने की

मालकिन टीवी पर दिखाए गए कार्टून चैनल की चुड़ैल। देबू ने तो चुड़ैल पात्र के नाम भी याद कर रखे हैं, जब-जब आई डाँटती-चिल्लाती है तो देबू को लगता है कि आई उसी कार्टून चरित्र - एनाबेला और मोंजिलना जैसे चुड़ैल के पात्र में तब्दील होती जा रही है।

संग्रह की शीर्षक कहानी "किरकिरी" गैस एजेंसी की सर्वेसर्वा शीतल मैम के महत्त्वकांक्षा की कहानी है। जहाँ वे केवल अपना हित साधने में लगी है, महत्त्वकांक्षा पालना जीवन में आगे बढ़ने के लिए जरूरी है मगर जब आपकी महत्वाकांक्षाएं बेलगाम हो जाए तो अंत में आँख के सामने रंगीनियों के बादल नहीं, रेत के बगूले उठते हैं और उन बगूलों से आँख में 'किरकिरी' के जो बवंडर उठते हैं उसके सामने कुछ नज़र नहीं आता, बस चारो और धुँआ ही धुँआ।

जब एक जानी मानी अभिनेत्री ने सोशल मीडिया पर अपने अवसाद में होने का ज़िक्र किया तो हम में से कईयों को यकीन ही नहीं हुआ। कुछ हतप्रभ हुए कि अवसाद के बारे में भी क्या इस तरह से बात होनी चाहिए? लेखिका ने इसी मुद्दे को कहानी "चाँदी का वर्क" में उठाया है। क्या हम कभी अपने आसपास के जानने वालों को, अपने साथी, मित्र या किसी ख़ास दोस्त के मनोभाव को समझ पाते हैं कि वह किस स्थिति से गुज़र रहे हैं? अवसाद से घिरा व्यक्ति कशमकश की उस अवस्था में घिरा रहता है जहाँ हाँ और न की स्थिति आवाजाही करती रहती है। कहानी की नायिका नैना अतीत से नाख़ुश है और वर्तमान भी उसे मोहित नहीं कर पा रहा है। डॉक्टर फ़ज़ल की दोस्ती ने नैना के अवसाद को काफी हद तक कम कर दिया। बढ़ते घटना क्रम के चलते जब नैना डॉक्टर फ़ज़ल के घर पंहुचती है तो नैना के साथ-साथ पाठक भी हतप्रभ हो उठता है। बिलखती नैना के साथ-साथ पाठक की आँख भी नम हो उठेगी।

इन सबके साथ "अधजगी आँखों की गुफ्तगू" हवेली के अंदर होने वाली सूखे पड़ गए रिश्तों की कहानी है और "ये दाग़-दाग़ उजाला" परिस्थितियों से जूझती एक माँ और उसके बेटे के निरंतर संघर्ष की कहानी है।

कहानी का फ्लेवर थोड़ा

संग्रह की अगली कहानी "स्कूबा डाइविंग" उस लड़की की कहानी है जिसे पानी से बड़ा प्यार है, सभी उसे पानी का कीड़ा कहते हैं। सपने को सच करने के लिये सपने देखना ज़रूरी होता है, इसीलिए नायिका नींद में सपने ही नहीं देखती बल्कि उन सपनों के हाट से रोज़ ही नए-नए सपने भी खरीदती है।

नियति के अंदाज़ भी बड़े अनोखे हैं, जब तब आई नायिका के सपने पर विराम लगाने की असफल कोशिश यह कहते हुए करती है कि मछुआरे की बेटी का काम है मछलियाँ बेचना, नायिका आई की बात सुनती है मगर अगले ही पल दोगुने उत्साह से अपने सपने को पूरा करने की कोशिश में हर संभव प्रयास में जुट जाती है। और उसी क्रम में एक रेस्तरां में वेटर की नौकरी भी करती है, काजू कुतरते हुए मैनेजर को अपने इस जवाब से लाजबाव कर देती है। (इस गाँव में रहने वाली हर लड़की कोई भी काम पहली ही बार करेगी न) नौकरी तुंरत मिल जाती है।

समाज ने स्त्री और पुरुष को लेकर जो खाँचे बनाये है वो बेहद जटिल हैं। और इन जटिलताओं को कुछ और ही जटिल बनाने वाले मल्हार जैसे पात्र हैं जो अपनी पूरी कुटिलता के साथ हर कार्यक्षेत्र में मौजूद हैं, हर कार्यक्षेत्र की अपनी एक अलग दुनिया दारी है, जहाँ पर रहस्य है, रोमांच है। प्रकृति में शायद सुरक्षा जैसी चीज़ का अस्तित्व नहीं है, कब क्या घटित हो जाय कौन जाने तब इंस्ट्रक्टर का यह कहना मछली पकड़ने का काम भी औरतों का नहीं मैडम, किसी दिन तेज़ लहर आएगी तो सीधा ऊपर जाओगी। लड़कियाँ स्कूबा डाइविंग नहीं कर सकती गाइड नहीं बन सकती यह मानक अब इंस्ट्रक्टर तय करेगा? यह बात नायिका को हरगिज मंज़ूर नहीं। जब कहानी की नायिका मैनेजर से कहती हैं मुझे स्कूबा डाइविंग में गाइड बनना है, मैनेजर जैसे आसमान से गिर पड़ा हो -तंजिया तरीके से अपनी गर्दन को इधर उधर करने के बाद उपदेशत्माक स्वर में नायिका को यह कहना कि कपास बेचने जाओ, केले के पत्ते तोड़ो, तुअर दाल निकालो। कहानी दुनियादारी के उस जहाँ की है जहाँ स्त्रियों का प्रवेश न के बराबर है, पानी के भीतर भी एक संसार है जो महिलाओं के लिए नए द्वार खोलने को तत्पर है।

एक नए फ्लेवर की कहानी उन लड़कियों के लिए जो सोचती हैं कि आगे बढ़ना मुश्किल है, हालात से लड़ना मुश्किल है। यह कहानी उस धारणा को खंडित करती है जब हम जकड़ जाते हैं।

उस हालात के साथ कि मैं इस कार्य के लिए नहीं बनी, कहानी इस वाक्य को बल प्रदान करती है। (कुछ मुश्किल हल करने के लिये कुछ मुश्किल चुन लेना चाहिए)

डर, क्रोध, संघर्ष और आशा का दामन थामे स्कूबा उस नायिका की कहानी है जिसके सपने तो हैं पानी की सतह और अतल गहराई में डुबकी लगाना, मगर मन में आंकक्षा का महासागर ठाठें मार रहा है। यह कहानी है ज़िद की। अपने उस सपने को पूरा करने की ज़िद जहाँ से वो अपने लिए ही नहीं, आगे आने वाली हर उस लड़की के लिए राह खोलती है जो भले समाज के बनाये खाँचों से मजबूर है, मगर दिल से मज़बूत है।

समाज के बनाये ढाँचे को तोड़ती स्कूबा डाइविंग नायिका के अदम्य जिजीविषा की कहानी है, कहानी को बहुआयामी रूप में देखा जा सकता है जिसका संदेश बस एक ही है कि हम सकारात्मक सोच से ही अपनी मंज़िल को पा सकते हैं जैसे कि नायिका ने कर दिखाया। स्कूबा डाइविंग सुंदर शैली में लिखी गई भावपूर्ण कहानी है जो लंबे समय तक हम सबकी यादों में तैरती रहेगी।

कुछ किताबें आपकी सहयात्री होती हैं और उन कहानियों में बसे पात्र आपके अपने जीवन से इतने मिलते जुलते हैं कि वो कहानी आपकी अपनी ही हो जाती है, बिल्कुल अपने जीवन की तरह। संग्रह "किरकिरी" में ममता सिंह की कहानियों के विविध रंग देखने को मिलेंगे। जीवन की अद्वितीय अन्विति से परिपूर्ण किरकिरी पाठकों के मन में लंबे समय तक विचरता रहेगी।

000

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

करवट

समीक्षक : रमेश शर्मा

लेखक : संजय कुमार सिंह

प्रकाशक : न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली

रमेश शर्मा
92, श्रीकुंज, बोईरदादर
रायगढ़ (छत्तीसगढ़) 496001
मोबाइल- 7722975017
ईमेल- rameshbaba.2010@gmail.com

'करवट' शीर्षक से संजय कुमार सिंह की कहानियों का नया संग्रह हाल ही में प्रकाशित होकर आया है। इस संग्रह में 16 कहानियाँ संग्रहित हैं। समकालीन कहानी लेखन में सक्रियता की बात करें तो संजय कुमार सिंह सक्रिय नज़र आते हैं और उनकी कहानियाँ विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में हमें पढ़ने को मिल जाती हैं। संजय कुमार सिंह की कहानियों को लेकर बात करनी हो, तो हमें समाज के भीतर उन घटनाओं की पड़ताल करनी होगी जो मूर्त और अमूर्त दोनों ही रूपों में घटित हो रही हैं और उनके घटित होने से समाज और मनुष्य दोनों का ही एक समान गति से क्षरण भी हो रहा है।

करवट संग्रह की कहानियाँ भी उसी क्षरण को एक तरह से व्याख्यायित करती हैं और मनुष्य को आगाह करने का काम दरअसल वहीं से शुरू होता है। कहानीकार का काम अपनी कहानियों के माध्यम से विचलन की राह पर चल पड़े मनुष्य और समाज की भीतरी दुनिया में विचारों को संप्रेषित करना भर है। इस काम के निर्वहन में उनकी कहानियाँ एक सजग भूमिका निभाती हुई प्रतीत होती हैं। कहानियों के माध्यम से विचारों को संप्रेषित करने के उपरान्त क्षरण कितना रूकता है, इसका आकलन करना कहानियों का या कहानीकार का काम नहीं है। संजय कुमार सिंह अपनी कहानियों के माध्यम से ऐसा कोई दावा भी नहीं करते। वे अपना लेखकीय धर्म निभाकर अपनी बातों को कहानियों के माध्यम से बड़ी साफगोई से पाठकों के समक्ष जरूर रख जाते हैं।

संजय की कुछ कहानियाँ मनुष्य को नए सिरे से जीवन को तलाशने और उसे रचनात्मक बनाने का सन्देश देती हुई भी नज़र आती हैं। इनमें 'वसंत का इन्तज़ार' एक ऐसी ही कहानी है जिसमें स्त्री पुरुष के रिश्तों के बीच बीमार देह के बाधक बन जाने का ज़िक्र केंद्र में है। इस कहानी को पढ़ते हुए प्रथम दृष्टया ऐसा लग सकता है कि कहानी देह से परे जाने की बात नहीं कर रही बल्कि स्त्री पुरुष के बीच स्वस्थ रिश्तों के लिए देह को ज़रूरी बता रही है, पर देह से परे न जाकर भी देह से परे जाने और रिश्तों को रचनात्मक बना लेने की अपील इस कहानी के भीतर

प्रतिध्वनित होती है। यही इस कहानी की विशेषता है।

संग्रह की कहानी 'गांधी का स्वप्न भंग' की बात करें तो देश के वर्तमान राजनीतिक हालात का एक विद्रूप दृश्य हमारी आँखों के सामने आ खड़ा होता है। कहानी एक कोलाज के माध्यम से गांधी जी की आँखों से देखे गए सपनों के ज़रिये हमसे संवाद करती है। गांधी अगर आज सचमुच जीवित होते तो उन्हें वर्तमान हालात की वजह से किस तरह के विचित्र अनुभवों से गुजरना पड़ता, किस तरह आज की राजनैतिक परिस्थितियों से उनका मोहभंग होता, दरअसल उन्हीं दृश्यों को यह कहानी सामने रखती है और हमारे भीतर एक अजीब बेचैनी उत्पन्न करने लग जाती है। इसी बेचैनी को इस कहानी का निकष कहा जाए तो उचित होगा।

संजय की कहानियाँ लम्बाई में छोटी ज़रूर हैं पर कई जगह उनका कथ्य बड़ा नज़र आता है। 'एक और हिटलर' नामक कहानी पढ़ते हुए सत्ता के शीर्ष पर बैठे, युद्ध के लिए आतुर मनुष्य की बर्बरता का चरित्र पाठकों को विचलित करता है, वहीं विक्टर जोसेफ और यूलिया जैसे नवविवाहित दंपत्ति का उत्साह जीवन के प्रति आशान्वित भी करता है। जब एक देश में किसी दूसरे देश का आक्रमण हुआ हो, देश में चारों तरफ हाहाकार मचा हो, उस दरमियान ही विक्टर जोसेफ और यूलिया अपने वैवाहिक जीवन की शुरूआत कर रहे होते हैं। कहानी कोई अतिश्योक्ति नहीं रचती बल्कि कहानी यह बताने की कोशिश करती है कि जीवन की सम्भावना किसी बिषम परिस्थिति में भी ख़त्म नहीं हो जाती, बल्कि जीवन हर हाल में हिंसा और बर्बरता से ऊपर है। अंतत: इस नवदंपत्ति की मौत बर्बरता की वजह से ज़रूर हो जाती है पर कहानी में अकेली बची रह गयी यूलिया के संवाद तानाशाह कमांडर को इतने विचलित कर जाते हैं कि उसकी देह को भोगने से पहले ही वह उसकी हत्या कर देता है। जीवन मूल्यों और विचारों के आगे यह एक बर्बर मनुष्य की मानसिक पराजय की कहानी है जो अपना आपा खोकर यूलिया की हत्या कर देता है। कहानी के कथ्य का कैनवास बड़ा है जो पाठकों पर अपना प्रभाव छोड़ जाता है।

संग्रह की एक कहानी है 'काले बिल्ले वाले उकाब और गुलाब के फूल', यह कहानी अधिकारी और उसके मातहतों के बीच प्रशासनिक व्यवस्था से उभरे मतभेद और उनके मध्य बनते बिगड़ते रिश्तों की कथा है। रामजीवन काला बिल्ला लगाकर अपने अधिकारी एम डी प्रसाद के विरोध में जब आन्दोलन पर उतर आता है तो एक दिन के लिए रामजीवन को अधिकारी अपना चार्ज सौंप देते हैं। प्रशासन की शक्ति रामजीवन से वही आचरण करवाती है जिसके विरोध में अपने अधिकारी के विरुद्ध वह काला बिल्ला लगाकर प्रदर्शन किया हुआ होता है। वह संविदा नियुक्ति में धांधली तक कर बैठता है और फिर निलंबित भी हो जाता है। कथा मनुष्य के मूल आचरण को दर्शाती है कि शक्ति की जद में आकर वह किस तरह विचलन की राह पकड़ लेता है। अंतत: अधिकारी रामजीवन के प्रति सख्त होते हुए भी उसे माफ़ कर देते हैं। अधिकारी के आचरण की इस तरलता को बाग़ में खिले गुलाब के फूलों से जोड़ कर कहानीकार ने मानवीय मूल्यों के प्रति पाठकों को आकर्षित होने का एक तरह से आग्रह किया है जो सामयिक लगता है।

संग्रह की कहानी 'सपने का सफ़र' भी सफ़दर सिंह और कजरी के बहाने सत्ता के उसी अस्वीकार्य चरित्र को उठाती है जो हर मनुष्य के जीवन के सपनों को बाधित करने का काम करती हुई हमेशा नज़र आती है।

संजय कुमार सिंह की कहानियाँ मूलत: आम जन जीवन के अनुभवों से जुड़े बिषयों पर ही केन्द्रित हैं। इन कहानियों में मनुष्य जीवन में घुले मिले राग द्वेष हैं, जीवन मूल्यों का क्षरण है, मनुष्य की बेचारगी है और उसके संघर्ष भी दृश्यमान हैं। इन कहानियों में शिल्प सौन्दर्य की सघनता या किस्सागोई की सघन बुनावट की किंचित कमी का एहसास भले ही पाठकों को कहीं कहीं हो पर कहानियाँ छोटी होते हुए भी अपना प्रभाव छोड़ती ज़रूर हैं।

कहानीकार ने संग्रह का नामकरण 'करवट' शीर्षक से ज़रूर किया है पर इस शीर्षक से कोई कहानी इस संग्रह में शामिल नहीं है। इसके पीछे यह कारण हो सकता है कि कहानीकार बदलते समय और मनुष्य जीवन की गतिशीलता को प्रक्षेपित करने का प्रयास करते हुए दिखाई पड़ते हैं। बदलते समय के साथ जीवन जिस रूप में करवटें ले रहा है उसे दिखाने की कोशिश नकबेसर कागा ले भागा, कल्प कथा, एक्स कलाकार, लिंक, आप्तलोक की तलाश, घोड़ा मजिस्ट्रेट, दु:ख का चिथड़ा, एक कैदी से मुलाकात और जेलर की चाय, एक सफ़र का दु:खद अंत, घर का पता, ब्लेकमेल जैसी सभी कहानियों में हुई है जो संग्रह के शीर्षक को जस्टिफाई करती है।

घोड़ा मजिस्ट्रेट कहानी स्त्री और पुरुष के बीच प्रेम को केंद्र में रखकर उसे अलग अलग नज़रिए से पेश करती है। प्रेम की शर्तें नहीं होतीं, प्रेम स्वतंत्र चेतना से जुड़ा विषय है, जहाँ विवेक का होना भी उतना ही ज़रूरी है जितना कि भावनाओं का बहाव। भावनाओं पर विवेक का नियंत्रण न हो तो प्रेम कई बार आदमी को आत्महंता बना देता है। प्रेम में एकतरफा डूबे मनुष्य की निराशा कई बार उसे आत्महत्या तक भी ले जा सकती है जैसा कि इस कहानी में होता है। कहानी में लिली और आकाश के माध्यम से प्रेम में एकतरफा डूबे मनुष्य के भीतर विवेक को जगाने की कोशिश हुई है जो कहानी के प्रभाव को बढ़ाती है। प्रेम में एकतरफा डूबे मनुष्य को एक तरह से कथाकार यहाँ एक मनोवैज्ञानिक निदान की ओर भी ले जाते हैं, जहाँ उसे संभलने का रास्ता मिल सके।

संग्रह में चर्चा योग्य अन्य बहुत सी कहानियाँ हैं जो पाठकों को प्रभावित कर सकती हैं। इसके लिए इस संग्रह को पढ़ा जाना आवश्यक है।

करवट संग्रह के माध्यम से कथाकार संजय कुमार सिंह पाठकों के मध्य कहानी के प्रभाव को स्थापित करने में सफल हुए हैं, फिलहाल यह बात तो इस संग्रह की कहानियों को लेकर कही ही जा सकती है।

000

पुस्तक समीक्षा

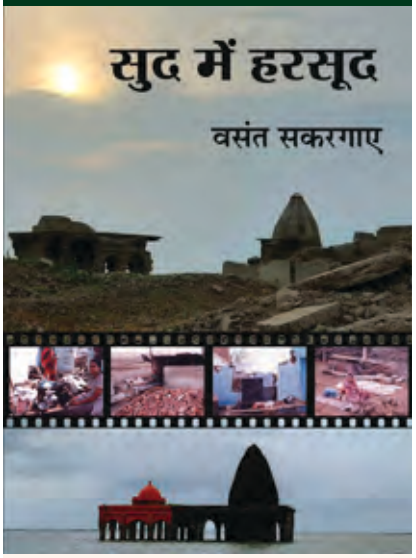

(संस्मरण)

सुद में हरसूद

समीक्षक : अजय बोकिल

लेखक : वसंत सकरगाए

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल - 9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

'सुद में हरसूद' सशक्त कवि वसंत सकरगाए का अपनी लीला स्थली हरसूद की स्मृतियों का अनूठा और रंजक आख्यान है। वसंत सकरगाए की इस कृति में 60-70 के दशक का हरसूद शब्द-शब्द जीता महसूस होता है। यह पुस्तक दो भागों में है। पहले हिस्से में कवि की आँखों से देखा गया हरसूद है तो दूसरे हिस्से में गल्प और क़िस्सों के रूप वो धड़कता, खलबलाता वो हरसूद है, जिसका अपना अलग चरित्र है। वो चरित्र जो शायद हिंदुस्तान के किसी भी गाँव का हो सकता है। उसमें विचरते पात्र किसी भी ग्रामीण संस्कृति के हो सकते हैं। बस, उन्हें चीन्हने की गरज है और यह काम वसंत सकरगाए की पैनी नज़र बहुत बारीकी और रोचकता से करती है।

वंसत एक बेहतरीन कवि हैं और उनके पास दमदार भाषा है, लेकिन वो गद्य भी उतनी ताक़त और रवानी के साथ लिखते हैं, यह 'सुद में हरसूद' से पता चलता है। ये वो क़िस्से हैं, जो उन्होंने अपने बचपन और युवावस्था के दौरान सुने, महसूसे और शायद जीये भी हैं। इन क़िस्सों से गुज़रने पर पता चलता है कि नर्मदा हरसूद नामक एक ईंट पत्थरों का शहर ही नहीं डूबा, एक जीता जागता सांस्कृतिक ईको सिस्टम भी हमेशा के लिए दफ़न हो गया है। एक शहर के तौर पर नया हरसूद बसे हुए भी अब करीब 19 साल हो गए हैं। 2004 के बाद वहाँ जन्मी पीढ़ी अब वोट देने के काबिल हो चुकी है, लेकिन जलमग्न मूल हरसूद की वो यादें, वो बेबाक और बेलौस ज़िंदगी अब शायद कभी लौटकर नहीं आएगी। वैसे भी नए बसे शहरों का चरित्र भी प्राय: यकसां और अमूर्त सा होता है। क्योंकि ये शहर अब स्थानीय आबो हवा और गारे मिट्टी से कम आयातित सीमेंट कांक्रीटों से ज्यादा बनते हैं। इन शहरों में भी लोग रहते हैं, लेकिन लोगों में शहर शायद ही रहता है। विस्मृत हरसूद की कहानी इन दो पंक्तियों में समाई लगती है- दिल्लगी ऐसी कि दिल का वो हाल हो, जो न हो, तो दिल को मलाल हो।'

बेशक दिल को मलाल तो होता ही है। क्योंकि जितने अफलातून चरित्र इस पुस्तक में हैं, वो हमारे आसपास हर कहीं हैं। हमे वो बाहरी चश्मे से नहीं दिखते। मसलन हरसूद के नगर सेठ गोपाल सेठ हों और सेठजी को सबक सिखाने वाला सोनू पानवाला हो, सरकारी हाई स्कूल में हिंदी के मास्साब हो या फिर विज्ञान के शिक्षक श्रीवास्तव सर तथा दोनों के बीच भाषा और विज्ञान में अंर्तसम्बन्धों के बहाने श्रेष्ठता की बहस हो अथवा हरसूद के बंदों की क़िस्सागोई हो या फिर गाँव के कर्मकांडी और घोर रूढ़िवादी पंडितजी हों, हरसूद के (बदनाम) डेली अप डाउनर हों अथवा अप डाउनरों का गैंग चलाने वाले तथा गाँव के अकड़ू थानेदार को जानलेवा सबक सिखाने वाले वि सर हों, सब जीते जागते पात्र हैं। पाठक को उनके साथ एकाकार कर देना लेखक की ख़ूबी है। कुछ क़िस्से पढ़ते समय लगता ही नहीं कि आप को अब ख़क जाना चाहिए। 'चबलेल आम और एक बारात' तो गाँव के बस ऑपरेटर और 'प्रोफेशनल बारातियों' का अद्भुत क़िस्सा है।

हरसूद क्यों डूबा, इसका तकनीकी कारण भले ही आधुनिक विकास की चाहत नर्मदा बाँध हो, लेकिन लोकाख्यान में इसकी वजह बंदरों का अभिशाप है। क्योंकि हरसूद मनुष्यों के साथ वहाँ के उद्दंड बंदरों का भी घर था। वसंत बताते हैं कि इन बंदरों के उत्पात से परेशान गाँव वासियों ने बाहर से एक बंदर पकड़ने वाले को बुलाया, जिसने सैंकड़ों बंदरों को पिंजरे में बंद कर ऋषिकेश भिजवा दिया। बंदर तो चले गए, लेकिन साथ अपना 'वानर चरित्र' भी लेते गए। गहराई से देखें तो हर इंसान के भीतर कहीं एक वानर छिपा रहता है। एक सज्ञान वानर। यही वानर 'सुद' में चलती ज़िंदगी को हंगामों से सराबोर करता है। हरसूदवासियों की मान्यता है कि बंदर इस शहर से बेदखल क्या हुए, मानों उछलती- कूदती और अपने में अलमस्त ज़िंदगी की आत्मा भी शहर से निष्कासित हो गई। हरसूद की असल त्रासदी यही है, जिसे वसंत सकरगाए ने एक चलचित्र की तरह रचा है, पुनर्जीवित किया है। पुस्तक नर्मदा आंदोलन की पुरोधा रही मेधा पाटकर को समर्पित है।

000

अजय बोकिल
ई - 18, 45 बंगले
नॉर्थ टी. टी. नगर
भोपाल 462003 मप्र
मोबाइल- 9893699939
ईमेल- ajaybokil@gmail.com

पुस्तक समीक्षा

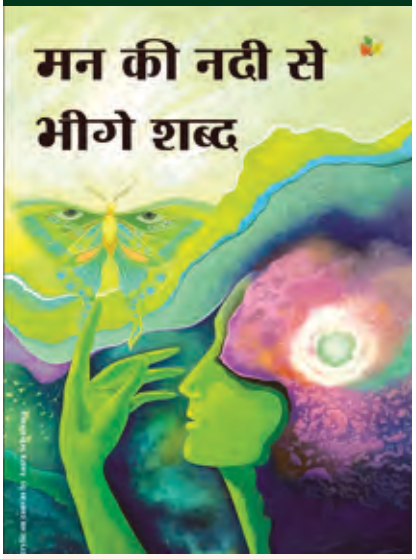

(कविता संग्रह)

मन की नदी से भीगे शब्द

समीक्षक : ममता त्यागी

लेखक : रेखा भाटिया

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल - 9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

रेखा भाटिया के दूसरे काव्य संग्रह 'मन की नदी से भीगे' का भाव पक्ष एवं कला पक्ष दोनों सशक्त हैं। एक स्त्री और वह भी प्रवासी पंछी, इनकी कविताओं में यह यात्रा स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। ज़िंदगी के सफ़र के विभिन्न आयामों को छूती इनकी कविताएँ भावों की नदी के प्रवाह के साथ बहती रहती हैं। इनकी कविताओं में कहीं सरल जीवन दर्शन है, कहीं प्रेम की स्वीकारोक्ति। कहीं दर्द अपनी चरम सीमा पर है तो कहीं उमंग और हौसले का आग़ाज़ भी है। प्रकृति से इनका अक्षुण्ण जुड़ाव इनकी कविताओं में परिलक्षित होता है। इनकी कविताएँ प्राकृतिक सौंदर्य के अभिराम चित्रण से सजी हैं। कवयित्री के अनुसार इन्होंने अपने मन से पाठकों के मन को इसी तरह जोड़ने का प्रयास किया जिस तरह सहिष्णु प्रकृति करती है। अपने देश से दूर रहकर भी देश की स्मृतियाँ इन्हें झकझोरती हैं और इनका भावुक मन कह उठता है - ओह बावरी पवन ! क्यों सता रही हो / मैं परदेसन हूँ सौतेलापन क्यों जता रही हो / पीहर देस में फागुन आया री।

इनकी कविता में रची बसी इस पीड़ा को एक प्रवासी पंछी से अधिक कोई और नहीं समझ सकता जो रोज़ी रोटी की तलाश में अपने वतन से दूर सात समंदर पार आ गये हों। पर फिर अपनी ज़िंदगी को सहजता से लेकर तुष्ट होती हैं, प्रेम का इज़हार करती हैं। अपने प्रिय से हर सुबह मिलने का इज़हार करती हैं- तुम मिलो हर सुबह मुझे / चाय का प्याला लिये हाथ में / मेरी सुबहों को ऊर्जा देने। 'समर्पण' कविता में अपने हृदय के कोमल भावों की सतरंगी छटा बिखेरती ये कहती हैं - जब मुझे तुमसे और तुम्हें मुझसे इश्क़ हुआ था / तुम्हारे इश्क़ में डूब मुझे ख़ुद से भी इश्क़ हुआ था

कभी बेटियों की माँ के रूप अपने भाव व्यक्त करते हुए कहती हैं - बंधु सच कहती हूँ, पगली बेटियाँ बहुत ख़याल रखती हैं। स्त्री विमर्श की जहाँ बात होती है उसमें भी इन्होंने अपनी छाप छोड़ी है। स्त्री के समर्पण, जुनून, आँख से बहते अश्रुओं को तो उन्होंने भावों में पिरोया ही है साथ ही अपने मन के विद्रोह को भी बख़ूबी चित्रित किया है। जब स्त्री ही स्त्री की दुश्मन बन जाती है तो ये विचलित होकर अपनी कविता - 'मुझे एतराज़ है' में कहती हैं - मुझे एतराज़ है / कई नारियाँ बन अबला मिली सहानुभूति का / लाभ उठा स्वार्थी बन जाती, झूठ बोलती।

अपनी कविताओं में इन्होंने जीवन के हर रंग को पिरोने का प्रयास किया है। इनमें संतुष्टि का भाव है अकेलेपन की पीड़ा है, निज सन्नाटा छलकता है, और अलगाव का दर्द भी है। प्रकृति से इनका गहरा नाता है। कभी कराहते बादलों की आवाज़ इन्हें द्रवित करती है, कहीं ज़िंदगी में तकनीकी घुल जाने का असर प्रकृति पर देख इनका मन रो उठता है। बहुत ख़ूबसूरती से दरख़्तों की विनती को इन्होंने शब्दों में ढाला है - दरख़्तों को छूकर हवा हौले-हौले से झूम उठी / सिहर दरख़्त भी हौले - हौले मुस्कुरा पड़े / विनती करते हवा से, प्रिय ज़रा धीरे ! /

बदलते मौसमों को देख ये कह उठती हैं - इन फूलों के रंगों को देखो / कैसे मुस्कुरा रहे हैं / ख़ुशबू बिखेर हवा संग बतिया रहे हैं। वसंत और पतझड़ दोनों ही इन्हें लुभाते हैं। अपनी कविता 'पतझड़ का संदेश' में इन्होंने जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का परिचय बख़ूबी दिया है। और कभी विरक्ति के भाव को उजागर करती हुई कहती हैं - कभी एहसास होता है मेरे सामने / गहरा शांत सागर है किनारे बिछी रेत / मैं धीरे धीरे चलती जा रही हूँ उस पर / मुझे किसी की ज़रूरत नहीं / किसी को भी मेरी ज़रूरत नहीं

इस तरह विविध सामाजिक, राजनैतिक तथा समसामयिक विषयों पर इनकी अनेक कविताएँ संकलन में देखने को मिलेंगी। निश्चित ही एक कवि के रूप में इनकी बहुत आगे तक जाने की संभावना हैं, कुछ परिष्कार के साथ। अंत में इतना कहूँगी कि एक उत्कृष्ट काव्य संकलन के सभी गुणों से सुशोभित, सुंदर शिल्प विधान, भाव प्रवणता,आकर्षक कलेवर से सुसज्जित 'मन की नदी से भीगे शब्द' काव्य संग्रह अवश्य ही सहृदय पाठकों की प्रशंसा बटोरेगा और संग्रहणीय बनेगा।

ooo

ममता त्यागी
9403 Chase Mill Ct., Reliegh NC, USA
ईमेल- Mamta.t80@gmail.com

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

खिड़कियों से झाँकती आँखें

समीक्षक : कमल चंद्रा

लेखक : सुधा ओम ढींगरा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल - 9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

कमल चंद्रा
277- रोहित नगर, फेज -1,
बावड़िया कलां, ई-8, एक्सटेंशन,
भोपाल मप्र 462039
मोबाइल- 9893290596
ईमेल - kjc158.jc1@gmail. com

'खिड़कियों से झाँकती आँखें' संग्रह की हर कहानी विविध कथानक लिए भावों से पल्लवित है। शीर्षक कहानी 'खिड़कियों से झाँकती आँखें' बहुत रोचक है। बड़े शहर से छोटे शहर में आए युवा डॉक्टर के मनोभावों को बहुत कलात्मक ढंग से दिखाया है। उसके आसपास सभी सीनियर सिटीजन्स रहते हैं, सभी की अपनी कहानी और अपने दर्द हैं, जिसे लेखिका ने बहुत ही कुशलता से उकेरा है। अनजान रेड्डी परिवार से डॉक्टर को मिली आत्मीयता से अभिभूत स्वयं को उनके बेटे का स्थान देना बहुत ही प्रभावोत्पादक है। 'कॉस्मिक की कस्टडी' कहानी मूक पशु और मनुष्य के भावनात्मक रिश्तों की दास्तां है। बीगल नस्ल के कुत्ते कॉस्मिक को लेकर माँ-बेटे की मार्मिक कहानी है। यह कहानी मूक प्राणी के प्रति हमारी संवेदनात्मक रिश्ते की ख़ूबसूरती दिखाती है। बेटा, माँ से कहता है कि, माँ! संभालो अपने छोटे बेटे कॉस्मिक को। माँ के बुलाने पर ही प्यारा सा कॉस्मिक अपनी मालकिन के पैरों के पास लोटने लगता है, शायद स्वयं को समर्पित कर रहा हो। पाठक के समक्ष बहुत ही भावत्मक कथ्य प्रस्तुत होता है। 'अंधेरा- उजाला' अस्पर्शयता, छुआछूत जैसी भावना को झुठलाती कहानी प्रगतिवादी सोच से परिचित करवाती है। परिवार में तीन पीढ़ियाँ हैं पहली पीढ़ी अपनी परम्पराओं को ढोने में विश्वास रखती है। वे इससे उबरना भी नहीं चाहती है। कहानी में पंजाबी संस्कृति को बहुत सुंदर ढंग से व्यक्त किया है। कमज़ोर वर्ग के शोषण के दर्द में डूबे रिश्तों की दास्तान सुनाती वर्ण भेद को भी दिखा रही है। वर्णभेद के साथ जातिभेद वर्गभेद से भी पाठक मिलते हैं। कहानी का एक रंग और भी है इस कहानी में वह है निश्छल प्रेम, बेशक वह अधूरा रहता है। लेखिका ने कहानी में अनेक रंग घोले हैं, जिनका चित्रण बहुत बढ़िया तरीके से किया गया है।

'एक नई दिशा' यह कहानी हम संपत्ति व्यापार (प्रॉपर्टी बिजनेस) की पृष्ठभूमि पर लिखी गई है। किंतु अन्त में एक संदेश देती कहानी पाठकों को अनायास ही अपनी ओर खींचती है। नायिका मौली डायमंड के गहनों की शौक़ीन है। उसका काम घर खरीदने के इच्छुक ग्राहकों को घर दिखाना है। वह प्रॉपर्टी ब्रोकर का जॉब करती है। घर खरीदने या किराये पर लेने में लोगों को मदद करती है। मौली को उसका पति समझाता भी है कि, तुम सुनसान घरों में अनजान लोगों के बीच काम करती हो, ये गहने तुम्हारे लिए कभी मुसीबत खड़ी कर सकते हैं। एक बार मौली जब एक दंपति को घर दिखा रही थी तब उसने महसूस किया कि वे लोग घर से अधिक उसके डायमंड नेकलस में रुचि ले रहे हैं। वह रास्ते में घर आकर नेकलस चेंज करती है, वह भी उस दंपति ने नोटिस कर लिए था। अनजानी आशंका से प्रेरित होकर मौली अपनी ब्रोकर दोस्त मोना से उन्हें मिलवा कर पीछा छुड़ाती है। कुछ समय बाद मोना के फ़ोन से पता चलता है कि, हाथ मिलाने के बहाने वे लोग उसकी डायमंड रिंग्स उतार लेते हैं। इस घटना ने मौली के जीवन की दिशा बदल दी। वह निर्णय लेती है कि, वह अपनी डायमंड ज्वेलरी बेच कर ज़रूरतमंद बच्चों की शिक्षा पर खर्च करेगी। इसी तरह संग्रह की एक और कहानी भी पाठकों को आकर्षित करती है, वह है 'ऐसा भी होता है' यह कहानी एक पत्र से शुरू होती है जो ग़लत ज़िपकोड के कारण 11 माह बाद निश्चित पते पर पहुँचता है। यह पत्र मार्च 1992 को पोस्ट किया जाता है एवं फ़रवरी 1993 को मिलता है। कहानी एक बेटी के मनोभावों को बहुत खूबी से प्रदर्शित करती है। घरों में बेटे - बेटी के बीच भेदभाव की दीवार का चित्रण आज भी सोचने के लिए विवश करता है। एक और विषय पर कहानी अपने पँख पसारती है, वह है विदेशी लड़की को घर की बहू के रूप में स्वीकार न करना। घरवालों का मानना है कि, विदेशी लड़की हमारे संस्कार, संस्कृति, परम्पराओं, रीति रिवाजों से अपरिचित है, हो सकता है कि वह इन को नहीं अपनाये। घर के मुखिया बाबूजी का यह अटल फैसला है कि मेरे जीते जी इस विवाह की स्वीकृति मैं नहीं दूँगा। बाबू जी का यह निर्णय अनेक प्रश्न खड़े करता है। कहानी है 'एक ग़लत कदम'। लेखिका की भाषा धाराप्रवाह है, प्रत्येक कहानी पाठकों को कुछ न कुछ संदेश अवश्य देती हैं। शैली कथ्यात्मक है। संग्रह की सभी कहानियाँ पठनीय हैं।

000

पुस्तक समीक्षा

(दोहा संग्रह)

ख़त मौसम का बाँच

समीक्षक : प्रकाश कांत

लेखक : ओम वर्मा

प्रकाशक : श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली

प्रकाश कांत
155, एल. आई. जी., मुखर्जी नगर
देवास 455011, मप्र
मोबाइल- 940741629
ईमेल- prak.kant@gmail.com

कवि-व्यंग्यकार ओम वर्मा का नया दोहा संग्रह 'ख़त मौसम का बाँच' आया है। जिसमें छत्तीस उपशीर्षकों में कुल 786 दोहे संकलित हैं। इन दोहों में जो विविधता है उसका पता उपशीर्षकों से ही चल जाता है – 'घोड़ों की मण्डी सजी', 'बिटिया ज़ेवर था नेह का', 'अलगू ने रोज़े रखे', 'पिता पेड़ वह बाग़ का', 'ख़तो किताबत हो शुरू' इत्यादि! इन दोहों में व्यक्त चिन्ताओं का फ़लक काफ़ी विस्तृत है। समाज, संस्कृति, प्रकृति, लोकतन्त्र, राजनीति यहाँ तक कि विज्ञान, भाषा वग़ैरह भी उसमें शामिल हैं। ओम वर्मा इस फ़ॉर्म के पूरे शास्त्र से परिचित हैं। इन दोहों में जो गहरी मानवीय दृष्टि है वह सामाजिक समरसता, सौहार्द्र, आपसदारी, स्नेह-प्रेम जैसे मूल्यों की पैरवी में व्यक्त हुई है। ज़ाहिर है कि जिस सुन्दर संसार और बेहतर मनुष्य का स्वप्न साहित्य सहित सारी कलाओं का बुनियादी स्वप्न रहा है उसी की बात ये दोहे भी करते हैं, 'गुणा-भाग सब व्यर्थ है, व्यर्थ घटाओ जोड़ / ढाई आखर सीख ले, इसका बना न तोड़।' भारतीय समाज की बहुप्रशंसित विविधता के बीच बुनियादी एकता का संरक्षण कवि की प्राथमिक चिन्ता रही है। राजनैतिक निहित स्वार्थ द्वारा इस एकता को पहुँचाया जानेवाले नुक़्सान की पीड़ा कई दोहों में मौजूद है। एक तरह से सामाजिक सौहार्द्र, समरसता की सुरक्षा की फ़िक्र अधिकांश दोहों का मूल स्वर है। यह फ़िक्र प्रेमचन्द की कहानी 'पंच परमेश्वर' के प्रसिद्ध पात्र अलगू चौधरी और जुम्मन शेख के माध्यम से कई जगह व्यक्त हुई है, 'सार्वजनिक हर मंच पर, यों करवाया भान / अलगू जुम्मन जिस्म दो, मगर एक है जान॥' अलगू-जुम्मन कई दोहों में आए हैं। और बड़े इंसानी सवालों के साथ आए हैं। जिसके चलते इन दोहों का क़द और भी बढ़ जाता है। एक ऐसे समय में जब एक पूरे समुदाय को सन्देहास्पद बना दिये जाने का अभियान चल रहा हो तब यह कहना काफ़ी मायने रखता है, 'बार-बार मत पूछिये जुम्मन से पहचान / शामिल है उसका लहू कहता हिन्दुस्तान॥' एक बात और, इन दोहों में सिर्फ़ अलगू चौधरी - जुम्मन शेख ही नहीं आए हैं बल्कि हल्कू-मुन्नी (पूस की रात), हामिद और दादी (ईदगाह), आलोपीदीन (नमक का दरोगा), घीसू-माधो (कफ़न), बाबा भारती, खड़गसिंग (हार की जीत) यहाँ तक कि कुत्ता जबरा (पूस की रात) और घोड़ा सुल्तान (हार की जीत) भी आए हैं। उनके काव्य मन्तव्यों को विस्तार देते हुए! वैसे, साम्प्रदायिक वैमनस्य पर भी उनकी नज़र है, 'चौराहे पर लुट रहा अमन-चैन का चीर / भले ही राम का नाम या नारा-ए-तदबीर॥' वैमनस्य की मानसिकता का उनके यहाँ प्रखर विरोध भी है, 'मन्दिर-मस्जिद टूटते, रहा मगर संसार / नहीं बचेगी सृष्टि यह, नहीं बचा यदि प्यार।'

पिछले कुछ सालों में बढ़ी अरबपतियों की संख्या का मीडिया में काफ़ी गुणगान होता रहा है, लगभग किसी राष्ट्रीय गौरवगान की तरह! कवि की नज़र इसके पीछे के असली सच पर है, 'आज़ादी के बाद से, दिखा हमें यह रूप / बड़े भवन कुछ खा गए, कुटियाओं की धूप॥' जल संकट, पर्यावरण, अल्पवर्षा जैसे प्राकृतिक संकटों को लेकर भी इन दोहों में चिन्ता है। ख़ासकर आने वाली नस्लों के बारे में सोचकर! ये दोहे मूलत: गहरे इंसानी सरोकारों के दोहे हैं। ये सरोकार उन दोहों में भी दिखाई देते हैं जो कथित विकास के चलते बहुत सारी ज़रूरी और मानवीय चीज़ों के छूटने की बात करते हैं, 'दादी माँ की बारता, ककड़ी, भुट्टे, ईख / महानगर में गुम हुई, सभी गाँव की सीख॥' गुम तो चिड़ियाँ भी होने लगी हैं इसीलिए वे तस्वीरें भी उदास रहने लगी हैं जिनके पीछे कभी चिड़ियाँ अपना घोसले बनाया करता थीं। ओम वर्मा हिन्दी-उर्दू एकता के हिमायती रहे हैं साथ ही छन्द कविता के प्रबल पक्षधर! छन्द कविता में भी दोहा उनका प्रिय छन्द रहा है जिसे उन्होंने छन्दों में भी 'राजकुमार' कहा है। अपनी माँ की स्मृति को समर्पित इस दोहा संग्रह में उन्होंने दोहा छन्द की अपनी अब तक की यात्रा के बारे में विस्तार से लिखा है। जिससे उनकी काव्यनिष्ठा का भी पता चलता है। संग्रह के शीर्षक 'ख़त मौसम का बाँच' में प्रयुक्त मौसम की व्यंजना काफ़ी व्यापक है, 'हर्फ़-हर्फ़ में प्रीत है, बरक-बरक है आँच / मन की आँखों से ज़रा, ख़त मौसम का बाँच।'

000

पुस्तक समीक्षा

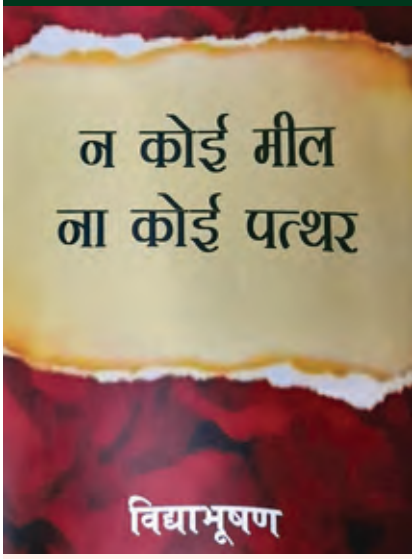

(उपन्यास)

न कोई मील न कोई पत्थर

समीक्षक : नीरज नीर

लेखक : डॉ. विद्याभूषण

प्रकाशक : पाखी प्रकाशन, नई दिल्ली

नीरज नीर
आशीर्वाद, बुद्ध विहार
पो ऑ- अशोक नगर
राँची 834002 झारखंड
मोबाइल- 8797777598
ईमेल- neerajcex@gmail.com

डॉ. विद्याभूषण के पहले उपन्यास "न कोई मील ना कोई पत्थर" की कहानी बिछोहजनित वेदना की मनोव्यथा के ताने -बाने से बुनी हुई है। मानव जीवन की विविध-आयामी व्यंजना, प्रभावशाली संकेतधर्मिता, जीवंत पात्र, अनूठे गत्यात्मक बिम्ब, तीव्र घटनाक्रम आदि कुछ ऐसी विशेषताएं है, जो इस उपन्यास को विशिष्ट बनाते हैं। यह उपन्यास एक आत्मवृतात्मक उपन्यास है, जिसे लेखक ने नैरेटर के माध्यम से कहने की कोशिश की है। इस उपन्यास की कथा निजी अनुभवों का क्षैतिजीय विस्तार है, जो अपनी संवेदनाओं की आवृतियों में पाठक को समग्रता में समाहित कर लेता है एवं आद्यांत पाठकों को एक रागात्मक लय से बाँधे रहता है। किसी निजी कथा का सर्वजनीन चेतना में परिवर्तित एवं स्वीकृत होना ही इस उपन्यास की सफलता के प्रतिमान गढ़ता है। अच्छी प्रवाहमान भाषा के साथ मार्मिक सघन जीवनानुभवों से उपजे प्रसंगों के चित्र इस उपन्यास को अनुपम पठनीयता प्रदान करते हैं।

राँची के छोटे से मुहल्ले किशोरगंज से शुरू होती कहानी, आस-पास ही घूमती हुई वहीं कई दशकों का सफ़र तय करके ख़त्म होती है, लेकिन अच्छी बात यह कि पाठक कहीं भी इससे ऊबता नहीं है। भावनाओं से अंतर्बद्ध घटनाक्रमों एवं संवादों की बारिश में पाठक का मन भीगता है। उपन्यास की कहानी, मुख्य पात्र रजनीकान्त की पत्नी की मृत्यु के बाद से शुरू होती है और रजनीकान्त की मानसिक दशा, उसके चेतन-अवचेतन मन में चलने वाले उथल-पुथल, जीवन संघर्षों, पारिवारिक रिश्तों और बच्चों पर पड़ने वाले प्रभावों की बड़ी ही सूक्ष्म विवेचना करता चलता है। दु:ख एक ऐसा भाव है जो अमूर्तन में होकर मूर्त जगत् की सभी अनुभूतियों के परिप्रेक्ष्य को स्वयं के अनुरूप विरूपित कर देता है। इस उपन्यास में दु:ख केन्द्रीय भाव है। अपनी पत्नी के असामयिक निधन से रजनीकान्त दु:खी है और दुख कैसे समाज के प्रति उसकी दृष्टि को बदलता है और कैसे समाज का व्यवहार उसके प्रति बदलता है, इसी व्यवहार व्यतिक्रम की रस्सी के सहारे कहानी आगे बढ़ती है। मानवीय व्यवहार का अपना एक पैटर्न होता है, जो स्वाभाविक एवं तरल होता है, लेकिन हम जब किसी विशिष्ट मानसिक दशा में होते हैं, जैसे बहुत ज़्यादा ख़ुश या दु:खी होते हैं तो यही स्वाभाविक मानवीय व्ययहार हमे विचित्र, ठोस और अस्वीकार्य प्रतीत होता है। इस उपन्यास में मानवीय व्यवहार के इन पहलुओं की गाँठें कई संदर्भों में खुलती हैं। इस दृष्टि से देखें तो यह उपन्यास सामाजिक व्यवहारों का मनोवैज्ञानिक आकलन भी प्रस्तुत करता है।

अपनी पत्नी सुधा की असामयिक मृत्यु से उत्पन्न अवसाद और उदासियों के स्याह घेरे में छटपटाते एवं निकलने की कोशिश करते रजनीकान्त स्मृतियों के रेंगनी काँटों पर करवटे बदलते हैं। सामान्य दिनचर्या समृतियों के पारदर्शी पर मोटे आवरण पृष्ठ से बाधित हो जाती है। इन मनोदशाओं का वर्णन लेखक ने अत्यंत सधे हुए अंदाज़ में किया है। इस तरह के तमाम प्रकरण और उसकी सुरीली एवं अलंकृत अभिव्यक्ति इस उपन्यास को न केवल पठनीय बल्कि संग्रणीय भी बनाती है। एक व्यक्ति अपनी पत्नी से कितना प्रेम करता है या पति और पत्नी के आपसी संबंध और अंतरनिर्भरता कितनी है, इसकी असली थाह तब होती है, जब उनमें से कोई एक पार्टनर नहीं रहता है। अपनी तमाम कोशिशों के बावजूद अकेला बचा पार्टनर, ख़ासकर तब जब वह संवेदनशील हो, जीवन को वापस पटरी पर लाने के संघर्ष में बार-बार टूटता और बिखरता है। आज के समय में जब राजनीति सबसे अधिक प्रभावशाली एवं हावी विचार है और राजनैतिक विमर्श का पिछलग्गू बनकर चर्चित होना साहित्यकारों के लिए सबसे प्रिय एवं सुलभ शगल है, वैसे में यह उपन्यास विशुद्ध एवं निश्छल मानवीय संवेदनाओं की एक ऐसी दुनिया रचता है, जहाँ प्रेम है, मृत्यु है, अलगाव है, आकर्षण है, विछोह है, मोह है, ममता है, टूटन है, घुटन है, आसक्ति है, तृप्ति है, ठगे जाने का अहसास है और पूरे उपन्यास में हद दर्जे की मार्मिकता है, लेकिन कहीं भी घृणा नहीं है। क्योंकि राजनीति नहीं है, हिन्दू मुसलमान नहीं। उपन्यास की प्रांजल, पारदर्शी एवं संस्कारित भाषा इसके पठनीय सुख में वृद्धि करती है।

000

(शोध आलेख)

वर्तमान यथार्थ की प्रस्तुतिः नीरज की ग़ज़लें

शोध लेखक : डॉ. आकाश वर्मा
हिन्दी विभाग, असम विश्वविद्यालय

जीवन यथार्थ के अनुभवों से भरी अभिव्यक्ति है- नीरज गोस्वामी का ग़ज़ल संग्रह- डाली मोगरे की। नीरज गोस्वामी की ग़ज़लों का यह संग्रह, जीवन के अनेक पहलुओं को छूता हुआ- रोज़मर्रा की जिन्दगी को साझा करता है। नीरज गोस्वामी की गजलें प्रेम और जीवन को सार्थक बनाए रखने की चेतना को बचाए रखने का प्रयास करती हैं। इनमें बढ़ते बाज़ारवाद के व्यापक प्रभावों के बीच, खो रहे मानव सरोकारों तथा स्वभावों को बचा लेने की जद्दोजहद दिखाई पड़ती है। मानवीय भटकाव के चरित्र दिखाई देते हैं जिन्हें वे सुधार लेना चाहते हैं। लोक की चेतना, मानवीय चरित्रों का पतन, भौतिकता के भटकाव, आवश्यकता भर से अधिक विस्तार, राष्ट्रवादी चेतना, राजनीतिक जागरूकता, सांस्कृतिक बिखराव, प्रेम एवं अपनेपन की तलाश, आशावादी विचार नीरज के ग़ज़लों के मुख्य विषय हैं जिन्हें वे बचा लेने या ठीक कर लेने की कोशिश करते हैं। नीरज गोस्वामी की ग़ज़लों में राजनीतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक, धार्मिक और आधुनिकता- वादी प्रवृतियों के बीच संकटग्रस्त मनुष्य का लेखा-जोखा है। नीरज की ग़ज़लें मनुष्य के भीतर खोते जा रहे रिश्तों के मूल्य की तलाश करती हैं चाहे वे रिश्ते व्यक्तिगत हों अथवा सामाजिक, मानव के जीवन में इनका अभाव होता जा रहा है। इसके चलते समवेदनाओं में होने वाले परिवर्तन जीवन को संवेदनशून्य करते जा रहे हैं। उनके पास यह बड़ी चिन्ता है कि आदमी क्या से क्या होता जा रहा है। नीरज इस बात को उसके अकेलेपन के बोध तथा उदासी को दूसरों की पीड़ा द्वारा महसूस कराने का प्रयास करते हैं। हर मनुष्य ऐसा हो गया है लेकिन कोई किसी की पीड़ा को समझना नहीं चाहता- मिलेंगी तब हमें सच्ची दुआएँ / किसी के साथ जब आँसू बहाएँ / बहुत बाते छुपी हैं दिल में अपने / कभी तुम पास बैठो तो सुनाएं

नीरज का कहना सही है कि आज किसी के पास न समय है और न ही रिश्तों का मोल। सभी इस पीड़ा में हैं लेकिन उसका अहसास खो चुके हैं। वर्तमान समय में केवल स्वार्थ और अपने काम से मतलब रखने वाले सम्बन्धों और परिचय को महत्त्व मिलने लगा है। जो कष्ट में है उनका मूल्य अब नहीं रहा। ऐसे में कुछ रिश्ते बोझ एवं बनावटी लगने लगते हैं। नीरज इसे खीझ, हताशा-निराशा, कुण्ठा और व्यंग्य के माध्यम से कहते हैं- एक दिन तन्हा वही पछताएँगे तुम देखना / तौलते रिश्तों को हैं जो फायदे नुकसान से

इसलिए नीरज की ग़ज़लें बताना चाहती हैं कि आधुनिक जीवन में भले ही संसाधनों की तलाश के लिए भटकना आवश्यक हो लेकिन इसके चलते मानव के भीतर के अहसास नहीं ख़त्म होने चाहिए। नीरज मानवीय सम्बन्धों को बचाये रखना चाहते हैं। यह बिखराव एक त्रासद स्थिति है। इससे पहले ही हम एक दूसरे से प्रेम और सौहार्द की बातें करे तो शायद मनुष्यता बची रहे- तीर ख़ंजर की न अब तलवार की बातें करें / ज़िन्दगी में आइये बस प्यार की बातें करें / टूटते रिश्तों के कारण जो बिखरता जा रहा / अब बचाने को उसी घर बार की बातें करें

नीरज की ग़ज़लों में हमें एक राजनीतिक- धार्मिक-साम्प्रदायिक चेतना का भी संचार दिखाई देता है जो अंततः राष्ट्रीय चेतना तक पहुँचता है। राजनीतिक चेतना का उद्देश्य देश को सार्थक दिशा में ले जाने की जागरूकता का द्योतक होता है। नीरज की ग़ज़लें इसमें भी एक निश्चित भूमिका निभाती हैं। आज चूँकि तंत्र जनता के मत में है तो वह जनता नीरज की माने तो बहुत कुछ कर सकती है- आ पलट देते हैं हम मिल के सियासत जिसमें / हुक्मराँ अपनी रिआया से दगा करते हैं

ऐसा नहीं है कि देश में व्याप्त भ्रष्टाचार, अव्यवस्था और अराजकता झूठ है और ऐसा भी नहीं है कि लोगों की जवाबदेही नहीं बनती है लेकिन लोग चुप रहते हैं। वह चाहे कोई कर्मचारी हो या साधारण जनता। चारो ओर जैसा माहौल व्याप्त है सभी अपनी आँखों पर पर्देदारी किये रहते हैं। इस स्थिति को हताशा और निराशा का चरम कह सकते हैं। लोगों को इन हताश-निराश परिस्थितियों में रहने की आदत लग चुकी है तथा वास्तविकता का किसी को कोई अन्दाजा तक नहीं होता- सितम सहने की आदत, इस कदर हम को पड़ी नीरज / कहीं कुछ हो, नहीं अब खौलता है, खून सीने में

डॉ. आकाश वर्मा
हिन्दी विभाग
असम विश्वविद्यालय, सिलचर
असम, पिनकोड- 788011
मोबाइल- 9435173672
ईमेल- hindiakash@gmail.com

इसी के साथ आगे बढ़कर वे जनता और राजनेता दोनों को चेतित करते हैं कि इस प्रकार की राजनीति अब बन्द होनी चाहिए। लोगों को अपने देश और राष्ट्र के प्रति जागरूक होना चाहिए तथा राजनेताओं को अपनी जनता के प्रति जिम्मेदारी समझनी चाहिए तभी देश का भविष्य उज्ज्वल होगा, देश का विकास होगा। आपसी भेद, हिंसा से लोगों को बाँटकर चलने वाली राजनीतिक प्रवृति को बदलना होगा जिससे अपसी रंजिशें ख़त्म हो जिससे लोग भेदभाव छोड़कर कुछ सार्थक काम करने में लग सकें तथा सबका सामूहिक विकास हो। नीरज पतनशील तथा राजनीतिक षड्यन्त्रों वाली मनोवृत्तियों से बचने का संकेत करते हैं- घर तुम्हारा भी उड़ा कर साथ में ले जाएँगी / मत अदावत की चलाओ, मुल्क में तुम आँधियाँ

तात्पर्य यह निकलता है कि नीरज की यह चेतना अंतत: राष्ट्रीयता की ओर जाती है क्योंकि कोई भी व्यक्ति राष्ट्र से परे नहीं हैं लेकिन राष्ट्र की चिन्ता बहुतेरों के पास नहीं है। नीरज हर किसी को अपने राष्ट्र के प्रति जागरूक होने की बात करते हैं। वे चाहते हैं कोई भी ऐसा कार्य न हो जिससे देश की एकता और अखण्डता में बिखराव उत्पन्न हो। आपस में बढ़ते भेदभाव, नफरत, हिंसा, बेईमानी, भ्रष्टाचार जैसी प्रवृति से देश को मजबूती नहीं मिल सकती। सभी को ऐसे दुर्गुणों से परहेज करना चाहिए। देश को शक्तिशाली बनाने के लिए नीरज समग्र रूप से कह उठते हैं- उसमें क्या नेता, क्या साधारण आदमी, क्या कोई भ्रष्ट कर्मचारी- सबकी एक जैसी हालत हैं। नीरज सबके लिए कहते हैं- साँप को बदनाम यूँ ही कर रहा है आदमी / काटने से आदमी के मर रहा है आदमी / दुश्मनी की बात करता कौन सा मज़हब बता / क़त्ल उसके नाम पे क्यूँ कर रहा है आदमी

इससे आगे बढ़ें तो नीरज की ग़ज़लें इन्सानों के भीतर आत्मीयता, मानवीयता, सदाशयता, नैतिकता, सहृदयता, सुख-शान्ति, जीवन की कोमलता की तलाश करती है। सबसे बड़ी बात कि वह आदमीयत को बचा लेने की कोशिश करती है। भागती दौड़ती जिनदगी में खुशी के दो पल के लिए इन्सान बेचैन है, लाचार भी है। दुर्भाग्य है कि वह इससे निकल नहीं पाता है। वे संकेत करते है जीवन को इतना जटिल बनाने से क्या लाभ, जब थोड़े में ही ख़ुश रहा जा सकता है- डालियों पे फुदकने से जो मिल गई / उस खुशी के लिए क्यूँ फ़लक पर उड़े

यह विचित्र अवस्था लगती है कि लोग खुशी की तलाश में निकलते तो हैं लेकिन उनकी पूरी भागदौड़, आपाधापी संसाधनों को जुटाने और इसके उद्योग में लग जाती है। इस अवस्था में कुछ देर ठहरकर जीवन में थोड़ा सा ख़ुश हो लेना लोग भूलते जा रहे हैं। ख़ुद की पहचान खोते जा रहे हैं। यह समय की विकट संरचना है कि जिसकी जितनी लालसा है वह उतना ही परेशान है, जिसके पास जितना धन है वह उनता ही सुख-शान्ति के लिए व्याकुल है। नीरज संकेत करते जाते हैं कि इन्सान को अब बुनियादी ज़रूरत से ज़्यादा चाहिए। इसलिए वह भाग रहा है लेकिन खुशी वहाँ नहीं है। लोग दुनिया की भीड़ में बस भागना चाहते हैं- दौड़ती ज़िन्दगी को ज़रा रोककर / पीसते हैं चलो ताश की गड्डियाँ

हम यहाँ एक चीज़ पर और विचार कर सकते हैं कि कभी हमारा देश गाँवों का देश था। अब चारों ओर शहर बस रहे हैं। आधुनिक तकनीकियों और बाज़ार के बढ़ते प्रभाव गाँवों तक जा पहुँचे हैं। नीरज यहाँ भी बताना चाहते हैं कि खुशी अब कहीं नहीं है। हमने खुशियों तथा बुनियादी आवश्यकताओं की कीमत पर आधुनिकता और उसके संसाधनों को खरीदना तथा उसकी लालसा को बनाये रखने का चुनाव किया है। इस अवस्था में मानसिक सुकून लुप्तप्राय भाव होकर हमारे समय का सच बना हुआ है- जिधर देखें उधर सीमेंट का जंगल दिखे उसको / पड़ी है सोच में कोयल कहाँ वो बैठ कर गाये

नीरज की ग़ज़लों की चिन्ता में साधारण और ग़रीब जन भी है। अमीर वर्ग तो पूँजी के पीछे भाग रहे हैं। मध्यवर्गीय जनता अमीरी के सुख के पीछे, लेकिन तीसरी जनता जो केवल दो जून की रोटी के लिए तथा जीवन को बचाये रखने की चिन्ता में जीवित रहती है। वह बहुत त्रस्त होती है। यह संख्या बहुत बड़ी है। सबसे बड़ी बात कि इनका कोई मार्गदर्शक नहीं होता। इस साधारण जनता को जहाँ दो रोटी मिलती है वहीं चले जाते है। पूँजीपति इनका शोषण करता है, जनप्रतिनिधि इनसे राजनीतिक खेल। एक प्रकार से इनका केवल इस्तेमाल होता है। सच कहें तो इनके भीतर जागरूकता की भी कमी होती है, अपने अधिकार के प्रति असक्रियता रहती है। इनकी पहली चिन्ता- एक पहर भर के नमक-तेल का जुगाड़ करना होता है। इसलिए ये कहीं भी इस्तेमाल हो जाते हैं या कर लिए जाते हैं। ये इनकी नियति नहीं लाचारी है। इसीलिए नीरज इनकी सच्चाई को सामने रखने का प्रयास करते हैं तथा बताना चाहते हैं कि इनके पास कोई सिद्धान्त नहीं होता, नैतिकता का नियम-कानून नहीं होता। इनके साथ होने वाली बेईमानी और राजनीति से परहेज करने की बात करते हैं। इनके लिए कुछ करना होगा- रोटियों के सिवा ग़रीबों का / और कुछ भी इरम नहीं होता

नीरज की ग़ज़लों में लोक की समग्रता के साथ चिन्ता है जिसका केन्द्रीय भाव वर्तमान जीवन के यथार्थ से जुड़ा है। वस्तुत: तो लोक का विस्तार बहुत व्यापक है। इसमें इन्होंने मानवीय रिश्तों की पड़ताल करते हुए जीवन में बढ़ते संवेदनहीनता की ओर संकेत किया है। एक ओर जहाँ राजनीतिक-धार्मिक-साम्प्रदायिक स्थितियों पर विचार करते हुए वे राष्ट्रीय चेतना तक पहुँचते हैं तो दूसरी ओर साधारण जनता के सरोकारों को हमारे सामने रखते हैं। इसके साथ ही वर्तमान समय की जटिलता के जीवन पर पड़ते प्रभाव की भी चिन्ता दिखाई पड़ती है।

000

संदर्भ- 1.आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- हिन्दी साहित्य का इतिहास (काल विभाग), पृष्ठ- 1, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पाँचवाँ संस्करण- संवत- 2006 (सन्- 1949)

२. डाली मोगरे की, पृष्ठ- 97, शिवना प्रकाशन, सीहोर-466001, मध्य प्रदेश, द्वितीय संस्करण- 2014

(शोध आलेख)

सुधा ओम ढींगरा की कहानियों में वृद्ध जीवन

शोध लेखक : सरिता जिलेदार बिन्द
पी.एच.डी. शोधार्थी
रामनारायण रुइया स्वायत
महाविद्यालय, माटुंगा मुंबई

सरिता जिलेदार बिन्द
पी.एच.डी. शोधार्थी
रामनारायण रुइया स्वायत्त महाविद्यालय,
नापू रोड, माटुंगा ईस्ट
मुंबई 400019, महाराष्ट्र
इमेल- Saritajiledarbind@gmail.com

सुधा ओम ढींगरा प्रवासी हिन्दी साहित्य की एक प्रतिभाशाली लेखिका हैं। प्रवासी साहित्य के विकास में सुधा ओम ढींगरा का अतुलनीय योगदान है। हिन्दी के प्रचार-प्रसार में सुधा ओम ढींगरा का प्रयास सराहनीय है। इन्होंने अपनी रचनाओं में वृद्धों की स्थिति को मुख्य रूप से चित्रित किया है। स्त्री विमर्श, दलित विमर्श के साथ ही वृद्ध विमर्श पर सुधा ओम ढींगरा उभर कर लिख रही हैं। इनकी अनेक कहानियों में वृद्धों की समस्या विशेष रूप से देखने को मिलती है। वृद्ध जीवन से जुड़े प्रत्येक पहलू तथा छोटी से छोटी समस्या को बड़ी प्रमुखता से दिखाया है। व्यक्ति अपने जीवन की प्रत्येक अवस्था को आसानी से पार कर लेता है। किंतु जब उसकी वृद्ध अवस्था आती है; तब उसे किसी न किसी के सहारे की आवश्यकता होती है। क्योंकि वृद्धावस्था में व्यक्ति का जीवन विभिन्न प्रकार की समस्याओं से जूझ रहा होता है। शारीरिक व मानसिक समस्याओं से वह पीड़ित रहता है। ऐसी अवस्था में उसे सहारे की आवश्यकता रहती है। और वह सहारे की उम्मीद अपने बच्चों से करता है; किंतु आज बच्चे उन्हें सहारा देने की जगह बेसहारा वृद्ध आश्रम में छोड़ देते हैं। उनसे किसी भी तरह पीछा छुड़ाने के लिए वृद्धाश्रम या अस्पताल में अकेले तड़पने के लिए छोड़ देते हैं। आजकल के बच्चे आधुनिकता की चकाचौंध में इतने अंधे हो चुके हैं; कि वह अपने बूढ़े माता-पिता का ख़याल भी नहीं रख सकते। इस आधुनिक काल के दौरान दो पीढ़ियों में इतने अंतर आ गए हैं कि उनके आपसी विचारों में विभिन्न मतभेद पाए जाते हैं। और वह बच्चे अपने ही माता-पिता के विचारों का विरोध करने लगते हैं। भारतीय समाज की तरह पश्चिमी देशों में भी वृद्धों की स्थिति एक समान है। वृद्ध अवस्था पर केंद्रित कहानी 'कमरा नंबर 103' में लेखिका ने मिसेज़ वर्मा के माध्यम से समाज के समस्त वृद्धों की मानसिक पीड़ा को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

कहानी 'कमरा नंबर 103' की पात्र मिसेज़ वर्मा पति की मृत्यु के बाद भारत में अकेले रहने लगी थी। बहू के गर्भवती होने पर उनका बेटा उन्हें अमेरिका लेकर चला आता है। पोते-पोती का चेहरा देखने की अभिलाषा में मिसेज़ वर्मा अपने बेटे की बातों में आकर भारत में अपना सब कुछ बेच कर उसके साथ अमेरिका चली आती हैं। कुछ दिन बाद जब उसकी बहू का गर्भ गिर जाता है तब मिसेज़ वर्मा अपने बेटे और बहू के लिए बोझ बन जाती हैं; क्योंकि उसे बच्चों की देखरेख के लिए लाया गया था। किंतु गर्भ गिरने के बाद मिसेज़ वर्मा की वहाँ कोई ज़रूरत नहीं थी। वे दोनों किसी तरह उन्हें घर से निकाल फेंकना चाहते थे। पर ऐसा न कर पाने के कारण उन्होंने अपने घर से घर की सफाई करने वाली को हटा दिया और उसकी जगह मिसेज़ वर्मा को घर के सारे काम-काज सँभालने के लिए दे दिये। मिसेज़ वर्मा पूरे दिन घर में नौकरानियों की तरह साफ सफाई का काम करने लगी। एक दिन उनके बेटे ने उनसे कहा "माँ सपना ने यह ढूँढ़ी है। आपने हमसे इसे छुपाया हुआ था। मैं पैसे-पैसे के लिए यहाँ मोहताज हूँ और भारत के बैंक में आपके नाम लाखों रुपए पड़े हैं। इस पर हस्ताक्षर कर दीजिए, आप के बाद यह पैसा मुझे ही मिलना है, तो अब क्यों नहीं..!"1 मिसेज़ वर्मा अपने बेटे के स्वार्थी हृदय को समझ गईं थी। उसके इस व्यवहार ने मिसेज़ वर्मा को पूरी तरह से तोड़ दिया था। यह सुनते ही मिसेज़ वर्मा उच्च रक्तचाप के कारण बेहोश हो गईं। बेहोश होने के बाद उनके बहू और बेटा उन्हें अस्पताल लेकर

गए। अस्पताल ले जाने के बाद उन्हें वहीं पर छोड़कर चले आए। दोबारा वे अपनी माँ को देखने भी नहीं गए। और वहाँ उनसे मिलने भी नहीं गए। जिसकी पुष्टि लेखिका ने इस प्रकार की है-"अस्पताल में उन्हें एडमिट करवाने उनका बेटा और बहू आए थे, उनकी गंभीर अवस्था को देखते हुए उन्हें आई.सी.यू में रखा गया था। बेटे और बहू को एक दो बार आईसीयू के बाहर लॉबी में बैठे देखा गया। ज्योंही उन्हें आईसीयू से कमरा नंबर 103 में स्थानांतरण किया गया, उस दिन से आज तक उनके बेटे और बहू की किसी ने सूरत नहीं देखी। वे उन्हें घर के फालतू सामान की तरह अस्पताल छोड़ गए।"2

जैसे-जैसे भारतीय समाज में संयुक्त परिवार के विघटन की अवधारणा समाप्त होती जा रही है। वैसे ही आज वृद्ध माता-पिता के प्रति बच्चों की उदासीनता दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'खिड़कियों से झाँकती आँखें' में लेखिका ने बुज़ुर्ग माता-पिता की उपेक्षापूर्ण स्थिति का मार्मिक चित्रण किया है। दंपति रेड्डी का बेटा फ्रांसीसी लड़की से शादी करके वह हमेशा के लिए अपने माता-पिता का घर छोड़ कर पेरिस चला जाता है। वहाँ पर जाने के बाद वह अपने माता-पिता से सारे रिश्ते तोड़ देता है। वह उनसे बात तक नहीं करता। किंतु डॉक्टर रेड्डी और उनकी पत्नी अपने बेटे के आने का हमेशा इंतज़ार करते थे। किंतु वह नहीं आया। डॉक्टर रेड्डी कहते हैं-"उस दिन के इंतज़ार में तो हम बूढ़े हो गए। हमें मालूम है वह नहीं आएगा, फिर भी हम इंतज़ार कर रहे हैं। वह मेरा बेटा है, मेरी तरह अक्खड़ और ज़िद्दी।"3 आज व्यक्ति के अंदर स्वार्थ एवं लालच की भावना इतनी बढ़ गई है, कि वृद्ध माता-पिता से वह केवल पैसों के लिए संबंध रखता है उसके लिए सारे रिश्ते नाते स्वार्थपरख हो गए हैं।

कहानी 'बिखरते रिश्ते' की पात्र रिमझिम एक डॉक्टर है। वह शादी के बाद अपने पति के साथ अमेरिका चली जाती है। भारत में उसके माता-पिता दो बड़े भाई, भाभियाँ सभी लोग एक साथ रहते थे। रिमझिम के पिताजी ने दिन-रात मेहनत करके घर बनवाया था। बच्चों को पढ़ा-लिखा कर योग्य व्यक्ति बनाये थे। रिमझिम की भाभियाँ भी पढ़ी-लिखी थीं, वह दोनों शादी के बाद भी नौकरी करती थी; जिसके कारण घर का सारा काम रिमझिम की माँ को ही करना पड़ता था। एक दिन उसके पिता के पैरों में चोट लग गई थी, जिसके कारण उसके पिताजी को व्हीलचेयर का सहारा लेना पड़ा। पैर ठीक न होने के कारण वह हमेशा व्हीलचेयर पर ही बैठे रहते थे। रिमझिम की माँ को घर के काम के साथ पिताजी की भी देखभाल करनी पड़ती थी। कुछ साल बाद रिमझिम की माँ का देहांत हो गया। अब उसके पिताजी एकदम अकेले हो गए। घर की बहुओं के भी काम बढ़ गए थे। अब धीरे-धीरे पिताजी उन सब को बोझ लगने लगे थे। इसलिए वे उन्हें वृद्धाश्रम भेजना चाहते थे। जिस घर को बनाने में उन्होंने अपनी पूरी ज़िंदगी की कमाई लगा दी थी; आज उसी घर में उनके लिए जगह नहीं थी। माँ की मृत्यु के बाद रिमझिम के पिता जी बिल्कुल अकेले हो गए थे। अकेलेपन को दूर करने के लिए उन्हें घर-परिवार के साथ रहने की ज़रूरत थी; पर रिमझिम के भइयों और भाभियाँ उन्हें वृद्ध आश्रम भेज देते हैं। वृद्ध आश्रम भेजने के बाद रिमझिम के भाइयों को केवल उनके पैसों से मतलब था। जिसकी वर्णन लेखिका इस प्रकार करती है-"साहब लोग अंकल से चेक बुक पर हस्ताक्षर करवा कर चले जाते हैं। जब से अंकल वृद्ध आश्रम में आए हैं, किसी से बात नहीं करते बस दीवारों को देखते रहते हैं और जब कोई उन्हें बुलाता है, तो हाथ आगे बढ़ा देते हैं कि कहाँ साइन करने हैं।"4

रिमझिम अपने बाबूजी को इस स्थिति में देखकर बिलख उठती है। और अपने बाबूजी को वहाँ से अपने साथ लेने जाना चाहती थी, पर उसके बाबूजी उसके साथ जाने से इनकार कर देते हैं और कहते हैं-"मैं यहाँ बहुत ख़ुश हूँ, मुझे चैन से मरने दो। अमेरिका ले जाकर मेरी मिट्टी न ख़राब करो, हाँ, मेरा अंतिम संस्कार तुम्हीं करोगी, बेटे या पोते नहीं, वसीयत करके जा रहा हूँ, मेरे मरने के बाद तब तक लाश पड़ी रहेगी, जब तक तुम नहीं आओगे, तुम्हारा इंतज़ार किया जाएगा।"5

विश्व भर की आबादी में बुज़ुर्ग लोगों की एक बड़ी तादाद है। जीवन के इस आख़िरी पड़ाव में वृद्ध व्यक्ति को अपने परिवार के लोगों की सबसे ज़्यादा आवश्यकता होती है। भारतीय माता-पिता को भगवान् का दर्जा दिया गया है। स्वयं श्रवण कुमार ने अपना पूर्ण जीवन अपने माता-पिता की सेवा में समर्पण कर दिया था। किंतु वर्तमान में माता-पिता अपने बच्चों के लिए केवल एक बोझ बनकर रह गए हैं। आधुनिक काल में बच्चों के पास इतना समय भी नहीं रह गया कि वह अपने माता-पिता के साथ कुछ समय व्यतीत कर सके। एक वृद्ध व्यक्ति बच्चों के समान होता है, जिस प्रकार एक छोटे से बच्चे को पालन-पोषण प्यार दुलार की आवश्यकता होती है; उसी तरह एक वृद्ध व्यक्ति को भी प्यार और सहारे की आवश्यकता होती है। वर्तमान समय में बच्चे उनकी देखभाल करने से जी चुराते हैं। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि डॉ.सुधा ओम ढींगरा ने अपनी संपूर्ण कहानियों में वृद्धों की स्थिति का मार्मिक रूप से चित्रण किया है।

000

संदर्भ- 1) कहानी संग्रह: कमरा नंबर 103, कहानी ' कमरा नंबर 103',डॉ.सुधा ओम ढींगरा, शिवना प्रकाशन पी. सी. लैब, सम्राट कॉन्प्लेक्स बेसमेंट बस स्टैंड. सीहोर-466001(म. प्र.),पृष्ठ.41, 2) वही: पृष्ठ.36, 3) कहानी संग्रह: खिड़कियों से झाँकती आँखें' कहानी 'खिड़कियों से झाँकती आँखें' , डॉ.सुधा ओम ढींगरा, शिवना प्रकाशन पी. सी. लैब, सम्राट कॉन्प्लेक्स बेसमेंट बस स्टैंड. सीहोर-466001(म. प्र.),पृष्ठ.19, 4) कहानी संग्रह: कौन- सी ज़मीन अपनी, कहानी ' बिखरते रिश्ते',डॉ.सुधा ओम ढींगरा, शिवना प्रकाशन पी. सी. लैब, सम्राट कॉन्प्लेक्स बेसमेंट बस स्टैंड. सीहोर-466001(म. प्र.),पृष्ठ.79, 5) कहानी संग्रह: कौन- सी ज़मीन अपनी, कहानी 'बिखरते रिश्ते',डॉ.सुधा ओम ढींगरा, शिवना प्रकाशन पी. सी. लैब, सम्राट कॉन्प्लेक्स बेसमेंट बस स्टैंड. सीहोर-466001(म. प्र.),पृष्ठ.80

(शोध आलेख)

अदब के सिर पर मुकुट-सा है इलाहाबाद

शोध लेखक : डॉ. महेश दवंगे
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी)
सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय

"जो नाम लेती हूँ इलाहाबाद / पत्थर का वह शहर / एक शख्स हो आता है / शहर नहीं रह जाता फिर / धड़कने लगता है उसका सीना.."1 कवि रुचि भल्ला की यह पंक्तियाँ इलाहाबाद के प्रति गहरी संवेदना को अभिव्यक्त करती है। इलाहाबाद एक सांस्कृतिक एवं साहित्यिक शहर है। एक बार जो इस विरासत से जुड़ता है, फिर कभी इलाहाबाद का दामन नहीं छोड़ता। इस कला नगरी का हर कोई पुजारी बन जाता है। इस शहर के मिट्टी की ख़ुशबू अंत तक उसकी अंतरात्मा से जुड़ी रहती है। यह शहर भारत के अन्य शहरों की तरह ही है, लेकिन इसकी बुनावट में कुछ ख़ास है, जो सदियों से इसे अन्य से अलगाती है। चाहे धर्म हो या साहित्य, जीवन हो या मृत्यु, संघर्ष हो या विराम, इतिहास हो या वर्त्तमान इलाहाबाद की जड़ें इन सभी से समान रूप से जुड़ी हैं। साहित्य का तो यह गढ़ है। प्राचीन समय से ही यह शहर साहित्य में रचा-बसा है। इसी शहर की उर्वरक मिट्टी ने कितने ही साहित्यकारों की कलम में जान फूँकी है। प्रेमचंद, सुमित्रानंदन पन्त, निराला जी, महादेवी वर्मा, भैरवप्रसाद गुप्त, उपेन्द्रनाथ अश्क, एजाज हुसैन, अकबर इलाहाबादी, फ़िराक गोरखपुरी समेत कई रचनाकार इसी शहर की मिट्टी से उपजे है। इनकी रचनाओं में इलाहाबाद हमेशा जीवित रहा है।

इलाहाबाद सपनों और उम्मीदों का शहर है। यह आस्था और विश्वास का प्रतीक है। यह कला और कलाकारों की भूमि है। इस मिट्टी के कण-कण में संघर्ष और साहस भरा पड़ा है। इस मिट्टी पर पैर ज़माना आसान नहीं, गहराई में धँसना पड़ता है। खून-पसीने से सींचना पड़ता है, तब कर्म के फूल खिलते हैं और ख़ुशबू बिखेरने लगती है। हिन्दी के तमाम साहित्यकार इस आँच में तपकर ही अपनी पहचान बना पाये। हम अकसर परिणाम देखते हैं, प्रक्रिया नहीं। किसी व्यक्ति की सफ़लता के पीछे असीमित संघर्ष की प्रक्रिया होती है। ये उनके व्यक्तित्व से जुड़ने पर पता चलती है। इस दृष्टि से संस्मरण, आत्मकथा, जीवनी महत्त्वपूर्ण विधाएँ है। वैसे, इलाहाबाद की भूमि पर लिखे कई संस्मरण लेखकों का संघर्ष, उनकी रचनात्मकता, वैचारिकता आदि के साथ ही इलाहाबाद की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विरासत को अभिव्यक्त करते हैं। 'ग़ालिब छुटी शराब'- रवीन्द्र कालिया, 'पुराने इलाहाबाद की यादें'-हेमेन्द्र सक्सेना, 'छात्र जीवन और इलाहाबाद'-अवनीश यादव, 'भुलाएँ तो कैसे वो इलाहाबाद'-सुभाष राय, 'लौट आ ओ धार'-दूधनाथ सिंह आदि कई संस्मरण में इलाहाबाद की गलियारों की सुगंध है। लेखिका ममता कालिया का 'जीते जी इलाहाबाद' यह संस्मरण इन्हीं यादों का पिटारा है, जिसमें अपने समय के लेखकों का जीवन संघर्ष अंकित है। इनके हर सुख-दु:ख का यह शहर गवाह है। लेखिका तभी तो कहती है, 'जब तक जीती हूँ इलाहाबाद हुई जाती हूँ, जब नहीं रहूँगी इलाहाबाद हो जाऊँगी मैं..' लेखिका ममता कालिया आत्मिक रूप से इलाहाबाद से जुड़ी हैं।

'जीते जी इलाहाबाद' यह संस्मरण राजकमल प्रकाशन, दिल्ली से सन 2021में प्रकाशित हुआ। बहुत कम समय में इस संस्मरण ने पाठकों के बीच अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। दरअसल यह एक यात्रा है, उन लोगों से परिचित होने की, शायद जिनके बिना आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखा नहीं जाएगा। इलाहाबाद जो हमेशा साहित्यिक गतिविधियों का केंद्र रहा है, साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में भी इस शहर की भूमिका उल्लेखनीय रही है। यहाँ से तकरीबन डेढ़ सौ साल से साहित्यिक पत्रिकाएँ निकल रही है। 1877 में बालकृष्ण भट्ट के संपादन में 'हिन्दी प्रदीप' पत्रिका का आरंभ यही से हुआ। बाद में हिन्दी साहित्य की महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओं का दौर यही से शुरू हुआ। अभ्युदय, मर्यादा, सरस्वती, प्रतीक, कहानी, नई कहानी, हंस, चाँद, माध्यम, अभिप्राय, उन्नयन आदि महत्त्वपूर्ण पत्रिकाएँ यहीं से शुरू हुई। वैसे यह आसान काम नहीं था। तमाम अभावों में कई लेखकों ने इन पत्रिकाओं के अस्तित्व को जीवित रखा। कुछ तो समय के साथ बह गई, लेकिन कुछ पत्रिकाएँ आज भी अपनी साहित्यिक धरोहर को प्रवाहित कर रही है। पत्रिकाओं के साथ कुछ पुस्तकों के प्रकाशन गृह भी इलाहाबाद में मौजूद थे। जिसमें लोकभारती प्रकाशन महत्त्वपूर्ण था। कुछ लेखक जैसे, भैरवप्रसाद गुप्त, मार्कण्डेय, शिवकुमार सहाय, शैलेश मटियानी आदि ने भी अपने प्रकाशन गृह खुलवाये, जिसमें

डॉ. महेश दवंगे
सहायक अध्यापक- हिन्दी विभाग
सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय
गणेश खिंड रोड
पुणे-411007 महाराष्ट्र
मोबाइल- 9822880790
इमेल- mdawange200@gmail.com

सबसे अधिक सफ़लता उपेन्द्रनाथ अश्क को ही मिली, जिनका नीलाभ प्रकाशन आज भी जीवित है। यह साहित्यिक गहमा-गहमी का दौर था और आए दिन नई-नई पत्रिकाएँ और प्रकाशन निकल रहे थे। जैसे,"अन्य शहरों की तरह इलाहाबाद में भी आए दिन अख़बार और पत्र-पत्रिकाएँ निकलते और बंद होते रहते हैं। पेंशन और प्रौविडेंट फंड तो दूर की बात है। पत्रकारों, स्तंभकारों को पारिश्रमिक भी ठीक से नसीब नहीं होता। भारत, स्वतंत्र भारत, अमृत प्रभात जैसे अख़बार अनेक वर्ष निकालने के बावजूद अपना अस्तित्व नहीं बचा पाये। न जाने कितने ही पत्रकार विस्थापित हुए कितने ही शहर छोड़ गए। विकल्प का अभाव जहाँ सृजनधर्मिता की आधारभूमि बना वहाँ न जाने कितने परिवारों को निराधार कर गया। जब-जब इलाहाबाद में विस्थापन हुआ है, उसकी जड़ में किसी-न-किसी अख़बार का विध्वंस रहा है।"2 सभी लेखक और पत्रकारों के लिए यह समय चुनौतीपूर्ण था। लेखन के साथ ही रचना को पाठकों तक पहुँचाने का दायित्व उन्हीं पर था। रवीन्द्र कालिया ने भी अपना प्रकाशन शुरू किया था। साथ ही अपनी प्रतिभा से 'गंगा-यमुना' साप्ताहिक को काफ़ी चर्चित बना दिया था। किंतु वह भी 1999 बंद हो गया। इलाहाबाद की प्रगतिशील चेतना में हंस और कहानी पत्रिका का योगदान भी महत्त्वपूर्ण है। हंस के संपादक शिवदानसिंह चौहान को जब गिरफ्तार किया गया तो कुछ समय तक इसका दायित्व जैनेन्द्र ने संभाला। कथा सम्राट प्रेमचंद ने तो हंस पत्रिका को जन-जन तक पहुँचाया। एक समय था जब इलाहाबाद में हंस के साथ ही अज्ञेय की 'प्रतीक', धर्मवीर भारती की 'निकष', अमरकांत की 'बहाव' आदि पत्रिकाओं की धूम मची थी। लेखिका ममता कालिया ने इस संस्मरण में इन सभी अनकही-अनसुनी बातों का विवरण प्रस्तुत किया है। शैलेश मटियानी का संघर्ष तो आश्चर्यजनक है। उस समय वे 'विकल्प' पत्रिका के संपादक थे। वे दो तरह से पत्रिका छपवाते। एक विशुद्ध साहित्यिक तो दूसरी विज्ञापन के साथ। यह विशेष बात थी कि लेखक स्वयं अंक पहुँचाने केलिए सबके यहाँ जाते थे। यह असल में साहित्यिक पत्रिका का एकपात्री अभियान था। यह समय पत्रिकाओं केलिए निश्चित ही चुनौतीपूर्ण था, किंतु साहित्यिक माहौल बनाने में इन्हीं पत्रिकाओं की भूमिका अहम् थी।

उन दिनों हर गली-मोहल्ले में साहित्यिक बहस छिड़ी हुई थी। सब एक-दूसरे को ख़ूब पढ़ते थे। वाद-विवाद-संवाद हर जगह मौजूद था। कोई नई क़िताब बाज़ार में आती तो सब लोग उस पर टूट पड़ते। इस स्पर्धा में लेखक, सह-लेखक, विद्यार्थी, शोधार्थी सभी शामिल थे। कॉफ़ी हाउस में कई लेखक जैसे, भैरवप्रसाद गुप्त, मार्कण्डेय, शेखर जोशी, लक्ष्मीकांत वर्मा, अमरकांत, रवीन्द्र कालिया समेत कई लेखक इस अंतहीन बहस में शामिल होते। साहित्यिक गतिविधियों का यह स्वर्णिम दौर था। यह वही समय है जब इलाहाबाद में तिकड़ी बनाने का रूझान अधिक था। जो भी तिकड़ी बनायी जाती वह साहित्यिक जगत् में आगे निकलती। जैसे, निराला, पंत, महादेवी। वैसे ही भैरव, मार्कण्डेय, शेखर जोशी।, मार्कण्डेय, दुष्यंत कुमार, कमलेश्वर। अमरकांत हमेशा अपनी एक नई राह पकड़कर चलते रहे। इन सब पर पढ़ने का जुनून था। सबके पास अपना अकाट्य तर्क था। अत: कभी बहसें वाद-विवाद पर ही अटक जाती, संवाद तक पहुँच नहीं पाती। कई गोष्ठियों में तो बहस चरमोत्कर्ष पर होती। क्योंकि इस समय इलाहाबाद विश्वविद्यालय में कई विभागों में एक-से-बढ़कर एक विद्वान मौजूद थे। धीरेन्द्र वर्मा, धर्मवीर भारती, रामकुमार वर्मा, हरदेव बाहरी, रामस्वरूप चतुर्वेदी, जगदीश गुप्त, रघुवंश आदि विद्वान हिन्दी विभाग की शान थे। तो अन्य विभागों में प्रकाशचंद्र गुप्त, फ़िराक, यदुपति सहाय, विजयदेवनारायण साही आदि अलग-अलग भाषाओं के ज्ञाता एवं प्रखर आलोचक मौजूद थे। इनके द्वारा लिखा साहित्य वर्त्तमान में भारत के कई विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में शामिल है। इसी शहर में हिन्दुस्तानी अकादमी की ओर से एक गोष्ठी का आयोजन किया गया था। इसकी अध्यक्षता शहर के जाने-माने न्यायमूर्ति मार्कंडेय काटजू कर रहे थे। उन्होंने अपने भाषण में कहा, "वैसे देखा जाए तो प्रेमचंद इतने बड़े कथाकार नहीं थे कि..." भैरव जी हॉल में चिंघाड़े, "आप प्रेमचंद के बारे में क्या जानते हो, क्या समजते हो। किसने आपको जज बना दिया। भागो यहाँ से।"3 भैरवप्रसाद की दहाड़ ने अध्यक्ष को भागने पर मजबूर किया। तो वही अन्य एक गोष्ठी में कवि नीलाभ ने नामवर जी को चुनौती देते हुए कहा,"आप बताइए क्या आपने निर्मल वर्मा के बाद की कहानियाँ पढ़ी है, क्या आपने धूमिल के बाद हिन्दी कविता पढ़ी है?"4 नामवर जैसे मूर्धन्य आलोचक को भी कवि नीलाभ ने कटघरे में खड़ा किया। नामवर जी ने भी उत्तर देते हुए संवाद को आगे बढ़ाया। दरअसल यह उस समय का यथार्थ था कि इलाहाबाद की गलियाँ हो या अकादमिक गोष्ठियाँ साहित्यिक बहस अपनी चरमोत्कर्ष पर थी।

लेखिका ममता कालिया और पति रवीन्द्र कालिया मुंबई शहर छोड़ इलाहाबाद आकर बसे थे। रवीन्द्र अपनी इच्छा से तो लेखिका अनिच्छा से ही आई थीं। लेखिका को मुंबई शहर पसंद था। जबकि रवीन्द्र अपनों से धोखा खाकर एवं प्रताड़ित होकर इलाहाबाद की तरफ मुड़ गए थे। अनजान रास्ता मुश्किलों भरा था, मगर यही से शुरू हुई एक आदर्श दंपति की लेखकीय साझेदारी की यात्रा। दोनों ने हर समस्या एवं संकट का साथ में मुकाबला किया। और यही इलाहाबाद उनकी पहचान का रास्ता बना। आर्थिक समस्याएँ तो थी ही मगर दोनों का हौसला भी बुलंद था। बेहतर मकान के लिए पैसा नहीं था, तो रानी मंडी की 370 नंबर की आधी पक्की और आदि खपरैल से ढकी इमारत में इनका बसेरा हुआ। वही नीचे की मंज़िल पर प्रेस का कार्य शुरू हुआ। कुल मिलाकर किराया तीन सौ रुपये महिना था। बाद में यही घर मित्र-मंडली की बैठक एवं संवाद का स्थायी स्थल बना। घर में वस्तुओं का अभाव था, किंतु इसकी पूर्ति दोनों के आपसी स्नेह और प्यार से हो जाती थी। दोनों की नोक-झोंक से घर की दीवारें खिल

उठती। गरमी के दिनों में रवीन्द्र कहते, "तुम्हारे लिए ताजमहल तो बनवा नहीं पाऊँगा ममता, कूलर ही कबूल करो।"5 इसी हँसी-ख़ुशी के माहौल में समय बीतता गया। मगर इस समय में रवीन्द्र एवं ममता को काफ़ी संघर्ष भी करना पड़ा। उन्होंने कुछ पत्रिकाओं के दफ्तर में भी काम किया। फिर भी कभी-कभी बेरोज़गारी से रवीन्द्र का सामना हो ही जाता। नामवर सिंह ने रवीन्द्र को लिखे एक पत्र में भी इसका उल्लेख हुआ है। 6

रवीन्द्र ने कभी परिस्थिति से समझौता नहीं किया। वे हर हाल में, हर समय में अपनी-अपनी लड़ाई लड़ते रहे। रानी मंडी में ही उन्होंने प्रेस खुलवाया। पत्रिका प्रकाशन का कार्य भी किया। उनके इस संघर्ष में ममता जी साए की तरह उनके साथ रही। इस संस्मरण में ज्ञानरंजन, काशीनाथ सिंह, अमरकांत, कवि नीलाभ, शैलेश मटियानी, दूधनाथ सिंह आदि कई रचनाकारों के संघर्षपूर्ण जीवन के अंश सम्मिलित है। साहित्यिक क्षेत्र में अपनी अलग पहचान बनानेवाले ये सभी रचनाकार अपने समय की आँच में तपकर ही जी उठे हैं। इनके भीतर भी दु:ख और पीड़ा असीमित है, बावजूद इन्होंने अपनी रचनाओं में समाज की पीड़ा को अभिव्यक्त किया है। शैलेश मटियानी आजीवन अपने बेटे मनीष की यादों में समाये रहे। बेटे की मृत्यु ने उनको भीतर से तोड़ दिया था। वे रवीन्द्र और ममता के संमुख अपना दु:ख व्यक्त करते हुए कहते हैं, "मनु बेटे मुझे माफ़ करना, मैं अभी भी जीवित हूँ।"7

इलाहाबाद ने हमेशा रचनाकार को स्पंदित किया है। उसकी प्रतिभा को कभी बिखरने नहीं दिया। यही वजह है भारतीय साहित्य और साहित्यकारों का इतिहास इलाहाबाद की हर गली, हर सड़क में समाया हुआ है। इस मिट्टी ने हमेशा आनेवाली पीढ़ी को बहुत कुछ दिया है। अत: रचनात्मक प्रतिरोध इस शहर की ख़ासियत रही है। यह समय कहानी लेखन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण था। इस समय नई कहानी की शक्तिशाली त्रयी- मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव आदि का कहानी क्षेत्र में बड़ा नाम था। इनको पढ़ कर कई नए रचनाकार साहित्यिक जगत् में प्रवेशित हो रहे थे। किंतु इलाहाबाद की धरती पर आगे बढ़ रहे लेखकों ने अपनी अलग पहचान बनाई। ज्ञानरंजन, दूधनाथ सिंह, काशीनाथ सिंह, रवीन्द्र कालिया आदि ने नई कहानी की फ़ार्मूलाबद्ध रचनाओं का विरोध किया। इन्होंने वरिष्ठ कहानीकारों की उपशाखा बनने की बजाए अलग से अपनी ज़मीन तैयार की। ये सभी समकालीन रचनाकार थे, लेकिन इनकी आंतरिक रचनात्मकता की बुनावट अलग थी। जैसे, "ज्ञानरंजन, दूधनाथ सिंह, काशीनाथ सिंह, रवीन्द्र कालिया ये सब साठोत्तरी पीढ़ी के प्रमुख कथाकार थे, जिनमें कोई किसी की कार्बन-कॉपी नहीं था। दूधनाथ सिंह इन सबमें वरिष्ठ थे और गरिष्ठ। वे जटिल फंतासी के जरिए अलक्षित यथार्थ तक पहुँचने की कोशिश करते। उनकी कहानियों में इस तरह के प्रयोग अधिकाधिक हुए। ज्ञानरंजन दम तोड़ती व्यवस्था, टूटते रिश्ते और घिसटती विसंगतियों के कहानीकार थे। उन्होंने अपने कथा संकलन का शीर्षक भी 'सपना नहीं' रखा। वे अपनी कहानियों में सच का क्रूरतम स्वरुप दिखाने से नहीं हिचकते। यथार्थवाद का दामन तीनों ने अपनी तरह से थाम रखा था। रवीन्द्र कालिया ने अपनी कहानियों में कथ्य को कॉमिक एंगिल बना कर सचाइयों को लिख डाला तो सहज ही 'एब्सर्ड' विधा का सूत्रपात हो गया।"8 इन सभी कथाकारों ने अपनी एक अलग शैली विकसित की। भैरवप्रसाद, मार्कण्डेय, अमरकांत, शेखर जोशी आदि कथाकारों ने इसी मिट्टी में अपने पैर जमाए। इलाहाबाद की तिकड़ी में भी ये रचनाकार शामिल थे। वाद-विवाद-संवाद तो इनकी दिनचर्या का अहम् हिस्सा था। नोंक-झोंक भी जारी रहती। कभी उभरते रचनाकार को उत्साहित किया जाता तो हतोत्साहित करनेवालों की भी कमी नहीं थी। हर जगह इन लेखकों के बीच तार्किक संवाद शुरू रहता। इनमें भैरव जी बवंडर ही थे। वे चर्चा को कटुता की हद तक पहुँचाते। मगर किसी में इतना साहस नहीं था कि उनको रोक पाते। इससे कई बार लेखकों के बीच अनबन भी हो जाती। जैसे एक ज़माने में भैरव जी एवं अश्क जी बड़े घनिष्ठ मित्र थे बाद में दोनों में काफ़ी कटुता आ गई। भैरव जी ने 'अंतिम अध्याय' यह उपेंद्रनाथ अश्क जी पर ही लिखा था। बाद में अश्क जी ने 'चेहरे अनेक' इस किताब में उनको जवाब दिया था। इलाहाबाद की साहित्यिक संस्कृति के ये महत्त्वपूर्ण पल थे। इस भूमि ने बड़े-बड़े रचनाकारों को पैदा किया है। यही वजह है हिन्दी साहित्य का इतिहास इलाहाबाद की मिट्टी के बिना अधूरा ही है।

दरअसल 'जीते जी इलाहाबाद' यह संस्मरण इलाहाबाद की सांस्कृतिक एवं साहित्यिक पृष्ठभूमि को अभिव्यक्त करता है। इसमें अपने समय के महत्त्वपूर्ण रचनाकारों के जीवन संघर्ष को भी अभिव्यक्त किया गया है। ये सभी रचनाकार इलाहाबाद की साहित्यिक धरोहर है। इस शहर ने रचनाकार की रचना प्रक्रिया को आंदोलित किया है। इनकी कलम में इस शहर की ख़ूबसूरती बसी है। तभी तो इनकी हर रचना में इलाहाबाद की उपस्थिति होती ही है। स्वयं लेखिका भी अटूट रिश्ते की तरह इलाहाबाद से जुड़ी है।

अपनों का भले ही संग-साथ छुट जाए, इलाहाबाद ने हमेशा ही अपनी बाहें फैलाकर उन घावों पर मरहम लगाया है। तभी तो लेखिका कही भी रहे उनके दिल के कोने में इलाहाबाद की यादें हमेशा घर कर गई है। लेखिका ने जो मुकाम पाया है, उसमें इस शहर की भी साझेदारी रही है। इस शहर ने क्या कुछ नहीं दिया है, साहित्य, संस्कृति, राजनीति, परंपरा आदि सभी में इलाहाबाद की एक अलग पहचान है। प्राचीन समय से लेकर वर्त्तमान समय तक इलाहाबाद की यह सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परंपरा अविरत शुरू है। तभी तो तुषार जी इलाहाबाद के संदर्भ में कहते हैं,'अदब के सर पर मुकुट-सा है इलाहाबाद...।'

000

संदर्भ- 1. जीते जी इलाहाबाद, ममता कालिया, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 79, 2. वहीं, पृ.77, 3. वहीं, पृ.35, 4. वहीं, पृ.127, 5. वहीं, पृ.42, 6. वहीं, पृ.126, 7. वहीं, पृ.91, 8. वहीं, पृ.54

(शोध आलेख)

नागार्जुन: यथार्थ चेतना एवं लोक दृष्टि

शोध लेखक : सरिता कुमारी
सहायक शिक्षिका,
परियोजना बालिका उच्च विद्यालय,
इचाक, हजारीबाग (झारखण्ड)

शोध-सार - हिन्दी काव्य साहित्य के अन्तर्गत नागार्जुन प्रतिबद्ध जनवादी कवियों में अग्रगण्य हैं। उनके काव्य में प्रगतिशीलता और प्रयोगशीलता दोनों ही दृष्टिगत होती हैं। उनकी कविताओं में यथार्थ की विरुपताओं के अंकन के साथ-साथ मानव-मन की रागात्मक और सौंदर्यमयी छवियों का बख़ूबी अंकन हुआ है। जो अपनी संवेदना और कलात्मकता की दृष्टि से अलग पहचान बनाती है।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी नागार्जुन ने संस्कृत, हिन्दी और मैथिली में कविताएँ करने के साथ-साथ उपन्यास-लेखन के क्षेत्र में भी अपनी एक विशिष्ट पहचान बनायी। राजनीतिक रूप से नागार्जुन साम्यवादी विचारधारा के पोषक रहे, इसलिए इनकी कविताओं में सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है। इनकी कविताओं में सहजता, आक्रोश, व्यंग्य, अक्खड़ता, हुंकार एवं ललकार है। शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाकर शोषितों के प्रति सहानुभूति दिखाकर तथा अन्याय का विरोध करने वाली कविताओं की रचना करके उन्होंने पीड़ित मानवता को स्वर प्रदान कर कवि के उत्तरदायित्व को भली-भाँति निबाहा है।

बीज शब्द: मेरुदंड, संघर्षशील, मार्क्सवाद, लोकदृष्टि, पूँजीवाद, औपनिवेशिक, यथार्थवाद

विषय-विश्लेषण - नागार्जुन शोषित और पीड़ित समाज का एक ऐसा निष्पण रूप हैं जिनका जीवन अभावों, दु:खों में बीता जैसा कि महान् आलोचक डा. रामविलास शर्मा ने कहा- जो नामवर सिंह द्वारा सम्पादित पुस्तक नागार्जुन: प्रतिनिधि कविताएँ के पृष्ठ आवरण में उद्धृत है- "जहाँ मौत नहीं बुढ़ापा नहीं है, जनता के असन्तोष और राज्यसमाई जीवन का संतुलन नहीं है वह कविता है नागार्जुन की। ढाई पसली के घुमन्तु जीव, दमे के मरीज, गृहस्थी का भार- फिर भी क्या ताक़त है, नागार्जुन की कविताओं में! और कवियों में जहाँ छायावादी कल्पनाशीलता प्रबल हुई है, नागार्जुन की छायावादी काव्य-शैली कभी की ख़त्म हो चुकी है। अन्य कवियों में रहस्यवाद और यथार्थवाद को लेकर द्वन्द्व हुआ है, नागार्जुन का व्यंग्य और पैना हुआ है, क्रांतिकारी अवस्था और दृढ़ हुई है, उनके यथार्थ-चित्रण में अधिक विविधता और प्रौढ़ता आई है।..... उनकी कविताएँ लोक-संस्कृति के इतना नजदीक हैं कि उसी का एक विकसित रूप मालूम होती हैं। किन्तु वे लोकगीतों से भिन्न हैं, सबसे पहले अपनी भाषा-खड़ी बोली के कारण, उसके बाद अपनी प्रखर राजनीतिक चेतना के कारण और अंत में बोलचाल की भाषा की गति और लय को आधार मानकर नए-नए प्रयोगों के कारण। हिन्दी भाषी..... किसान और मज़दूर जिस तरह की भाषा..... समझते और बोलते हैं, उसका निखरा हुआ काव्यमय रूप नागार्जुन के यहाँ है।"1

नागार्जुन सत्ता, व्यवस्था एवं पूँजीवाद के प्रति आक्रोश व्यक्त करने में निरंतर अग्रणी रहे। उनकी कविता में राष्ट्रप्रेम तथा यथार्थ भारत की तस्वीर झलकती है। उन्होंने युगीन यथार्थ एवं समसामयिक गतिविधियों को अपने काव्य का विषय बनाया। समाज के विभिन्न शोषित वर्गों का बारीकी से अध्ययन किया और परखा कि किस प्रकार शोषित वर्ग अभावों की चक्की में पिस रहा है, श्रमिक भरपेट भोजन नहीं जुटा पर रहा, किंतु उच्च वर्ग भोग-विलास में पानी की तरह धन बहा रहा है। लोग मुखौटा लगाए हुए दोहरी ज़िंदगी जी रहे हैं। बाहर से खद्दरधारी हैं पर भीतर से कसाई। इसी संदर्भ में 'सच न बोलना' नामक कविता से निम्न पंक्तियाँ उद्धृत हैं- "जमींदार है, साहुकार है, बनिया है, व्यापारी है, / अन्दर-अन्दर विकट कसाई, बारह खद्दरधारी हैं!"2

दूरदर्शिता व यथार्थता के प्रतिबिम्ब बाबा नागार्जुन द्वारा तत्कालीन समस्याओं पर उठाये गए संवेदनशील मुद्दे वर्तमान दौर में प्रासंगिकता का स्वरूप धारण किये हुए हैं। इनकी कविताएँ एक ओर जहाँ जन-चेतना को झंकृत करती हैं, तो वहीं दूसरी ओर सामाजिक चेतना के पैरोकार बुद्धिजीवी वर्ग को सोचने पर मजबूर करती हैं। नागार्जुन का केन्द्रीय विषय भावना और कल्पना से इतर लोक-दृष्टि, जन-जागरूकता, मानवीय, मूल्यों पर आधारित हैं। उनका विचार कभी भी

सरिता कुमारी
C/o ज्योतिन प्रकाश कुशवाहा
राजकीय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय,
झील रोड, हजारीबाग-825301
(झारखण्ड)
मोबाइल- 6200763170
ईमेल- sarita763170@gmail.com

रहस्यवाद और यथार्थवाद के द्वंद्व की जटिलता में नहीं पड़ा बल्कि यथार्थ चित्रण में अधिक विविधता के साथ स्पष्टत: दिखायी पड़ता है, अर्थात् उनकी कविताएँ लोक-संस्कृति के इतने नज़दीक हैं कि उसी का एक विकसित रूप मालूम होता है।

नागार्जुन की कविताओं में जन-जीवन की आशा-आकांक्षा व्याप्त है तथा वे सामाजिक चेतना से परिपूर्ण हैं। उन्होंने अभावों से ग्रस्त पीड़ित एवं शोषित सर्वहारा वर्ग की वेदना को अनुभव किया। यही कारण है कि उन्हें सामाजिक विषमता की बढ़ती हुई खाई दुखी करती है और वे अपनी पीड़ा कविता के माध्यम से व्यक्त करते हैं। साथ ही कवि ने रचना में यथार्थ का चित्रण अपनी पूरी नग्नता एवं सच्चाई के साथ की है। उन्होंने कुछ भी छिपाने का प्रयास नहीं किया। कवि वर्तमान और भावी संभावनाओं के परिप्रेक्ष्य में इस बात को उद्घाटित करते हैं कि सत्य बोलना पाप है, और चापलूसी करना, झूठ बोलना युगधर्म बन गया है उक्त संदर्भ में उनकी चंद पंक्तियाँ निम्न हैं- "सपनों में भी सच न बोलना, वर्ना पकड़े जाओगे, / भैया, लखनऊ-दिल्ली पहुँचे, मेवा-मिसरी पाओगे। / माल मिलेगा, रेत सको यदि गला मजूर-किसानों का, / हम मर-भुक्खों से क्या होगा, चरण गहो श्रीमानों का!"3

नागार्जुन के व्यक्तित्व पर क्लासिकी मार्क्सवाद का पूरा प्रभाव दृष्टिगत होता है उनके अन्तर्मन में विद्यमान करुणा, मैत्री, शांतिप्रियता तथा मानव-प्रेम, बौद्ध-धर्म, करुणा के प्रभाव के कारण हैं। उनके काव्य मानव-जीवन के प्रति गहरी सम्पृक्ति के कारण सम्प्राण और जन-संवेद्य बन पड़े हैं। उनकी भाषा में सरलता, सहज-संवेद्य बन पड़े हैं। उनकी भाषा में सरलता, सहज-सम्प्रेषणीयता के साथ ही उसमें व्यंग्य की तल्खी के साथ-साथ करुणा और विनोद-वक्रता भी विद्यमान है। शिक्षा प्रणाली की स्थिति से पाठकों को अवगत कराते हुए नागार्जुन 'मास्टर' नामक कविता में लिखते हैं- "घुन-खाए शहतीरों पर की बाराखड़ी विधाता बाँचे / कटी भीत है, छत चूती है, आले पर बिसतुइया नाचे / बरसाकर बेबस बच्चों पर मिनट-मिनट में पाँच तमाचे / दुखहरन मास्टर गढ़ते रहते किसी तरह आदम के साँचे।"4

नागार्जुन समाज के सूक्ष्म पारखी थे, उन्होंने समाज को समग्रता के साथ अध्ययन किया। उनकी विहंगम दृष्टि का ही परिणाम है कि लोकजीवन में दिखने वाली समान वस्तु औरों की संवेदना को अछूती छोड़ जाती है, वहीं उनकी रचना-भूमि बन जाती हैं। इस दृष्टि से काव्यात्मक साहस में नागार्जुन अप्रतिम हैं। उन्हीं की बीहड़-प्रतिभा एक मादा सुअर पर 'पैने दाँतों वाली' नामक कविता में उद्धृत की है' "जमना-किनारे / मखमली दूबों पर / पूस की गुनगुनी धूप में / पसरकर लेटी है / यह भी तो मादरे हिंद की बेटी है।"5

नागार्जुन की लोकदृष्टि अत्यंत व्यापक और विशद् है। उन्होंने जहाँ समाज के प्रत्येक कुवृत्ति को परत-दर-परत पर्दाफाश किया वहीं देश में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं योजनाओं की विफलता को यथार्थ रूप में रेखांकित किया। नागार्जुन जनकवि हैं यह स्वयं चरितार्थ भी करते हैं, क्योंकि उनकी भाषा, विचारधारा, रहन-सहन आदि विषयानुरूप ढाल लेते हैं। वे वास्तव में जनता के चारण हैं। वे गाँव-गली की बात कहते हैं जिससे सब परिचित हैं। बिना किसी लाग-लपेट के अपनी बात को कहने वाले कवि के रूप में सर्वाधिक लोकप्रिय हैं।

चूँकि नागार्जुन राजनीतिक रूप से साम्यवादी (मार्क्सवादी) विचारधारा के कवि हैं, अत: राजनीतिकरण से उपजे शोषणमूलक विचारधारा की परिधि में परिपाटी उनकी लेखनी का उग्र बिन्दु रहा है। उन्होंने उन मुद्दों को मुखर रूप प्रदान किया जो समाज की ढाँचागत व्यवस्था में नकारात्मक परिवर्तन कर देता है। सामाजिक वंचनाओं, व्यक्तिगत स्वतंत्रता व उनकी अभिव्यक्ति की कटौती के प्रति कवि की पीड़ा संवेदनशील हैं। उन्होंने 'अकाल और उसके बाद' नामक कविता में अकाल के वीभत्स रूप का चित्रांकन किया है कि किस प्रकार अनाज के अभाव में प्राणीजन त्राहिमाम कर उठते हैं, वसुधा की सजीवता शून्य निर्जनता के घोर संताप में तब्दील हो जाती है। कवि की मर्मस्पर्शी चेतना यहीं तक नहीं ठहरती बल्कि उन्होंने निम्न पंक्तियों के माध्यम से चूल्हा-चक्की, कानी-कुतिया, छिपकिली, चूहा की त्रासदी को भी दर्शाते हैं- "कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास / कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास / कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त / कई दिनों तक चूहों की भी हालत रहीं शिकस्त।"6

नागार्जुन की लोकदृष्टि केवल समाज की व्यवस्थाओं पर ही नहीं गई बल्कि अप्रकाशित विषयों पर भी उनकी निगाह है, यह उनकी निगाह है, यह उनकी सूक्ष्म चेतना का ही परिणाम है कि रिक्शा खींचने वाले, फटी बिवाइयों वाले, गुट्ठल घट्ठो वाले जैसे विषयों पर 'खुरदरे पैर' नामक कविता में चर्चा की है- "खुब गए / दूधिया निगाहों में / कटी बिवाइयोंवाले खुरदरे पैर / धँस गए / कुसुम-कोमल मन में / गुट्ठल-घट्ठों वाले कुलिश-कठोर पैर।"7

इसी तरह यथार्थ के वे रूप जिन्हें शिष्ट और सुरुचि पूर्ण कवि गण वीभत्स समझकर छोड़ देना ही उचित समझते हैं, नागार्जुन की साहसिक कल्पना से काव्य का रूप प्राप्त करते हैं।

'प्रभु तुम कर दो वमन। / होगा मेरी क्षुधा का शमन।' जैसी पंक्तियाँ लिखने का साहस नागार्जुन ही कर सकते हैं। इसी प्रकार 'प्रेत का बयान' नामक कविता में भूख के कारण मरे अध्यापक की दशा का यथार्थ इन शब्दों में करते हैं- "ओर रे प्रेत-", / कड़क कर बोले नरक के मालिक यमराज / "सच सच बतला।" / कैसे मरा तू ? / भूख से, अकाल से ? / बुखार, कालाजार से ?"8

कविवर नागार्जुन राजनीतिक व्यवस्था से ऊपजी विकृति को भी दर्शाते हैं। वे कहते हैं कि अभी भी भारत औपनिवेशिक मानसिकता से ऊबर नहीं पाया है। देश के नए नीति-नियामक के रगों में लोकतंत्र की महक कम और राजसत्ता की भूख ज़्यादा आकर्षित करती है। कविवर यह खेद प्रकट करते हुए 'आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी' नामक कविता में लिखते हैं- "आओ रानी हम ढोएँगे पालकी, / यही हुई है राय जवाहर लाल की /

रफू करेंगे फटे-पुराने जाल की / यही हुई है राय जवाहर लाल की। / आओ रानी हम ढोएँगे पालकी।"9

इस प्रकार अपने युग के सर्वकालीन कवियों में नागार्जुन निश्चित तौर पर अग्रगण्य माने जाएँगे। कवि ने यथार्थ चेतना व लोक-दृष्टि पर आधारित कविता लिखकर समाज को एक नई दिशा प्रदान की। इनकी कविताओं में जनमानस से जुड़े विभिन्न पहलुओं का सांगोपांग वर्णन मिलता है। कवि की दृष्टि एक ओर जहाँ भौगोलिक सीमाओं को पार कर जाती हैं वहीं दूसरी ओर इनकी सूक्ष्म विषयक शैली भी देखने को मिलती है। समाज में घटित होने वाली घटनाओं का साहित्यिककरण का स्वरूप यदि देखना है तो नि:संदेह नागार्जुन खरे उतरते हैं। प्रेमचंद के पश्चात् पीड़ित, शोषित किसान मज़दूर वर्ग का जीवन चित्रण करने वाले कथाकारों में नागार्जुन का नाम उल्लेखनीय है।

नागार्जुन का साहित्य में समाजवाद, यथार्थवाद, मार्क्सवाद का साहित्यिक संस्करण है। समाजवादी यथार्थवाद सामाजिक विषमताओं के मूल कारण की पहचान कर उन्हें नष्ट करने का प्रतिक्रियात्मक हल प्रस्तुत करता है। इसके अंदर ऐसे समाजों का चित्र उपस्थित किया जाता है, जो उपेक्षित निम्न श्रेणी के हों तथा जीवनयापन के लिए प्रस्तुत अपनी विषम परिस्थितियों से संघर्ष करा रहे हों।10

बदलते हुए परिवेश ने मनुष्य के दृष्टिकोण को भी बदला है, जिससे उनके अंदर भारतीय संस्कृति के मूल्यों में संरक्षण की जगह स्वार्थ, अनास्था, और संकीर्णता अपनी जड़ बना ली है, जिससे आदमी में धर्म प्रांत और भाषा के प्रति भ्रष्ट की स्थिति बनी हुई है, इससे देश की एकता और अखण्डता की खतरा पैदा होता है, जिसको बनाने और बचाने के लिए महापुरुषों ने अपना जीवन बलिदान कर दिया था। बड़े ही दु:ख की बात है आज इन्हीं महापुरुषों को राष्ट्र की जगह प्रांतीय रूप दिया जा रहा है, जबकि ये राष्ट्रनायक रहे हैं।

"स्थापित नहीं होगी क्या / लाला लाजपत राय की प्रतिमा मद्रास में ? / दिखाई नहीं पड़ेंगे। लखनऊ में सत्यमूर्ति ? / सुभाष और जे.एम. सेन गुप्त समिति रहेंगे। / भवानीपुर और शाम बाज़ार की दुकानों पर / तिलक नहीं निकलेंगे। पूना से बाहर ?"11

नागार्जुन समाज की छोटी लगने वाली बातों से भी इसी गहराई से जुड़ते थे जितनी बड़ी लगने वाली बात से। यही कारण है कि वह समाज की हर सूक्ष्म स्थिति से भी गहरी संवेदना रख पाते थे। आमजन की हर छोटी-बड़ी परेशानियाँ, विचार, अनुभूतियाँ इन्होंने आत्मसात की है- "खून-पसीना किया बाप ने एक, जुटाई फीस / आँख निकल आई पढ़-पढ़ के, नम्बर पाए तीस / शिक्षामंत्री ने सिनेट से कहा- "अजी शाबाश! / सोना हो जाता हराम यदि ज़्यादा होते पास।"12

निष्कर्ष:- नागार्जुन की यथार्थ चेतना और लोकदृष्टि पर अध्ययन करने के उपरांत ज्ञात होता है कि शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाकर, शौषितों के प्रति सहानुभूति दिखलाकर, अन्याय एवं अत्याचार का विरोध करके कविताओं की रचना में प्रगतिवादी विचारधारा का पोषण किया है। नागार्जुन की रचनाओं का मेरुदंड है-जनता। जनता में अथाह विश्वास के कारण ही इनकी लोकचेतना में यथार्थ खुलकर आया है। जनवादी कवि अपने समय का यथार्थ वर्णन करते हैं। साहित्य को सोद्देश्य कर्म ही नहीं बल्कि धर्म मानता है। यथार्थ से संघर्ष करते हुए परिवेश में घटने वाली घटनाओं पर तीक्ष्ण दृष्टि रखते हैं और अपने साहित्य कर्म के द्वारा अभिव्यक्ति देने की कोशिश करते हैं। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य में हाशिए पर ठहरे व्यक्ति की दुर्दशा और उसके उत्थान के लिए काफी लिखा जाता रहा फिर भी नागार्जुन के द्वारा इनका चित्रण जिस लोक कलात्मक तरीके से किया गया, जो यथार्थ वर्णन किया गया, उनके सुषुप्त चेतना को जिस तरीके से जाग्रत करने का प्रयास किया गया वह काव्य साहित्य में दुर्लभ है। कवि मज़दूर, किसान, व्यापारी, नेता, ज़मींदार सब पर दृष्टिपात करते हुए उनका वर्णन किया है। उसे सामाजिक-व्यवस्था पर आक्रोश है, वैयक्तिक अभावों से पीड़ित जनता से उसे सहानुभूति है और शोषकों के वैभव एवं विलास पर वे खुलकर व्यंग्य करते हैं। यही कारण है कि खेत-खलिहान, गाँव-बगीचे से लेकर नगरों-महानगरों के संघर्षशील श्रमिकों की अंर्तव्यथा का यथार्थ उनकी रचनाओं में झलकता है। अत: जनवादी विचारों से ओतप्रोत कबीर विचारधारा से प्रेरित नागार्जुन सचमुच यथार्थ चेतना एवं लोकदृष्टि के सिपहसालार हैं।

000

संदर्भ- 1.सिंह, नामवर (संपा.): डा. रामविलास शर्मा का कथन, पुस्तक- नागार्जुन: प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 1984, पृष्ठ आवरण। 2.बादल, शम्भु (संपा.): आज की विविध कविताएँ, आदित्य पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, मेन रोड, हजारीबाग, पृ. 42 3.बादल, शम्भु (संपा.): आज की विविध कविताएँ, पूर्वोक्त, पृ. 4। 4.सिंह, नामवर (संपा.): डा. रामविलास शर्मा का कथन, पुस्तक- नागार्जुन: प्रतिनिधि कविताएँ, पूर्वोक्त, पृ. 98, 5.सिंह, नामवर (संपा.): डा. रामविलास शर्मा का कथन, पुस्तक- नागार्जुन: प्रतिनिधि कविताएँ, पूर्वोक्त, पृ. 80, 6.सिंह, नामवर (संपा.): डा. रामविलास शर्मा का कथन, पुस्तक- नागार्जुन: प्रतिनिधि कविताएँ, पूर्वोक्त, पृ. 98, 7.सिंह, नामवर (संपा.): डा. रामविलास शर्मा का कथन, पुस्तक- नागार्जुन: प्रतिनिधि कविताएँ, पूर्वोक्त, पृ. 35, 8.सिंह, नामवर (संपा.): डा. रामविलास शर्मा का कथन, पुस्तक- नागार्जुन: प्रतिनिधि कविताएँ, पूर्वोक्त, पृ. 94, 9.सिंह, नामवर (संपा.): डा. रामविलास शर्मा का कथन, पुस्तक- नागार्जुन: प्रतिनिधि कविताएँ, पूर्वोक्त, पृ. 101, 10.सिंह, डॉ. त्रिभुवन. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद. चतुर्थ संस्करण-1965, पृ. 17, 11.प्रो. खगेन्द्र ठाकुर (संपा.). नागार्जुन और समकालीन विमर्श. रमा स्वराज, दिल्ली प्रथम संस्करण-2013, पृ. 48, 12.प्रभाकर माचवे, सुरेश सलिल (सम्पा.), नागार्जुन, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, संस्करण-1999, पृ. 101.

(शोध आलेख)

भारत में साम्यवादी दल एवं साम्यवादी दल का प्रथम अधिवेशन

शोध लेखक : अभिषेक सचान शोधार्थी, इतिहास विभाग इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)

शोध निर्देशक : डॉ. आर. के. बिजेता, सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म. प्र.)

अभिषेक सचान
शोधार्थी, रूम नंबर- 26, सोन रिसर्च हॉस्टल, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म. प्र.) 484887
मोबाइल- 7905371043

सारांश- 1920 में ताशकंद में एम.एन. रॉय के नेतृत्व में भारतीयों के एक समूह द्वारा भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की गई थी। कालान्तर में दिसम्बर 1924 में कानपुर में सत्यभक्त के प्रयासों से भारत में साम्यवादी दल का गठन किया गया। 1924 में ही ब्रिटिश हुकूमत ने कम्युनिस्टों को उखाड़ फेंकने के लिए राजद्रोह का मामला दायर किया। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के गठन से वामपंथी तत्वों को मज़बूती मिली। इसी क्रम में अगले वर्ष 1925 में कानपुर कम्युनिस्ट कॉन्फ्रेंस का आयोजन हुआ। यह भारत में पहला कानूनी साम्यवादी सम्मेलन था। इस सम्मेलन में सत्यभक्त, मुज़फ़्फ़र अहमद, एस. वी. घाटे, के. एन. जोगलेकर, आर. एस. निंबकर, अब्दुल मजीद, अयोध्या प्रसाद, जानकी प्रसाद बागेरहट्टा आदि सम्मिलित हुए। कानपुर सम्मेलन 26 दिसम्बर से 28 दिसम्बर तक चला। इसमें विभिन्न प्रांतों (मद्रास, कानपुर, लाहौर, कलकत्ता) के लिए साम्यवादी दल के नेतृत्व के लिए सचिवों की नियुक्ति की गई। इस कॉन्फ्रेंस की अध्यक्षता सिंगारवेलु चेट्टीयर ने की। उन्होंने अपनी ट्रेड यूनियन का भी विलय सी. पी. आई. में कर दिया। इस सम्मेलन में मुज़फ़्फ़र अहमद, मौलाना हसरत मोहनी, सिंगारवेलु चेट्टीयर ने भारत में भावी साम्यवादी दल के कार्यक्रम की एक रूप रेखा लोगों के समक्ष रखी।

बीज शब्द - सत्यभक्त, सिंगारवेलु चेट्टीयर, मौलाना हसरत मोहनी, मुज़फ़्फ़र अहमद, कानपुर षड्यन्त्र, जातिवाद, भाकपा, बम्बई।

साम्यवादी दल का कानपुर सम्मेलन - 18 जून, 1925 को एक पत्रक में, कांग्रेस अधिवेशन के दौरान कानपुर में विभिन्न समूहों को शामिल करते हुए एक सम्मेलन आयोजित करने के विचार की घोषणा सबसे पहले सत्यभक्त ने की थी, जो उस समय के किसी भी कम्युनिस्ट समूह के सदस्य नहीं थे। सम्मेलन के लिए स्वागत समिति बनाई गई जिसकी अध्यक्षता मौलाना हसरत मोहानी ने की। "ब्रिटिश संसद में कम्युनिस्ट सांसद शपूरजी सकलटवाला से अध्यक्षता करने का अनुरोध किया गया था, किन्तु वे उपस्थित नहीं हो सके, उनकी अनुपस्थिति में 'सिंगारवेलु चेट्टियार' ने सत्र की अध्यक्षता की"। 26 से 28 दिसंबर, 1925 को आयोजित 'कानपुर कम्युनिस्ट सम्मेलन', भारत की धरती पर पहली बैठक थी, जिसमें लगभग सभी कम्युनिस्ट समूह और तत्व शामिल हुए थे।

भारत के विभिन्न कम्युनिस्ट समूहों के नेता नहीं चाहते थे कि सत्यभक्त ऐसे अखिल भारतीय मंच पर कब्ज़ा करें अत: उन्होंने इस सम्मेलन में भाग लेने का फ़ैसला किया। अजमेर से अर्जुनलाल सेठी, कलकत्ता से राधामोहन गोकुलजी, बम्बई से आर. एस. निम्बालकर, जे. पी. बागेरहट्टा, के. एन. जोगलेकर, एस. वी. घाटे, झांसी से अयोध्या प्रसाद, पंजाब से संतोख सिंह, लाहौर से एस. डी. हसन एवं रामचंद्र, मद्रास से कामेश्वर राव, कृष्णास्वामी आयंगर और 'सिंगारवेलु चेट्टियार' ने सम्मेलन में भाग लिया। 'कानपुर षड्यन्त्र' काण्ड में सज़ा पूरी होने से पहले स्वास्थ्य के आधार पर जेल से रिहा हुए 'मुज़फ़्फ़र अहमद' जो अल्मोड़ा में स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे, वे भी कानपुर आकर इस सम्मेलन में सम्मिलित हुए।

प्रथम सत्र में सकलटवाला का संदेश पढ़कर सुनाया गया। इसके पश्चात स्वागत समिति के

अध्यक्ष हसरत मोहानी का भाषण हुआ और उसके बाद सिंगारवेलु का अध्यक्षीय भाषण दिया। 'सिंगारवेलु चेट्टियार' ने अपने भाषण में लोकमान्य तिलक और देशबंधु दास के अलावा रोजा लक्जमबर्ग, कार्ल लिबकनेच और सबसे महत्त्वपूर्ण रूप से लेनिन के प्रति संवेदना व्यक्त की। उन्होंने ब्रिटिश शासन से आजादी के लिए लड़ने की ज़रूरत के अलावा हमारे देश में मज़दूरों और किसानों की आर्थिक बदहाली और उनकी बेहतरी के लिए संघर्ष की ज़रूरत पर भी बात की। 'सिंगारवेलु' ने 'जातिवाद' और 'सांप्रदायिकता' की समस्याओं का भी ज़िक्र करते हुए उन्हें 'आने वाले खतरों' के रूप में बताया, जिनका सामना करने की ज़रूरत है। "धर्म और जाति ऐसे राक्षस हैं जो ऐतिहासिक काल से हमारी राजनीतिक एकता को निगल रहे हैं। देश आज फिर से इन धार्मिक और साम्प्रदायिक मतभेदों से फटा हुआ है। अस्पृश्यता पर 'सिंगारवेलु' ने कहा अस्पृश्यता की समस्या अनिवार्य रूप से एक कृषि समस्या है, और जब तक इस आर्थिक निर्भरता को दूर नहीं किया जाता है, अस्पृश्यता को दूर करने की बात निराधार है। सम्मेलन ने दुनिया भर में कम्युनिस्टों के साथ एकजुटता व्यक्त करने और 'ब्रिटेन' में कम्युनिस्ट कामरेडों की कैद को अस्वीकार करने के प्रस्तावों को अपनाया। पेशावर और कानपुर षड्यंत्र के मामलों में सज़ायाफ्ता कम्युनिस्ट कैदियों के साथ एकजुटता और सिंगारवेलु द्वारा शुरू की गई लेबर और किसान पार्टी ऑफ हिंदुस्तान को भंग करके उसे भी भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का अंग बनाने की घोषणा की गई। नवगठित 'भाकपा' का केंद्रीय कार्यालय बम्बई में होगा। इस सम्मेलन में यह भी दोहराया गया कि " कम्युनिस्ट पार्टी हमारी मातृभूमि के साम्राज्यवादी तत्वों के ख़िलाफ़ शक्ति को केंद्रित करती है और एक शब्द को बर्बाद करना या आंतरिक गुटबाजी में एक साथी को खोना अपराध मानती है।"

द्वितीय सत्र 26 दिसंबर की शाम को आयोजित हुआ तथा प्रस्तावों को लागू कारने पर चर्चा की गई। दिनाँक 27 दिसम्बर को आयोजित तृतीय सत्र संविधान को अपनाने और केंद्रीय कार्यकारी समिति के चुनाव के लिए समर्पित था। 28 दिसंबर 1925 को, केंद्रीय कार्यकारी समिति ने पदाधिकारियों, अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, महासचिवों और विभिन्न प्रांतों के प्रभारियों का चुनाव किया गया। अपने स्वागत भाषण में मोहानी ने स्वतंत्रता के पश्चात 'सोवियत गणराज्य के रूप को लागू करने' के लिए पार्टी के लक्ष्यों और उद्देश्यों का वर्णन किया। सम्मेलन में 30 सदस्यों वाली एक केंद्रीय कार्यकारी समिति का चुनाव करने का उद्देश्य था, लेकिन सम्मेलन में केवल 16 पदाधिकारी चुने गए, 14 बाद में प्रांतों से चुने गए। 28 दिसंबर को केंद्रीय कार्यकारी समिति की बैठक हुई और पदाधिकारियों और आयोजकों का चुनाव किया गया। 'सिंगारवेलु चेट्टियर' को पार्टी का अध्यक्ष, आज़ाद सोभानी को उपाध्यक्ष, एसवी घाटे और जानकी प्रसाद बागेरहट्टा को महासचिव चुना गया। कामरेड 'कृष्णास्वामी आयंगर', 'सत्यभक्त', 'एस. डी. हसन' और 'मुजफ्फर अहमद' क्रमशः चार प्रांतों मद्रास, कानपुर, लाहौर और कलकत्ता के लिए सचिव चुने गए।

सत्यभक्त – सोवियत संघ के ताशकंद में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के गठन के लिए पहला कदम था, कानपुर में 'कम्युनिस्ट सम्मेलन' अखिल भारतीय पार्टी के गठन की दिशा में भारत की धरती पर पहला प्रयास था। सत्यभक्त ने भारत में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के प्रयास प्रारम्भ किया। "1924 तक कानपुर कम्युनिस्ट गतिविधियों का प्रमुख केंद्र बन चुका था"। सत्यभक्त के प्रयासों से दिसंबर 1924 को भारत (कानपुर) में कम्युनिस्ट पार्टी का गठन हुआ। 1925 में कानपुर में उसका पहले सम्मेलन का आयोजन किया गया। साम्यवाद के प्रचार-प्रसार के क्रम में उन्होंने 1924 में 'बोल्शेविज़्म क्या है' शीर्षक नाम की पुस्तक लिखी। जनवरी 1926 को उन्होंने कानपुर से इस पुस्तक का प्रकाशन शुरू किया तो ब्रिटिश सरकार ने उसके दोनों शुरुआती अंक ज़ब्त कर लिए गए। ज़ब्ती की इस कार्रवाई में कुछ कांग्रेसियों ने भी भूमिका निभाई ये कांग्रेसी 'सत्यभक्त' के 'साम्यवाद' के प्रचार प्रसार से नाराज़ थे। इसके पश्चात उनकी पुस्तक 'अगले सात साल' भी ज़ब्त कर ली गई।

'सत्यभक्त' कुछ समय गाँधी जी के आश्रम में रहे वहाँ उन्होंने गाँधी जी की सर्वोदय व जेल के अनुभव का हिन्दी में अनुवाद किया और काका कालेलकर, आचार्य विनोबा भावे आदि गाँधीवादियों के संपर्क में आए। गांधी जी चाहते थे कि सत्यभक्त स्थायी रूप से आश्रम में रहें। लेकिन सत्यभक्त के उनके अहिंसा के सिद्धांत से पूरी तरह सहमत नहीं थे। इसके बावजूद 1918 से 1920 तक कुछ महीने वहाँ रहे और कांग्रेस के बम्बई अधिवेशन में भी सम्मिलित हुए। 1921 में कृष्णकांत मालवीय की 'मर्यादा' के बाद राष्ट्रीय ग्रंथमाला निकाल रहे थे। इसी समय असहयोग आंदोलन की घोषणा हुई सत्यभक्त भी इस आन्दोलन में शामिल हुए किन्तु शीघ्र ही कांग्रेसी की राजनीति से उनका मन खिन्न हो गया और उन्होंने स्वयं को इस आन्दोलन अलग कर लिया।

मौलाना हसरत मोहानी – 'मौलाना हसरत मोहानी' कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों में रहे किन्तु वे स्वयं को कम्युनिस्ट कहते थे। कानपुर में साम्यवादी दल की स्थापना सत्य भक्त ने मौलाना हसरत मोहानी के सहयोग से की। "मौलाना ने सत्यभक्त की तन, मन, धन से सहायता की। 'मौलाना हसरत' इस पहली कम्युनिस्ट कांफ्रेन्स की स्वागत समिति के अध्यक्ष थे। सत्यभक्त के अन्य कम्युनिस्टों से नीति गत मतभेद हो गए परन्तु मौलाना सदा सत्यभक्त के साथ रहे"।

सिंगारवेलु चेट्टियार- 'सिंगारवेलु चेट्टियार' का जन्म मद्रास में हुआ। उन्हें भारत के बड़े साम्यवादी नेताओं में जाना जाता था। रूसी क्रांति के छह महीने के भीतर ही सिंगारवेलु ने 27 अप्रैल 1918 को भारत में पहला ट्रेड यूनियन बनाया जो भारत में श्रमिक वर्ग के आंदोलन के इतिहास में एक मील का पत्थर था, जिसे मद्रास लेबर यूनियन कहा

गया। सिंगारवेलु को 'दक्षिण भारत का पहला कम्युनिस्ट' कहा जाता है। वह पहले से ही अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य थे। उन्होंने वास्तव में मद्रास में एक श्रमिक किसान पार्टी (श्रमिक और किसान पार्टी) की स्थापना की, जिसकी घोषणा 1923 में भारत में पहले मई दिवस के उत्सव के अवसर पर की गई थी। चेट्टियार इसके पहले अध्यक्ष बने। वेलायुथन, श्री कृष्णास्वामी और शंकर लाल द्वारा, जिन्होंने 1923 में मद्रास समुद्र तट पर दो स्थानों पर ट्रेड यूनियनों के साथ भारत में पहला मई दिवस आयोजित किया था। यह भारत में पहली बार लाल झंडा फहराने की घटना थी।" डब्ल्यू. पी. पी. की मद्रास स्थित केंद्रीय समिति ने जुलाई 1923 में पंजाब, बॉम्बे और बंगाल में अपनी इकाइयों और संबद्ध संगठनों को 18 जुलाई 1923 को 'झंडा दिवस' आयोजित करने और इस अवसर पर तिरंगा और लाल झंडा दोनों फहराने के लिए एक तार भेजा। यह गांधीजी की रिहाई की माँग थी। पूरे देश में इस दिन को व्यापक रूप से मनाया गया"। 'सिंगारवेलु चेट्टियार' ने कानपुर में 'साम्यवादी दल' के पहले अधिवेशन में भाग लिया। "जब सिंगारवेलु ने 1925 में कानपुर सम्मेलन में अपना अध्यक्षता भाषण दिया, जिसे प्रथम भारतीय कम्युनिस्ट सम्मेलन भी कहा जाता है, उन्होंने तमिलनाडु में अस्पृश्यता को ख़त्म करने की आवश्यकता की बात की"। 'सिंगारवेलु चेट्टियार' ने अपने अध्यक्षीय भाषण में स्पष्ट रूप से कहा "भारतीय साम्यवाद बोल्शेविज़्म नहीं है; बोल्शेविज़्म एक प्रकार का साम्यवाद है जिसे रूसियों ने अपने देश में अपनाया है। हम रूसी नहीं हैं; और हम बोल्शेविक नहीं हैं। भारत में बोल्शेविज़्म की आवश्यकता नहीं हो सकती है हम विश्व समुदाय के साथ एक हैं; लेकिन बोल्शेविज़्म के साथ नहीं।"

मुज़फ़्फ़र अहमद – भारत में कम्युनिस्ट आंदोलन के संस्थापकों में से एक 'मुज़फ़्फ़र अहमद' का जन्म 5 अगस्त, 1889 को एक मध्यवर्गीय मुस्लिम परिवार में हुआ। 1920 में 'क़ाज़ी नज़रूल इस्लाम' के साथ दैनिक 'नबजुग' का संपादन किया। अपने मित्र कामरेड 'अब्दुल हलीम' के साथ मिलकर राष्ट्रीय आन्दोलन के अंदर साम्यवादी कार्य की शुरुआत की।" 1926-27 और 1937 के दौरान बंगाल प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य और 1927-29 के दौरान और 1937 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य बनें"। 1923 में ट्रेड यूनियन आंदोलन में शामिल हुए। कलकत्ता और उसके आसपास विभिन्न ट्रेड यूनियनों की स्थापना में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। राजनीतिक और ट्रेड यूनियन गतिविधियों के कारण कई बार जेल गए। 1924 में कानपुर षड्यन्त्र काण्ड में चार वर्ष के कारावास की सज़ा हुई। "कानपुर षड्यन्त्र केष में 13 लोगों को अभियुक्त बनाया गया।" गम्भीर बीमारी के कारण शीघ्र ही कारावास से मुक्त हो गए। वर्कर्स एंड पीजेंट्स पार्टी के संस्थापकों में से एक मुज़फ़्फ़र अहमद इसके अंग गणवनी का संपादन किया। 1925 में कानपुर में कम्युनिस्ट सम्मेलन में शामिल हुए और 1927 में पुनर्गठित होने पर सीपीआई के प्रेसीडेन्ट के लिए चुने गए। 1928 में झरिया अधिवेशन में एटक (मज़दूर संगठन) के उपाध्यक्ष चुने गए। मेरठ षड्यंत्र मामले में मुज़फ़्फ़र अहमद को दोषी ठहराया गया। 1936 में अखिल भारतीय किसान सभा के अध्यक्ष चुने गए। राष्ट्रीय पुस्तक एजेंसी, पार्टी के प्रकाशन गृह और गणशक्ति प्रेस की स्थापना की। इन्होंने कई पुस्तकों के लेखन कार्य किया जिनमें उनकी आत्मकथा, माईसेल्फ एंड द कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ़ इंडिया, और काज़ी नज़रूल इस्लाम स्मृति कथा शामिल हैं।

निष्कर्ष – 1925 में सम्पन्न होने वाला साम्यवादी दल का आयोजन कई मायनों में अन्य राजनीतिक दलों से भिन्न था। भारतीय साम्यवादी दल ने अपने भविष्य की रूप रेखा स्पष्ट रूप से लोगों के समक्ष प्रस्तुत की। भारत देश के विभिन्न प्रांतों से आए कामरेड नेताओं ने अपने विचार कानपुर के मंच पर रखे। इस सम्मेलन में देश भर के श्रमिकों और मजदूरों को एक जुट करने का आवाहन किया गया। साम्यवादी नेताओं से कहा गया कि वे स्थानीय स्तर पर मज़दूर संगठनों का निर्माण करें और ये सभी दल भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का अंग होंगे। 1925 का साम्यवादी दल के आयोजन में कुछ विवाद भी सामने आए। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना में सत्यभक्त का महत्त्वपूर्ण योगदान था। किन्तु अन्य नेताओं को लगता था कि वे पूरे दल पर एकाधिकार कर लेंगे। अत: कामरेड नेताओं ने पार्टी में उनके हस्ताक्षेप को सीमित कर दिया। कालान्तर में सत्यभक्त सी पी आई से अलग हो गए किन्तु उन्होंने कभी भी साम्यवाद का प्रचार प्रसार नहीं छोड़ा।

000

संदर्भ-

https://peoplesdemocracy.in/2019/1124_pd/kanpur-communist-conference-1925 date 22/04/2023 time 11:25

जान एच. कौट्स्की. (1986). मास्को एण्ड द कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया. द टेक्नॉलाजी प्रेस ऑफ मैसाचुसेट्स इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नॉलाजी एण्ड जान विले एण्ड सन्स इंक., न्यू यॉर्क .पेज 19

मुक्त डॉ. अरविन्द अरोड़ा. (2014). कानपुर का संक्षिप्त इतिहास. कानपुर : कानपुर इतिहास समिति. पेज 42

मुक्त डॉ. अरविन्द अरोड़ा. (2004). बीसवीं सदी के कानपुर के प्रसिद्ध पुरुष एवं महिलाएँ. द्वितीय संस्करण. कानपुर इतिहास समिति .पेज 38

https://www.mainstreamweekly.net/article9916.html last view date 21/04/2023 time 02:11

https://www.newsclick.in/M-Singaravelu-Chettiar-May-Day last view date 27/04/2023 time 11:15

https://sreenivasaraos.com/tag/singaravelu-chettiar/last view date 15/04/2023 time 10:15

https://www.cpim.org/history/ahmad-muzaffar last view 23/04/2023 time 11:00

अहमद मुज़फ़्फ़र. (1970). माइसेल्फ एण्ड द कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया 1920-1929. नेशनल बुक एजेंसी प्राइवेट लिमिटेड कलकत्ता .पेज 413

(शोध आलेख)

जबलपुर में स्थापित पत्रकारिता का स्वाधीनता समर में योगदान

शोध लेखक : गोविन्द पाण्डेय शोधार्थी, इतिहास विभाग इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)

शोध निर्देशक : डॉ. आर. के. बिजेता, सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म. प्र.)

गोविन्द पाण्डेय
शोधार्थी, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म. प्र.)
484887
मोबाइल - 9399055023
ईमेल - govindpandey7070@gmail.com

शोध सारांश- भारत के स्वाधीनता समर की गाथाएँ आज भी हमारे रक्त को उद्वेलित कर देती हैं। आजादी के इस महासंग्राम में अनेकों मोर्चों पर हम भारतवासियों ने ब्रिटिश शोषण का अनगिनत तरीकों से प्रतिकार किया। आंदोलन, उपवास, सत्याग्रह, अनशन, सशस्त्र विद्रोह एवं बलिदान हर युक्ति से हमने स्वतन्त्रता प्राप्ति का प्रयास किया था। प्रथम स्वाधीनता संग्राम 1857 के पश्चात् भारतीय चेतना में पत्रकारिता का नवीन आयाम स्थापित हुआ। समाचार पत्रों ने उपनिवेशी शासन के दौरान किए जाने वाले अत्याचारों, प्रताड़नाओं एवं नित निर्मित धूर्त नीतियों आदि को समाज के प्रत्येक स्तर पर जनता के सम्मुख रखा और स्वाधीनता के इस महासमर में अपनी सहभागिता सुनिश्चित की। प्रस्तुत शोध पत्र भारतीय स्वतन्त्रता आंदोलन में समाचार पत्रों की भूमिका का विश्लेषण करता है। इस शोध पत्र के लेखन हेतु ऐतिहासिक शोध विधि अंतर्गत विभिन्न प्राथमिक एवं द्वितीयक स्त्रोतों का अध्ययन किया गया है। जिसमें समाचार पत्रों, गजेटियरों एवं साक्षात्कार से प्राप्त समंकों का प्रयोग किया गया है। विश्लेषणात्मक शोध प्रविधि का प्रयोग कर विभिन्न ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर निष्पक्ष निष्कर्ष प्राप्त करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द- स्वाधीनता, महाकौशल, समाचार पत्र, जबलपुर, पत्रकारिता।

पत्रकारिता जनसंचार का एक सशक्त माध्यम है जो समाज में जागृति पैदा कर चेतना और उत्साह का संचार करता है। भारतीय समाज जब परतंत्रता की बेड़ियों में अपने अस्तित्व को तलाश रहा था, उस कठिन दौर में प्रेस के विकास ने भारत के जनमानस में नवीन ऊर्जा का संचार किया। आजादी के इस महान् समर में देश के प्रत्येक नगर-ग्राम ने अपनी सहभागिता सुनिश्चित की। इसी संदर्भ में अनेकों क्षेत्रीय समाचार पत्रों ने महाकौशल क्षेत्र में हुए ब्रिटिश अत्याचारों, उनकी शोषणकारी नीतियों एवं इसके विरोध में होने वाले आंदोलनों को प्रकाशित कर जनजागरण का अविस्मरणीय कार्य किया।

पराधीन भारत में पहला समाचार पत्र वर्ष 1780 में जेम्स अगस्टस हिक्की1 ने बंगाल गज़ट प्रकाशित किया लेकिन 2 वर्षों पश्चात ही ब्रिटिश सरकार के आलोचनात्मक रवैये के कारण यह बंद कर दिया गया। भारत में पत्रकारिता का जनक राजा राममोहन राय को माना जाता है। ऐसे तो भारत में पत्रकारिता के भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों को अपनाया लेकिन भारत में राष्ट्रवादी विचारों के संप्रेषक समाचार पत्र 'केसरी' और 'मराठा' ख्यात राष्ट्रवादी बाल गंगाधर तिलक के नेतृत्व में प्रकाशित हुए। 2 पत्रकारिता का पोषण जनमानस को राष्ट्रीय स्तर से प्राप्त हो रहा था, इस प्रकाशन-सम्पादन व्यवस्था से मध्यप्रांत का महाकौशल अंचल भी अछूता नहीं था। इस शोध पत्र का उद्देश्य स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान जबलपुर क्षेत्र में प्रकाशित विभिन्न समाचार पत्रों की भूमिका को इंगित करना है।

जबलपुर नगर में पत्रकारिता का उदय एवं विकास- मध्यप्रांत में गतिज स्वातंत्र्य आंदोलन एवं राजनीतिक गतिविधियों का केंद्र रहा जबलपुर नगर 'महाकौशल' अंचल का प्रमुख अंग है। देश में प्रस्फुटित हुई राष्ट्रवादी भावनाओं एवं संचार के नवीन आयाम पत्रकारिता का सृजन जबलपुर में भी हुआ तथा विकास प्राप्त किया। जनसाधारण में सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं राष्ट्रवादी गतिविधियों के प्रचार-प्रसार का सर्वोत्तम साधन पत्रकारिता को माना गया। चूँकि जबलपुर महाकौशल अंचल का केन्द्र नगर था अत: स्वाभाविक रूप से यह नगर इन गतिविधियों को प्रोत्साहित करने के मामले में अग्रणी रहा।3

प्राचीन गोंड साम्राज्य का अंग रहे जबलपुर नगर में पत्रकारिता का उद्भव एवं विकास, स्वाभाविक रूप से प्रकाशन और छापाखानों की स्थापना एवं उसके विस्तार के साथ हुआ। जबलपुर से निकालने वाला प्रथम अख़बार था 'जबलपुर समाचार'4 यह 1 मार्च 1873 को प्रकाशित हुआ। वर्ष 1888 से 1900 के मध्य जबलपुर नगर में अंजुमन प्रेस, शुभचिंतक प्रेस, शिवभरोस यंत्रालय, यूनियन प्रेस कंपनी, रेजिमेंटल छापाखाना, नर्मदा लहरी प्रिंटिंग वर्क्स का उल्लेख मिलता है। 1910 में पंडित रघुवर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से हितकारिणी सभा ने

हितकारिणी छापाखाना स्थापित किया, जो कटनी के किसी अंग्रेज़ से खरीदा गया था।5 जबलपुर में स्थापित हुए विभिन्न प्रिंटिंग प्रेसों ने राष्ट्रीय आंदोलन ही नहीं वरन सामाजिक साहित्यिक, धार्मिक एवं शैक्षिक ज्ञान को भी प्रोत्साहित किया और जनजीवन में स्थिरता लाने एवं राष्ट्रीय भावना के प्रचार प्रसार हेतु नवीन दृष्टिकोण विकसित किये।

राष्ट्रवाद का बोध एवं स्वराज का जागरण करने में समाचार पत्र पत्रिकाओं की महती भूमिका जबलपुर में रही। जबलपुर नगर से प्रकाशित पहला समाचार पत्र 1873 में 'जबलपुर समाचार' रहा, जो की बनारस के मेडिकल हाल प्रेस में छपता था तथापि प्रकाशित जबलपुर से होता था। यह हिन्दी और अँग्रेज़ी भाषाओं में प्रकाशित होने वाला मासिक पत्र था। जिसमें समाचार और साहित्य दोनों रहते थे। वर्ष 1883 में "शुभचिंतक" जबलपुर की शुभचिंतक प्रेस से रामगुलाम अवस्थी के नेतृत्व में प्रकाशित हुआ।6 इसे प्रारम्भ से ही साहित्यकारों एवं प्रतिष्ठित विद्वानों का स्नेह प्राप्त हुआ। 1886 में सेंट्रल इंडिया न्यूज़, 1897 में द जबलपुर टाइम्स, 1899 में जबलपुर पोस्ट पत्र निकले। 1889 में प्रजा हितैषी आया। 1900 में आर्य समाज की हिन्दी मासिक पत्रिका 'आर्य सेवक' जबलपुर से निकली जिसके संपादक श्री गणेश प्रसाद शर्मा थे। वर्ष 1900 में ही कवि समाज द्वारा 'समस्या पूर्ति' मासिक निकला लेकिन इसके मात्र दो ही अंक प्रकाशित हो पाये। 1902 में जबलपुर से लाला जयराज बहादुर ने उर्दू साप्ताहिक 'साँझ सबेरा' निकाला।

साहित्य, इतिहास और नीति के पंडित श्री रघुवर प्रसाद द्विवेदी, जो की हितकारिणी स्कूल में शिक्षक थे, ने 1910 में हितकारिणी छापाखाना से मासिक पत्र 'शिक्षा प्रकाश' एवं 'हितकारिणी' प्रारम्भ किये। इनका उद्देश उत्तम शिक्षा पद्धति और ज्ञान-विज्ञान से जनसाधारण को परिचित कराना था। हितकारिणी के मुख्य पृष्ठ पर एक पद्य प्रकाशित होता था वह इस प्रकार था – "विद्या, धर्म, भूप में भक्ति, / पठहु, करहु, राखउ भर शक्ति।"7

1914 में 'ज्योति किरण' मासिक निकली। 21 मार्च 1920 को एक उच्च कोटि की सचित्र मासिक पत्रिका "श्री शारदा" का जबलपुर के राष्ट्रीय हिन्दी मंदिर से प्रकाशन हुआ। इसका सम्पादन श्री नर्मदा प्रसाद मिश्र ने किया। छात्रों के लिए उपयोगी मासिक पत्रिका 'छात्र सहोदर' का प्रकाश 1920 में नरसिंहदास अग्रवाल ने जबलपुर से किया। वर्ष 1921 में जबलपुर से ही अर्धसाप्ताहिक 'तिलक' का प्रकाशन श्री रामेश्वर प्रसाद अग्निहोत्री के संपादकत्व में हुआ। 1930 से ही देशबंधु साप्ताहिक पत्र भी निकला।

सेठ गोविन्ददास के सहयोग से जबलपुर से 14 जनवरी 1930 को दैनिक 'लोकमत' का प्रकाशन हुआ जो कि मध्यप्रदेश का पहला सर्वांगपूर्ण हिन्दी दैनिक समाचार पत्र था। हालांकि इससे पहले 1929 में ही सतीप्रेस जोंसगंज जबलपुर से दैनिक सत्य प्रकाशित हो चुका था। इसके पत्र के नाम के नीचे 'सत्यम हि केवलं बलम् सत्यमेव जयते नानृत्म' अंकित रहता था। 1936 के आसपास उर्दू दैनिक अख़बार 'जौहर' अब्दुल बाकी बेदिल ने जबलपुर से निकाला। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान पंडित द्वारका प्रसाद मिश्र ने 1941 में साप्ताहिक सारथी निकाला। जबलपुर से ही 1943 से कोशल समाचार दैनिक और लोकसेवा, हिंदवासी, कभी न कभी साप्ताहिक पत्र प्रारम्भ हुए। 1941-42 में जबलपुर से प्रजा पुकार साप्ताहिक निकला। 1946 में बाबू गोविन्ददास ने श्री रामगोपाल माहेश्वरी के सहयोग से जबलपुर से जयहिंद दैनिक का प्रकाशन प्रारम्भ किया। 1946 से 1949 के मध्य ब्योहार राजेन्द्र सिंह के संपादकत्व में साठिया कुआँ स्थित उनके ही साहित्य प्रेस से युगारंभ मासिक का प्रकाशन हुआ।8

स्वाधीनता आंदोलन में जबलपुर के समाचार पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका- भारतीय स्वतन्त्रता समर के दौरान प्रज्ज्वलित हुई पत्रकारिता की ज्योति ने भारतीय जनमानस को राष्ट्रवादी विचारधारा निर्माण व प्रसार, शिक्षा का विकास, उपनिवेशी शासन के विरोध जैसे कई नवीन दृष्टिकोणों से परिचित कराया। इन कठिन वर्षों में जबलपुर के जनसामान्य को निर्भीक एवं ओजपूर्ण पत्रकारों/संपादकों का नेतृत्व पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से मिला। वर्ष 1915 के पश्चात राष्ट्रीय भावना का ज्वार जबलपुर में साहित्यिक तथा राजनीतिक जागरूकता के रूप में एक सशक्त प्रहरी की तरह उपजा। अप्रैल 1913 में पं. माखनलाल चतुर्वेदी की प्रेरणा से महाकौशल अंचल में 'प्रभा' का प्रकाश हुआ, जो कि गौरांगशाही पर सशक्त और निर्मम प्रहार करती थी। इसके प्रथम पृष्ठ पर देशवासियों के लिए एक पंक्ति अंकित होती थी "देशवासी अपनी नींद को त्याग दें और परिवेश के प्रति अपना नवीन दायित्व समझें।" 9 इसके मुख्य पृष्ठ पर भारत माता का चित्र होता था। यह एक साहित्यिक पत्रिका थी इसके स्वर में निर्भीकता, साहसिकता और राष्ट्रीयता का गौरवपूर्ण समावेश होता था। ओजस्वी पत्रकारिता के मूर्धन्य नेतृत्वकर्ता माधवराव सप्रे के मार्गदर्शन में राष्ट्रीय हिन्दी मंदिर की स्थापना एवं शारदा भवन पुस्तकालय का संचालन किया गया। 10 यह संस्थान जबलपुर की पत्रकारिता और साहित्य हेतु एक अविचल स्तम्भ के रूप में स्थापित हुआ।

वर्ष 1919 में हिन्दी क्षेत्रों में जनजागरण एवं राष्ट्रवादी विचारोत्थान हेतु पं. विष्णुदत्त शुक्ल के सहयोग से साप्ताहिक पत्र निकालने हेतु राष्ट्र सेवा लिमिटेड की स्थापना माधवराव सप्रे द्वारा वर्ष 1919 में जबलपुर में हुयी। इस संस्था को जबलपुर के ब्योहर रघुवीर सिंह, सेठ बल्लभदास, पं. गोविंदलाल पुरोहित तथा जमनालाल बजाज का संरक्षण मिला। राष्ट्र सेवा लिमिटेड ने 17 जनवरी 1920 को "कर्मवीर" साप्ताहिक निकाला। जिसके प्रधान संपादक माधवराव सप्रे एवं संपादक पं. माखनलाल चतुर्वेदी थे। कर्मवीर का कार्यालय दीक्षितपुरा में सिमरिया वाली रानी की कोठी में था। यह पत्र मुख्यतया विचार पत्र था जिसमें राष्ट्रीय और साहित्यिकी के साथ ही समसामयिक घटनाओं का प्रकाशन होता था। निसंदेह कर्मवीर ने प्रांत के कोने-कोने में राष्ट्रीय आंदोलन को पहुंचाया और स्वयं

संकट को झेल असहयोग आंदोलन का समर्थन किया।

कर्मवीर के प्रकाशन से नवयुवकों में एक नवीन ऊर्जा का संचार हुआ और इसी से उत्साहित होकर नरसिंहदास अग्रवाल जो कि स्वतन्त्रता संग्राम में सक्रिय थे और कई बार जेल यात्राएँ की थी, ने छात्रोपयोगी मासिक पत्रिका "छात्र सहोदर" 11 मार्च-अप्रैल 1920 में प्रारम्भ की। सितंबर 1921 में छात्र सहोदर के अंक में मुख्य पृष्ठ पर महात्मा गांधी के उपवास की घोषणा प्रकाशित हुयी साथ ही माखनलाल चतुर्वेदी की कविता की पंक्तियाँ भी प्रकाशित की गई - "धन्य है वह कोख, धन्य है वह आत्मबलिदान, शीश पर जिनके रखकर नींव, राष्ट्र का होता कल्याण।"12

इस पत्र ने राजनैतिक चेतना का ऐसा स्वर प्रतिबिम्बित किया, जिससे आम जनता को स्वाधीनता संग्राम में सहयोग हेतु नवजागरण मिला। ब्रिटिश शासन में इसके प्रकाशन में परेशानियाँ आने लगीं और यह अधिक दिनों तक नहीं चल पाया। वर्ष 1921 में ही जबलपुर से अर्ध साप्ताहिक पत्रिका 'तिलक' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ तिलक के संपादकों में क्रांतिकारी श्री रामचरण शर्मा का नाम प्राप्त होता है।

वर्ष 1930 में सेठ गोविन्ददास के सहयोग से प्रकाशित "लोकमत" सम्पूर्ण मध्यप्रदेश का पहला हिन्दी दैनिक समाचार पत्र था। इस समाचार पत्र को पं. द्वारका प्रसाद मिश्र जो कि अमृत बाज़ार पत्रिका में कार्यानुभव लेकर जबलपुर लौटे थे, का संपादकत्व मिला। इस पत्र ने तत्कालीन नेतृत्व कांग्रेस का संदेश पूरे प्रदेश में पहुँचाने का कार्य किया। ब्रिटिश सरकार ऐसे निर्भीक अख़बार लोकमत को कैसे बर्दाश्त कर सकती थी फलत: 1932 में सरकार द्वारा एक अध्यादेश जारी कर इसका प्रकाशन बंद करवा दिया।

1940-50 के दशक में प्रकाशित हुआ साप्ताहिक शक्ति अख़बार हिन्दू महासभा का समर्थक पत्र था।13

1942 में भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान हुई गिरफ्तारियों और जेल वापसी की संभावनाओं के उत्साहपूर्ण वातावरण के बीच बसंत पंचमी के दिन फरवरी 1946 में गोविन्ददास ने रामगोपाल माहेश्वरी के सहयोग से "जयहिंद" दैनिक अख़बार का प्रकाशन किया।14 जयहिंद ने राष्ट्रीय वाणी को मुखरता देने के साथ ही हिन्दी नवजागरण में भी विशेष योगदान दिया। 1946-49 के काल में ब्योहर राजेंद्र सिंह के संपादकत्व में साहित्य प्रेस से "युगारंभ" मासिक का प्रकाशन हुआ। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात जब देश में पत्रकारिता को कुछ मुखरता मिली तो वर्ष 1949 में जबलपुर से इस्माइल अशरफी ने "आज़ाद हिन्द" का प्रकाशन हैंडलिथो प्रेस से किया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के दिन 15 अगस्त 1947 को "प्रहरी" का पहला अंक प्रकाशित हुआ।15 वास्तव में जबलपुर नगर का प्रत्येक मानस समाचार पत्रों की महत्ता को अनुभूत कर चुका था। जबलपुर नगर के वरिष्ठ एवं अनुभवी नेतृत्व ने नवतरुणाई के साथ सामंजस्य स्थापित कर राष्ट्रवादी भावनाओं को महसूस कर स्वाधीनता प्राप्ति हेतु अथक एवं सकारात्मक सहयोग प्रदान किया।

निष्कर्ष- स्वाधीनता की आशा के साथ ही विकास एवं विस्तार के पथ पर चलने का कार्य जबलपुर ने भी किया। पत्रकारिता के विभिन्न पहलुओं को स्वतन्त्रता, राष्ट्रभक्ति और स्वचिंतन के साथ सँजो कर जिस प्रकार से विभिन्न बुद्धिजीवीओं ने राष्ट्र हित में सहयोग किया वह अप्रतिम है।16 राष्ट्रीय स्तर का स्नेह और मार्गदर्शन जबलपुर को सदैव मिला तथा नगरवासियों खुले मन से इनके नेतृत्व को सदा स्वीकार किया।

वर्तमान में पत्रकारिता चतुर्थ स्तम्भ के रूप में स्थापित हो चुकी है, लेकिन तत्समय इतने व्यवधानों के बावजूद नव तरुणाई से लेकर वयोवृद्ध समाज को एक ही सूत्र में पिरोने का जो कार्य जबलपुर नगर में संपादकों एवं प्रकाशकों ने किया वह आज भी वंदनीय है। आज़ादी के इस महासमर में जबलपुर की पत्रकारिता का योगदान सदा अविस्मरणीय है।

000

संदर्भ- 1.गिल्डिंग, बेन–द राइस एंड फाल ऑफ हिक्कीस बंगाल गज़ट (1780-2), द जर्नल ऑफ इंपीरियल एंड कॉमनवेल्थ हिस्ट्री, वॉल्यूम - 47, 2019, इश्यू – 1, पृ. 2-3, 2.अहीर, राजीव – आधुनिक भारत का इतिहास,स्पेक्ट्रम बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, पेज 638, 3.श्रीधर, विजय दत्त – मध्यप्रदेश में पत्रकारिता का इतिहास, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल पृ. 59, 4. शुक्ल, जयंत और हरिमोहन – हिन्दी पत्रकारिता और राष्ट्रीय एकता, तक्षशिला नई दिल्ली, पृ. 75, 5.श्रीधर, विजय दत्त – मध्यप्रदेश में पत्रकारिता का इतिहास, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल पृ. 59-60, 6.वही ; 7. चौबे, महेशचंद्र और उपाध्याय मदनमोहन–जबलपुर अतीत दर्शन, इंटेक जबलपुर अध्याय, 2018, पृ. 258, 8.गंगवार, रोशनलाल और चौधरी राजेश मोहन–अमर शहीद गुलाब सिंह पटेल, पटेल प्रकाशन बरेली, 2012, पृ. 135, 9.श्रीधर, विजय दत्त – मध्यप्रदेश में पत्रकारिता का इतिहास, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल पृ. 63-64, 10.गुरु, रामेश्वर और शुक्ल शंकरलाल– स्वतंत्रता संग्राम और जबलपुर नगर, स्वतंत्रता संग्राम सैनिक संघ, 1985 पृ. 23, 11.चौबे, महेशचंद्र और उपाध्याय मदनमोहन–जबलपुर अतीत दर्शन, इंटेक जबलपुर अध्याय, 2018, पृ. 259, 12.श्रीधर, विजय दत्त – मध्यप्रदेश में पत्रकारिता का इतिहास, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल पृ. 66-72, 13.वही, 14.गंगवार, रोशनलाल और चौधरी राजेश मोहन–अमर शहीद गुलाब सिंह पटेल, पटेल प्रकाशन बरेली, 2012, पृ. 135, 15.श्रीधर, विजय दत्त – मध्यप्रदेश में पत्रकारिता का इतिहास, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल पृ. 71-72, 16.सिंह, मीनाक्षी – हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास, ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2009, 17. स्वर्णकार, चंदादेवी-स्वाधीनता संग्राम में जबलपुर नगर का योगदान, अखिल भारतीय स्वतंत्रता सेनानी उत्तराधिकारी संगठन, जबलपुर जिला इकाई

(शोध आलेख)

हिन्दी कथा साहित्य अध्ययन: किन्नर विमर्श

शोध लेखक : राखी

राखी
सी-119, सड़क क्रमांक- 11
खजूरी खास, दिल्ली 110094
मोबाइल - 8920562936
ईमेल- gauravkr20813@gmail.com

साहित्यकार एक संवेदनशील प्राणी होता है और वह समाज में घटित घटनाओं से प्रभावित होकर साहित्य का सृजन करता है। हिन्दी साहित्य में किन्नर समुदाय के जीवन का विकास मुख्य रूप से कथा साहित्य में देखने को मिलता है। वर्तमान परिदृश्य में जो कि एक महत्त्वपूर्ण अंग बन चुका है। इस समुदाय के जीवन की विषमताओं और विसंगतियों की तरफ सुव्यवस्थित समाज का ध्यान साहित्य और संस्कृतिक दृष्टि से बहुत समय तक नही गया है। हिन्दी साहित्य इस वर्ग की समस्याओं को विभिन्न साहित्यिक विधाओं, विशेषरूप से कथा साहित्य द्वारा समक्ष लाने में प्रयासरत है। इस शोध आलेख में निर्मला भुराड़िया का उपन्यास गुलाममंडी, महेंद्र भीष्म का किन्नर कथा, चित्रा मुदगल का पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सुपारा, गरिमा संजय दुबे की कहानी पन्ना बा, विजेंद्र प्रताप सिंह की कहानी संकल्प आदि साहित्यिक विधाओं का सन्दर्भ लिया गया है!

बीज शब्द- विस्थापित समाज, थर्ड जेंडर, किन्नर, हिजड़ा, तिरस्कार, लिंगभेद, यौन अभिव्यक्ति, अश्वमुखी, किंपुरुष, कुबेरसखा, तुरंगमुख।

साहित्यकार अपने साहित्य द्वारा समाज में व्याप्त सकारात्मक तथा नकरात्मकता पक्षों को समक्ष रखता है! उसमे जीवन के शाश्वत सत्य का चित्रण होता है वह मानव को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देकर उसका कल्याण करता है! इसी दिशा में कथा साहित्य कहानी और उपन्यास का मिश्रित रूप है! हमेशा से हिन्दी कथा तथा हिन्दी उपन्यास हिन्दी गद्य साहित्य की रोचक महत्त्वपूर्ण एवं लोकप्रिय विधा रही है!

कथा साहित्य को दो प्रमुख भागों में विभक्त कियागया है : 1. नीति कथा 2. लोक कथा

नीति कथा एक साहित्यिक विधा है जिसमे पशु पक्षियों, पेड़-पौधों एवं अन्य निर्जीव वस्तुओं को मानव जैसे गुणों वाला दिखाकर उपदेशात्मक कथा कही जाती है! नीति कथा, पद्य तथा गद्य दोनों में हो सकती है! पंचतंत्र, हितोप्देश आदि प्रसिद्ध नीति कथाएँ हैं इसमें पात्र मनुष्य नहीं होते हैं! इसके विपरीत- लोककथा या लोकवार्ता किसी मानव समुदायकी उस साझी अभिव्यक्ति को कहते हैं, जो कथा, कहावतों, चुटकुलों आदि अनेक रूप में अभिव्यक्त होता है इसके आलावा लोकवार्ता मे उस मानव समूह की लोककलाएँ, लोकवस्तु, लोकगीत, लोकोत्सव आदि सब कुछ आ जाते हैं!

समकालीन हिन्दी कथा साहित्य कि प्रवत्ति की दृष्टि से सबसे अधिक महत्त्व नारीवाद, आदिवासी, दलित विमर्श और अल्पसंख्यक विमर्श के श्रेणीगत सैधांतिक ढाँचे का है उपरोक्त वर्गीकरण विभिन्न विधाओं में रचित साहित्य के शोधपरक अध्यन के लिए सुविधाजनक है अत्यधिक समकालीन कहानियों तथा उपन्यासों का वर्गीकरण इसी के आधार पर कर लिया गया है और इन्ही तथ्यों को लेकर रचनाएँ होती आ रही हैं किंतु इसी क्रम में भारतीय समाज में उपस्थित एक अन्य विशेष वर्ग भी है, जो है किन्नर समुदाय का जीवन!

किन्नरों की उत्पत्ति में दो प्रवाद हैं एक तो यह की वे ब्रह्मा की छाया अथवा उनके पैर के अँगूठे से उत्पन्न हुए हैं और दूसरा यह कि अरिष्ठा और कश्यप उनके आदिजनक थे! मानव तथा पशु-पक्षी संयुक्त भारतीय कला का एक अभिप्राय यह है कि इसकी कल्पना अति प्राचीन है! शतपथ ब्राहमण में अश्वमुखी मानव शरीर वाले किन्नर का उल्लेख है! बौद्ध साहित्य में किन्नर की कल्पना मानवमुखी पक्षी के रूप में की गई है! मानसार में किन्नर के गरुड़मुखी, मानवशरीरी और पशुपदी रूप का वर्णन है!

तालियाँ इनका प्रतीकात्मक बिंदु या चिह्न होती हैं! जिससे दूर से ही इनके आने का पता चल जाता है इनकी ज़िंदगी ताली बजाते-बजाते ही निकल जाती है! ज़िंदगी में कभी ख़ुद के लिए

ताली सुनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता! किन्नरों को उनकी मंगल शुभकामनाओं के बदले कभी सम्मान प्राप्त नही होता है।

किन्नरों की समस्या यह है कि किन्नरों के साथ औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों ही तरीकों के साथ भेदभाव देखने को मिलता है! किन्नर समुदाय मुख्य धारा से ही बाहर है और समाज के लोगों के द्वारा इनका बहिष्कार होता रहा है पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, स्वास्थ्य सुविधाओं आदि की दृष्टि से किन्नर समुदाय को पिछड़े तथा बहिष्कृत समुदाय की श्रेणी में रखा जा रहा है! किन्नरों को अपना परिवार, वंश, विवाह आदि के सुख से वंछित रहना पड़ता है! समाज से कटे तथा अलग-थलग होने के कारण इनका जीवन अत्यंत कष्टदायक होता है न तो इनके जीवन में किसी भी त्यौहार के लिए कोई भी स्थान होता है और न ही इनका जीवन सामान्य मनुष्य की तरह सामान्य होता है! ये समाज में हास्य का पात्र बनकर ही अपने अकेलेपन का शिकार बनते है! किन्नरों को जीवन के प्रारंभिक समय से लेकर जीवन के अंतिम समय तक अनगिनत चुनौतियों का सामना करना पड़ता है!

भूमंडलीकरण की स्थितियों से प्रभावित समाज और संस्कृति ने इस समुदाय के प्रति संवेदनाओं को प्रकट किया है हिन्दी के कुछ कथाकारों ने साहित्य जगत् में इन्हें स्थान दिलाने के लिए मुख्य भूमिका निभाई है!

हिन्दी में किन्नर समाज पर आधारित उपन्यासों में एक उपन्यास निर्मला भुराड़िया जी का गुलाम मंडी (2014) एक प्रसिद्ध उपन्यास है जिसमे इन्होने कई मुद्दों को समेटा जैसे- देह व्यापार, जात-पात, ऊँच-नीच, ख़ूबसूरती का अहंकार, बुढ़ापे का दर्द! परन्तु इन सबसे बिलकुल ही अलग एक महत्त्वपूर्ण मुद्दे पर निर्मला जी ने प्रकाश डाला है वह है किन्नर समाज! इस ज्वलंत विषय पर निर्मला जी ने इस उपन्यास की पात्र कल्याणी के माध्यम से स्वतंत्र रूप से समाज के छुपे रहस्य को उजागर किया है!

इसी प्रकार चित्रा मुद्गल जी का एक प्रसिद्ध उपन्यास है (पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नालासुपारा-2016) जो की एक किन्नर के भीतरी व्यथा को दर्शाता है इस उपन्यास में मुंबई महानगर को केंद्र में रखा गया जिसमें विनोद उर्फ़ बिन्नी उर्फ़ बिमली के जीवन की व्यथा को केंद्र बिंदु बनाया गया यह उपन्यास पत्रात्मक शैली में लिखा गया है इस उपन्यास में बिन्नी और बा की वार्तालाप का साधन पत्र होता है इस उपन्यास मे एक बेबस माँ का चित्रण देखने को मिलता है जो न चाहते हुए भी अपनी संतान से अलग रहने के लिए विवश है!

उपन्यास "मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी"- लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी का एक प्रमुख उपन्यास है! इस उपन्यास की पात्र लक्ष्मी को एक सशक्त किन्नर के रूप में प्रदर्शित किया है! जो अपने ही किन्नर समुदाय की परम्पराओं का विरोध करती है तथा किन्नरों को जागरूक करने का काम करती है! लोगों का तिरस्कार सहते हुए भी असीम धैर्य के साथ संघर्ष करती है! लक्ष्मी को उसके परिवार का सहयोग देते दिखाया गया है उसके पिता कहते हैं- "अपने ही बेटे को मैं घर से बाहर क्यूँ निकालूँ मैं बाप हूँ उसका, मुझ पर जिमेद्दारी है उसकी और ऐसा किसी भी घर में हो सकता है ऐसे लड़कों को घर से बाहर निकालकर क्या मिलेगा? उनके सामने तो हम भीख माँगने के अलावा कोई रास्ता नहीं छोड़ते हैं!"

लक्ष्मी कहती है – "मुझे प्रोग्रेसिव हिजड़ा होना है ..... और सिर्फ मैं ही नहीं अपनी पूरी कम्युनिटी को मुझे प्रोग्रेसिव बनाना है!"

ट्रांसजेंडर स्त्री मानोबी बंदोपाध्याय की बाँगला से हिन्दी में अनुदित आत्मकथा "पुरुष तन में फँसा मेरा नारी मन" – राजपाल प्रकाशन- (2018) एक प्रसिद्ध आत्मकथा है यह आत्मकथा अंग्रेजी में "ए गिफ्ट ऑफ़ लक्ष्मी" के नाम से प्रसिद्ध है जो मानोबी के जीवन पर केन्द्रित है! 2015 में भारत मे पहला ट्रांसजेंडर कॉलेज प्रिंसिपल बनने के बाद मानोबी प्रमुखता से ख़बरों में छाए! मानोबी ने अपनी पुस्तक में संक्षेप रूप से प्रस्तुत किया है कि"वे स्वाभाविक रूप से मेरी उपस्थिति से स्तब्द थे और मेरे ख़िलाफ़ खुले आम युद्ध की घोषणा कर रहे थे, मेरे करियर को बर्बाद करने की धमकी दे रहे थे क्योंकि किसी भी हिजड़े को प्रोफ़ेसर बनने का अधिकार नहीं था किसी भी हिजड़े को कॉलेज में पढ़ाने की अनुमति नही होनी चाहिए, एक ही स्टाफ रूम, शौचालय और सुविधाओ को साझा करना नही चाहिए"!

बंदोपाध्याय की पुस्तक एक प्रमुख रूप में उनकी नौकरी में बसने के बाद उत्थान के एक नोट पर समाप्त होती हैं!

हिन्दी में किन्नर समाज पर आधारित कहानी संग्रह – थर्ड जेंडर-हिन्दी कहानियाँ (डॉ फ़िरोज़ खान) संपादक उल्लेखनीय है इस कहानी संग्रह में कुल 18 कहानियाँ सम्मिल्लित हैं जिसमें से महेंद्र भीष्म की कहानी–त्रासदी में लेखक ने एक सुन्दरी नामक हिजड़े को कहानी का पात्र माना है जो हिजड़ा जीवन के त्रासदीपूर्ण अंत को प्रदर्शित करता है! विधवा स्त्री रति को बलात्कारियों से बचाने वाली सुन्दरी रति के बेटे दीपक से कभी भी सम्मान का भाव प्राप्त नही कर पायी! लोगो के तानो और हँसी-मज़ाक का पात्र बन जाने के भय से परेशान होकर दीपक सुन्दरी की रेलवे स्टेशन पर हत्या कर देता है! यह त्रासद अंत मात्र एक सुंदरी का नहीं बल्कि हमारे मूल्यों, संवेदनाओं और मानवता का भी है!

नाटक जानेमन में बहुत बारीकी से मछिंदर मोरे जी ने इस नाटक में किन्नर समुदाय की समस्याओं को उजागर किया है।

विजेंद्र प्रताप सिंह की 'संकल्प' नामक कहानी एक ऐसे किन्नर की कहानी है जो अपने आत्मबल के सहारे ही अपने भाई और पिता का सहारा बनती है। जन्म के साथ ही माधुरी का संघर्ष शुरू हो जाता है। माधुरी के हिजड़ा रूप में पैदा होने से न केवल उसके बल्कि उसके समस्त परिवार को भी समाज का तिरस्कार और अपमान सहना पड़ता है। यथा –

"उसका हिजड़े के रूप में जन्म लेना कोढ़ में खाज जैसा सिद्ध हुआ उसके परिवार के लिए। एक तो गरीबी दूसरी यह विपत्ति।"

सात वर्षीया माधुरी के सर से माँ का साया सदा के लिए समाप्त हो जाता है, उस पर

नवजात बहन और मानसिक संतुलन खो चुके पिता की समस्त ज़िम्मेदारी माधुरी के सर पर आ जाती है। बड़ी होने पर माधुरी हिजड़ा समाज से भी संपर्क बनाती है और माधुरी से मधुर बनती है।

एक बार जबरन एक पुलिस द्वारा उसका बलात्कार किया जाता है। बलात्कार पीड़ित माधुरी को डॉक्टर से जब यह मालूम पड़ता है कि ऑपरेशन के द्वारा वह स्त्री बन सकती है। वास्तव में माधुरी एक बुचर हिजड़ा थी। इसके बाद तो माधुरी जी जान से पैसे जुटाने में लग जाती है और ऑपरेशन करा के एक पूर्ण स्त्री बनती है और उसके जीवन को अभिशप्त बनाने वाला हिजड़ा शब्द सदा के लिए उसके जीवन से समाप्त हो जाता है।

किन्नरों की संवैधानिक स्थिति

15 अप्रैल 2014 को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए फैसले ने थर्ड जेंडर को संवैधानिक अधिकार दे दिए और सरकार को निर्देशित किया कि वह इन अधिकारों को लागू करने की प्रक्रिया को सुनिश्चित करें उसके बाद 5 दिसम्बर 2019 को राष्ट्रपति से मंजूरी मिलने के बाद थर्ड जेंडर के अधिकारों को क़ानूनी मान्यता प्राप्त हुई! अदालत ट्रांसजेंडर को अनुछेद 14, 15, 16 और 21 के तहत समान अधिकार और सुरक्षा प्रदान करती है! अदालत ने गरिमा (डिगनिटी) के अधिकार के महत्त्व पर ज़ोर दिया है!

उपरोक्त विषय के संबंध में न्यायमूर्ति माननीय श्री के. एस. राधाकृष्णन जी ने फैसला सुनाते हुए सर्वोच्च न्यायालय को बताया कि "तीसरे लिंग के रूप में ट्रांसजेंडर की मान्यता एक सामाजिक या चिकित्सा मुद्दा नहीं है, बल्कि एक मानव अधिकार का मुद्दा है!"

माननीय सुप्रीम कोर्ट ने इन्हें थर्ड जेंडर की मान्यता ज़रूर दी है और अब किन्नर ही समाज की मुख्य धारा में बढ़ चढ़ कर शामिल हो रहें हैं! वर्तमान में किन्नर समाज के कई नेता राजनीति और सामाजिक क्षेत्र में अहम उपलब्धि हासिल कर चुके हैं इसमें किन्नर अखाड़ा की आचार्य महामंडलेश्वर लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी का नाम शामिल है देश की पहली किन्नर मेयर आशा देवी (अमरनाथ यादव) का नाम भी इसमें शामिल है वो 2001 में आशा देवी गोरखपुर की मेयर चुनी गई थी! यह राजनीति की दिशा में बड़ा बदलाव माना गया था जब मध्यप्रदेश में पहली बार किन्नर विधायक चुनी गई थी!

भोपाल में संजना सिंह नाम की ट्रांसजेंडर को सरकारी नौकरी पाने वाली पहली किन्नर बन गई है! किन्नर संजना सिंह को मध्य प्रदेश के सामाजिक न्याय और दिव्यांग कल्याण विभाग के सचिव की निजी सहायक बनाया गया है!

निष्कर्ष – हिन्दी कथा साहित्य ने इस समुदाय की व्यथा वंचना और उपेक्षित जीवन को पर्याप्त स्थान दिया है! आज के इस दौर में जहाँ आधुनिकता अपने चरम पर है वहाँ आज भी कुछ वर्ग या तो अपने मिलने वाले अधिकारों से वंचित है या अनजान है! हिन्दी कथा साहित्य द्वारा इनको मुख्या धारा में स्थान और प्रत्येक स्तर पर अधिकार मिलेगा समाज इनके जीवन संघर्ष इनकी पीड़ा दर्द, कराह आदि को समझे और कम करने में योगदान दें। वर्तमान समय मे किन्नर जनजीवन की चुनौतियाँ साहित्य के केंद्र में स्थान पाकर शिष्ट समाज का ध्यान आकर्षित कर रही हैं! कथा साहित्य से किन्नर व्यक्तियों के प्रति संवेदनशील हो रहा है!

000

सन्दर्भ-

1. गुलाम मंडी:- निर्मला भुराड़िया, सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2014.

2.मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी:- लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015.

3.पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा:- चित्रा मुद्गल, सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2016.

4.किन्नर कथा :- महेंद्र भीष्म, सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018.

5.पुरुष तन मे फँसा मेरा नारी मन:- मानोबी बंदोपाध्याय, राजपाल प्रकाशन, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली -110006, प्रथम संस्करण-2018.

6.पन्नाबा- गरिमा संजय दुबे- दो ध्रुवों के बीच की आस कहानी संग्रह!

7.संकल्प – विजेंदर प्रताप सिंह, थर्ड जेंडर हिन्दी कहानियाँ, डॉ. फ़िरोज़ खान अहमद-अनुसंधान पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर-2017

8.किन्नर-पूनम पाठक, साहित्य मंजरी-2016.

9.किन्नर विमर्श : समाज के परित्यक्त वर्ग की व्यथा कथा- डॉ. पुनीत बिसरिया-2016!

10. साहित्य में किन्नर विमर्श की आवश्यकता – डॉ. आर. पी. वर्मा, राजकीय महाविद्यालय, उन्नाव, उत्तर प्रदेश-2019!

11.मुद्दा : वजूद के लिए संघर्ष – देवाशीष उपाध्याय – जन सत्ता पत्रिका-2019!

12.किन्नर समुदाय : प्रचलित धारणाएं और यथार्थ – दीप्ति मिश्रा – समकालीन जनमत- 2020!

13.किन्नर विमर्श पर साहित्यिक चर्चा: मीडिया 360 –7 रंग पत्रिका, गाज़ियाबाद – 2018!

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

(शोध आलेख)

नागार्जुन के उपन्यासों की भाषिक संरचना और शिल्प

शोध लेखक : डॉ. रूपेन्द्र कुमार झा
सहायक प्राध्यापक
हिन्दी विभाग
सी.एम. कॉलेज, दरभंगा

हिन्दी के आलोचकों की निगाह में नागार्जुन या तो ग्राम-कथा लेखक हैं या आंचलिक या समाजवादी-यथार्थवादी। निश्चय ही ये सारे विशेषण लेखक की विलक्षणताओं को सीमाबद्ध करते हैं। जबकि नागार्जुन जैसे लेखक की कथा-वस्तुएँ जीवन की सहज प्रवाहमयता का अनुसरण करती हैं। जीवन अपनी स्वाभाविकता में न तो पूरी तरह आदर्शवादी होता है और न ही यथार्थवादी।

उपन्यास आधुनिक युग की देन है इसलिए दूसरी विधाओं की अपेक्षा इसके शिल्प की समस्या थोड़ी जटिल है। विषय-वस्तु की पड़ताल के लिए रूप की संरचना पूर्व निर्धारित नहीं होती, बल्कि विषय-वस्तु से इसका अंतर्संबंध है। संरचना और शिल्प एक दूसरे से प्रभावित होते हैं। नागार्जुन की उपन्यास कला और शिल्प को समझने के लिए शोभाकांत की पंक्तियाँ बहुत सार्थक है- "किसी भी रचनाकार के पास अभिव्यक्ति करने के लिए एक निश्चित विषय-वस्तु होती है। विषय रचना की बाह्य प्रक्रिया और वस्तु उसकी आंतरिक प्रक्रिया होती है। इसलिए कथा साहित्य में विषय की अपेक्षा वस्तु अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है और वस्तु को अनुभव के धरातल से प्राप्त करके कथाकार जिस माध्यम द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है वह उपन्यास का शिल्प कहलाता है। कहना न होगा कि नागार्जुन विषय-वस्तु को अधिक महत्त्व देते हैं। उन्होंने एक जगह स्वीकार किया है कि रचना के पहले और बाद का मेरा समूचा ध्यान विषय-वस्तु (कंटेंट) पर होता है। 'रूप' (बहिरंग) और टेकनीक (कौशल या रचना प्रकार) पर आवश्यकता से अधिक ध्यान मैंने कभी नहीं दिया।"1

उपन्यास के शिल्प की सार्थकता विषय-वस्तु के ठीक-ठीक संप्रेषण के साथ जुड़ी हुई है। हर कथाकार के सामने शिल्प का चुनाव वस्तु को प्रस्तुत करने के लिए उसके अनुरूप होना आवश्यक होता है। शिल्प एक अवधारणामूलक शब्द है। अंग्रेजी में इसका अनुवाद 'टेकनीक' है। किंतु टेकनीक और कला-कौशल में भिन्नता है। कला शब्द के गूढ़ार्थ में कल्पना और अमूर्तता निहित है। शिल्प का संबंध भाव, विचार, लक्ष्य और अनुभूति पक्ष की अपेक्षा भाषा, शैली और विधा पक्ष से अधिक जुड़ता है। औपन्यासिक शिल्प के संबंध में कथा-आलोचना ने अनेक भ्रम और ग़लत धारणाएँ बना रखी है।

प्राय: ही रचना की शिल्प-विधि को शिल्प-विधान का पर्याय मान लिया गया है, जो कि एक भ्रामक धारणा को जन्म देता है। रचना की संपूर्ण संरचना शिल्प-विधान है जो कि वस्तु को स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत करने वाले उपकरण या समस्त साधन है। अत: स्पष्ट है कि रचना की शिल्प-विधि और शिल्प-विधान में अंतर है। वे एक-दूसरे का पर्याय नहीं सहवर्ती हैं। इसलिए औपन्यासिक शिल्प के अंतर्गत शिल्प-विधान या ढाँचा, शिल्प-विधि और शैली आदि का चर्चा करना आवश्यक है।

डॉ. सुरेन्द्र कुमार यादव ठीक ही लिखते हैं- "शिल्प-विधान का अर्थ-कथानक, पात्र, चरित्र-चित्रण, वातावरण और देशकाल, उद्देश्य, भाषा-शैली आदि तत्वों के आधार पर उपन्यास का ढाँचा खड़ा करना था और इसी परम्परागत शिल्पगत प्रवृत्ति को बनाये रखा गया। एक सीमा तक प्रेमचंद के बाद के उपन्यासों में इस परम्परागत शिल्प-विधान को तोड़ा गया और मनुष्य के बाह्य जीवन यथार्थ के बजाय उसके आंतरिक जीवन को आधार बनाया। इसके मूल में फ्राइडवाद का मनोविज्ञान संबंधी दर्शन है, जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि उपन्यासों में मानव व्यक्तित्व के निर्माण के स्थान पर मानव व्यक्तित्व के विघटन की शुरुआत हो गई।

राल्फ फॉक्स ने उपन्यास को पूँजीवाद की देन मानते हुए लिखा है कि उपन्यास का विषय है व्यक्ति।"2

नागार्जुन के उपन्यास जिस भाषा में लिखे गए हैं उसका प्रधान स्वरूप खड़ी बोली है। यात्राओं की दुनिया में उतरते ही वे उनकी बोलियों के अन्दाज़ को भी पकड़ लेते हैं। 'वरुण के बेटे' में बंगाली बाबू की हिन्दी का नमूना देखिए- "घो घोन छेड़े दाओ (छोड़ दो) आओ हम डी.टी.एस. को फ़ोन करता है....विहान (सुबह) मिलिटरी आएगी तब मॉब को लेखन देगा

डॉ. रूपेन्द्र कुमार झा
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
सी.एम. कॉलेज, क़िलाघाट, रहमगंज
दरभंगा 846004, बिहार
मोबाइल - 7782088518
ईमेल- jharupendra@gmail.com

(भीड़ को सबक सीखाएगा)....हुँआ (वहाँ) जास्ती देर मत ठहरा (खड़ा) रहो रे बुड़बक (भोंदु)''3

'कुम्भीपाक' उपन्यास में नेपाली नौकर दिवाकर शास्त्री से कहता है-

''हुजूर, खाना तइयार है।''4

''कम्पाउन्डर की बीबी ने दिल ही दिल में अपने से कहा- ''छिनाल कहीं की। उड़ती चिड़ियाँ की पूँछ में हल्दी लगाने वाली राँड। किस कदर बात बनाती है।''5

'अभिनन्दन' का यह वाक्यांश- ''सरकार (ललन जी की कुर्सी के पीछा खड़ा होकर) ए गो बाबू आपको चाल पाड़ते हैं, उनको यहीं से आवें हुजूर ?''6

सामाजिक यथार्थ लेखन की यह पहली शर्त है कि रचनाकार उस वास्तविकता का निकटस्थ परिचय रखता है। सैद्धान्तिक परिचय मात्र नहीं 'जमनिया का बाबा' 'अभिनन्दन' (हीरक जयन्ती) जैसी कथा-कृतियों में नागार्जुन पात्रों को जिस आत्मविश्वास के साथ खोलते हैं, वह सिर्फ यथार्थ उद्‌घाटन भर नहीं है। मार्क्सवादी लेखक होने के नाते वे सिर्फ बाहरी दशाओं तक ही अपने को सीमित नहीं कर लेते। उस अन्तर-जगत् में भी उतरते हैं, जो प्राय: मनोवैज्ञानिक कथाकारों की अपनी पद्धति है।

भगौती सोचता है- ''सेठ विर्धीचन्द का जमानिया के चीनी के कारखाने में इक्वान प्रतिशत का शेयर है। ....सेठ विर्धीचन्द कितनी दूर की सोचता है भगौती ? भाई भगौती यह तो मानना ही पड़ेगा कि बनिया ज़मींदार से कई गुना अधिक चतुर होता है। नहीं ? मैं ग़लत कहता है''7

यथार्थ को पकड़ने के लिए यह स्वप्न चित्र शैली नागार्जुन अपनाते हैं। यह व्यंग्यात्मक शैली नागार्जुन के उपन्यासों का अहम भाग है। जहाँ तक भाषा का प्रश्न है 'रतिनाथ की चाची' में ऐसे ढेर सारे शब्द हैं जो ठेठ मैथिली में हैं। ऐसे शब्दों के लिए लेखक ने पाठकों के लिए टिप्पणियों का अंश भी जोड़ते हुए लिखा है- ''हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र बहुत बड़ा है। पूर्वी हिन्दी का ठेठ शब्द पश्चिमी हिन्दी के क्षेत्र तक पहुँचते-पहुँचते 'अजनबी' हो जाते हैं।''8 अपने उपन्यासों में नागार्जुन इस बात का पूरा ध्यान रखते हैं कि सामाजिक और आर्थिक स्तरों की विभिन्नता के कारण भाषा भेद कहाँ और कैसे पैदा हो जाता है।

चित्रात्मक भाषा का स्वरूप 'वरुण के बेटे' में कुछ इस प्रकार है- ''खुरखुन के होंठ अलग-अलग फैल गए और बत्तीसी बाहर झाँकने लगी। दाँत क्या थे, पकी-पोठी लौकी के पंक्तिबद्ध बीज थे मानो। वैसे ही सफेद साबित और यकसाँ।''9 काव्यात्मक अंश की बानगी- ''शाम के होने में अब भी विलम्ब था। गढ़ पोखर का प्रशान्त नील-कृष्ण वृक्ष हौले-हौले लहरारहा था। हेमन्ती दिनान्त के प्रियदर्शी रवि की पीताभ-किरणें उसकी लोल-लहरियों पर बिछ-बिछकर अपने को नाहक पैना रही थी।''10

निश्चित रूप से उपन्यासकार की भाषा की सफलता का प्रमाण है उसकी वर्णन विश्वसनीयता, जो नागार्जुन को हासिल है। साथ ही वो बीच-बीच में 'मुस्करा की बुकनी' जैसे लोक सौन्दर्य वाले बिम्ब 'लजकोटर' जैसे टिपिकल देहाती प्रयोग और 'इस्टीसन' जैसी ध्वनि विकृत्तियाँ भी अपना लेते हैं जिनसे उनकी भाषा की रंगीनी और विविधता का पता लग सकता है।

'इमरतिया' उपन्यास का कथानक नागार्जुन के जीवन में घटित घटना से संबंधित है। उपन्यास का प्रमुख पात्र बाबा है और कहा बाबा के ईर्द-गिर्द घूमती है। समस्त औपन्यासिक सामग्री को प्रस्तुत करने के लिए निश्चित वर्णन पद्धति ही शिल्प कहलाता है। आत्मकथात्मक शिल्पविधि के साथ नागार्जुन कुछ नवीन शिल्प में भी अपने उपन्यासों को ढाला है।

डॉ. सुरेन्द्र कुमार यादव कहते हैं- ''उपन्यास-साहित्य में कथा-तत्व को भी उसके संरचना और शिल्प-विधान की परिधि में रखकर ही आँकना चाहिए। कथा उपन्यास का ढाँचा होती है और उसके बिना उपन्यास का कोई महत्त्व नहीं रह जाता है। इसी बिन्दु के आधार पर नागार्जुन के उपन्यासों के शिल्प की पड़ताल करनी चाहिए।''11

संरचना या शिल्प के स्तर पर नागार्जुन प्राय: एक विधि अपनाते हुए दिखाई देते हैं। दो विरोधी शक्तियों का टकराव उपन्यास के आरंभ के ताना-बाना में दिखाई पड़ता है। 'बलचनमा' उपन्यास में बलचनमा और जमीन्दार का टकराव 'बाबा बटेसरनाथ' में जैकिसुन का संघर्ष। वैसे 'बाबा बटेसरनाथ' नया प्रयोगधर्मी शिल्प में हैं। समूचा वटवृक्ष का मानवीकरण कर दिया गया है। शिल्प या कथा-संयोजना की यह विधि उनके उपन्यासों की एक साधारण और सरल-सी जान पड़ती है, लेकिन संपूर्ण उपन्यास को अपनी गिरफ्त में लिए हुए है। इस प्रकार का शिल्प नागाजुरन के जीवन दृष्टि से संबंधित है। 'दुखमोचन' उपन्यास में अलग शिल्प का प्रयोग हुआ है। कथा संयोजन तीन घटनाओं को मिलाकर बनी है। 'नई पौध' और 'पारो' दो ऐसे उपन्यास हैं, जिनमें अनमेल विवाह की समस्या को सीधे और सरल रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'उग्रतारा' उपन्यास में वास्तविक कथानक के कारण अलग शैली का प्रयोग किया गया है। इस सन्दर्भ में नागार्जुन ख़ुद कहते हैं-

''यहाँ तक कि कहानी हमें मिली थी और बाद का हिस्सा कल्पना और तात्कालिक यथार्थ से मिलाकर हमने आगे बढ़ाया है। यानी कहानी का एक अंश हमको मिला, उसको हमने विकसित किया है।''12

इस तरह इसे वर्णनात्मक शिल्प विधि में रखा जा सकता है। आत्मकथात्मक शिल्प-विध का प्रयोग 'बलचनमा' 'पारो' तथा 'इमरतिया' उपन्यासों में सफल ढंग से किया गया है। इनकी भाषा लोकभाषा समन्वित और प्रवाहमयी है। जिन भाषाओं में मनुष्य के जीवन की झाँकी और उसके चरित्र की विविधता, उसके प्रक्रियात्मक संभावनाओं का सम्मिश्रण है। नागार्जुन की भाषा लोक जीवन का सच्चा अनुयायी है। इनकी भाषा में अद्‌भुत खिंचाव है। भाषा का पात्रोचित प्रयोग ही उनके उपन्यास की अहमियत है। 'रतिनाथ की चाची' में भाषा की इस वैविध्य को देखा जा सकता है। नागार्जुन ने रतिनाथ के नाना के बहाने अपने मन में उमड़ते मिथिला की माटी से अद्‌भुत लगाव का परिचय दिया है।

उपन्यास की भाषा के संबंध में विद्यानिवास मिश्र का कथन है- ''रचने की प्रक्रिया का बोध भाषा से उदित होता है। जिन्हें अपनी भाषा नहीं मिली वो ज्ञानात्मक परजीवी हैं। ओढ़े हुए यथार्थ पर निर्भर है और समाज की जटिलताओं को समझने में असमर्थ हैं।''13

नागार्जुन की भाषा में जनपदीय शब्दों का पुट है जो अंचलीय पात्रों को विशिष्ट पहचान दिलाने में सहायक होता है। साथ ही लेखक का अंचलीय जीवन को नजदीक से देखे जाने का प्रतीक है। आंचलिक शब्दावली ने नागार्जुन के उपन्यासों को सुबोध और सुरुचिपूर्ण बनाया है। नागार्जुन के उपन्यास लोक कथात्मक शैली, वर्णन प्रधान शैली एवं आत्मकथात्मक तीनों शैलियों में है।

चूँकि लोकजीवन और लोक कथा का संबंध अतिप्राचीन है। आंचलिक कथाकारों ने अपने लिए सबसे उपयुक्त इस शैली को माना है। नागार्जुन ने भी 'बाबा बटेसरनाथ' उपन्यास में इसी लोककथात्मक शैली का उपयोग किया है। लोक कथा के अंग हैं- भूत-पिशाच, चुड़ैल, दैत्य-दानव, परी आदि। कथा में इनके साथ कथानक को जोड़कर विश्लेषित किया जाता है। नागार्जुन ने अपने उपन्यास में भी ऐसा ही किया है। एक बरगद का पेड़ किस्सा सुना रहा है और उसके किस्से में उस जनपद के इतिहास, संस्कृति, राजनीति सारी चर्चाएँ चली आती है। जन साधारण की भाषा, स्थानीय शब्दों, लोक मुहावरों, कहावतों आदि के प्रयोग से और स्थानीय रंग स्पर्श से उपन्यास आंचलिकता में सराबोर है। अत: आंचलिक उपन्यास के यथार्थ और उसकी भाषा का घनिष्ठ संबंध है। अंचल विशेष के जीवन को सार्थकता से कथाबद्ध करना आंचलिक उपन्यासकार फणीश्वरनाथ रेणु का कथन है-

'आंचलिक भाषा रचना की उद्देश्यात्मकता को स्पष्ट करते हैं; देखिए, यों जब साधारण जनता की बात कहनी हो, तब वे लोग बोलते हैं तो ज़ाहिर है कि अपनी गाँव की बोली में बोलते हैं... मुझे लिखना पड़ रहा है उसको हिन्दी में।'14

नागार्जुन के उपन्यासों में जिन तीन शैलियों का सहारा लिया गया है, वे क्रमश: विवरण, संभाषण और अन्तर्दर्शन शैलियाँ है। 'जमनिया का बाबा' और 'हीरक जयन्ती' में अन्तर्दर्शन और आत्मविश्लेषण शैली का सफल प्रयोग हुआ है। यथार्थ को पकड़ने के लिए यह स्वप्न चित्र शैली नागार्जुन अपनाते हैं। यह व्यंग्यात्मक शैली नागार्जुन के उपन्यासों का मुख्य तत्व है। नागार्जुन के भाषिक तेवर में गाँव की गंध, हरे-भरे खेतों और आम की मंजरियों की सुगंध, पोखर-तालाब और गलियारों के विहंगम दृश्य, खलिहानों और बाग-बगीचों की मोहक सुगंध आदि है। इस प्रकार हम देखते हैं कि नागार्जुन के उपन्यासों की भाषिक संरचना और शिल्प अनूठा है। विवरण शैली के माध्यम से 'दुखमोचन' 'उग्रतारा', 'पारो' जैसे चरित्रों की सृष्टि की गई है। 'कुम्भीपाक' और 'बाबा बटेसरनाथ' में सम्भाषण शैली का इस्तेमाल किया गया है। समग्रत: कहा जा सकता है कि उनके उपन्यासों में हमें वर्णन, विवरण, आत्मोद्घाटन, स्वप्न-कथन और नाटकीय शैलियों का प्रयोग मिलता है। इसी क्रम में 'बलचनमा' में आत्मकथात्मक, 'रतिनाथ की चाची' में धारावाहिक कथा शिल्प, 'उग्रतारा' और 'कुम्भीपाक' में समस्या केन्द्रित नाटकीय विवरण शैली का प्रयोग किया गया है। भाषिक संरचना और अनूठे शिल्प के नवीन प्रयोग के कारण नागार्जुन हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रतिमान स्थापित करते हैं।

000

संदर्भ- 1.नागार्जुन चुनी हुई रचनाएँ- 3 सं. शोभाकांत, पृ. 309, 2.नागार्जुन की उपन्यास कला- ले. डॉ. सुरेन्द्र कुमार यादव, पृ.- 168-169, 3.वरुण के बेटे, पृ.- 94, 4.कुम्भीपाक, पृ.- 79 ,5.वही, पृ.- 19, 6.हीरक जयंती, पृ.- 100, 7.इमरतिया, पृ.- 120, 8.नागार्जुन का रचना संसार, पृ.- 159-160, 9.वरुण के बेटे, पृ.- 22, 10.वही, पृ.- 112, 11.नागार्जुन की उपन्यास कला, पृ.- 169, 12.वही, पृ.- 173, 13.धर्मयुग, विद्यानिवास मिश्र, 7-13 मई 1978, 14. कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु, डॉ. चन्द्रभानु सोनवणे, पृ.- 13

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : शिवना साहित्यिकी

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 21 मार्च 2023

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

(शोध आलेख)

अमृतलाल नागर की कहानियों का अनुशीलन

शोध लेखक : डॉ. निशान सिंह

अमृतलाल नागर जी का हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने साहित्य की लगभग सभी विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई है। अमृतलाल नागर हिन्दी के जाने-माने कहानीकार हैं। अमृतलाल नागर की कहानियों के अनेक संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी प्राय: सभी प्रकाशित कहानियों का संकलन एक दिल हज़ार अफसाने कहानी संग्रह में उपलब्ध है। अमृतलाल नागर जी ने स्वयं के जिये या भोगे हुए यथार्थ को अपने साहित्य में उतारने के प्रयास के साथ लेखन कार्य आरम्भ किया और धीरे-धीरे उनकी सोच का दायरा बढ़ता चला गया। अपने युगीन व्यक्ति और समाज की सहज झलक इनकी कहानियों में देखी जा सकती है। इन्होंने अपनी कहानियों में युग यथार्थ की पृष्ठभूमि में युग जीवन को तथा युग जीवन के सन्दर्भ में व्यक्ति के जीवन को विभिन्न कोणों, प्रसंगों तथा स्थितियों में देखा है और भिन्न-भिन्न आयामों का चित्र प्रस्तुत किया है।

'हाजी कुल्फी वाला' कहानी में अमृतलाल नागर जी ने कुल्फियों जैसी सामान्य वस्तु को लेकर उसकी व्यवहारिक विशेषताओं की बारीकियों के साथ जीवन की गतिशीलता का परिचय दिया है। हाजी कुल्फी वाला निम्न मध्यमवर्गीय समाज का एक 'टाइप्ड' पात्र है। वह व्यवहार कुशल परिश्रमी होने के कारण काफी धन कमाता है और वह उसकी बातों के जादू से, क़िस्सागोई से एवं गप्पबाज़ी से अपनी कुल्फियों की बिक्री बढ़ाने के उद्देश्य में सफल रहता है। वह जानता है कि यदि वह दूसरों को अपनी बातों से प्रभावित कर लेता है तो वह अपनी वस्तु का सबसे बड़ा विज्ञापन है। हाजी कुल्फी वाला की प्रसिद्धि किस प्रकार बढ़ी इसका एक उदाहरण इस प्रकार है - "फिर कोई शानदार कोठी-बंगले वाला हाजी बुलाकी की कुल्फियों से महरूम न रहा। हाजी बुलाकी की कुल्फी और निमिष का शुमार भी लखनऊ के कल्चर में हो गया। विदेशी मेहमानों को लखनऊ आने पर चिकन के कुर्ते, दुपटिया टोपी, रूमाल और साड़ियाँ, मिट्टी के खिलौने और मशहूर इत्रों के तोहफे तो दिये ही जाते थे, हाजी बुलाकी की कुल्फी या सर्दियों में निमिष भी खिलाई जाने लगी। अंग्रेजी के अख़बार वालों ने उनकी तस्वीरें तक छापीं।"1

अमृतलाल नागर ने अपनी कहानियों में सामाजिकता का अत्यन्त मार्मिक ढंग से चित्रण किया है। 'कादिर मियाँ की भौजी' कहानी में पति-पत्नी के संबंध को पैसे तक सीमित रखा गया है। कादिर मियाँ की भौजी अपनी मेहनत की कमाई पति की ऐयाशियों के लिए नहीं देती है तब उसका पति उसे मारता है। "जोरों से दाँत किटकिटाते हुए भौजी का एक गाल अपने बाएँ हाथ की चुटकी से दबाते, फिर तड़ातड़ तमाचे मारते हुए कहा "बोले मेरी चहेती की कसम देने वाली

निशान सिंह पुत्र मामु राम
गाँव - रसूलपुर, डाकघर-बरोट
तहसील-ढाण्ड, जिला-कैथल
पिन कोड-136020, (हरियाणा)
मोबाइल- 7015461881
ईमेल-nishansingh3300@gmail.com

तू कौन होती है हरामज़ादी ! आज तेरा खून पी डालूँगा।"2

'जन्तर-मन्तर' कहानी में जन्तर-मन्तर का चमत्कार, अशिक्षित और ग़रीब लोगों को ठगने के लिए अन्धविश्वासों की छाया में जीने वाले लोगों के साथ किस प्रकार धूर्त लोगों द्वारा किया जाता है, यह दिखाया गया है। कादिर मियाँ और पीरबख्श निम्नवर्गीय समाज के प्रतिनिधि पात्र हैं। वे दोनों आपस में भिड़ जाते हैं क्योंकि पीरबख्श सस्ती बर्फ बेचता है और ज़्यादा ग्राहक भी उसी के पास आने लगते हैं। यह बात कादिर मियाँ सहन नहीं कर सकते। पीरू पहलवान से मन ही मन दबते हैं और उससे बदला चुकाना चाहते हैं, लेकिन शाहजी के चमत्कारों की हर जगह धूम है। वह इस ग़रीब का धन और श्रद्धा लूटकर भी उसे मार खाने से न बचा सके। शाहजी की शेखी में आकर कादिर मियाँ पीरू पहलवान से भिड़े तो अपनी हड्डी-पसली चूर करवाई, सिर फुड़वाया और अस्पताल पहुँच गए। जब शाहजी के जन्तर-मन्तर के सारे नुस्खे असफल होने की उनसे शिकायत करने लगे "अब कम से कम पचास रुपये हों तो 'सतियानास' हो जाए। बड़े-बड़े कुलाबे भिडेंगे।"3

'गोरख धन्धा' कहानी में पति-पत्नी के सम्मान का दृश्य देखने को मिलता है। सतीस जो बेरोज़गारी के कारण घर परिवार का सही ढंग से पालन-पोषण नहीं कर पाता है फिर भी उसकी पत्नी राधा प्रसन्न रहती है। "राधा रानी ने हमदर्दी दिखलाते हुए कहा मुझे रानी बनने की चाह नहीं अपने धर में ही सुखी हूँ भगवान् करे तुम बने रहो, मुझे और कुछ नहीं चाहिए। तुम क्या कुछ कम ख़ूबसूरत हो कि चिन्ता डायन तुम्हें खाए डाल रही है।"4

'मोती की सात चलनियाँ' कहानी में धर्म और मज़हब के नाम पर हिन्दू-मुस्लिम एकता को नुकसान पहुँचाने वाले संकीर्ण दिमाग़ के लोगों को झकझोरने के लिए नई पीढ़ी द्वारा पुरानी पीढ़ी के परम्परागत एवं दिखावटी जीवन से मुकाबला दिखाया गया है। हिन्दू-मुस्लिम भाईचारे की स्थापना में योगदान देने वाली नई पीढ़ी का मानना है। "हमें जन्म मरन, शादी वगैरह के लिए किसी मुल्ला या पंडित की ज़रूरत नहीं। मस्जिद-मंदिर की हमें ज़रूरत नहीं। ईश्वर को मानते हैं, मगर साइन्स की शक्ति में उसे देखते हैं। आप ख़ुद ने ही यह आचार-विचार माने ? आप नाम-मात्र के लिए जन्म के संस्कारों से बंधे रहे। हमें यह भी झूठ लगा, हम उसे भी नहीं मानते।"5

'मायामोह' कहानी में प्राचीन समय से चली आ रही दहेज प्रथा का चित्रण किया गया है। वैसे प्राचीन समय में स्त्री-पुरुष के विचारों के मेल से नहीं दहेज देने से विवाह होता था। इसी प्रथा का प्रमाण 'मायामोह' कहानी में दिखाया गया है। श्यामकली दहेज के नाम पर अपने बेटे का विवाह एक आँख की अन्धी लड़की से करती है क्योंकि उसके बदले में उसे बहुत सारा दहेज मिलता है। "पन्नो की अम्मा ने मुस्कुराकर कहा, "ठीक ही तो कहत है बिचारी। गीता में लिखा है कि करम करो, फल न देखो। सो इन्होंने फल में तो पराये घर की लच्छमी ताकि और करम की कानी अपने बेटे के सिर मढ़ दी।"6

'भारत पुत्र नौरंगीलाल' राजनेताओं के दोहरे व्यक्तित्व को अनावृत करने वाली एक सशक्त व्यंग्य रचना है। जिसमें आधुनिक राजनीतिज्ञों के क्रिया कलापों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है। कहानी के नायक भारत पुत्र नौरंगीलाल अपने जीवन में सदैव दो घोड़ों की सवारी का सिद्धान्त पालते हैं। यह सिद्धान्त उनके ससुर नम्बर एक का दिया हुआ गुरुमंत्र है। उन्हीं के शब्दों में - "नौरंगीलाल, तुम बनिए के बेटे हो। सदा दो घोड़ों की सवारी रखा करो। अगर एक न चला तो दूसरा चल निकलेगा। देस का काम करो और हमारे बही-खाते सम्भालो। अगर चमक गए तो नेता बनोगे, नहीं हमारे दामाद तो बन ही जाओगे।"7 इस सिद्धान्त पर चलते हुए भारत पुत्र नौरंगीलाल अंग्रेजी राज में अफसरों के मित्र भी रहे और देशभक्तों के भी। फेंकू हलवाई की लड़की से भी ब्याह किया और भग्गू पंसारी की बिटिया से भी। स्वातंत्र्योत्तर भारत में भी नौरंगीलाल 'दोहरी सवारी' के सिद्धान्त पर चलते हुए राजनेताओं और अधिकारियों से मेल जोल बनाकर वैध-अवैध साधनों से धन एकत्रित करते रहे हैं। नौरंगीलाल धन की ताक़त के सहारे अपने आपको समाज में प्रतिष्ठित करने का प्रयास करता है। नौरंगीलाल की भान्ति ही आज अनेक राजनेता अपने दोहरे व्यक्तित्व एवं दोहरे मापदण्डों के बल पर नेतागिरी चला रहे हैं।

'जुएँ' कहानी में अमृतलाल नागर जी ने व्यक्तियों में बढ़ती बौद्धिक सनक और इन्सानियत के मूल्यों के पतन का वर्णन करते हुए मानवता को पुन:स्थापित करने की आवश्यकता पर बल दिया है। भारतीय जनमानस को झिंझोड़ देने वाले 1962 के आकस्मिक चीनी आक्रमण को लेकर लेखक ने नेहरू जी की राजनैतिक विचारधारा की आलोचना करने के साथ ही भारतीय कम्युनिस्टों के दृष्टिकोण को भी अपनी आलोचना का केन्द्र बिन्दु बनाया है। पड़ोसी राज्यों के साथ शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व एवं अहिंसा की नीति पर चलने से पहले भारत को आत्मनिर्भर एवं सैन्य-शक्ति सम्पन्न बनाने की महती आवश्यकता दिखलाई गई है। ताकि देश के गौरव, आत्म-सम्मान एवं अखण्डता पर भविष्य में किसी प्रकार का खतरा न आए। लेखक का आशावादी मन्तव्य इन पंक्तियों से स्पष्ट झलकता है। "सनक और अनास्था से तो लड़ा जा सकता है। ये अस्थायी वृत्तियाँ हैं। इन्सानियत एक बहुत बड़ी दौलत है, जो अब भी इन्सान के पास है। माओवादी कम्युनिस्टों की घृणा भरी उपेक्षा के बावजूद इन्सानियत केवल आज ही नहीं सदा जियेगी, सदा जियेगी, सदा जीतेगी।"8

'ओढ़नी सरकार' कहानी में दिखलाया गया है कि अपने आपको जाति निरपेक्ष कहने वाले जातिवाद में सबसे अधिक धंसे हुए हैं। यह बात आज की राजनैतिक व्यवस्था एवं वातावरण से स्पष्ट हो रही है। आरक्षण भारतीय राजनीतिज्ञों के सामने एक ज्वलन्त समस्या के रूप में विद्यमान है और अमृतलाल नागर जी जैसे मानवतावादी लेखक के लिए 'ओढ़नी सरकार' के लिए पर्याप्त सामग्री प्रदान करता है। जहाँ राजनीतिज्ञों को देश में बढ़ती हुई अराजकता, महँगाई, बेरोज़गारी इत्यादि की सघन समस्याओं को हल करना

चाहिए, वे जन आक्रोश को टालने के लिए आरक्षण को ही इन समस्याओं का कारण बताते हैं। साथ ही इन जातीय विभेदों को मतभेदों में बदल कर वे उनका वोट प्राप्त कर सत्ता के गलियारों में स्थापित हो जाते हैं। वे स्वयं भी अपनी जातियों को नहीं भूल पाते। यों तो जातियों के ऊँच नीचपन के संस्कार अभी तक हम सबके मनों में पलते हैं, फिर भी अनेक प्रगतिशील विचारक इन बातों से मुँह मोड़ चुके हैं। ख़ासतौर से राजनीति के क्षेत्र में लाल रिपुदमन सिंह जैसा घाघ पुरुष जो प्रदेश का मुख्यमंत्री रह चुका हो और जाति वर्ग विहीन समाज बनाने का दम भरता हो, उसके मुँह से अपनी दूसरी पत्नी के लिए ये शब्द प्रयुक्त करना अजीब लगता है। "मैं क्या जानता था कि हरामज़ादी मुझे ही अपनी जात का ओछापन दिखलाएगी। "9 तथा-कथित नीची जातियों के प्रति उसके रोष का कारण यह था कि उसकी दूसरी पत्नी इन्द्रा सिंह जो अहीर जाति से भी चुनाव में जीत गई थी। लेकिन उच्च स्वर्णों के प्रतिनिधि उनके पति इस बार चुनाव में हार गए जिसके कारण उनके स्वाभिमान को ठेस लगी।

'डाक्टर फर्नीचरपलट' कहानी में बेरोज़गारी, आर्थिक विपन्नता और आर्थिक विवशताओं से जूझते हुए एक सुशिक्षित डाक्टर की कथा है। इसमें डाक्टर गरीबी की अवस्था में अपनी उपाधियों से ही गौरव और सन्तोष प्राप्त करता है। उसकी प्रैक्टिस न के बराबर चलती है और उसका कंपाउंडर प्रतिदिन इस आशा में फर्नीचर पलटता रहता है कि शायद शो अच्छा हो जाने से प्रैक्टिस चमक जाए। लेकिन ऐसा कुछ नहीं होता क्योंकि मिन्नतें करके इलाज के लिए बुलाए गए देहाती डाक्टर साहब की नौ डिग्रियाँ देखकर दुकान से यह कहकर भाग जाते हैं कि "ये लोग कौनों बड़े जालियाँ हैं। हम लोग का फँसाय रहे हैं।"10

'डाक्टरी साइन बोर्ड' कहानी में यह दिखाया गया है कि कई उपाधियों से युक्त डाक्टर की प्रैक्टिस नहीं चलने पर उसकी पत्नी को बच्चों समेत मायके जाना पड़ता है। उसका कम्पाउंडर भी डाक्टर की बेचारगी का लाभ उठाकर उसके दवाखाने से दवाईयाँ और स्टेथोस्कोप चुरा ले जाता है। ऐसे में गली के एक लड़के को डाक्टर साहब के साइन बोर्ड के धुँधलेपन पर दया आती है तो वह नया साइन बोर्ड बनवा देता है। डाक्टर साहब के नए साइन बोर्ड में एच.एम.डी. (कलकत्ता), बी.एम.डी. (कोयम्बटूर) तथा अन्य डिग्रियों के अतिरिक्त डी.बी.पी. और डी.एम.ए. की नई डिग्रियाँ भी मौजूद थी। "डाक्टर पहले तो इन दो नई डिग्रियों के जुड़ने से प्रसन्न हुए पर बाद में डी.बी.पी. के अर्थ डाक्टर बम पुलिस और डी.एम.ए. के अर्थ डाक्टर आफ मुहल्ला अनाथालय मुहल्ले वालों से सुनकर वे अब वालिद को आशीर्वाद के साथ-साथ गालियाँ भी दिया करते हैं।"11

'परनिंदा' कहानी में स्त्रियों की आदतें विशेषकर उनकी परस्पर ईर्ष्या जलन, काट-छाँट एवं परनिन्दा का बड़े सटीक ढंग से अमृतलाल नागर जी ने वर्णन किया है। परम्परागत ढंग से प्रत्येक स्त्री अपनी सहेली के सामने जब किसी की परनिन्दा करना आरम्भ करती है तो कहती है, "अरे बहना, क्या धरा हैगा परनिंदा करने में ? .....मैंने आज तलक किसी की परनिंदा नहीं करी।" उत्तर में दूसरी स्त्री कहेगी "अरे, तो मैंने ही कब की किसी की परनिंदा। पर यह तो आपस की बात है, मैं किसी के कहने थोड़े ही जाऊँगी।"12 यहाँ से स्त्रियों का बतरस आरम्भ हो जाता है और वे एक के बाद एक नए क़िस्से छेड़कर अपने आपको अन्य की तुलना में ज़्यादा अच्छी साबित करने की होड़ में जुटी रहती है और इस प्रकार महिला समाज की कार्यवाही चलती रहती है।

'मुंशी घिर्राउलाल' कहानी में अमृतलाल नागर जी ने एक ऐसे व्यक्ति का रेखाचित्र प्रस्तुत किया है। जो गपबाज़ी में पूरा आनन्द लेता है। वह अपने जीवन और खानदान से सम्बन्धित लम्बी-चौड़ी बातें सुनाकर अपना समय व्यतीत करता है। कहानी का नायक मुंशी घिर्राउलाल लखनवी तहज़ीब का एक पक्ष अपनी लच्छेदार भाषा में सशक्त रूप में प्रस्तुत करता है। उदाहरणत: जब उसे यह लगता है कि उसकी बातों पर सुनने वाला व्यक्ति विश्वास नहीं कर पा रहा है। तो वह स्पष्ट रूप से कह देता है। "मेरी गुस्ताखी माफ कीजिएगा, मैं पहले ही अर्ज कर चुका था कि आप लोग मेरी बातों पर यकीन नहीं लाएँगे। और परमेशुर न करे, आपको इन दर्दनाक बातों पर यकीन आए ही क्यों यह तो किस पर बीतती है वही जानता है। देखिए माफ कीजिएगा, बुरा मानने की कोई बात नहीं। जो मैंने आप लोगों की शान में कहा, इसमें अगर जर्रा बराबर भी झूठ हो तो फिदवी का सर हाजिर है ! हाँ बाबू साहब।"13

अत: कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द के पश्चात् उन्हीं के समान यथार्थवादी, आकर्षक और सजीव कथाकार के रूप में अमृतलाल नागर जी ने अपनी पहचान बनाई है। इन्होंने अपने युग का प्रतिनिधित्व करने के लिए प्रेमचन्द और प्रसाद की सम्पूर्ण परम्परा का निर्वाह अपने ढंग से किया है। प्रेमचन्द की वर्तमान के प्रति सदाशयता को अमृतलाल नागर जी की कहानियाँ अपने में समेटे हुए हैं, वहीं इनमें प्रसाद का अतीत प्रेम भी मिलता है। लेकिन अमृतलाल नागर जी का अतीत प्रेम भविष्य की मंगलकामना से ओत-प्रोत है।

000

संदर्भ-

1 .अमृतलाल नागर, एक दिल हजार अफसाने, पृ. 317, 2 .अमृतलाल नागर, मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ. 38, 3 .अमृतलाल नागर, एक दिल हजार अफसाने, पृ. 31, 4 .अमृतलाल नागर, पाँचवाँ दस्ता और सात कहानियाँ, पृ. 66, 5 .अमृतलाल नागर, एक दिल हजार अफसाने, पृ. 336, 6 .अमृतलाल नागर, पाँचवाँ दस्ता और सात कहानियाँ, पृ. 50, 7 .अमृतलाल नागर, एक दिल हजार अफसाने, पृ. 381, 8 .अमृतलाल नागर, एक दिल हजार अफसाने, पृ. 448, 9 .अमृतलाल नागर, एक दिल हजार अफसाने, पृ. 499, 10 .अमृतलाल नागर, एक दिल हजार अफसाने, पृ. 196, 11 .अमृतलाल नागर, एक दिल हजार अफसाने, पृ. 301, 12 .अमृतलाल नागर, एक दिल हजार अफसाने, पृ. 280, 13 .अमृतलाल नागर, एक दिल हजार अफसाने, पृ. 39-40

(शोध आलेख)

मधु कांकरिया के कथा साहित्य में धार्मिक विसंगतियों पर प्रहार

शोध लेखक : स्नेह लता (विद्या वाचस्पति शोधार्थी)
हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, (राजस्थान)
शोध निर्देशक: डॉ अर्जुन सिंह (सहायक आचार्य)
हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, (राजस्थान)

स्नेह लता पुत्री श्री धन सिंह,
प्लाट नंबर 32, सिद्धार्थ विहार, 60 फ़ीट रोड, अलवर, (राजस्थान) 301001
मोबाइल- 8619506470, 9717740655
ईमेल- sneh1984niranakri@gmail.com

धर्म की स्थापना का मूल-मंत्र मानव कल्याण है। सामाजिक व्यवस्था को सुचारू व व्यवस्थित रखने के लिए आचार-संहिता के आधार पर धार्मिक प्रारूप बनाया गया। इसी आधार पर पहले परमात्मा, फिर धर्म और फिर दर्शन का विकास हुआ। हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, बौद्ध, यहूदी सभी धर्मों का मूल उद्देश्य जीवन को नैतिक गुणों से परिपूर्ण करना है। समाज में फैली अन्याय, अत्याचार, शोषण, हिंसा के प्रतिकार स्वरूप धर्म का जन्म हुआ। परंतु जिस प्रकार गंगा अपने मूल उद्गम स्रोत से निर्मल, स्वच्छ, पारदर्शी होती है, पर धीरे-धीरे वह प्रदूषित हो जाती है, उसी प्रकार आज सभी धर्म उन्हीं बुराइयों से ग्रसित हैं जिसके प्रतिकार स्वरूप वह अस्तित्व में आए थे। धर्म तर्क का विषय नहीं है। वहाँ श्रद्धा और आस्था का बोलबाला है। धर्म प्रश्नों से कतराता है, तर्क करना यहाँ अनैतिक माना जाता है। हमारे धर्मग्रंथों ने धर्म को शाश्वत सत्य के रूप में प्रतिस्थापित किया है। उसमें परिवर्तन की गुंजाइश नहीं होती। इसी कारण धार्मिक-ग्रंथों को ईश्वरीय-वाणी, परमात्मा का आदेश बताकर भोली-भाली जनता को छला जाता है। मधु कांकरिया लोगों की इस संकुचित धार्मिक-मानसिकता पर प्रहार करते हुए लिखती हैं कि "धार्मिक संवेदनाओं एवं भाग्य की क्लोरोफार्म सूँघकर बेसुध पड़े इस देश में सौ-सौ माओं और हज़ार-हज़ार लेनिन भी तब तक क्रांति नहीं ला सकते जब तक यहाँ धर्म की परिभाषाएँ नहीं बदल दी जाएँ। लोग मर रहे हैं, ऊब रहे हैं, घुट रहे हैं, लेकिन विद्रोह नहीं करते क्योंकि वे जीवन से प्यार नहीं करते। धार्मिक ग्रंथों ने जाने कैसी वैराग्य की घुट्टी पिला दी है उन्हें कि वे जीए जाएँगे, बस जीए जाएँगे..... चाहे आप उनका सब कुछ छीन ले..... फिर भी वे जीते जाएँगे और गाते जाएँगे..... जे विधि राखे राम, से विधि रहिए "1

धर्म के ठेकेदारों ने सर्वव्यापक परमात्मा को भी मंदिरों, मस्जिदों, गिरजाघरों, गुरुद्वारों, मठों में कैद कर दिया है। धर्म के नाम पर बनी ये इमारतें केवल सत्ताधीश लोगों की मनोभावना को अभिव्यक्त करने, उनके विचारों का प्रचार-प्रसार करने और उनकी आय का स्रोत है। अन्यथा राम ने कोई मंदिर नहीं बनाया, ईसा ने कोई गिरजाघर नहीं बनवाया, पैगंबर ने कोई मस्जिद नहीं बनवाई, नानक ने किसी गुरुद्वारे का निर्माण नहीं कराया। उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन मानव

कल्याण में लगा दिया। मधु कांकरिया अपने उपन्यास 'सेज पर संस्कृत' में जैनियों के मक्का मदीना शिखरजी का वर्णन करते हुए लिखती हैं कि "हे भगवान्, यात्रियों से ज़्यादा मंदिर ? एक किलोमीटर की रेंज में दो दिनों के लिए आए यात्रियों के लिए बीस मंदिर, पर यहाँ के मूल बाशिंदों के लिए एक भी अस्पताल और विद्यालय नहीं ? जीओ मेरे देश ! अच्छा गोलमाल ! आवश्यकता किस चीज़ की, और बन क्या रहा है ?"2

धर्म के नाम पर सदा ही निर्बल व स्त्रियों पर अत्याचार होते रहे हैं। सभी धर्म आत्मा को परमात्मा का अंश मानते हैं। धर्म यद्यपि आत्मा के स्तर पर सभी मनुष्यों को समान मानता है परंतु व्यवहारिक स्तर पर ऐसा नहीं है। नर-नारी, जात-पात, ऊँच-नीच का भेद कायम कर इंसानों में फूट डालने की नीति सदा से कायम है। जाति और लिंग आधारित भेदभाव धर्म में गहराई से अपनी जड़ें जमा चुका है। धर्म ने सदा सत्ताधीशों व धनवानों का पक्ष लिया है। "धर्म सिर्फ़ स्त्री ही नहीं, उन सभी के प्रति उदासीन रहा जो शक्तिहीन, वंचित एवं परवश रहे। हाँ, सभी धर्मों ने ग़रीबी पर मलहम लगाने के लिए दान-पुण्य की प्रशंसा अवश्य की, पर उत्पादन के साधनों पर सभी के समान अधिकारों की घोषणा किसी भी धर्म में नहीं हुई। यही कारण था कि कुलीन वर्ग ने धर्म का संरक्षण एवं पोषण किया और धर्म ने सामंती समाज का हित साधा।"3

हमारे सभी धर्मग्रंथों के रचयिता पुरुष रहे हैं। सभी धर्मों में उच्च धार्मिक पदों पर भी उनका ही अधिकार रहा है। पुरुष सत्ता सदा ही नारी को अपने अधीन रखना चाहती है, वह सदा ही स्त्री की प्रचंड शक्ति से भयभीत रही है इसी कारण धर्म ग्रंथों के सृजनकर्ता, ऋषि, मुनि, पैगंबर आदि ने धार्मिक ग्रंथों में स्त्रियों पर अनेक पाबंदियाँ लगा दी। उसे उच्च धार्मिक पदों से वंचित रखा गया, उसे साधना मार्ग की बाधा बताकर सदा ही प्रताड़ित किया गया है। धर्म की स्थापना मानव मुक्ति के लिए की गई थी परंतु धर्म ने सदा ही स्त्री को अनेक धार्मिक पाखंडों के जाल में क़ैद कर रखा है। धर्म ने उसे दान की वस्तु बना डाला है, जो कभी मंदिरों को, तो कभी पुरुषों को दान में दे दी जाती है। धर्म स्त्री स्वतंत्रता में सबसे बड़ी बाधा रहा है। मधु कांकरिया स्त्रियों की इस दुर्दशा पर व्यंग्य करते हुए कहती है कि "स्त्रियों पर होने वाले सभी अन्यायों को धर्म की चादर से ढाँप दिया गया क्योंकि जहाँ धर्म है वहाँ सब कुछ वरेण्य है चाहे वह सती प्रथा हो, बहु पत्नी प्रथा हो या देवदासी प्रथा।"4

धर्म के ठेकेदारों ने धर्म को आर्थिक व राजनीतिक उन्नति का माध्यम बना लिया है। भगवान् का डर दिखाकर ग़रीबों, अशिक्षितों, भोले-भाले लोगों का शोषण आम बात है। धर्म की सत्ता पर विकृत मानसिकता का शासन है, जो अपने राजसी ठाठ-बाट व सत्ता के लालच में धर्म की पवित्रता को कलंकित कर रहे हैं। आत्म शुद्धि, आत्मिक उन्नति का झाँसा देकर अपने स्वार्थों की पूर्ति ही उनका उद्देश्य है। वर्तमान समय में किसी भी संत, पीर, फकीर, महात्मा के पंडाल में चले जाओ, वहाँ आपको अग्रिम पंक्ति में राजनेता, धनकुबेर, उच्च कोटि के अधिकारी विराजमान मिलेंगे। साधारण जनमानस के सेवक कहलाने वाले इन पाखंडियों के पास साधारण जनमानस से मिलने तक का वक्त नहीं है। 'सेज पर संस्कृत' उपन्यास की नायिका संघमित्रा अपनी ग्यारह वर्षीय बहन छुटकी की जैन दीक्षा रुकवाने के लिए बहुत भागदौड़ कर गुरुदेव से मिलने का समय ले पाती है परंतु गुरुदेव उसे मात्र दस मिनट का समय देते हैं। संघमित्रा भारी असमंजस में थी कि वह इन दस मिनट में अपनी बात गुरुदेव के सम्मुख कैसे रख पाएगी। मालविका संघमित्रा को समझाते हुए कहती है "इतनी बड़ी सूबेदारी। लालबत्ती वालों से ज़्यादा व्यस्त हमारे गुरुदेव। एक से बढ़कर एक सूरमा, सिरमौर, वी.आई.पी. दर्शनार्थी..... इतना बड़ा पद, इतने बड़े समाज की संचालक शक्ति और सूत्रधार वे और उससे जुड़ी आदिम और अपूर्व शक्ति धर्म की। माई डियर मित्रा, ये धर्म के आलोक स्थल नहीं, ये प्रभुसत्ता, धर्मसत्ता और राजसत्ता के नापाक गठजोड़ है। जहाँ प्रवचन तक में अग्रिम पंक्तियाँ धन-कुबेरों और सत्ताधारियों के लिए आरक्षित हो ऐसे गुरुदेव आम आदमी के लिए कितना बच पाते हैं ? आम आदमी ही आम आदमी का दुख दर्द समझता है। पर वे तो ईश्वर है इस कारण अपने युग के खुदाओं के लिए ही आरक्षित हैं।"5

प्रत्येक धर्म में पाखंडों का बोलबाला है। तांत्रिक, ओझा, मठाधीश, पीर, फकीर, योगी आदि सभी धार्मिक चमत्कारों के नाम पर जनता को लूट रहे हैं। तंत्र-मंत्र, ताबीज, झाड़-फूँक आदि पाखण्डों के द्वारा लोगों की मति को भ्रमित किया जा रहा है। धर्म-निरपेक्ष देश में तो स्थिति और भी दयनीय है। डॉक्टर, इंजीनियर, बड़े-बड़े विद्वान भी अपने हाथों में ग्रहों की शांति के लिए लाल-पीले पत्थर धारण करते हैं। बिल्ली के रास्ता काटने पर रास्ता बदल लेते हैं। ज्योतिषी से पूछे बिना कोई भी कार्य प्रारंभ नहीं करते। देश वैज्ञानिक क्षेत्र में आगे बढ़ रहा है परंतु मानसिकता अब भी पाखंडों में जकड़ी हुई है। धर्म सर्वप्रथम व्यक्ति के विवेक पर अंकुश लगाता है। यशपाल अपने उपन्यास 'मेरी तेरी उसकी बात' में धर्म के विषय में लिखते हैं कि "सब मजहब ईश्वर के संबंध में कल्पनाओं और ईश्वर के काल्पनिक आदेशों के नाम पर सर्वसाधारण को अंधविश्वास में जकड़ते हैं। मजहब को स्वीकार करने का मतलब है स्वयं सोचने या निर्णय करने के अधिकार का त्याग। मजहब के पास मनुष्य की सब शंकाओं का एक उत्तर है, परमेश्वर सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ है, उसके आदेश के विषय में शंका पाप है।"6

भारत धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है। यहाँ अनेक धर्मों और संप्रदायों को मानने वाले लोग निवास करते हैं। प्रत्येक धर्म की प्रार्थना पद्धति, परंपरा, मान्यताएँ, प्रार्थना स्थल भिन्न-भिन्न हैं। एक धर्म द्वारा स्थापित मान्यता दूसरे धर्म में पूरी तरह वर्जित है। अपने-अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ मान सत्ता पर अधिकार की वैचारिक सोच परस्पर विद्वेष व हिंसा को जन्म देती है। इस प्रकार की संकुचित सोच का प्रतिफल सांप्रदायिक अलगाव व दंगों के रूप में मनुष्य मात्र के विनाश का कारण बनता है। सांप्रदायिकता कभी भी मानव कल्याण में सहायक नहीं है। 'जलता हुआ गुलाब'

उपन्यास में धर्म के नाकारात्मक पक्ष को उजागर करते हुए तरसेम गुजराल कहते हैं कि "धर्म का पॉजिटिव रोल तो एक सपना ही बना रहा, धुएँ में लिपटा हुआ। लेकिन निगेटिव पक्ष ने धरती पर मासूम इंसानों का इतना खून बहाया है कि किसी भी पत्थर दिल के डर से रोंगटे खड़े हो जाएँ। इसका निगेटिव पक्ष वह अंधी सांप्रदायिकता है जो अपने झंडे को बुलंद करने की हविश में लाशों का अंबार लगा देने में ज़रा भी संकोच नहीं करती।"7

मुल्ला, मौलवियों ने इस्लाम धर्म के पवित्र नारे 'जिहाद' को आतंकवाद का मूल मंत्र बना डाला है। 'जिहाद' कुरान में एक तरह से राष्ट्रीय कर्तव्य का प्रतीक है। 'जिहाद' का सामान्य अर्थ युद्ध या धर्मयुद्ध है प्रारंभ में यह शब्द ताकत, शक्ति, योग्यता का घोतक था। कुरान के अनुसार जिहाद परिश्रम, उद्योग या सामान्य संघर्ष है। धर्म के ठेकेदारों ने जिहाद जैसे पवित्र शब्द को हिंसा का प्रतिरूप बना डाला है। जिहाद के नाम पर कश्मीर की फिजा में जहर घोल दिया है। धरती का स्वर्ग कश्मीर कभी केसर की महक, युवतियों के गीत, सैलानियों की चहल-पहल से रोशन रहता था अब वह कश्मीर आतंकवाद व दहशतगर्दों का अड्डा बन चुका है। "कश्मीर आज एक खुला चारागाह बन चुका है जहाँ सभी ने, राजनेताओं ने, मुल्लोओं ने, मौलवियों ने, दहशतगर्दों ने, पाकिस्तान ने और आतंकवादियों ने अपने-अपने स्वार्थों की बकरियों को चरने के लिए छोड़ रखा है। इसलिए आज हर वह चीज़ बिक रही है जिसके केंद्र में आतंकवाद है। कोई आतंकी को पकड़वाने की फ़ीस वसूल रहा है तो कोई उससे मिलवाने की तो कोई उसे अपने घर ठहराने की।"8 इस्लाम के नाम पर आवाम में ज़हर घोलने वाले लोग या तो राजनेता है या मदरसों में पढ़े मुल्ला, मौलवी हैं जिन्हें केवल इस्लाम का सतही ज्ञान है। उन्होंने इस्लामिक धर्मग्रंथों का पूर्ण तथा गहनता से अध्ययन नहीं किया। उनके सरपरस्त उनके लिए योजनाएँ बनाते हैं और जिहाद के नाम पर उनसे आतंकवाद फैलवाते हैं। मधु कांकरिया धर्मगुरुओं की संकुचित मानसिकता पर प्रहार करते हुए लिखती हैं कि "मुट्ठी-भर ये धर्मगुरु सारी दुनिया को मनमाने ढंग से भेड़-बकरी की तरह हाँक रहे हैं। आज विश्व के सभी धर्मगुरुओं ने धर्म की मनमाने ढंग से व्याख्या कर पूरी धरती को घृणा, द्वेष और हिंसा से लहूलुहान कर दिया है।"9

धर्म में व्याप्त विकृतियों व कुरीतियों के प्रतिकार स्वरूप नवीन धर्म अस्तित्व में आता है पर कालांतर में वह भी उन्हीं दोष से ग्रसित हो जाता है। वैष्णव धर्म में आए विकारों के फलस्वरूप बौद्ध और जैन धर्म अस्तित्व में आए परंतु कालांतर में उनका भी पतन धार्मिक विकृतियों के कारण होने लगा। धर्म जब तक वैचारिक स्तर तक सीमित रहता है वह उच्च मानवीय गुणों से युक्त बना रहता है, परंतु संस्थागत रूपांतरण होने पर जब उसमें धर्मान्तरण की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है तो वह भी दोषग्रस्त हो जाता है। मधु कांकरिया जैन धर्म में उत्पन्न विकृतियों के विषय में लिखती हैं कि "आपके इतने धन-कुबेरों, अरबपति, करोड़पति और लखपति श्रावकों और भक्तों में सही माने में कोई भी महावीर का अनुयायी नहीं निकलेगा। आप गौर फरमाएँ, महावीर ने फ्रांस क्रांति और कार्ल मार्क्स के पहले ही अपरिग्रह का उपदेश दिया था क्योंकि वे जानते थे कि सब सामाजिक बुराइयों की जड़ में यह पूँजी संचय ही है। पर आपके यहाँ जो जितना बड़ा पूँजीपति, वह उतना ही सम्मानजनक। क्षमा करें गुरुदेव, पर यह आपकी दुनिया खद्दर के नीचे मुलायम सिल्क पहनने वालों की दुनिया है। यह सेज पर संस्कृत बोलने वालों की दुनिया है। अहिंसा प्रधान आपके धर्म में धोखाधड़ी, जालसाजी, चोरबाज़ारी, मिलावट, सूदखोरी, जमाखोरी, टैक्स चोरी, मुनाफाखोर, बाल-शोषण, श्रम-शोषण, स्त्री-शोषण जैसे जघन्य आर्थिक अपराधों को पाप समझा ही नहीं जाता है। और तो और, नकली दवा बेचनेवालों और खाद्यान्नों में मिलावट करनेवालों के दुष्कर्मों को भी पाप घोषित नहीं किया जाता है। जिससे हजारों-लाखों परिवार बर्बाद हो जाते हैं। पाप के हाथियों को यहाँ खुला गेट पास दिया जाता है और लोगों को समझाया जाता है कि पाप है, हरी सब्जी खाने में, अनछाना पानी पीने में, गाजर, मूली, आलू, प्याज खाने में। सूर्यास्त बाद खाने में..... खुले मुँह से बोलने में क्योंकि इससे जीवों की हत्या होती है। आपका धर्म इनसानों में नहीं जीव-जंतुओं में ज़्यादा दिलचस्पी रखता है।"10

धर्म मनुष्य के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी पक्षों को प्रभावित करता है। कार्ल मार्क्स धर्म को वर्ग शोषण और दमन का हथियार मानते हैं। धर्म व सत्ता का गठजोड़ प्राचीन परंपरा रही है, परंतु वर्तमान में यह गठजोड़ और अधिक मजबूत हो गया है और इसी कारण धर्म नैतिक पतन के मार्ग पर अग्रसर है। धर्म, प्रेम, करुणा, दया, क्षमा, सहनशीलता, अहिंसा आदि गुणों का वाहक तथा मानवता के विकास व कल्याण में सहायक होता है लेकिन सत्ता लोलुप व स्वार्थी लोगों ने धर्म की अपनी-अपनी तरह से व्याख्या कर डाली है। सभ्यता के विकास के प्रारंभिक काल में धर्म मानव मात्र के कल्याण, प्रेम, सहोदर, भाईचारे का प्रतीक था परन्तु आज सांप्रदायिक हिंसा का कारण बन चुका है।

000

संदर्भ-

1.मधु कांकरिया, खुले गगन के लाल सितारे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 2017, पृष्ठ संख्या 21, 2.मधु कांकरिया, सेज पर संस्कृत, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृष्ठ संख्या 19, 3.वही, पृष्ठ संख्या 139, 4.वही, पृष्ठ संख्या 140, 5.वही, पृष्ठ संख्या 116, 6.यशपाल, मेरी तेरी उसकी बात, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2009, पृष्ठ संख्या 252, 7.तरसेम गुलजार, जलता हुआ गुलाब, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2002, पृष्ठ संख्या 133, 8.मधु कांकरिया, सूखते चिनार, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2018, पृष्ठ संख्या 44, 9.मधु कांकरिया, सेज पर संस्कृत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृष्ठ संख्या 85, 10. वही, पृष्ठ संख्या 120

(शोध आलेख)

कृषि विपणन की मण्डियों का समीक्षात्मक अध्ययन

(उ.प्र. के जनपद हरदोई के विशेष सन्दर्भ में)

शोध लेखक : दीपा वर्मा
शोधार्थी, डी.ए-वी. कॉलेज, कानपुर, (सीएसजेएम विश्वविद्यालय, कानपुर)
शोध निर्देशक : डॉ. पुन्ज भास्कर
सीनियर असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, डी.ए-वी. कॉलेज, कानपुर

दीपा वर्मा
128/63, बी ब्लॉक, किदवई नगर,
कानपुर, 208011
मोबाइल- 9026447191
ईमेल- dipaharshitaverma@gmail.com

सारांश- कृषि विपणन में मण्डियों की अहम भूमिका होती है जिसमें विभिन्न आयाम, मण्डियों में उपलब्ध संसाधनों, उत्पादों की क्रय-विक्रय व्यवस्था, परिवहन व अन्य सुविधाओं, योजनाओं, निर्धारित मूल्यों की जानकारी, भाव एवं मूल्यों का उतार-चढ़ाव, इत्यादि को शामिल किया जाता है ताकि कृषि उत्पादों का क्रय एवं विक्रय करते समय उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं दोनों को आवश्यक शर्तों के साथ नियंत्रित करके आसानी से विपणन की क्रिया को सम्पन्न किया जाता रहे। मण्डियों की संरचना, व्यवस्थाओं, विपणन क्रियाओं, मूल्य निर्धारण, नीतियों, कार्यक्रमों, उत्पादों की गुणवक्ता, सर्वेक्षणों, शोधों आदि भिन्न-भिन्न पहलुओं का मूल्यांकन करके मण्डियों के मूल दायित्वों को स्पष्ट किया गया है जिसके परिणामस्वरूप कृषि विपणन में वृद्धि से मण्डियों की स्थापना में उन्नति होने के उपरान्त कृषकों की आर्थिक आय में बढ़ोत्तरी होती रहे। प्रस्तुत शोध पत्र में कृषि विपणन की मण्डियों का समीक्षात्मक अध्ययन करने के लिए शोध क्षेत्र जनपद हरदोई की पाँचों मण्डियों का सर्वेक्षण करके प्राप्त प्राथमिक एवं द्वितीयक आँकड़ों के लिखित अभिलेखों के आधार पर संक्षिप्त विवरण को तालिका के द्वारा दर्शाया गया है जिसके द्वारा कृषि विपणन में मण्डियों के मूलभूत उत्तरदायित्व को दृष्टिगत किया गया है।

मुख्य शब्द- कृषि, कृषि विपणन, मण्डियाँ

प्रस्तावना- कृषि मानव सभ्यता के उदय से ही शुरू हो गई थी, जब मनुष्य जंगलों में रह कर कृषि उपजों को उगाकर अपना जीवन-यापन करने लगा था, तब कृषि मात्र जीविकोपार्जन का साधन थी लेकिन आज, कृषि अनेक शोधों, वैज्ञानिक रीतियों, तकनीकों, उपकरणों इत्यादि के उपयोग से आधुनिक एवं व्यवस्थित होती जा रही है जिससे कृषकों की कृषि फसलों के उत्पादन में वृद्धि होने से कृषि एक व्यवसाय का रूप बन गई है। कृषि में भूमि, जल, प्रकाश, वायु, पशुओं, वनस्पतियों, जैविक तत्वों, आदि प्राकृतिक संसाधनों तथा मानव निर्मित साधनों का प्रयोग किया जाता है जिससे कृषि फसलों की पैदावार में दिन-प्रतिदिन बढ़ोत्तरी होती जा रही है। हरित क्रांति की उत्पत्ति से कृषि फसलों को उगाने के लिए नवीनतम बीजों, खादों, कीटनाशकों, नवीन पद्धतियों, के प्रयोग से कृषि उपजों की उत्पादन क्षमता में वृद्धि हुई है जिसके परिणामस्वरूप कृषकों के अतिरेक में संवृद्धि होने से कृषि विपणन में उन्नति होने के उपरान्त कृषकों की आर्थिक स्थिति में विकास हुआ है। जिस प्रकार माँ अपने बच्चे का पालन-पोषण करती है उसी प्रकार कृषक भी अपनी फसलों की देख-भाल करता है इसलिए कृषक को कृषि की रीढ़ की हड्डी कहा जाता है क्योंकि अगर कृषक निरोगी और आर्थिक मजबूत रहेगा, तो कृषि में स्वत: ही वृद्धि होती रहेगी। विपणन उत्पादक और उपभोक्ता दोनों के बीच मध्यस्थता की अहम भूमिका निभाता है जिसमे कृषि फसलों के विक्रय, प्रचार, प्रबंधन, योजनाएँ और वित्तीय लेन-देन को शामिल किया जाता है ताकि उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं की आवश्कताओं को पूरा करते हुए सुविधाजनक व्यवहार को संभव बनाया जा सके। विपणन में कृषि उत्पादों को अन्तिम उपभोक्ता तक पहुँचाने की सभी गतिविधियों को समाविष्ट किया जाता है जिसमें उत्पादों की पहुँच, मूल्य निर्धाण, विपणन रणनीतियों का विकास, विपणन संचार, बिक्री और विपणन के अन्य पहलुओं को सम्मिलित किया जाता है। विपणन उत्पादों की माँग एवं आपूर्ति के मध्य समान वितरण को सुनिश्चित करने में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है ताकि उत्पादक व उपभोक्ता दोनों को लाभ प्राप्त हो सके।

कृषि विपणन की प्रक्रिया उत्पादक तथा उपभोक्ता के समायोजन से सम्पन्न होती है जिसमे कृषि विपणन के लक्ष्यों, नीतियों, विविध उत्पादों एवं सेवाओं की बाजारों में स्थिति, विज्ञापन, संचार, बिक्री प्रचार, विपणन अनुसंधान, विपणन योजनाएँ, मूल्य निर्धारण, वित्त व्यवस्थाएँ, समाचार पत्रों, वितरण, विपणन व्यवस्थाओं इत्यादि को शामिल किया जाता है। कृषि विपणन का उद्देश्य कृषि उत्पादन को बेचने के लिए अधिकतम क्रेताओं तक पहुँचाना, उत्पादों के बारे में ग्राहकों को जानकारी देना और कृषकों को कृषि फसलों का उचित मूल्य दिलाना है। कृषि विपणन में नमूना, भण्डारगृहों, नई उत्पादों की श्रृंखला, मण्डियों और बाज़ारों का उपयोग किया

जाता है ताकि क्रेताओं तथा विक्रेताओं के अच्छे संबंध बनाएँ जा सके, जो कृषि विपणन की रणनीतियों के माध्यम से ही संभव होते हैं। कृषि विपणन में कृषि फसलों के उत्पादन, वितरण और विपणन से सम्बन्धित सभी गतिविधियों को सम्मिलित किया जाता है जिसमें उत्पादक, वितरक, क्रेता, मण्डियों और अन्य बाजारों में संबंध बनाएँ रखने के लिए कृषि फसलों की उत्पादन की गुणवत्ता, मूल्य निर्धारण, गुणों की जाँच, विक्रेताओं को बाजारों में विक्रय की अनुमानित, माँग, उत्पादो की पूर्ति इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। कृषि विपणन के विकास के लिए प्रमापीकरण, श्रेणीकरण, एकत्रीकरण, परिवहन, निर्यात, भण्डारण, उचित प्रबंधन, योजनाओं का विकास, प्रशिक्षण आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। माना जाता है कि कृषक की एक आँख हल पर तथा दूसरी मण्डियों पर होती है किन्तु वर्तमान में कृषि एक व्यवसाय का रूप बन गया है जिससे कृषक के दोनों हाथ कृषि उपजों की पैदावार में वृद्धि पर एवं दोनों आँखें बाज़ारों और मण्डियों की गतिविधियों पर होती है। कृषकों का मुख्य दायित्व कृषि उपजों को पैदा करने के साथ-साथ कृषि फसलों के अतिरिक्त भाग जो उनकी आवश्यकताओं से अधिक है उसको बेचने के लिए बाज़ारों और मण्डियों की स्थितियों से परिचित रह कर उनके मूल्य की जानकारी भी प्राप्त करना है। कृषकों का कार्य केवल कृषि फसलों का उत्पादन करना ही नही होता है बल्कि कृषि उपजों को उपभोग के लिए अन्तिम उपभोक्ता तक पहुँचाना भी होता है। कृषकों के द्वारा कृषि फसलों के उत्पादन करने के उपरान्त क्रेता से विक्रेता तक पहुँचाने के लिए माल का एकत्रीकरण, वर्गीकरण, भण्डारगृहों में रखना, मण्डी तक फसलों को ले जाना, वित्त व्यवस्था करना, विक्रय करना, जोखिम उठाना इत्यादि विभिन्न क्रियाओं को व्यवस्थित तरीके से करने की प्रक्रिया को ही कृषि विपणन कहते है।

कृषि विपणन की मण्डियों का उद्भव- भारत में पहले विपणन कार्य गाँवों में ही सफलतापूर्वक हो जाता था क्योंकि उस समय वस्तुओं का आदान-प्रदान गाँवों तक ही सीमित था जिसके कारण कृषकों को यातायात पर कोई व्यय नही करना पड़ता था, कम जोखिम उठाना तथा अन्य सुविधाएँ रहती थी, जिससे कृषि विपणन करने के लिए साहूकारों तथा व्यापारियों के पास कोई समस्या उत्पन्न नही होती थी लेकिन औद्योगिक क्रांति के बाद कृषि विपणन में वृद्धि होने लगी क्योंकि उद्योगों को कच्चा माल कृषि से ही प्राप्त होता है। सरकार के द्वारा कृषि विपणन में उन्नति करने के लिए, कृषकों को उनके उत्पादन का निर्धारित मूल्य दिलाने, उपभोक्ताओं को भी कृषि पदार्थों को उचित मूल्य पर प्राप्त कराने और कृषि उपजों की विक्रय व्यवस्था में सुधार करने के लिए व्यवस्थित मण्डियों की स्थापना द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल में की गई थी। यद्यपि कृषि फसलों का विपणन मण्डियों में शुरू हो गया तथापि कृषि, कृषि विपणन और उद्योगों का विकास दृष्टिगोचर होने लगा। प्रारम्भिक स्थिति में साहूकार तथा व्यापारी गाँवों से कृषि फसलों को कृषकों से ख़रीद कर मण्डियों में ले जा कर बेच देते थे लेकिन कृषकों को मण्डियों की जानकारी होने तथा यातायात की सुविधाएँ प्राप्त होने पर वह ख़ुद जा कर अपनी कृषि फसलों को मण्डियों में बेचने लगा है जिससे उसकी आर्थिक स्थिति में वृद्धि होने लगी है। कृषकों द्वारा अपनी कृषि फसलों को मण्डियों में विपणन करने से प्राप्त होने वाली मुद्रा के साथ-साथ उसकी अन्य आवश्यक व दैनिक वस्तुओं की पूर्ति भी मण्डियों से हो जाती है, जिन फसलों का कृषक उत्पादन नही करता है उनको वह मण्डियों से निर्धारित दाम पर खरीद लेता है जिससे उसकी आर्थिक बचत में वृद्धि होती है। कृषि फसलों का कृषकों द्वारा मण्डियों में स्वयं विपणन करने का यह परिणाम प्राप्त हुआ है कि कृषक आत्मनिर्भर बना एवं खून-पसीना एक करके उत्पन्न की गई कृषि फसलों के विक्रय में भी उसे स्वाधीनता प्राप्त हुई जिससे उसके जीवन-स्तर में विकास हुआ है। कृषि विपणन में मण्डियों का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है क्योंकि कृषक इन मण्डियों में अपनी कृषि फसलों को बेचता है तथा उपभोक्ता उन्हें खरीदता है इसलिए मण्डियों को कृषि से सम्बन्धित उपजों के क्रय-विक्रय का मुख्य केन्द्र माना जाता है। ये मण्डियाँ अधिकांशत: शहरों या नगरों तथा गाँवों के निकट स्थापित की जाती है ताकि कृषकों को निर्धारित मूल्य पर कृषि फसलों का विक्रय करने का अवसर प्राप्त हो सके एवं उपभोक्ता को अच्छी गुणवत्ता वाली कृषि उपज आसानी से उपलब्ध हो सके। भारत में किसान अनुभव मण्डी, कृषि उपज मण्डी, फल-सब्जी मण्डी, तंबाकू मण्डी, मसाला मण्डी इत्यादि विभिन्न प्रकार की मण्डियाँ पाई जाती है, सामान्यत: इन मण्डियों से कृषकों व उपभोक्ताओं को लाभ प्राप्त होता है। भारत में मण्डियाँ कृषि विपणन की प्रक्रिया में मूल भूमिका निभाती है, जहाँ कृषक अपनी कृषि फसलों का विक्रय तथा उपभोक्ता उपभोग की वस्तुओं का क्रय करने के लिए स्वतन्त्रत रूप से कीमतों को तय कर सकते है। इन मण्डियों में कृषि विपणन की कृषि फसलें जो वर्ष में निर्धारित समय पर ही पैदा की जाती है उनका विपणन करने के लिए निश्चित दिनों में तय किये हुये अन्तराल पर क्रेता और विक्रेता आते है जो विभिन्न फसलों के लिए अलग-अलग मण्डियों से क्रय-विक्रय करते है। मण्डी एक संस्था होती है जो कृषकों एवं उपभोक्ता के बीच क्रय-विक्रय की गतिविधियों को संचालित करती है जिसमें कृषि फसलों की खरीदारी, बिक्री तथा वितरण की व्यवस्था करने के साथ ही आजकल इंटरनेट के माध्यम से भी कार्य किया जा रहा है, जिससे कृषक ऑनलाइन विपणन करने के उपरान्त कृषि फसलों की उच्च दर प्राप्त करने लगा है जिससे उसकी आर्थिक स्थिति में वृद्धि होती जा रही है। शोध की समस्या- मण्डियों में प्रचलित वांछनीय क्रियाओं में माप-तोल की नवीन तकनीकों का अभाव, कृषकों से कृषि फसलों का करदा काटना, काटा का शुल्क लेना, तात्कालिक बिक्री का अभाव, नमूना के रूप में फसलों का कुछ हिस्सा लेना, दोषपूर्ण क्रय-विक्रय क्रिया व सौदे के तरीके, गैर कानूनी शुल्क लेना तथा असुविधाओं में

वर्गीकरण व प्रमापीकरण का अभाव, भण्डारगृहों की कमी, परिवहन सुविधाओं का अभाव, मध्यस्थों का बाहुल्य, मूल्य सम्बन्धित सूचनाओं का अभाव, संचार सुविधाओं का अभाव इत्यादि के कारण कृषकों को मण्डियों में अपनी कृषि फसलों का विपणन करने में अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है जिससे प्रभावित हो कर कृषक मण्डियों के प्रति हतोत्साहित होता जा रहा है जिसके परिणामस्वरूप कृषक अपनी कृषि फसलों को मण्डियों में नही बेचता है, जो कृषकों की आर्थिक स्थिति के विकास में बाधा उत्पन्न कर रहा है जिससे कृषक निर्धन और ऋणग्रस्त होता जा रहा है। कृषकों को मण्डियों में शहरी व्यापारियों और बिचौलियों का सामना करने के उपरान्त इनकी कपटपूर्ण शर्तों के अनुसार कृषि विपणन करना पड़ता है जिससे कृषकों को निर्धारित मूल्य व परिश्रम का उचित प्रतिफल प्राप्त नही हो पाता है। कृषकों को पूर्ण जानकारी न होने व उनकी दुर्बलता का लाभ व्यापारी के साथ बिचौलिया भी उठाता है जिससे कृषकों को कम मूल्य प्राप्त तथा उपभोक्ताओं को अधिक दाम चुकाना पड़ता है जो एक संतोषजनक स्थिति नही मानी जा सकती है जिसका प्रभाव आर्थिक विकास पर पड़ता है।

शोध के सुझाव- मण्डियों की व्यवस्था को सुविधाजनक बनाने के लिए व्यवस्थित मण्डियों की स्थापना में वृद्धि, वर्गीकरण, श्रेणीकरण, प्रमापीकरण की सुविधाओ का विकास, भण्डारगृहों की बढ़ोत्तरी, माप-तोल की उचित व्यवस्था, क्रय-विक्रय की क्रियाओं का विकास, मण्डियों की व्यवस्थाओं के शोध व सर्वेक्षण कार्यों पर विशेष ध्यान देना, प्रशिक्षण की सुविधाओं में वृद्धि करना और सहकारी विपणन समितियों की स्थापना पर ज़ोर दिया जाना चाहिए ताकि मण्डियों की व्यवस्थाओं में विकास करके कृषि विपणन एवं कृषकों की आर्थिक स्थिति में उन्नति की जाती रहे। मण्डियों में प्रचलित विविध व्यापारिक खर्चों को कम करना, माप-तोल की नवीन तकनीकों का प्रयोग तथा इनकी समयानुसार जाँच व सत्यापन सुनिश्चित कराना, उचित प्रतिनिधित्व वाली मण्डी समितियों की स्थापना, आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध कराना, कृषकों को विक्रय सम्बन्धित विवादों का न्यायपूर्ण समाधान कराना, भण्डारण की सुविधाएँ उपलब्ध कराना, कृषकों से ली जाने वाली अनाधिकृत कटौतियों पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाना, कृषकों को मण्डियों से सम्बन्धित समस्त सूचनाएँ व मूल्य सम्बन्धित जानकारी उचित समय पर दी जाए ताकि कृषक मण्डियों में अपनी कृषि फसलों का विपणन करने के लिए प्रोत्साहित होता रहे।

शोध के निष्कर्ष- जब कृषि का उदय हुआ था तब कृषि मात्र एक जीवन निर्वाह का साधन थी लेकिन मनुष्य के द्वारा निरन्तर किये जा रहें शोधों, सर्वेक्षणों तथा नवीन तकनीकों की खोजों के परिणामस्वरूप कृषि में दिन-प्रतिदिन बढ़ोत्तरी हो रही है जिसके पश्चात् कृषि विपणन में वृद्धि होती जा रही है। कृषि विपणन के विकास के लिए सरकार के द्वारा मण्डियों का उद्भव किया गया है, यद्यपि कृषि विपणन की प्रक्रिया में मण्डियाँ प्रमुख दायित्व निभाती है तथापि मण्डियों में ही कृषक के द्वारा अपनी विपणन क्रिया को सम्पन्न किया जाता है तभी सरकार के द्वारा व्यवस्थिति मण्डियों की स्थापना में उन्नति की गई है ताकि कृषि विपणन की कुरीतियों को समाप्त करके कृषि विपणन की प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाया जाता रहे। मण्डियों में क्रय-विक्रय की सुविधा, कृषि विपणन के लक्ष्यों की प्राप्ति, नीतियों, संशोधनों, कानूनों, योजनाओं, शोधों, सर्वेक्षणों, विविध उत्पादों, सेवाओं, व्यवस्थाओं, विपणन अनुसंधानों इत्यादि से कृषि विपणन में विकास हो रहा है। मण्डियों की कार्य व्यवस्था में एकत्रीकरण, वर्गीकरण, श्रेणीकरण, प्रमापीकरण, परिवहन सुविधाओं, बिचौलियों व व्यापारियों की दोषपूर्ण नीतियों में कमी, बिचौलियों की समाप्ति, वित्त व्यवस्था, जोखिम कम करना तथा विपणन कार्य में वृद्धि के लिए सरकार ने अनेक योजनाएँ, नियमों, कानूनों, पद्धतियों, माप-तोल एवं प्रशिक्षिण व्यवस्थाओं पर विशेष ध्यान दिया है ताकि मण्डियों का विकास करने के साथ ही कृषकों की आर्थिक स्थिति में सुधार व वृद्धि की जाती रहे। शोध क्षेत्र के अन्तर्गत जनपद हरदोई की पाँचों मण्डियों- हरदोई, माधौगंज, शाहाबाद, साण्डी और सण्डीला का सर्वेक्षण करके प्राप्त प्राथमिक एवं द्वितीयक आँकड़ों के लिखित अभिलेखों के आधार पर संक्षिप्त विवरण को तालिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है ताकि मण्डियों का समीक्षात्मक अध्ययन करके शोध के उद्देश्यों की पूर्ति के उपरान्त शोध समस्या का चुनाव करने के पश्चात शोध के सुझावों के आधार पर समस्या का समाधान निकाला गया है ताकि मण्डियों की स्थापना में प्रगति करके कृषकों की आर्थिक स्थिति में विकास किया जाता रहे। अत: मण्डियों का समीक्षात्मक अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला गया है कि कृषि विपणन में मण्डियों का मूलभूत उत्तरदायित्व है।

000

संदर्भ- 1.आर्या, नीरज (2005), भारतीय कृषि विकास की ओर. के.एस.के. पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीव्यूटर्स. नई दिल्ली. 2.वर्मा, सवलिया बिहारी (2011), ग्रामीण विश्व व्यापार संगठन एवं कृषि. यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन. नई दिल्ली. 3.कुमार, मनोज (2013), कृषि विकास. अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस. नई दिल्ली. 4.पाल, विरेन्द्र (2015), ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कृषि एवं पशुपालन का महत्त्व. रोहित पब्लिकेशन. नई दिल्ली. 5.कुमार, मनोज (2013), आर्थिक नियोजन विकास. अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस. नई दिल्ली. 6.आकाश (2014), आर्थिक विकास की स्वदेशी परिकल्पना. यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन. नई दिल्ली. 7.गुप्ता, शिल्पा (2020), रीवा जिले में कृषि उपज की विपणन व्यवस्था- एक अध्ययन.

swadeshi Research Foundation A Monthly Journal of Multidisciplinary. Vol.7. ISSN-2394-3580.

8- https://hardoi.nic.in/hi/ftys&ds ckjs&esa@-

9- https://hardoi.nic.in.hi/.

10- www.upmandiparishad.in

11- www.upmandiparishad.upsdc.gov.in

(शोध आलेख)

दलित समाज में निहित अंतर्विरोध विशेष सन्दर्भ : 'अपने-अपने पिंजरे'

शोध लेखक : अविनाश बनर्जी (शोधार्थी)
हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
शोध निर्देशक - डॉ. हंसराज सुमन

'साहित्य समाज का दर्पण है' इस उक्ति का प्रचार-प्रसार तो बहुत हुआ लेकिन क्या दलित साहित्य के सन्दर्भ में इस सिद्धान्त की व्याख्या व्यावहारिक रूप में हो सकी? दलित समाज जितना उपेक्षा के शिकार हुआ, उतना साहित्य भी। दलित समाज और साहित्य ने अपने अस्तित्व और अस्मिता के लिए निरन्तर संघर्ष ही किया है। दलित साहित्य का मूल उद्देश्य नए मानवीय मूल्यों की स्थापना एवं समतामूलक समाज का निर्माण करना है। दलित साहित्य के केन्द्र में भारतीय समाज का सबसे निचला तबका, मेहनतकश सर्वहारा वर्ग एवं असंख्य मानव जाति है जिसे सदियों-सदियों से मनुवादी वर्ण-व्यवस्था ने धर्मशास्त्र, सामाजिक परम्परा आदि की आड़ में शारीरिक एवं मानसिक रूप से गुलाम बनाकर रखा। इतिहास इस बात का गवाह है कि प्राचीनकाल से अब तक शोषण और उत्पीड़न सिर्फ शूद्र एवं पिछड़ी जातियों का ही हुआ है।

'मोहनदास नैमिशराय' की आत्मकथा 'अपने-अपने पिंजरे' दो भागों में लिखी गई एक सुव्यवस्थित कृति है। 'मोहनदास नैमिशराय' का नाम हिन्दी दलित साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर के रूप में प्रसिद्ध है और उन्हें अग्रणी स्थान पर रखा जाता है। जिन्हें हिन्दी दलित साहित्य में पहली दलित आत्मकथा लिखने का गौरव प्राप्त है। नैमिशराय जी की आत्मकथा 'अपने-अपने पिंजरे' का पहला भाग वर्ष 1995 ई. में, दूसरा भाग वर्ष 2000 में प्रकाशित हुआ था। पहला भाग मेरठ शहर की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के वर्णन से आरंभ होता है और लेखक के बचपन से गुज़रते हुए युवावस्था में घर से भागकर बंबई पहुँचने की घटना पर समाप्त होता है। दूसरा भाग बंबई से मेरठ वापसी की घटना से प्रारंभ होकर लेखक के पुत्र की दर्दनाक मृत्यु के साथ समाप्त होता है।

पत्रकारिता शैली में लिखी गई इस कृति का में नायक 'मोहनदास नैमिशराय' ने भोगे हुए यथार्थ के बीच टूटते, बिखरते और उभरते संकल्पों का हृदयस्पर्शी वर्णन किया है। प्राय: दलित उत्पीड़न के सन्दर्भ में भारतीय गाँव की सामाजिक संरचना को सर्वाधिक भयावह समझा जाता है और शहर की संस्कृति को इससे एक हद तक दूर। लेकिन 'अपने-अपने पिंजरे' में सिर्फ गाँव ही नहीं, शहर भी दलितों का यातनागृह है। इस आत्मकथा में समूचे दलित समाज की कथा समाविष्ट है जो लेखक ने भोगा और जिया है।

'अपने-अपने पिंजरे' की कथावस्तु के केन्द्र में अपनी बस्ती के चमारों का आर्थिक स्थिति, आर्थिक अभाव, गरीबी, भुखमरी, प्रताड़ना, शोषण और बेगारी का यथार्थ चित्रण किया है। दलित समुदाय रूढ़िवादी संस्कारों, परम्पराओं, अंधविश्वासों से चिपटे रहना चाहता है, बजाय की वह आधुनिकता-प्रगतिशीलता को अपनाने के। वे लिखते हैं कि - "दलित जातियों में हालाँकि शिक्षा आने लगी थी, पर वह सतही सिद्ध हो रही थी। लोग पंरपराओं को छोड़ना न चाहकर उन्हें सीने से चिपकाए रखने में ही अधिक विश्वास करते थे। दलितों में कुलदेवता और गोत्र देवता उभरने लगे थे। वे अपने बाप-दादाओं की छोड़ी हुई लकीरें पीटने में लगे थे। उस लकीर को मिटाकर नई लकीर खींचने का साहस बहुत कम लोगों में था, जो संघर्षशील थे, कुछ नया करने के लिए जूझ रहे थे।"1

इसीलिए 'अपने-अपने पिंजरे' की भूमिका लिखते हुए 'महीप सिंह' कहते हैं– "मोहनदास नैमिशराय की यह कृति इस अर्थ में आत्मकथा न होकर आत्मवृत है।"2 इस आत्मकथा में जाति के अमानवीय और शोषण के कितने ही प्रसंग हैं पर उनमें से कुछ का ज़िक्र करना उचित होगा। 'अपने-अपने पिंजरे' में नैमिशराय लिखते हैं कि जब वे अपने बड़े भाई के साथ बचपन में अपनी बहन के यहाँ गर्मी के दिनों में जाते हैं, रास्ते में उन्हें प्यास लगती है। वे एक गाँव में जाते हैं और एक व्यक्ति से राम-राम का अभिवादन कर कहते हैं- "हमें पानी पिला दो बड़ी प्यास लगी है।" स्वर में गिड़गिड़ाहट के भाव थे। "म्हारे घर चमारों की खात्तर पानी ना है।"3 यह कितनी दयनीय और दर्दनाक है। दलित आत्मकथा में लेखक दलित समाज के विविध आयामों को समेटकर, उसके हर एक पहलू पर एक समाजशास्त्री दृष्टि से विचार करके सामाजिक अंत: संबंधों की पड़ताल करता हुआ नज़र आता है।

दलित आंदोलन जिस जातिवाद के विरोध में खड़ा हुआ था वह स्वयं जातिगत अन्तर्विरोधों,

अविनाश बनर्जी
डी- 232, नेहरु विहार
नई दिल्ली - 110054
मोबाइल- 9821239805
ईमल- avinashbanarji1997@gmail.com

आंतरिक द्वंद्वों, कलह तथा आंतरिक समस्याओं से ग्रस्त हो गया। इस आत्मकथा में भी 'वाल्मीकि' और 'जाटव' जातियाँ एक-दूसरे को हीन दृष्टि से देखती हैं। इसका संकेत कई साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में दिया है। दलित समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव को नैमिशराय जी ने इस आत्मकथा में विस्तार से वर्णन किया है- "दलितों में ही जाटव और वाल्मीकि जातियों में संवाद का अभाव तो था ही साथ ही आपस में घृणा और तनाव का वातावरण भी रहता था। कभी-कभी तो मारपीट भी हो जाती थी। दोनों जातियों के व्यवसाय/रहन-सहन/खान-पान तथा धार्मिक परंपराओं में ज़मीन आसमान का अंतर था। एक जाति के लोग सुअर खाते थे, दूसरी जाति के लोग सुअर देखना भी नहीं चाहते। पर दोनों की आर्थिक स्थिति में भी फर्क था। वाल्मीकि समाज के लोग आर्थिक दृष्टि से कमज़ोर थे जबकि जाटवों की माली हालत लगभग ठीक-ठाक ही थी। हालाँकि देश को आजादी मिलने तक दोनों ही जातियों के अधिकांश लोग ग़ुलाम जैसा जीवन जीने को बाध्य थे। आज़ादी के बाद भी पूर्वी उत्तरप्रदेश के कुछ गाँव/कस्बों में यह स्थिति बंधुआ मज़दूरों की तरह भी थी। पर दुखद आश्चर्य की बात तो यह भी थी कि वहीं एक जाति दूसरी जाति के साथ ग़ुलामों और जानवरों जैसा व्यवहार करती थी। इसका मुख्य कारण था कि जाटवों में से कुछ जो बौद्ध हो गए थे उन्होंने पूरी तरह से बाबा साहेब के दर्शन को आत्मसात नहीं किया था। और वे उसी वर्ण व्यवस्था-परंपरा तथा जातिभेद को आँख मींचकर मानते थे।"4

आत्मकथा में एक तरफ वे हो रहे शोषण को देख रहे थे तो दूसरी तरफ दलितों के मध्य जातीय ऊँच-नीच के भेद-भाव से भी परेशान थे। उन्हें लगता था कि ये सभी जातियाँ एक होकर अन्याय का विरोध करें लेकिन ये आपसी भेद-भाव में लगे हुए थे। नैमिशराय जी लिखते हैं "दलितों के भीतर भी जाति तथा उप-जातियों की अनगिनत सुरंगें थीं, जो कभी-कभी दलित अस्मिता और पहचान को बाँटती तथा तोड़ती थीं। हालाँकि एक सुरंग से दूसरी सुरंग में जाने के सभी रास्ते बंद थे। जातियों की रचना की प्रक्रिया में उलझाव ही अधिक थे। उन्हें सुलझाने वाले कम थे और गाँठें डालने वाले अधिक। हर जाति के अपने-अपने अंतर्द्वंद्व थे। वैसे अंतर्द्वंद्व समय-समय पर उभरते थे। अलग-अलग जातियों की अलग-अलग पंचायतें थीं। पंचों की उठ-बैठ अपने ही लोगों तक सीमित थी, पर कभी-कभी किसी विशेष समस्या खड़ी होने पर एक जाति के पंचों/प्रधानों/चौधरियों/प्रमुखों की दूसरी जाति के लोगों से बातचीत हुआ करती थी। उन मुलाकातों का कोई सामाजिक महत्त्व न था। वह सब केवल दिखावे के लिए ही होता था।"5

इस जातिगत ऊँच-नीच से व्यथित लेखक ने यहाँ स्पष्ट किया है कि "उत्तर प्रदेश में चमार, रविदास, जैसवार, अन्तवैदी, कुरील, धुसिया, जाटव, दोहरे, अहरवार, गुलिया, रैदासी, संखवार, ये सभी एक जाति परिवार की विभिन्न शाखाएँ थीं। आज़ादी से पहले और बाद में भी पश्चिमी उत्तर प्रदेश में इन लोगों को 'जाटव' नाम से संगठित किया था। अपने को क्षत्रिय वंश से जोड़कर कुछ अपने नाम के सामने 'सिंह' लगाने लगे। इनमें से कुछ अपने नाम के आगे पिप्पल, कर्दम, केल, खेल, निम, पिपरिया लिखने लगे।"6

लेखक इस जाति विभाजन की त्रासदी पर दर्द प्रकट करते हुए लिखते है - "जातियों में बाँट कर स्वयं उल्लू बने हुए हैं। जातियों की उन लकीरों को किसने खींचा कब खींचा क्यों खींचा, इस पर शोध करने और बहस में अपना अधिक समय लगाने के आदी हो गए, पर स्वयं के बीच में जो जाति भेद बरकरार थे। इस पर हमसे दो शब्द भी कोई नहीं कहेंगे और न लिखेंगे। इससे अधिक कूपमंडूकता और क्या हो सकती है। मेरे भीतर इस तरह के सवाल उठते थे।"7

दलितों ने भी ब्राहमणवादी ढाँचे को ज्यों का त्यों अपनाया है, इस पर लेखक अपनी जाति पर भी जमकर प्रहार करते हुए लिखते है कि- "हमारी जात के घरों में भी सफाई करनेवाले/करनेवाली आती थी, जिन्हें अन्य की तरह हम भी अबे ओ भंगी के, अरी ओ भंगन..... आदि-आदि नामों से पुकारने में अपना बड़प्पन समझते थे। उन्हें बात-बात पर गालियाँ भी दे देते थे। हमारे घरों में जब किसी की मृत्यु हो जाती तो मृतक के अन्य कपड़े, सामान आदि उन्हें दिए जाते थे। शादी-विवाहों के अवसरों पर उनकी स्थिति दीन-हीनता से भरपूर और भी विचित्र बन जाती थी। जब सभी लोगों का भोजन समाप्त हो जाता था तब तक टोकरा, सिलवर की परात, गिलास आदि लिए वे भिखमंगे की तरह इंतज़ार करते थे। बीच में उनकी औरतें चिरौरी करतीं और हमें सेठजी, चौधरी, माई-बाप, हजूर आदि-आदि नामों से अलंकृत करतीं। दूसरी तरफ मर्द उन्हें डाँटे-फटकारे बिना न रहते। कभी-कभी गालियाँ भी दे देते। वे विवश, भूखे पेट लिए घर बैठे बच्चों को जल्द-से-जल्द जूठन खिलाने के लिए सब कुछ सहन करतीं। असल में इस जूठन में सब कुछ मिलकर गड़मड्ड हो जाती थी। वैसे वे अपने टोकरों में वैसे ही समेटतीं कभी-कभी वे चील, गिद्ध और कऊवे बन जाते और ज़मीन पर पड़ी या बिखरी जूठन को अपनी अँगुलियों से कुरेदतीं। हमारी जात के लोग उन्हें कुत्ता / बिल्ली समझ कर डाँटते / फटकारते / तथा भगाते। पर वे वहीं जमीं रहतीं। एक-एक मुट्ठी चावल के लिए घंटों-घंटों खुशामद कर पाँवों को हाथ लगातीं। पर उसके अलावा थोड़े साफ स्वच्छ भोजन की भी चाह उन्हें होती। जब सारे लोग भोजन कर लेते, तब उनको थोड़ा-बहुत बाँटने का समय आता था।"8

एक ही समाज की दो जातियों के बीच के फासला इतना अधिक है कि उन दोनों जातियों के लोग एक साथ बैठकर खाना भी नहीं खा सकते। लेखक इस स्थिति का यथार्थ वर्णन करते हुए लिखते हैं कि - "उस समय तक हमारी जात के विवाह आदि में कोई भी वाल्मीकि समाज का व्यक्ति पंगत में हमारे साथ बैठने की हिम्मत नहीं करता था। और न ही हमारे बीच से ही उन्हें बुलाने का साहस करता था। दलित जातियों में भी परस्पर सम-रसता का अभाव था। एक दूसरे के प्रति घृणा तथा ईर्ष्या अधिक थी। मैं कभी-कभी वाल्मीकि बस्ती में जाता, उनके घर पर थोड़ा ठहरता, चाय-पानी पीता और लौट आता।

मेरठ की कुछ बस्तियों से वाल्मीकि परिवारों से दलित आंदोलन में शामिल होने लगे थे। उनके होठों पर भी बाबा साहेब डॉ. अंबेडकर का नाम आने लगा था। वे भी शिक्षा, व्यापार तथा राजनीति में प्रगति कर रहे थे, पर उन्हें इस बात का मलाल अवश्य था कि वाल्मीकि जाटवों से पीछे क्यों हैं।"9

नैमिशराय जी ने अपनी आत्मकथा में घोर अंधविश्वास का चित्रण किया है। नैमिशराय को बचपन से ही हिन्दू धर्म व्यवस्था के प्रति घृणा थी। भारतीय समाज आज भी रूढ़िवादी मानसिकता से जकड़ा हुआ है। दलितों की बस्ती अंधविश्वास से ग्रस्त थी। बस्ती में स्थायी और अस्थायी दोनों प्रकार के भक्त थे जो भूत-प्रेत उतारने का कार्य करते थे। कुछ लोगों को नीम-हकीम रास्ते में भी पकड़ लेते थे और उल्टे-सीधे तरीके से झाड़-फूँक करते थे। इन सब कारणों से महिलाओं के यौन शोषण का खतरा भी अधिक होता था। झाड़-फूँक के द्वारा महिला को भूत के चंगुल से मुक्त करने के लिए उचित और अनुचित टोटके भी किए जाते थे। लेखक लिखते हैं- "यूँ भूत-प्रेत उतारने का कार्य कलिया का मर्द यानी भगवान् सहाय ही करता था। वह इस कार्य में सिद्ध हो गया था। शायद ही कोई ऐसा दिन बिना नागा के जाता जब कोई भुतियाया आदमी या भुतियाई औरतें उसके दरवाज़े पर आकर टक्कर नहीं मारते थे। उसके पास आदमियों से अधिक औरतें ही आती थीं। ऐसे समय पर कलिया केवल आग में चिमटा गर्म करता, आग में मिर्च डालना, धूप, अगरबत्ती या लोबान जलाने के साथ-साथ पाँव पटकते हुए या खेलती हुई भूतियाई औरत को पकड़े रखती थी। दूसरी तरफ भगत उसके बाल या चोटी पकड़कर आरंभ में सीधे-सीधे पूछता, "बोल कहाँ से आया तू, पटियाले से या मवाना से।" मवाना से।"10

आत्मकथा में दलित समाज की छोटी-बड़ी सभी सामाजिक कुरीतियों, आडम्बरों और रूढ़ियों को सामने लाकर उसमें भी निहित अंतर्विरोधों को लेखक ने बड़ी ही यथार्थता के साथ उजागर किया है। आत्मकथा में लेखक ने दलित समुदाय के मेहनतकश होने का ज़िक्र करते हैं लेकिन साथ ही उस मेहनताना का शराब पीकर खर्च कर देना जैसी समस्याओं का चित्रण भी लेखक ने बड़े ही सहजता से किया है। अपने विवाह के माध्यम से वैवाहिक कुरीतियों, आडम्बरों और दहेज़ प्रथा के सन्दर्भ में कहते है-

"यूँ हमारे परिवार में मेरी जानकारी में बहुत से विवाह हुए थे। रिश्ता होने के शुरूआती दौर में ही कितने झूठ दोनों तरफ से बोले जाते हैं। मेरा रिश्ता पक्का होने तक मुझे उन झूठे वायदों का अच्छा-खासा अनुभव हो गया था। फिर भी भारतीय समाज में विवाह को पवित्र बंधन माना गया है। विवाह के नाम पर लोग शेखी बघारते हैं। विवाह के बहाने एक-दूसरे से झूठे वायदे करते हैं। विवाह होते-होते एक-दूसरे को नीचा दिखाते हैं। इससे अधिक हमारा दोगला-पन और क्या हो सकता है। ऐसे दोगले समाज की संरचना में दलित जातियों के लोग भी बढ़-चढ़कर हिस्सेदारी निभा रहे थे। वे कहते कुछ थे और करते कुछ थे। न उनके पास अपनी ज़मीन थी और न जमीर। महानगरीय चमक-दमक में वे भी सवर्णों की नकल कर रहे थे।"11

"हमारे अपने अपने द्वंद्व थे दलित समाज के भीतर जैसे-जैसे उनके बीच परस्पर टकराव होने लगे थे। आर्थिक ख़ुशहाली के आधार पर लोगों की कीमत आँकी जाने लगी थी। दलितों के बीच से ही कुछ लोग अपने-अपने ढंग से चौधरी और मुख्तियार बनने लगे थे। विवाह के नाम पर आडंबर की बातें होने लगी थी।"12

"न जाने यह सब हुड़दंगी और पाखंडी परंपराएँ कब शुरू हुई होंगी, किसने आरंभ किया होगा। किन लोगों के कारण विकास हुआ होगा। मेरी भावनाएँ जख्मी हो रही थीं। मेरे मन में एक सपना था कि मैं अपने विवाह में एक आदर्श बन कर दिखाऊँगा। वह सब चकनाचूर हो गया था। मैं अपने ही भीतर की कीचड़ में लथपथ था। एक नए तरह की दलदल मेरे सामने थी। खुशी के लम्हे टुकड़ा टुकड़ा हो रहे थे। मैं भीतर/बाहर से टूट रहा था, बिखर रहा था। मुझे पत्थर बन जाना चाहिए, पर मैं मिट्टी का टुकड़ा ही बना रहा।"13

"उन दिनों दहेज में साइकिल देने का ख़ूब रिवाज था। कहीं-कहीं स्कूटर/टी.वी. माँगने की ललक भी आरंभ हो गई थी। मुझे भी दहेज में एटलस साइकिल मिली थी। पर टी.वी. नहीं मिला था। स्कूटर की तो बात ही दूर थी। अन्य सामान में वही डबल बैड से लेकर सोफासेट, बर्तन भाँड़े आदि आदि। बस्ती में एक-दो घरों में तब तक टी.वी. आ गया था। दहेज में टी.वी. न मिलने से बा ने बुरा माना था। हालाँकि मेरे ससुर ने टी. वी. देने का वायदा किया था।"14

निष्कर्षत: कहा जा सकता दो भागों में विभक्त यह आत्मकथा वास्तव में दलित आन्दोलन और दलित समुदाय की स्थिति को संक्षेप में प्रस्तुत करती है तथा इस आत्मकथा में निम्न मध्यवर्गीय दलित जीवन के अंतर्विरोधों, आंतरिक समस्याओं, आंतरिक द्वंद्वों तथा पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक संघर्ष को प्रस्तुत किया गया है। इस आत्मकथा की उपलब्धि यह है कि यहाँ दलितों की अंधश्रद्धा, कुरीतियों, रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, सामाजिक आडम्बर आदि तथा उप-जातियों में बँटकर जीने की उनकी वृत्ति पर खरी-खरी टिप्पणी की गई है। यह आत्मकथा एक ओर सवर्णों को दलितों की वास्तविकता से परिचय करा देती है तो दूसरी ओर दलितों को सारे मतभेद भूलकर विषम समाज के ख़िलाफ़ संगठित होने हेतु प्रेरित करती है।

000

संदर्भ- 1.नैमिशराय, मोहनदास, अपने-अपने पिंजरे भाग 2, वाणी प्रकाशन, 2021, पृष्ठ, 46, 2.नैमिशराय, मोहनदास, अपने-अपने पिंजरे भाग 1, वाणी प्रकाशन, 2021, पृष्ठ, 8, 3.अपने-अपने पिंजरे भाग 1, पृष्ठ, 68, 4.अपने-अपने पिंजरे भाग 2, पृष्ठ, 67, 5.वही, पृष्ठ, 62, 6.वही, पृष्ठ, 66, 7.वही, पृष्ठ, 65, 8.वही, पृष्ठ, 67, 9.वही, पृष्ठ, 67-68, 10.वही, पृष्ठ, 44-45, 11.वही, पृष्ठ, 94, 12.वही, पृष्ठ, 113, 13.वही, पृष्ठ, 114-115, 14.वही, पृष्ठ, 116

(शोध आलेख)

गीतांजलि श्री के उपन्यास 'माई' में अभिव्यक्त स्त्री चेतना का स्वरूप

शोध लेखक : सीमा कुमारी साव (शोधार्थी) हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध निर्देशक - डॉ. सविता

सीमा कुमारी साव
डी- 20, गली नंबर - 32, गोयल डेयरी, कुतुब विहार - 1, नई दिल्ली 110071
मोबाइल- 8010456606
ईमेल- nalinirose111@gmail.com

सर्व विदित है, भारतीय समाज पुरुष सत्तात्मक समाज है। प्रारंभ से ही स्त्री का दायरा बहुत संकुचित रहा है। स्त्रियों का घर की चारदीवारी के अंदर ही रहना होता था, उन्हें पढ़ने-लिखने नौकरी आदि किसी भी प्रकार की आजादी नहीं थी। स्त्रियाँ एक प्रकार की घुटन भरी नारकीय ज़िंदगी व्यतीत कर रही थीं। यह स्त्री चेतना का विकास है कि वर्तमान में स्त्री, कंधे से कंधा मिलाकर पुरुषों के साथ समाज के प्रत्येक क्षेत्र में सामान भूमिका निभा रही हैं। एक बार एक फ्रेंच लेखक ने भी लिखा था कि अगर किसी देश की अवस्था का पता लगाना हो, तो वहाँ की स्त्रियों की दशा जानना जरूरी है। इसका तात्पर्य है कि जो समाज जितना अधिक उन्नतशील होगा वहाँ स्त्रियों की दशा उतनी ही विकसित होगी।

संसार में जो कुछ भी शाश्वत है उसके हकदार, भागीदार स्त्री पुरुष दोनों हैं फिर भी मानव समाज में स्त्रियों को क्यों दबाया जाता है? किसी एक के प्रभुत्व से दूसरे का शोषण, दासत्व यह न्याय नहीं है, इस अन्याय के प्रति आवाज़ ही चेतना है। मनुष्य जीवन में स्त्री-पुरुष दोनों की ही भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। चेतना या मुक्ति की लड़ाई स्वामित्व पाने के लिए नहीं बल्कि समान भाव, सम्मान, समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व (वह भी बिना किसी लिंगभेद के) के लिए आवश्यक है। यह जागृति का संघर्ष पितृसत्ता की अन्यायकारी, अहंकारी, शोषणकारी मानसिकता के प्रति जागृत होकर उचित न्याय पूर्ण समाज को विकसित करने के लिए है।

"घर-परिवार-बच्चे, इन सब के बीच में मेरा अस्तित्व क्या है? या मेरी स्थिति क्या है? यह प्रश्न सदा ही उसके भीतरी तत्व को झकझोरता है। अपनी स्थिति के प्रति जागृति ही स्त्री चेतना है।"

स्त्री मुक्ति, स्वातंत्र्य चेतना की कल्पना और विचारधारा पश्चिमी चिंतन का ही प्रभाव है। स्त्री स्वतंत्रता का तात्पर्य यह नहीं कि स्त्रीयों को पारिवारिक अथवा सामाजिक बंधनों से मुक्त होना है, और अपने दायित्वों से मुँह मोड़कर स्वच्छंद जीवन व्यतीत करना है, किंतु व्यक्ति स्वतंत्रता के युग में स्त्री को भी पुरुषों की तरह वैयक्तिक, स्वतंत्रता होनी चाहिए। अपने विचार, अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए उस पर किसी की मर्जी न लादी जाए। उसे परम्परा, रूढ़ियों की बेड़ियों में जबरदस्ती जकड़ा न जाए। उसे अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए पुरुष की भाँति ही सुविधा और अवसर प्राप्त हों। उसे भी मानवता की दृष्टि से देखा जाय।

इतिहास से लेकर वर्तमान तक कि स्थिति देखें तो स्त्री लेखिकाओं ने अपनी पहचान बनाई है। आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्त्री का अपना विशिष्ट योगदान है। उषा-प्रियंवदा, चित्रा मुद्गल, कृष्णा सोबती, नासिरा शर्मा, प्रभा खेतान, मन्नूभंडारी, मंजुल भगत, मणिका मोहिनी, मालती जोशी, मेहरुन्निसा परवेज, मैत्रेयी पुष्पा, मृदुला गर्ग, गीतांजलि श्री, मृणाल पांडे, राजी सेठ, शिवानी, शशिप्रभा शास्त्री, सूर्यबाला जैसी विदुषी नारियाँ समाज निर्माण के कार्य में जुड़ी हुई हैं, भारत वर्ष में स्त्री से संबंधित समस्याओं जैसे अशिक्षा, अंधविश्वास, तलाक, विधवा विवाह, कुरीतियों और महत्त्वपूर्ण कानूनों की भूमिकाओं को लेकर लेखिकाओं ने गहन चिंतन किया है।

'मृदुला गर्ग' का कथन है – "धैर्य और लंबे संघर्ष तथा गहरे संकल्पों के साथ जूझने की ज़रूरत है। स्त्री की यातना का बहुत लंबा इतिहास है। अपनी अस्मिता की निरंतर जागृति के साथ स्त्री को सामने आना पड़ेगा। ताकि स्त्री-पुरुष दोनों समरस जीवन जी सकें।"

"वर्तमान युग में नारीवाद की नहीं, वरन नारी चेतना की बात की जानी चाहिए, ताकि वह स्वयं के रूप को पुनर्परिभाषित कर सके। कारण यह है कि स्त्री केवल देह मात्र ही नहीं है वह देह के अलावा, मन, आत्मा, प्रज्ञा, चेतना व विचार भी है, इस सभी से मिलकर नारी शक्ति रूपी बनती है। सत्ता द्वारा जिन मूल्यों का प्रतिपादन किया जाता है, साहित्य के माध्यम से उन्हें जाँचा परखा जाता है।"

स्त्रियों पर जो भी रचनाएँ चर्चाएँ हुई, वे पुरुषों ने की, चाहे वह सामाजिक सरोकारों के

मद्देनज़र हो या सहानुभूति से। स्त्री चरित्रों को लेकर पुरुष रचनाकारों का अपना एक नज़रिया और अपना आकलन था। पर यह स्थिति पिछले दो दशकों से विश्व के हर क्षेत्र में देखी जा रही है कि स्त्रियाँ स्वयं अपने बारे में अपने विषय बना कर चर्चा कर रही हैं। ऐसे रचनाकारों में हैं - 'गीतांजलि श्री'।

'गीतांजलि श्री' के लेखन का अपना एक 'टोन' है। गीतांजलि जी के यहाँ विचलन लगभग नहीं के बराबर है और यह बात अपने आप में आश्चर्य जनक है क्योंकि बड़े से बड़े लेखक कई बार बाहरी दबावों और वक्ती ज़रूरतों के चलते अपनी मूल टोन से विचलित हुए हैं, लेकिन गीतांजलि जी ने लगभग अपनी हर कृति में अपनी 'सिग्नेचर ट्यून' को बना कर रखा है। गीतांजलि श्री के कथा लेखन में जीवन की कुरूपता और जड़ता को सृजनात्मक धार से छीलने का प्रयास किया गया है। उनके कथा साहित्य की नायिका कदम-कदम पर अपने मार्ग में आने वाली कठिनाई को झेलती है और अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए संघर्षशील रहती है। उनके कथा लेखन में स्त्री अस्तित्व एवं अस्मिता का संघर्ष प्रमुख रहा है।

गीतांजलि जी की कृतियों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि इनका लेखन पारंपरिक लेखन से आगे है। जीवन को लेकर, प्रकृति को लेकर, स्त्री जीवन, लेखन आदि को लेकर इनका अपना एक नया दृष्टिकोण है, ये बातें गीतांजलि जी के उपन्यास व कहानियों में झलकती है। गीतांजलि स्वयं अपने लिए कहती हैं कि "मैं हूँ ही कुछ कॉम्प्लेक्स मेरी कल्पना भी कॉम्प्लेक्स है।" वे स्वयं जटिल है अत: इनकी कल्पना में भी जटिलता आ जाती है। गीतांजलि अपने लेखन के प्रति बेहद सजग रचनाकार हैं, इनके लेखन में नए मूल्य स्थापित होते दिखाई देते हैं।

भारतीय पितृसत्तात्मक समाज में प्रारंभ से ही जीवन के सभी अधिकार पुरुषों को ही रहा है। हर निर्णय का अधिकार केवल पुरुष को मिला, स्त्री केवल उसकी अनुगामी रही है। जिसके पास नव जीवन की सृजन की शक्ति है वह स्वयं परतंत्र और असुरक्षित, अधिकार विहीन रही। ठीक यही स्थिति स्त्रियों की साहित्य में भी रही है परन्तु गीतांजलि जी ने स्त्री जीवन के आधारभूत समस्याओं को अपने उपन्यास माई में प्रत्यक्ष उकेरा है।

'माई' में सामंतवादी मानसिकता में जकड़े एक संपन्न परिवार की तीन पीढ़ियों की कहानी है। जिसमें यह बताया गया है कि भारतीय मध्यवर्गीय सामंती समाज में एक स्त्री के जीवन को किस तरह बेबस, मजबूर और बेजान खोखला बनाया जाता है। उपन्यास में मुख्य पात्र हैं- दादा, दादी, बाबू, माई तथा सुबोध और सुनैना। प्रथम पीढ़ी-दादा व दादी की है जो सामाजिक मर्यादा व पितृसत्तात्मक परंपरा की मानसिकता में कैद है। दूसरी पीढ़ी - बाबू व माई की है जो कुंठाओं से ग्रसित है और दादा-दादी के दबावों में रहती हुई उनका अनुसरण करती है। तीसरी पीढ़ी- वर्तमान समय की है जिसका प्रतिनिधित्व उपन्यास में सुबोध व सुनैना दोनों भाई-बहन करते हैं। यह पीढ़ी अपने अधिकारों के प्रति सचेत और रूढ़िगत बंधनों को नकारती है इसी कारण यह किसी के दबाव में नहीं रहती है और अपनी अस्मिता तलाशने का प्रयास करती है।

'माई' इस उपन्यास की केंद्रीय पात्र है, इसी के इर्द-गिर्द उपन्यास का कथानक घूमता है। 'माई' ऐसी पात्र है जो ड्योढ़ी के भीतर कारावासी जीवन से एक खोखली काया मात्र बनकर रह जाती हैं- "एक निरीह, कमज़ोर, प्रताड़ित बेचारी, जिसने अपने अंदर से अपना अलग हर कुछ निकाल के रख दिया है और खुली और खाली हो गई है। चाहें दूसरे उसमें जो चाहे भरें।" माई के जीवन का कोई अस्तित्व नहीं था। इसी माई पात्र के माध्यम से लेखिका भारतीय समाज में स्त्री के जीवन की विडंबना को दर्शाती हैं। माई का दूसरों के लिए जलना उसके दोनों बच्चे सुबोध और सुनैना बचपन से देखते आए थे अत: ड्योढ़ी' के इस कारावासी जीवन से वे माई को मुक्त कराने की निरंतर कोशिश करते हैं- "हमारी तो हमेशा से धुन थी कि माई को माई नहीं रहने देंगे। हमारे तजुरबे ने, गहरे चिंतन ने, भरी - पूरी सोच - समझ ने हमें सिखा दिया था कि माई एक खोखल है क्योंकि एक समाज उसे खोखल बनाके अपने हित के लिए रखा हुआ था। उसमें इंसान हम भरेंगे, उसे पनपने का मौका हम देंगे ताकि सदियों से ज़ुल्म सहता वह खोखल सरक जाए और माई, माई नहीं होकर भरपूर लहलहाए।"

प्रस्तुत उपन्यास में नायिका 'माई' दमित होने के बाद भी पूर्ण जिजीविषा के साथ एक स्त्री के रूप में स्वयं को बचाए, बनाए रखने की कोशिश करती है। परिवार में दादी - दादा, माई - बाबू, तथा बहन - भाई हैं। बाहर दादा का व भीतर दादी का हुक्म चलता है। सब के केंद्र में है - 'माई'। फिर भी माई की अपनी कोई पहचान नहीं है। घर के बच्चों को अपनी माँ का नाम नहीं पता अत: माँ से जुड़े रिश्तो (नाना - नानी) को भी नहीं जानते। "रज्जो ? मैं इस नाम के किसी जीव को नहीं जानती, मैंने माई को लिखा।" (सुनैना का कथन) बस एक शब्द 'माई' और इस एक शब्द ने एक स्त्री के अस्तित्व, उसकी पहचान उसका अपना व्यक्तित्व, सब कुछ को ढाँप लिया है।

वैसे भी भारतीय समाज स्त्री की स्वतंत्रता, स्वतंत्र पहचान, उसके स्वालंबन का पक्षधर नहीं रहा है। इस उपन्यास में एक स्त्री के घुटन भरे जीवन को पेश किया गया है जो समूचे मध्यवर्गीय स्त्री या कहें कि भारतीय स्त्रियों की अवस्था का प्रतीक है, लगभग प्रत्येक स्त्री। इतना ही नहीं दूसरी पीढ़ी (माई) जो अंदर ही अंदर सुलग रही है वो तीसरी पीढ़ी (सुनैना) को उसके अपने अस्तित्व, अपनी पहचान व अपनी स्वतंत्रता को मौन स्वीकृति देकर आगे बढ़ाती है।

'माई' उपन्यास की ऐसी पात्र है जिसका संपूर्ण जीवन ड्योड़ी की चार दीवारी के बीच सास-ससुर व पति की तानाशाही में व्यतीत होता है। माई सबकी आज्ञाकारणी बनी हुई प्रत्येक की इच्छाओं का ख्याल रखती है- "तभी उसका सबकी मंशापूर्ति के लिए कठपुतली बनना, फिर उनके जूठन पर जिंदा रहना। दादा को मकुनी और फुलौदा पसंद तो वह उनका जब किसी को नहीं चाहिए तो वह माई का, दादी को धुसका पसंद तो वह उनका बासी, हो चले तो माई का बाबू जो छोड़े वह माई का।" 'माई' हमेशा सहनशीलता व लाज

के पर्दे में घुटती रहती है सामाजिक व्यवस्था में उसके व्यक्तित्व की, अस्मिता व पहचान की हमेशा उपेक्षा की गई अत: माई हमेशा कमज़ोर बनी रही और उसके अंदर की लहकती 'रज्जो' (माई का वास्तविक नाम) हमेशा के लिए सामंती व्यवस्था के नीचे अस्तित्वहीन हो गई।

'माई' का जीवन ड्योड़ी में घुटता कैद है, स्त्री की इस पीड़ा को माई बखूबी समझती है इसीलिए वह पारिवारिक व्यवस्था का खुला विरोध किए बिना सुबोध व सुनैना को अपनी आड़ में सुरक्षा देती है। उनके लिए सीढ़ी बनकर ड्योड़ी से बाहर निकलने में मदद करती है। "इस उपन्यास में स्त्री की पराधीनता के विरुद्ध प्रतिरोध की चेतना भी धीरे-धीरे विकसित होती है। माँ बेटी को झुकना सिखाती है तो वहीं माँ उसे तन कर खड़ा करने में मदद भी करती है। 'माई' में तीन पीढ़ियों की भाषाओं और आकाँक्षाओं की टकराहट के बीच से स्त्री-स्वाधीनता की चेतना बनती - टूटती और पुन: निर्मित होती दिखाई पड़ती है।"

'माई' की रीड की हड्डी जो धीरे-धीरे झुकती चली जाती है वह सिर्फ शारीरिक तौर पर नहीं बल्कि उससे एक स्त्री के समूचे व्यक्तित्व, आत्मसम्मान, स्वतंत्रता, व ख़ूबसूरती का नष्ट होना झलकता है। भाई - बहन की नई पीढ़ी की सोच के मुताबिक 'माई' एक बेचारी भर है वह उसके अंदर की रज्जो को, उसकी शक्ति को, उसके आदर्शों को, उसकी आग को देख नहीं पाते लेकिन बहन जब कुछ - कुछ यह बात समझने लगती है तब उसके लिए ज़रूरी होता जाता है कि वह माई की नैरेटर बने। आख़िर वह क्या है जो माई को उसके गहरे बोध के बावजूद इस तरह झुकाकर टेढ़ा बना देता है ? माई और बाबू के संदर्भ में यह बात बिल्कुल सही है, जो कथा सम्राट प्रेमचंद जी ने कहा है कि - "पुरुष विकास के क्रम में स्त्री से पीछे है।" स्त्री को हमेशा आगे बढ़ने के लिए पुरुषों का ही सहारा मिलता है, (सुबोध का विद्रोह सुनैना के लिए) जबकि उसके विकास का मार्ग अवरुद्ध करने वाला भी पुरुष समाज ही है (दादा)।

'माई' में लेखिका ने स्त्री-जीवन की विडंबना के साथ नारी चेतना को भी संदर्भित किया है। सुनैना आधुनिक विचारों की सुलझी हुई लड़की है। माई के जीवन को वह बचपन से ही ड्योड़ी में दादा-दादी व पिता की तानाशाही में घुटता-दबता, प्रताड़ित देखती है इसी कारण वह बड़ी होने पर अपने को माई जैसा बनने के लिए तैयार नहीं बल्कि इसका प्रतिरोध करती है। "मुझे माई नहीं बनना, मैं माई वैसे भी नहीं बनूँगी, माई ख़ुद मुझे माई नहीं बनाती, मैं चाहूँ भी तो माई नहीं बन सकती, वह सिफत नहीं मुझमें, मैं माई को झकझोड़ के झटक देती हूँ, अलग, मुझे त्याग बुरा लगता है क्योंकि वही माई का बोझिल इतिहास है, मुझे उसकी तरह दे देके देने को ही लेना नहीं बनाना है, मुझे उसकी तरह शहादत में मकसद नहीं पाना है, मुझे उसकी तरह नम्रता और उदारता को अपराध नहीं बना देना है, उसके इतिहास से लड़ना है, उसे नकारना है, और इसलिए लेना है, लेकर पाना है, उसके बाद दूँगी, लेने के साथ दूँगी, पर तब तक लड़ूँगी, उसी से लड़ूँगी, माई जो शाश्वत है, जो मुझमें है, जो आग में, राख में, हमेशा रहेगी, जिसके आगे मैं शीष नवाती हूँ, उससे लड़ूँगी।" यहीं पर उपन्यास में स्त्री- पराधीनता के विरुद्ध संघर्ष का स्वर दिखाई पड़ता है।

निष्कर्षत: इस प्रकार गीतांजलि श्री के लेखन में नए मूल्य स्थापित होते दिखाई देते हैं- नायकत्व, स्त्री नायकत्व, प्रकृति और स्त्री इत्यादि। इनका लेखन अपने आप में बिल्कुल जुदा है। कथा कहने का तरीका अलग है। ये बिल्कुल बेबाक, बिंदास ढंग से लिखती हैं। किसी कुशल गोताखोर सा अपने पात्रों के भीतर गहरे उतर उनके कई अनदेखे पहलुओं को सामने लाकर वे किसी विषय / समस्या विशेष को कई कोणों से छूना चाहती हैं, जिसकी प्रभावी रचनात्मक अभिव्यक्ति सहज ही उनके उपन्यास व कहानियों में देखने को मिलती है। नि:संदेह यह उपन्यास अपने अनूठे शिल्प में स्त्री-जीवन के स्वाभिमान, उसकी अस्मिता और स्वाधीनता जैसे संदर्भों को गंभीरता से उठाता है।

पितृसतात्मक समाज में स्त्री को केवल झुकना ही सिखाया है। 'माई' उपन्यास के संदर्भ में "हरदम झुकनेवालों का यही हश्र होता है... यों झुकने वाले को झुके रहने में भी दर्द होता है, ततने में भी दर्द होता है। माई हमेशा झुकी रहती थी।...तभी से वह एक मौन, झुकी हुई साया थी, इधर से उधर फिरती।" यह प्रश्न सुबोध और सुनैना का अपने आप से है कि क्या स्त्री की स्थिति में कोई सुधार की आशा है ?

लेखिका ने माई के माध्यम से अपने आप को और अपने माध्यम से माई को समझने की कथा कही है जो हर मध्यमवर्गीय परिवार की स्त्री की कथा है। माई गड्ड-मड्ड स्मृतियों के सहारे जुटाए संकेतों में कही अनकही कहानी का सिर्फ आभास देती है। इस उपन्यास में लेखिका ने कई सवाल उठाए हैं। सुनैना का कहना है - "मुझे माई नहीं बनना मैं माई वैसे भी नहीं बनूँगी, मैं चाहूँ तो कभी माई नहीं बन सकती।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि अपनी सरलता और सादगी में भी यह उपन्यास बहुत गूढ़ सवालों को उठाता है।

अपने स्त्री होने के संदर्भ में मनीषा कुलश्रेष्ठ की यह पक्तियाँ मुझे बेहद अच्छी लगती है - "मैं बंध्या नहीं हूँ / न ही पत्नी हूँ / नपुंसक काल की / मैं सृजनशीला / परंपरा हूँ अपनी माँ की।"

000

संदर्भ-

1 . गीतांजलि श्री, माई, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ – 126, 2.वही, पृष्ठ – 153, 3.वही, पृष्ठ – 121, 4.वही, पृष्ठ – 50, 5.वही, पृष्ठ – 166 - 167, 6.वही, पृष्ठ – 167, 7.वही, पृष्ठ – 9, 8.वही, पृष्ठ – 64, 9.अंसारी, एम.एम., महिला और मानव अधिकार, पृष्ठ – 15, 10.गर्ग, मृदुला, दैनिक नव ज्योति, पृष्ठ – 9, 19 दिसंबर 1998, 11.पाण्डेय, मैनेजर, आलोचना की सामाजिकता, वाणी प्रकाशन, 2008, 12.वर्मा, डॉ. सुशीला, आधुनिक समाज की नारी चेतना, 13.कस्तवार, रेखा, स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ, राजकमल प्रकाशन, 2006,

(शोध आलेख)

किसान आत्महत्या, कारण एवं निदान : साहित्यिक संदर्भ में

शोध लेखक : वर्षा रानी पाटले (शोधार्थी)

शोध निर्देशक - डॉ. स्नेहलता निर्मलकर, हिन्दी विभाग, डॉ. सी. व्ही. रामन् विश्वविद्यालय, करगी रोड, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश - हमारा देश कृषि-प्रधान देश है। यहाँ की अधिकतर जनता गाँवों में निवास करती है। भारत में लगभग सात लाख गाँव हैं और इन गाँवों में अधिकांश किसान हैं जो कृषि कार्य कर अपना ही नहीं बल्कि पूरे देश का भरण-पोषण करता है। किसान ही भारत के लोगों के अन्नदाता हैं और उनकी आत्महत्या पूरे देश के लिए लज्जा का विषय है। देश की केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारों को किसानों की आत्महत्या रोकने के लिए प्रयत्न करने की आवश्यकता है। कृषि प्रधान देश होते हुए भी यदि किसानों की स्थिति कमज़ोर हो जिसके कारण उन्हें अपने अमूल्य प्राणों का त्याग करना पड़ रहा है तो हमारी सारी उपलब्धियाँ, हमारी विकास की बातें, हमारी प्रगति की ओर बढ़ते कदम सभी अर्थहीन हैं। देश के अर्थशास्त्रियों और देश की सरकार को सर्वप्रथम किसानों की ओर ध्यान देना चाहिए, उन्हें आत्मनिर्भर और समृद्ध बनाना चाहिए। जिससे भारत एक उन्नत शील और सबल राष्ट्र बन सके। कृषकों की उपेक्षा करके तथा उन्हें दीनावस्था में रखकर भारत को कभी समृद्ध और ऐश्वर्य से परिपूर्ण राष्ट्र नहीं बनाया जा सकता है।

प्रस्तावना - आजादी के 75 वर्ष बाद भी भारत के किसान अनेक प्रकार के संगठनात्मक और संरचनात्मक समस्याओं से टकरा रहा है। भारतीय किसान की दयनीय स्थिति के मूलत: कारण यह है कि सरकार और देश का बुद्धिजीवी वर्ग किसान विरोधी रहा है। सरकार ने कृषि से अधिशेष लेकर उद्योगों और शहरों का विकास किया है। पूँजी पतियों को ध्यान में रखकर हरित क्रांति के अंतर्गत सरकारी पूँजी निवेश कुछ ही क्षेत्रों और फसलों के लिये किया गया। देश के अधिकतर क्षेत्र कृषि विकास से दूर रहा है, किसानों को विकास में पर्याप्त भूमिका नहीं दिया गया। नेहरूवादी व्यवस्था में विकास का कार्य नौकरशाही पर सौंपा गया था और उदारता वादी काल में यह जवाबदेही पूँजीवादियों को दी गई। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में जहाँ प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से कृषि द्वारा 70 प्रतिशत से अधिक लोगों को रोज़गार मिलता है वहाँ किसान आत्महत्या एक बड़ी चिंता का विषय है। भारत में किसान आत्महत्या सन् 1990 के बाद से प्रारंभ हुआ इस स्थिति का परिणाम है यहाँ प्रतिवर्ष दस हजार से अधिक कृषकों के द्वारा आत्महत्या की रपटें दर्ज की जाती है। सन् 1997 से 2006 के दौरान 166304 किसानों ने आत्महत्या की।

राष्ट्रीय अपराध लेखा कार्यालय के आँकड़ों के अनुसार पूरे भारतवर्ष में सन् 2008 में 16196 कृषकों ने आत्महत्याएँ की थी सन् 2009 में 1172 किसानों ने आत्महत्याएँ की। "राष्ट्रीय अपराध लेखा कार्यालय" द्वारा प्रस्तुत किये गए आँकड़े के अनुसार सन् 1994 से 2011 के बीच 17 वर्ष में सात लाख पचास हजार सात सौ साठ किसानों ने आत्महत्याएँ की है।

सन् 1990 के बाद जिस प्रकार उदारीकरण का कृषि अर्थव्यवस्था को प्रभावित करता है उसी प्रकार साहित्यिक रचनाओं में भी बदलाव देखने को मिलता है। साहित्यिक कृति में जमींदारी उन्मूलन, बाढ, गरीबी, चकबंदी, आंदोलन की समस्याओं को लेकर किसान जीवन पर रचनाएँ नहीं लिखे जा रहे हैं बल्कि अब समय के साथ-साथ समस्याएँ भी बदल गई है। भारत एक नए तरह का उप निवेशक बन गया है। अब साहित्यकार अपने कलम से किसान जीवन की मूल समस्याएँ जैसे भूमि अधिग्रहण, किसानों का विस्थापन, किसानों की जमीनों पर भवन निर्माण, खेती पर नहीं, कंपनियों का विस्तार करना, सेज के नाम पर बड़े-बड़े बाँध बनाने के लिए अधिग्रहीत ज़मीन और पुनर्वास की समस्या, आदिवासियों के जल-जंगल-ज़मीन आदि को विषय बनाकर अपनी कृतियों के माध्यम से हमारे सम्मुख प्रस्तुत करते हैं।

किसान आत्महत्या के प्रमुख कारण को निम्नांकित बिन्दु से प्रस्तुत किया जा सकता है-

1.प्राकृतिक आपदा - किसान आत्महत्या के लिए प्राकृतिक आपदा काफी हद तक ज़िम्मेदार है क्योंकि कृषि अधिकांशत: मानसून पर निर्भर करता है। अब मौसम में आए परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग, वनों की कटाई, भारी बारिश, बाढ़, अनिश्चित मानसून, सूखा, चक्रवात, आग इत्यादि कारकों से किसान फार्मों द्वारा गुणात्मक और मात्रात्मक उत्पादन प्राप्त करने में असमर्थ होता

वर्षा रानी पाटले (शोधार्थी)
हिन्दी विभाग, डॉ. सी. व्ही. रामन् विश्वविद्यालय, करगी रोड, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.) 495001
मोबाइल- 8871972537
ईमेल- varsha060794@gmail.com

है। अनियमित मानसून सबसे अधिक खेती किसानी को प्रभावित करता है, फसल नष्ट हो जाते हैं जिससे क़र्ज़ को कृषक समय पर चुका नहीं पाते और उन्हें आत्महत्या का रास्ता नज़र आता है। 'हलफनामे' सन् 2006 में प्रकाशित राजू शर्मा का बहुचर्चित उपन्यास है। उपन्यास का कथा मुख्यत: किसान आत्महत्या के साथ ही जल संकट की समस्या को चित्रित करता है। किसान आत्महत्या पर हिन्दी में यह प्रथम उपन्यास है जिसमें आंध्र प्रदेश के किसानी जीवन और उसकी खेती की प्रमुख समस्या जल समस्या को दर्शाता है।

2.कृषि लागत का बढ़ना - खाद, कीट एवं रोगनाशक दवा, उन्नत बीज, बिजली और अन्य इनपुट के लिए सरकार द्वारा दी गई सब्सिडी के अतिरिक्त इनपुट लागत बिक्री कीमतों की तुलना में तीव्र गति से वृद्धि होती जा रही है, जिससे छोटे किसानों का राजस्व थोड़ा कम हो गया है और उन्हें क़र्ज़ में डाल दिया गया है। इसके अलावा मजदूरों और जानवरों को काम पर रखने की लागत बढ़ गई है। कृषि उपकरण जैसे ट्रैक्टर, सीडड्रील, थ्रेसर, सबमर्सिबल पंप आदि के दाम अत्यधिक होते हैं। हमारे देश में अधिकतर किसान कपास, गन्ना और अन्य नगदी फसलों को उगाना पसंद करते हैं जिसमें व्यय भी अधिक होता है और फसल के नष्ट हो जाने से उन्हें काफी आर्थिक क्षति पहुँचती है। इसके अतिरिक्त जैसे-जैसे कृषि की कीमतें बढ़ती है वैसे-वैसे ग्रामीण आय कम होते जाती है जिसका परिणाम यह होता है कि किसानों को अपनी उत्पादों को शहर में सरकारी उद्यमों को भेजने की लागत को उठाने के लिए पर्याप्त धनराशि नहीं मिलता है। संजीव का उपन्यास 'फांस' (2016) विदर्भ किसान आत्महत्या को प्रस्तुत करता है। फांस उपन्यास की कथावस्तु में महाराष्ट्र के 'यवत माल' जिले का बनगाँव है जो आधा वन है और आधा गाँव। एक ओर देखो तो जंगल दिखाई देता है दूसरी ओर पठार। इस उपन्यास में लेखक ने किसानों के उत्पादन का न्यूनतम समर्थन मूल्य, बीटी काटन, खाद, बीज, कीटनाशक, पानी की कमी, महिला किसान समस्या, कीट नाशक पीकर आत्महत्या करता किसान, खेतों में पेड़ों पर फाँसी लगाकर आत्महत्या करता हुआ किसान आदि अनेक समस्याओं को चित्रित किया है।

3.फसलों का सही दाम ना मिलना- यह हम लोग कई बार कहते और सुनते हैं कि भारत एक कृषि प्रधान देश है लेकिन यहाँ खेती कर रहे कृषकों की दशा कैसी है यह हमें नेशनल सैंपल सर्व आर्गेनाइजेशन की रिपोर्ट बताती है कि यहाँ कृषकों की प्रति महीने की आय मात्र दस हजार दो सौ अठारह रुपये है। इसमें से फसलों से होने वाली आय का योगदान महज तीन हजार सात सौ अट्ठानबे रुपये ही है, जिसका प्रमुख कारण है कृषकों को उनके उपज का सही मूल्य ना मिलना। केन्द्र सरकार जो मूल्य तय करती है उसका लाभ किसानों को बहुत कम मिलता है क्योंकि निजी क्षेत्र उतना दाम देने के लिए विवश नहीं है। अधिकतर राज्यों में मंडियों का भी अभाव है इसलिए किसान पूरी तरह से व्यापारियों पर निर्भर है जिनसे फसलों का सहीं मूल्य मिलने की उम्मीद करना असंभव है। सुनील चतुर्वेदी का उपन्यास 'काली चाट' (सन् 2015) विकास बनाम विनाश की कहानी कहता है। इस उपन्यास में मालवा के सिन्द्रानी नामक गाँव के किसानों की त्रासदी भरी जीवन को प्रस्तुत किया गया है इस उपन्यास की केन्द्रीय समस्या खेती का कंपनी करण और नगदी फसलों के अतिरिक्त गेहूँ और धान उगाने वाले किसानों के ऋण लेने और ऋण की चिंता में किसान ना शांति से जी पा रहे थे और ना ही मर पा रहे थे। राजनेताओं द्वारा चलाये जाने वाले योजनाओं का लाभ किसानों के अपेक्षा व्यावसायिक लोग को हो रहा था। शोषण और अपमान के इस चक्र में पिसते किसान मजबूरी में आत्महत्या कर लेते हैं और आत्महत्या का सिलसिला चलता रहता है।

4.क़र्ज़ की समस्या - एनएसओ की रिपोर्ट बताती है कि देश के किसान परिवारों पर 2013 से औसतन 47000 रुपये का क़र्ज़ था जबकि यह रकम 2019 में बढ़कर 74121 रुपये हो गई है। देश के 50 प्रतिशत अधिक कृषक परिवार आज भी क़र्ज़ की समस्या से जुझ रहे हैं, दूसरी ओर नाबार्ड की एक रिपोर्ट के अनुसार 31 मार्च तक किसानों पर 1680 लाख करोड़ रुपये का क़र्ज़ है, किसान नेता किसानों को इस क़र्ज़ से स्थायी मुक्ति की माँग कर रहे हैं। ऐसा तभी हो सकता है जब बीज से बाज़ार तक की व्यवस्था पारदर्शी हो जाए और किसानों को उनकी उत्पाद का सही मूल्य मिले। पंकज सुबीर का उपन्यास 'अकाल में उत्सव' (सन् 2017) है जो ग्रामीण संस्कृति का बड़ी सुन्दरता से चित्रण करता है। इस उपन्यास में क़र्ज़ की समस्या को पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होते दिखाया गया है।

5.निरक्षरता, परंपरा और संस्कृति - उपरोक्त मुद्दों के अलावा अशिक्षा, परंपरा और संस्कृति किसानों को आत्महत्या करने के लिए विवश करती है। अशिक्षा और अपर्याप्त ज्ञान के कारण किसान शिक्षा के महत्त्व को नहीं समझ पाते और शिक्षा की कमी के कारण उनकी निर्णय लेने की क्षमता सीमित होती है। धन और धारण क्षमता की कमी के कारण लोग रूढ़िवादी और अन्य धार्मिक गतिविधियों के तरफ ध्यान करते हैं, जिसके लिए धन की आवश्यकता पड़ती है और उन गतिविधियों को अंजाम देने के लिए साहूकारों से ऋण लेते हैं, जिसका ब्याज दर अधिक होता है। इसके अतिरिक्त जब किसानों को अपनी बेटियों की शादी करनी होती है तो उसके शादी का खर्च, शादी में दी जाने वाली उपहार (सोना, चाँदी) के लिए अधिक रकम की आवश्यकता होती है। यदि किसान इन सभी रीति-रिवाजों और सांस्कृतिक गतिविधियों को करने में सफल नहीं होते तो वे निराश हो जाते हैं और मृत्यु के बारे में विचार करने लगते हैं। 'शिवमूर्ति' का सन् 2008 में प्रकाशित 'आखिरी छलांग' उपन्यास ग्रामीण जीवन में किसानों की दुर्दशा को चित्रित करता है। अवध के ग्रामांचल को पृष्ठभूमि में लेकर यह उपन्यास सूदखोरी सरकारी तंत्र के मकड़जाल में फंसे आम कृषक की कहानी कहता है।

किसान आत्महत्या को कम करने के उपाय- भारत सरकार द्वारा किसान आत्महत्याओं के मुद्दे को नियंत्रित करने के

लिए निम्नांकित कदम उठाए गए हैं- 1.रिलीफ पैकेज 2006, 2.महाराष्ट्र मनी लैंडिंग (विनियमन) अधिनियम 2008, 3.कृषि ऋण छूट और ऋण राहत योजना 2008, 4.महाराष्ट्र राहत पैकेज 2010, 5.केरल के किसानों के ऋण राहत आयोग (संशोधन) बिल 2012, 6.आय स्रोत पैकेज विविधता 2013, 7.मोनसेंटो के रायल्टी में 70 प्रतिशत कटौती, 8.प्रधान मंत्री कृषि सिंचाई योजना, 9.सोइल हेल्थ कार्ड

उपरोक्त उपाय के अतिरिक्त अन्य उपाय भी है जिसकी सहायता से भारत सरकार को किसानों की आत्महत्याओं के मामलों पर नियंत्रण करने के लिए कदम उठाने चाहिए- 1.सरकार को विशेष कृषि क्षेत्रों की स्थापना करनी होगी जहाँ केवल कृषि कार्यों से संबंधित गतिविधियों को ही अनुमति प्राप्त हो। 2.कृषकों की कृषि उत्पादकता में वृद्धि करने के लिए उन्हें आधुनिक कृषि विधियों को सिखाने के लिए पहल की जानी चाहिए। 3.प्रकृति पर कृषि की निर्भरता को कम करने के लिए उन्नत जल प्रबंधन विधियों का प्रयोग करना और सिंचाई सुविधाओं में सुधार करना होगा। फसल की विफलता की रोकथाम को प्राथमिकता देना चाहिए। 4.ख़राब मौसम की स्थितियों के बारे में किसानों को सूचना देने के लिए राष्ट्रीय मौसम जोखिम प्रबंधन प्रणाली का शुरुआत की जानी चाहिए। 5.उचित फसल बीमा पॉलिसी की शुरुआत की जानी चाहिए। 6.किसानों को आय के वैकल्पिक स्रोतों के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए और छोटे किसानों को आय के वैकल्पिक स्रोतों के बारे में परामर्श और प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए। सरकार को उन्हें नवीन कौशल प्राप्त करने में सहायता करनी चाहिए। 7.सरकार को छोटे किसानों की ज़मीनों को पूल करके उन्हें आर्थिक रूप से कृषि योग्य भूमि के बड़े भाग में बदल देना चाहिए। 8.सभी कृषकों ख़ासतौर पर छोटे एवं निर्धन किसानों को संस्था गत वित्त पोषण मुहैया कराना चाहिए। 9.किसानों को समय-समय पर आर्थिक खेती के विधियों पर सलाह एवं प्रशिक्षण दी जानी चाहिए। 10.सरकार को कृषि ऋण की उचित व्यवस्था करना चाहिए जिससे ग़रीब किसान को ऋण मिल सके और वे किसी जमींदार या व्यापारी के सामने न हो।

निष्कर्ष- हमारे देश की अर्थव्यवस्था को बढ़ाने में किसानों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है वर्तमान में किसानों की उत्पादन क्षमता में वृद्धि हुई है, परंतु सरकार द्वारा उनको अपने फसलों का उचित समर्थन मूल्य ना मिलकर न्यूनतम समर्थन मूल्य मिल रहा है। फसल को क्षति होने पर उन्हें पक्का सरकारी प्रावधान नहीं मिलता फसल बीमा का लाभ केवल बड़े किसानों को ही मिल पा रहा है। लघु एवं मध्यम किसानों को सरकारी योजना का लाभ नहीं मिलता है। आकड़ों के अनुसार भारत में साठ करोड़ अनुमानित कृषक हैं जिसमें से अस्सी प्रतिशत छोटे किसान हैं, शेष 20 प्रतिशत बड़े किसान हैं। किसान क्रेडिट कार्ड योजना किसानों को क़र्ज़ में फसाने का साधन मात्र रह गया। एफ.सी.सी.आई. और एसोचेम ठेके पर खेती किसानी करने लगे हैं जिससे भूमि बंजर होती जा रही है। सरकार भी किसानों के हित में फैसला नहीं ले पा रही है जिसके कारण दिन-प्रतिदिन किसानों की समस्या कम होने के बजाए बढ़ती चली जा रही है।

भारत में किसानों के आत्महत्याओं के लिए एकल परिभाषित कारणों की पहचान करना असंभव है। कारकों को संगम करके देखें तो उसका परिणाम किसान ऋणग्रस्ता की तस्वीर सामने आती है, क़र्ज़ और निराशामयी जीवन के कारण भारतीय कृषक जान लेने को विवश है। सबसे अधिक चर्चा में रहन वाला कारण बी.टी. काटन का प्रभाव अच्छा नहीं रहना है। हमारा देश कपास उत्पादन में दूसरा स्थान में आता है और चीन प्रथम आख़िर ऐसा क्या कारण है कि कपास उत्पादन करने वाला चीन लगातार समृद्ध होता जा रहा है और भारतीय कृषक लगातार आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहा है। मानसिक बीमारी आत्महत्या का घटक होने का प्रमाण कम है बल्कि कृषि निवेश की कमी और सिंचाई व्यवस्था में सुधार के साथ-साथ गैर-संस्थागत ऋण स्रोतों के उपयोग में वृद्धि के कारण कृषि संकट उत्पन्न होता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में हरित क्रांति के आने से कृषि उत्पादन तो बड़ा परंतु किसान किसी न किसी रूप से शोषित एवं प्रताड़ित होते रहे हैं। जिसकी अभिव्यक्ति साहित्यकारों ने अपनी साहित्यिक रचना के माध्यम से कृषक के संघर्ष पूर्ण जीवन को बिन्दु बनाकर और उसके संघर्ष के समाधान को जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया है। जिनमें राजू शर्मा, जगदीश गुप्त, विवेकी राय, कमल कांत त्रिपाठी, फणीश्वरनाथ रेणु, कथाकार संजीव और पंकज सुबीर का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है।

000

संदर्भ-

1.हलफनामे, शर्मा राजू, राधाकृष्ण पेपर बैक्स, संस्करण - 2007, पृष्ठ क्र. 251, 2 . आखिरी छलांग, शिवमूर्ति ज्ञानोदय, संस्करण जनवरी 2008, पृष्ठ क्र. 83, पृष्ठ 93, 3.काली चाट, चतुर्वेदी सुनील, अंकिता प्रकाशन, संस्करण जनवरी 2015, पृष्ठ क्र. 160, 4.फाँस, संजीव, वाणी प्रकाशन, संस्करण जनवरी 2016, पृष्ठ क्र. 96, 5.फाँस, संजीव, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2016, पृष्ठ क्र. 107, 6.अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, शिवना प्रकाशन, संस्करण जनवरी 2017, पृष्ठ क्र. 107, 7.किसान आत्महत्या यथार्थ और विकल्प, प्रो. संजय नवले, वाणी प्रकाशन, संस्करण जनवरी 2018, पृ.क्र. 99, 8.भारत में किसान आत्महत्या, आँकड़े कारण एवं स्थिति, संस्करण - सितम्बर 2022 Indianfarmer.org > kisano-ki-aatmhatya. 9.भारत में किसानों की आत्महत्या रोकने के उपाय www.hindikiduniya.com>essay>amp, 10.अखिल अखिलेश मीडिया वेश्या व दलाल, हलकान किसान, प्रथम संस्करण, नटराज प्रकाशन 487814 बी 306 जे.एम.डी. हाउस अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली 1100002 पृष्ठ क्र. 288-289, 11 . राष्ट्रीय अपराध लेखा कार्यालय, http://ncrb.gov.in

(शोध आलेख)

गांधीवादी कविताओं के आदर्श एवं प्रेरणा: एक अवलोकन

शोध लेखक : राजीव कुमार दास शोधार्थी, हिन्दी विभाग, विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग (झारखण्ड)

शोध-सार - भारतीय इतिहास में 'गांधी युग' उस युग का नाम है जिसमें बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में महात्मा गांधी के जीवन-दर्शन के साथ-साथ मानवीय मूल्यों से एक नए भारत की नींव रखी जा रही थी। अपनी अस्मिता और ऐतिहासिक गौरव की प्राप्ति के लिए भारतीय जनमानस गांधी के निर्देशित पथ पर चल पड़े थे। एक तरफ उनके व्यक्तित्व की सादगी और विचारों में सत्य, अहिंसा, न्याय, प्रेम, करुणा, दया जैसे भारतीय मूल्यों के आलोक से लोग चमत्कृत हो रहे थे तो दूसरी ओर हजारों वर्षों के बाद ज्ञान का आलोक उनके सत्य के प्रयोग से दिक्-दिगंत तक फैल रहा था। समग्र विश्व उनके विचार और चिंतन से वशीभूत हो रहा था। दूसरी ओर हिन्दी साहित्य में भी इनका प्रभाव पड़ने लगा था। साहित्यकार कई राष्ट्रीय-आंदोलन से प्रभावित होकर सहभागी बने और कविताएँ लिखे। धीरे-धीरे इनका प्रभाव आधुनिक हिन्दी कविता पर पड़ने लगा। मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, सुमित्रानंदन पंत, सोहनलाल द्विवेदी, रामधारी सिंह दिनकर, गोपाल सिंह नेपाली, रामेश्वर शुक्ल अँचल, केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', नागार्जुन, भवानी प्रसाद मिश्र, हरिवंश राय बच्चन, रामकुमार वर्मा, महादेवी वर्मा आदि पर प्रभाव पड़ने लगा। इन कवियों ने महात्मा गांधी को न केवल युगद्रष्टा बल्कि युगप्रेरक पुरुष भी माना। गांधी का सत्याग्रह केवल राजनीतिक आंदोलन तक ही सीमित नहीं था बल्कि साहित्य में भी उनका भावबोध समाहित हुआ है।

बीज शब्द- आदर्श, प्रेरणा, महात्मा गाँधी, सत्य, सत्याग्रह, मूल्य, कविता, साहित्य, जीवन-दर्शन।

विषय विश्लेषण- गांधीवादी विचारक एवं चिंतक श्री भगवान् सिंह ने 'गांधी एक खोज' नामक पुस्तक में लिखा है- "गांधीजी की बातों से सिर्फ मानव जीवन ही नहीं, अपितु पूरी सृष्टि के संबंध में भी यह सत्य उजागर हुआ कि प्रेम, दया, करुणा ही वे चीज़ें हैं जिनकी बदौलत यह दुनिया अब तक टिकी है, सृष्टि बची हुई है।"1 समस्त संसार के स्थायित्व के लिए दया, प्रेम, सत्य की आवश्यकता होती है। गांधीवादी विचारक प्रो. सिद्धेश्वर प्रसाद ने अपने लेख 'गांधी चिन्तन के सर्जनात्मक पक्ष' में लिखा है- "मानव अपने भीतर आँकने से भागता है, क्योंकि अपनी कमजोरियों पर विजय पाने का संकल्प या तो उसमें होता नहीं या एकदम क्षीण होता है। गांधी का चिन्तन इस आधुनिक दुर्बल मानव-मन को संकल्प-शक्ति प्रदान करता है। जिसके बूते वह वर्तमान जीवन के यथार्थ को सही परिप्रेक्ष्य में समझ सकता है, सामने आई हुई चुनौतियों का सामना कर सकता है और अपनी पशुता का संस्कार कर एक सच्चे मनुष्य के रूप में जीवन में आनंद पाने की कला के कौशल को प्राप्त कर सकता है।"2 नए जीवन, समाज और देश के निर्माण के लिए गांधीवादी जीवन-दर्शन पर कविताएँ लिखी जा रही थी। समाज जिस अतिशय मौलिक, उपभोक्तवाद, हिंसा, शोषण, अत्याचार से ग्रसित है और इसके परिणाम से त्रासदियाँ भोगनी पड़ रही है। इस अंधकार से निकलने के लिए गांधीवादी कविता का सहारा लिया जाता है। डॉ. रामकुमार की कविता 'विश्वबंधु बापू' की ये पंक्तियाँ लोगों के लिए प्रेरणास्रोत बन सकती है- "कर्म योग के साधक! तुम हो निर्बल के बलराम / कितने कंठों में गूँजा है आज तुम्हारा नाम / विश्वबंधु! तुमने खोजे है निष्प्राणों में प्राण / किया तुम्हीं ने जीवन में जीवन का नव-निर्माण! / छिद्रों में संगीत भरा, कर दिया उन्हें स्वर-द्वार / तुमने लघु संकेत किया, गूँजा सारा संसार।"3

गांधीवादी चेतना के यथार्थ धरातल, उनके विचार और चिंतन को प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानंदन पंत वैश्विक फलक पर देखते है। गांधीवादी कविताओं में वर्णित यथार्थ को समझने के बाद वर्तमान और भविष्य के भारत को नए तरीके से गढ़ने की प्रेरणा देती है। संपूर्ण विश्व साम्राज्यवाद जैसे कंस से आक्रांत है, त्रस्त है। मानवता पशुता में तब्दील होती जा रही है। साम्राज्यवाद का कंस, वंदिनी मानवता पशु बलक्रांत, / शृंखला दासता, प्रहरी बहु निर्माण शासन-पद शक्ति भ्रांत / बंदी जग जीवन भू-विभक्त विज्ञान मूढ़ जन प्रकृति-काम / आए तुम मुक्त-पुरुष! कहने-मिथ्या जड़ बंधन सत्य राम / नातृमं जयति सत्यं माजय ज्ञान ज्योति! तुमको

राजीव कुमार दास
+2 गंगा स्मारक उच्च विद्यालय, गिद्धौर, चतरा-825408 (झारखण्ड)
मोबाइल- 7903680948
ईमेल- rajeevgo999@gmail.com

प्रणाम!4

कवि सुमित्रानंदन पंत गांधीवादी चेतना में भारतीय जनता को कई ज्ञानलोक का दर्शन कराते हैं। इस कविता का प्रसंग आज़ादी के समय उभरने वाले सनातन सांस्कृतिक मूल्यों के स्वर है फिर भी यह वर्तमान समय को प्रेरित करती है कि भारतीय जीवन-मूल्य कभी धूमिल नहीं हो सकते हैं। शासकों को निर्ममता का मार्ग त्यागकर कल्याणकारी मार्ग को अपनाना चाहिए। रूढ़ियों से, जड़ता से, जीवन विरोधी या फिर मानव जाति के अस्तित्व को समाप्त करनेवाले विज्ञान से मुक्ति होनी चाहिए। वैदिक मंत्रों की सत्य में विजय होती है। इतने बड़े महामंत्र को जीवन में वही व्यक्ति पालन कर सकता है। जो मुक्त-पुरुष हो गया हो। गांधी मुक्त-पुरुष हो चुके थे। आधुनिक साहित्य के कवि बाबा नागार्जुन ने 'बापू महान्' शीर्षक कविता में गांधी के व्यक्तित्व के संबंध में कहते हैं- "बापू महान्, बापू महान् / हे सत्य-अहिंसा के प्रतीक / हे प्रश्नों के उत्तर सटीक / हे युगनिर्माता, युगाधार / आतंकित तुमसे पाप-पुंज / आलोकित तुमसे जग-जहान! / बापू महान्, पापू महान्।"5

महात्मा गांधी का वैचारिक आलोक उपर्युक्त पंक्तियों में प्रस्तुत होता है। आधुनिक भारतीय समाज को गति मिलती है। सत्य आधारित जो जीवन होता है वह एक नई सभ्यता को जन्म दे सकता है। राष्ट्र की जनता इस राह पर चलकर मात्र स्वयं को ही नहीं बल्कि राष्ट्रीय जीवन को भी मुक्त कर सकती है। गांधी को महान् इसलिए भी कहा जाता है क्योंकि उन्होंने महान् कर्म किया था। इनके कर्म में संपूर्ण मानव जाति के उत्थान और गरिमा को समाहित कर लिया गया। जनता के हक एवं अधिकार की लड़ाई को अंजाम तक तब ही पहुँचाया जा सकता है जब उसका नेतृत्वकर्ता सच्चा हो। उसमें जनता की सहभागिता अतिआवश्यक है। यह तब संभव है जब अपने स्वार्थ का त्याग करे। नेतृत्वकर्ता का चरित्र जनहितैषी हो। लोगों को अपने भीतर समाहित करके आगे बढ़ने वाला हो। इस दृष्टिकोण से गांधी अपने आप में एक आंदोलन-पुरुष थे। जनता के हृदय को संघर्ष के साथ उदात्तता से भी सुसंस्कृत किया जाना आवश्यक है। गांधी इसमें निपुण थे। सुमित्रानंदन पंत 'बापू के प्रति' कविता में कहते है- सहयोग मिला शासित जन को शासन का दुर्वह हरा भार / होकर निशस्त्र, सत्याग्रह से रोका मिथ्या का बल-प्रहार / बहुभेद विग्रहों में खोई सी जीर्ण, जातिक्षय के उबार / तुमने प्रकाश को कह प्रकाश औ अंधकार को अंधकार!6

सत्य को सत्य कहने का तात्पर्य है प्रकाश को प्रकाश कहना। इसी तरह झूठ को झूठ कहना अंधकार को अंधकार कहने के समान है। ऐसा कहने की हिम्मत किसी को अचानक नहीं आती। नेतृत्वकर्ता का लक्ष्य स्वच्छंद और संकल्प-निष्ठ होना चाहिए। इससे वह जन-जन से जुड़ जाते हैं। बिना लोगों के सहयोग के जनता के हित की लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती है। क्योंकि राजनीतिक जीवन में सफलता सबको नहीं मिलती है। महान् लक्ष्य के प्रति समर्पित होने पर ही सफलता संभव है। सोहनलाल द्विवेदी अपनी रचना 'युगाधार' कविता में लिखते हैं- "चलते अनेक हैं साथ-साथ / कुछ ही तो है चल पाते / अंत में कुछ, कुछ पीछे रह जाते।"7

गांधीवादी कविताएँ नए युग की ओर आगे बढ़ने का एक माध्यम है। यह संदेश देती है। नव युग विद्वान का तात्पर्य, वर्तमान अंधकारपूर्ण, जड़ता और अवनति की स्थिति से मुक्त होकर नए समाज और देश का निर्माण करना। अवश्य ही इस नव-निर्माण में युग के बंधन टूट सकते हैं ताकि नए जीवन मूल्यों का निर्माण हो। अतीत के जीवन मूल्यों, परंपराओं, नवीन-चेतना को रचना में मौलिकता देते हैं। तार्किक और वैज्ञानिक जीवन दृष्टि प्रदान करते हैं। इससे समाज और मान्यताओं में काफी कुछ बदलाव आने लगता है। यह युग चेतना है। इसी कारण इन्हें युग द्रष्टा और युग निर्माता भी कहा गया है। सोहनलाल द्विवेदी की रचना 'युगाधार' में लिखते हैं- तुम नव जीवन के नव-विधान! / तुम बंधन के मुक्ति गान! / तुम आशा के स्वर्णिम प्रकाश! / मानव-मन के मधुमय विकास! / तुम नव युग के नूतन विहान! / तुम नवचेतन के नव विधान! / तुम वर्तमान के कर्मगान! / तुम नव जीवन के नव विधान, / तुम दलितों के क्रांति-घोष, / तुम पद-दलितों के शब्दकोश!8

आशा, खुशी, प्रेम और नई चेतना के प्रतीक बनकर गाँधी आते हैं। समाज के अंतिम पायदान पर जीने वाले मानव से लेकर संपूर्ण भारत को फिर से रचना करने के मधु संदेश गांधीवादी कविता में मौजूद है। इन महान् मूल्यों को आत्मसात कर मानव बेहतर और सुखद व्यवस्था बनाने में सफल हो सकता है। आओ नवयुग के निर्माता, / आओ नवपथ के निर्माता, / आओ नवयुग के निर्माता, / आओ नव जीवन के दाता।"9

राष्ट्र निर्माता बनने के लिये यहाँ मानवता को समझने की शक्ति अक्षय-भंडार के रूप में जीवन के दाता सुरक्षित है। यह गांधीवादी चेतना और उनके मूल्य ही है। इतने विराट व्यक्तित्व को पैदा होने के लिए विराट सोच और आत्मा की ज्योति की आवश्यकता होती है। हालांकि गांधीवादी जीवन मूल्यों को उनके जीवनकाल में ही महत्त्व दिया गया। बाद की कविताओं में कई काव्यांदोलनों का दौर आया लेकिन लोग मार्क्सवादी चेतना के कायल बनते गए। हिंसा को केन्द्रीय स्थान मिला। भले ही गांधी युग की गरिमा और चिरंतन मूल्यों का यथार्थ जीवन में प्रयोग होते देखा लेकिन यह परंपरा स्वतंत्रता के बाद आगे नहीं बढ़ सकी। वर्तमान समय में स्त्री-विमर्श भी एक राष्ट्रीय-विषय बनकर उभरा है। सदियों से प्रताड़ित, उपेक्षित एंव शोषित और पुरुषवादी सत्ता में हमेशा वंचित नारी को पुरुषों की बराबरी में लाने का काम, बराबरी में खड़ा करने का काम महात्मा गांधी ने किया। सम्मान देकर अपने आंदोलन का भागीदारी बनाया। स्वाधीनता के संग्राम में, स्वाधीनता के महायज्ञ में उनको भी सेवा और सम्पर्ण का सहभागी बनाया। जिस प्रकार महाभारत में पाँच पाँडवों एवं कौरवों के बीच द्रौपदी की इज्जत कृष्ण ने बचायी उसी प्रकार वर्षों बाद पुनः नारी को अधिकार की लड़ाई लड़ने के लिए गांधी प्रेरित करते रहे। भारतीय इतिहास में राष्ट्रीय चेतना

जगाते हुए पुरुष के समान अधिकार देने की वकालत की। इससे राष्ट्र के नव-निर्माण में हजारों लाखों नारियाँ कूद पड़ी। कंधा से कंधा मिलाकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद की गुलामी से मुक्ति दिलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। परंपरा से पुरुष सत्तात्मक समाज में मुँह खोलना मना था। बापू इन्हें मुक्ति दिलाने के लिए कृष्ण बनकर आए। राष्ट्रकवि दिनकर ने 'बापू' कविता में नारी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को बताते हुए लिखते हैं- "नारी का शील गिरा खंडित, / कौमार्य गिर लोहू-लुहान,..... / बापू तू कलिका कृष्ण, / विकल आया आँखों मे नीर लिये, / थी लाज द्रौपदी की जाती, / केशव-सा दौड़ा चीर लिये।"10

इतने व्यापक फलक पर इतिहास में पहली बार नारी को सम्मान के योग्य समझा गया। इन्हें समाज में सृजनात्मक कार्य करने की स्वतंत्रता मिली। सदियों से खंडित-लूह-लुहान अस्मिता की रक्षा करने के लिए राष्ट्र में गौरव दिलाने का काम गांधी ने किया। गांधी को कायरता और निकम्मापन स्वीकार नहीं था। यह दोनों विकास में बाधक हैं ऐसी स्थिति में राष्ट्र का सम्मान नहीं बचाया जा सकता है। वे भारत की जनता को सशक्त बनाने के पक्षधर थे। गांधी ने जिन मूल्यों को स्वतंत्रता आंदोलन की लड़ाई का अस्त्र बनाया था वह सामान्य मानव के वश की बात नहीं थी। अहिंसा को वीरों का धर्म समझा गया। शक्ति, साहस, धैर्य, संकल्प, संघर्ष से ही सत्य को जीता जा सकता है। जो व्यक्ति जुल्म और अत्याचार के आगे नतमस्तक हो जाता है वह कभी इन विशेषताओं को पसंद नहीं कर सकता है। गाँधी की साहित्यिक रुचि भी वीररस की कविता में अधिक थी। शक्तिशाली मानव ही विश्व में अपनी पहचान बना सकता है। इस कार्य के लिए अपने आचरण में ओजस्विता लाना होगा। कवि विश्वम्भर नाथ की कविता 'गांधीजी' में इस सत्य का प्रकाश चमकता दिखता है- "गाँधी प्रशांत चित्र / निर्बल, नि:शस्त्र, / किन्तु आत्मा का संबल, आत्मा-आहुति की शान्ति से, / करते आह्वान् / खिन्न-ग्लान-विश्वात्मा का / प्रेम और अहिंसा में निहित श्रेय मानव का। / यही प्रबुद्ध-पथ / सत्य, शिव, सुन्दरम्! / भारत की जनता का / सत्य पर आग्रह / मानव-कल्याण का रूधिर प्रयोग एक!"11

मानव चाहे सांसारिक विषय वसनाओं के आकंठ में कितना ही क्यूँ न डूबा रहे उसके अंदर सत्य कभी समाप्त नहीं हो सकता है। वह बाहर निकलने के लिये नई चेतना का मार्ग ढूँढ़ता रहता है। गाँधीवादी कविताएँ मानव को आत्मबल, चरित्रबल का पाठ सिखाती है।

जीवन भर गाँधी ने धार्मिक आडम्बरों, साम्प्रदायिक भावनाओं, जाति-पांति से मुक्ति का पाठ भारतीय जनमानस को पढ़ाया। इनके पारदर्शी व्यक्तित्व से सारे पाखंड, धार्मिक, कुरीतियाँ, राजनीतिक दाव-पेंच, असत्य, हिंसा आदि समाज में क्षीण होने लगी और सत्याग्रह की अमर ज्योति जलने लगी। गांधीवादी कवि सोहनलाल द्विवेदी की पंक्तियाँ हैं- "तुम युग की रूढ़ियाँ तोड़, नित रचते रहते नई सृष्टि, / उठती नव-जीवन की नीवें, ले नव-चेतन की दिव्य-दृष्टि। / धर्माडंबर के खंडहर में कर पद-प्रहार कर धरा ध्वस्त, / मानवता का पावन मंदिर, निर्माण कर रहे सृजन-व्यस्त।"12

निष्कर्ष- अत: गांधीवादी कविताओं के केन्द्र में मानवतावादी विचारधारा समाहित है। विश्व-शांति, अहिंसा और प्रेम का संदेश निहित है। दबी, कुचली, उपेक्षित, शोषित जनता की आवाज़ है। अपनी सभ्यता और संस्कृति को जीवित साहित्य के माध्यम से ही रखा जाता है। यह कार्य भारतीय कविताओं के माध्यम से होती है जिसके प्रेरणास्रोत एवं आदर्श भारतीय मानव मूल्य है। मानव-मानव के बीच न्यायोचित समानता कैसे हो यह कविता बतलाती है। गांधी का उदय नए भारत की संभावना का उदय था। नए आशा-विश्वास का उदय माना जाता था। इन्होंने भारतीय समाज की नींव हिलायी। एक समय सदियों का अंधेरा जम गया था। स्वार्थ, हिंसा, लोभ-लालच स्वभाव में घुल-मिल गए थे। राष्ट्र अपने प्राचीन गौरव से मुक्त होकर चारित्रिक पतन का शिकार हो रहा था। इन नव-सृजन के प्रेरणास्रोत बनकर गांधी भारतवासियों के सामने आए। स्वतंत्रता आंदोलन की लड़ाई में गांधी के पास जितने भी हथियार थे सभी मानव-मूल्यों से निर्मित थे। इसके संचालनकर्ता गहरी मानवीय संवेदना से भरे थे। लक्ष्य भी राष्ट्र की मुक्ति और नए मानव समाज का सृजन था। स्वार्थी तत्वों ने राष्ट्र की सत्ता की बागडोर अपने हाथों में लेकर करोड़ों जनता को वंचित कर दिया था। मानों राष्ट्र की आत्मा को कुचल दिया गया था। इस प्रकार आधुनिक हिन्दी कविता में मानव धर्म को श्रेष्ठ मानते हुए कवियों ने गतिशीलता बनाए रखी।

000

संदर्भ- 1.सिंह, श्री भगवान्. गांधी: एक खोज. भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंडस्ट्रीयल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-3, पहला संस्करण-2012, पृ. 30. 2.गुप्ता, डॉ. सुशीला (संपा.). हिन्दी साहित्य और गांधीवाद चेतना. हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, महात्मा गाँधी मेमोरियल बिल्डिंग, 7, नेताजी सुभाष रोड, मुंबई, प्रथम संस्करण-2000, पृ. 21. 3.द्विवेदी, सोहनलाल (संपा.). गांधी अभिनंदन ग्रंथ. पं. भृगुराज भार्गव, अवध पब्लिशिंग हाउस, लादूश रोड, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, पृ. 23. 4.द्विवेदी, सोहनलाल (संपा.). गांधी अभिनंदन ग्रंथ. पृ. 24. 5.शोभाकांत (संपा.). नागार्जुन रचनावली. खण्ड-2, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1-बी नेताजी, सुभाष मार्ग, दरियगंज, नई दिल्ली-2, संस्करण-2003, पृ. 39. 6.द्विवेदी, सोहनलाल (संपा.). गांधी अभिनंदन ग्रंथ. पृ. 17. 7.द्विवेदी, सोहनलाल (संपा.). गांधी अभिनंदन ग्रंथ. पृ. 27. 8.द्विवेदी, सोहनलाल (संपा.). गांधी अभिनंदन ग्रंथ. पृ. 01. 9. द्विवेदी, सोहनलाल (संपा.). गांधी अभिनंदन ग्रंथ. पृ. 13. 10.दिनकर, रामधारी सिंह. बापू. लोकभारती प्रकाशन, पहली मंज़िल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा, गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1, आवृत्ति-2014, पृ. 17-18. 11.द्विवेदी, सोहनलाल (संपा.). गांधी अभिनंदन ग्रंथ. पृ. 55. 12.द्विवेदी, सोहनलाल (संपा.). गांधी अभिनंदन ग्रंथ. पृ. 60.

(शोध आलेख)

बदली मानसिकता का आगाज़ करता उपन्यास : शकुंतिका

शोध लेखक : डॉ. मेरली. के. पुन्नूस
सहायक आचार्य एवं शोध निर्देशक
हिन्दी विभाग, सेंट स्टीफेंस कॉलेज

डॉ. मेरली. के. पुन्नूस,
सहायक आचार्य एवं शोध निर्देशक
हिन्दी विभाग, सेंट स्टीफेंस कॉलेज
उषवूर, कोट्टयम, केरला- 686634
मोबाइल- 9447589516
ईमेल- drmerlykpunnoose@gmail.com

अछूते विषयों को केंद्र में रखकर साहित्यिक रचनाएँ करनेवाले हिन्दी के प्रतिष्ठित लेखक हैं भगवानदास मोरवाल। मेवात की स्थानीय पहचान को सर्वप्रथम चित्रित कर काला पानी कहे जानेवाले मेवात को हिन्दी पाठकों से रू-ब-रू कराने का श्रेय भगवानदास मोरवाल जी को ही जाता है। अपनी सृजनात्मक प्रतिभा के कारण वे समकालीन रचनाकारों में अपनी एक अलग पहचान बनाते हैं। इस सिलसिले में डॉ. मधु खराटे के शब्द हैं-"निर्विवाद रूप से भगवानदास मोरवाल हिन्दी उपन्यास-साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। उनके बिना आज समकालीन हिन्दी उपन्यास-साहित्य की बात करना मुश्किल ही नहीं,बल्कि नामुमकिन है।"1 उनके उपन्यास हैं – 'काला पहाड़', 'बाबल तेरा देस में', 'हलाला', 'नरक मसीहा', 'रेत', 'वंचना', 'खानज़ादा' और 'शकुंतिका'। मेवात को केंद्र में रखकर लिखे गए उपन्यास हैं- 'काला पहाड़' और 'बाबल तेरा देस में'। 'हलाला' उपन्यास में धर्म की आड़ में पिसती स्त्री एवं उसका प्रतिरोध चित्रित है तो 'रेत' में कंजर जनजाति की स्त्री की पीड़ा, उसके विरोध एवं संघर्ष को अभिव्यक्ति दी है। 'नरक मसीहा' उपन्यास में कुकुरमुत्ते के समान भारत में फैलते एनजीओ संस्कृति, उनके छल-कपट और स्वार्थ को उघाड़ने का कार्य किया है। कानून के दाव-पेच के बीच पिसती स्त्री की त्रासदी 'वंचना' उपन्यास में चित्रित है। 'खानजादा' में लेखक ने मेवों की दिलेरी का चित्रण किया है। भारत में आयातित शासकों के विरुद्ध अपनी आवाज़ बुलंद की है। 'शकुंतिका' उपन्यास के द्वारा लेखक ने समाज में प्रचलित स्त्री सम्बन्धी मान्यताओं को तोड़ने का कार्य किया है। बरसों से ही समाज में पुरुष आदर का पात्र माना जाता रहा है। परिवार में उसे कुलदीपक मानकर श्रेष्ठ स्थान मिलता रहा, इन्हीं वजहों से स्त्री दोयम दर्जे की नागरिक मानी जाती रही है। उपन्यास में उग्रसेन, दुर्गा और दशरथ, भगवती के पोते-पोतियों के द्वारा उपन्यासकार ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि लड़की भी हमारे परिवार की कुलदीपक बन सकती है, ज़रूरत है उसे अवसर प्रदान किये जाने की।

उपन्यास में उग्रसेन और दशरथ के परिवार की कहानी समानान्तर चलती है। दशरथ के परिवार में उनकी पत्नी भगवती, दो बेटे बलवंत, रूपेश, उनकी बहुएँ हैं-रेवती,जयंती। बलवंत की तीन बेटियाँ हैं –सिया, गार्गी और बुलबुल। रूपेश की शादी को छह साल हो गए हैं लेकिन

अभी तक कोई बच्चा पैदा नहीं हुआ है। उग्रसेन के परिवार में उसकी पत्नी दुर्गा,दो बेटे नागदत्त,अभय हैं। उनकी पत्नियाँ हैं-कौशल्या और कुसुम। नागदत्त के पुत्र हैं-रोहन और विभोर। अभय के बेटे हैं-अमित,विजय। अपने परिवार में मात्र बेटों का होना उग्रसेन और दुर्गा के लिए गर्व की बात है। यह दोनों परिवार सुख-दु:ख में एक दूसरे का साथ देते हैं। उपन्यास के शुरुआत में लेखक ने यह दिखाया है कि पोते के जन्म पर उग्रसेन के घर जश्न मनाया जाता है। रात भर डीजे चलता रहता है जिसकी वजह से दशरथ और भगवती सो नहीं पाते। लेकिन अचानक डीजे बंद हो जाता है। किसी ने फ़ोन करके ग्यारह बजे पुलिस को सूचना दी और डीजे रुकवाया गया। उग्रसेन के घर इसकी चर्चा हो रही है, उसके बेटे बड़े ग़ुस्से में हैं, अगर वह मिल जाए जिसने यह हरकत की है तो उसकी ख़ैर नहीं। दशरथ और भगवती के बीच जब इसे लेकर चर्चा हो रही थी तब उनकी पोती सिया कहती है कि यह कार्य उसने किया था। उसने अपने दादा-दादी, छोटी बहन गार्गी को परेशान पाया। इसप्रकार वह छोटी उम्र में ही अपनी समझदारी का मिसाल देती है। वह कानून का हवाला देते हुए कहती है कि ग़लत होने पर उसका साथ देने के बजाय उसका डटकर विरोध करना है। दशरथ उसकी प्रशंसा करते हैं, उसके हिम्मत की दात देते हैं। भगवती के अनुसार लड़कियों को अपनी हदों में रहना है। भगवती अपनी पोती सिया को बार-बार लड़कियाँ कहकर बुलाती है,जिससे सिया को चिढ है। उग्रसेन के घर पोतों के जन्म से दशरथ और भगवती भी चाहते हैं कि उनके घर में भी दो लड़कियों के बाद एक लड़का पैदा हो। लेकिन यह नियति को मंजूर नहीं होता और फिर से पोती बुलबुल पैदा होती है।

उपन्यास में लेखक ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि पोतों के जन्म लेने मात्र से परिवार सुखी और ख़ुशहाल नहीं रहता। सुविधा संपन्न होने पर भी उग्रसेन और दुर्गा को उदासी और अकेलापन ही हाथ लगता है। उन्हें जिस बात का गर्व था समय ने यह जता दिया कि वास्तव में यह हमारी ग़लत सोच है। पूरे कॉलोनी में जहाँ दशरथ की पोतियाँ उनका नाम रोशन करती हैं, वहीं उग्रसेन के पोते निकम्मे निकलते हैं। बारहवीं का रिजल्ट आने पर सिया पास हो जाती है, रोहन और अमित जैसे –तैसे पास हो जाते हैं। उन्हें 55 प्रतिशत अंक मिलते हैं तो सिया को 92 प्रतिशत। वह आगे एलएलबी करके वकील बनती है। दसवीं का रिजल्ट आने पर गार्गी को 94 प्रतिशत अंक मिले, उग्रसेन के पोतों में विभोर फेल हो गया और विजय जैसे-तैसे पास होकर वे दोनों भी अपने पिता के धंधे में लग जाते हैं। आगे चलकर गार्गी डॉक्टर बनती हैं। अपने पोतों की हालत देखकर उग्रसेन और दुर्गा के मन में लड़कियों के प्रति चाहत बढ़ने लगती है। उनके अनुसार उनके पोतों ने पूरे घर को नरक बनाकर रखा है,आपस में गाली –गलौज करते हैं और उन्हें छोटे –बड़े की कोई लिहाज नहीं है। वे लड़कियों के साथ छेड़-छाड़ करते हैं। उनकी ऐसी हरकतों के कारण ही मुहल्ले में डेरीवाले के नाम से पुकारे जानेवाले उनके दादा उग्रसेन को मुहल्लेवाले अब दूधिया के नाम से पुकारने लगे। उग्रसेन को लगता है कि बिना लड़कियों का घर, घर नहीं होता बल्कि सफेदे का पेड़ होता है जिस पर परिंदे भी आकर नहीं बैठते। दोनों परिवार की हालत का चित्रण करते हुए लेखक लिखते हैं कि –"उग्रसेन का घर डंठलों से भरे जंगल में बदल गया। लगने लगा घर में पुरुष नहीं, जगह–जगह पल्लवविहीन सूखे ठूँठ उग आए हैं। जबकि दूसरी तरफ दशरथ का घर पूरे-पूरे दिन जैसे चिड़ियों के नाद से चहचहाता रहता है।"2 लेखक ने बेटियों को चिड़ियों के समान माना है जिनके चहकने से पूरे परिवार में ख़ुशहाली बनी रहती है। 'शकुंतिका' का अर्थ ही है छोटी चिड़िया। बीच-बीच में लेखक ने इनके लिए गौरैया, चिरैया, चिड़ियों का झुंड का प्रयोग किया है। इन चिड़ियों की चहक से दशरथ और भगवती के जीवन में मिठास बनी रहती है वहीं इन चिड़ियों के अभाव में उग्रसेन और दुर्गा का जीवन कसैलेपन से भर जाता है। इनकी आवाज़ दुर्गा के कानों पर पड़ती है तो उसे लगता है जैसे रामचरित की चौपाइयाँ घुल रही हैं और अख्तरी का कहना है कि उसे लगता है कि मस्जिद से आनेवाली अज़ान के बोल पड़ रहे हैं। दशरथ का परिवार दुर्गा की सलाह का मान रखते हुए लड़की ही गोद लेता है। वे जिन पर गर्व करते थे वे कोरे पत्थर निकले, इसलिए इन्हें देखकर उनका जीवन आबाद होने लगा। उनकी एक आहट से ही दुर्गा पहचान जाती कि दरवाज़े पर दस्तक देने वाली सिया, गार्गी या बुलबुल है। दुर्गा का पोता विभोर यह देखकर दंग रह जाता है कि दशरथ की पोतियों के आने पर उन्हें बिना देखे उसकी दादी कैसे पहचान जाती है कि तीनों में से कौन होगा ? कई बार विभोर ने अपनी दादी को आज़मा के देखा है।

उग्रसेन और दुर्गा का परिवार टूटकर बिखर जाता है जब जायदाद का बटवारा कर उनके बेटे उन्हें अकेले छोड़कर अलग से अपना परिवार बसा लेते हैं। अपने घर के बटवारे के लिए दुर्गा तैयार नहीं होती,उसके अनुसार यही तो उनका एकमात्र सहारा है और अपने ही बच्चों से उसका भरोसा उठ गया है। अकेलापन उनके जीवन की नियति बन जाती है और अपराधबोध से ग्रसित हो वे सोचते हैं कि काश उन्हें एक बेटी पैदा होती। इस सिलसिले में उग्रसेन के विचार हैं –"सही कह रही है। घर तो बेटियों से ही घर जैसा रहता है। ये तो बर्फ की उन शिलाओं - सी होती हैं कि जब ये शिलाओं की शक्ल में होती हैं, तो देह झुलसाती हवाओं को ठंडे झोकों में बदल देती हैं। जब ये पिघलती हैं तो पानी बन, सूखी रेत में मुरझाए पेड़ों से माँ बाप के जिस्म में जान डाल देती हैं। देखना, एक दिन यही बेटियाँ दशरथ और भगवती के बहू-बेटों को तिराएँगी।"3 उग्रसेन का कहा सही साबित होता है। शिक्षित सिया अपने जीवन में चुनाव करती है। उसका चुनाव ग़लत नहीं होता। उसी प्रकार गार्गी भी अपने जीवन साथी का चुनाव करती है,अपने साथ डॉक्टर के लिए पढ़ रहे पंजाबी लड़के को अपना जीवन साथी चुनती है। यदपि दोनों को भगवती के विरोध का सामना करना पड़ता है, वह चाहती है कि दोनों की शादी अपनी ही बिरादरी में हो। लेकिन उसकी यह सोच ग़लत है, इसे उग्रसेन अपने तर्कों से उन्हें समझा देते हैं। लेखक ने यह

उजागर करने का कार्य किया है कि कभी - कभार बच्चों के प्रति बुजर्गों द्वारा किया गया फैसला ग़लत भी हो सकता है। बुलबुल की शादी भगवती के मुताबिक बिरादरी में ही की जाती है। उसका पति नरेंद्र इकलौता बेटा है। शादी धूमधाम से की जाती है, दहेज में भी बहुत कुछ दिया जाता है, लेकिन इसके बावजूद भी बुलबुल सुखी नहीं है। वह खूंटे से बंधी गाय की तरह चुपचाप आँसू के घूँट पीकर जी रही है। उसकी यह हालत देखकर उसके ससुराल वालों को सबक सिखाने के लिए सिया दूसरे वकील से उसके ससुरालवालों को नोटिस भिजवाती है। नोटिस के मिलते ही नरेंद्र बुलबुल के दादा दशरथ के सामने आकर गिड़गिड़ाता है। नरेंद्र लिखकर देता है कि बुलबुल के साथ वे आगे से बुरा व्यवहार नहीं करेंगे और दशरथ तस्सली देते हैं कि वे सिया को मना लेगें, उसकी ओर से कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी। ऐसे संकट के समय ये बेटियाँ ही उनके लिए सहारा बनती है। अपने माता–पिता, दादा- दादी और बहन का दु:ख उनसे नहीं देखा जाता और यह कदम उनकी ओर से ही उठाया जाता है कि बुलबुल के लिए कुछ न कुछ करना चाहिए जिससे उनके परिवार की खुशी वापस आ सके। उनके लिए पडोसी उग्रसेन और दुर्गा भी गैर नहीं हैं। बेटों ने इन्हें जो दु:ख पहुँचाया है उसे वे इन्हें देखकर भूलने की कोशिश करते हैं। उग्रसेन की मौत के बाद बेटों द्वारा बुलाने पर भी दुर्गा उनके साथ रहने न जाकर अपने घर में अकेला जीवन बसर करती है। शादी के बाद गार्गी अपनी दादी की तबियत ख़राब होने पर कुछ दिन की छुटियाँ लेकर आती है। तब वह दुर्गा के बारे में पूछती है। भगवती जवाब देती है कि कई दिनों से वह दिखाई ही नहीं दी। गार्गी के उससे मिलने जाने पर घर के भीतर से कोई जवाब नहीं मिलता, कोई दरवाज़ा नहीं खोलता। उसने पाया कि उनकी दुर्गा अम्मां अपने चारपाई पर मूर्च्छित पड़ी है। उसकी परवरिश कर वह उसे अस्पताल ले जाती है और शाम तक उसकी तबियत में काफी सुधार आ जाता है। तब उन्हें पता लगता है कि दो दिन से उसने कुछ खाया ही नहीं है।

उपन्यास में इंसानियत के मिसाल के रूप में रूपेश की गोद ली हुई बेटी पीहू को भी प्रस्तुत किया है। आज वह ऑस्ट्रेलिया में एक कंपनी में सीईओ है। सरकार की तरफ से विदेश अध्ययन योजना के तहत पीहू को ऑस्ट्रेलिया के मेलबर्न शहर में जाकर पढ़ने का मौका मिला था। लेकिन वह चाहती थी कि अपने घरवालों के साथ ही रहे। सब के बहुत कहने पर वह इसके लिए तैयार होती है। छुट्टियों में पीहू अपने घरवालों के साथ अनाथालय जाती है। उनका फाउंडेशन है 'डीबी' फाउंडेशन याने कि दशरथ – भगवती फाउंडेशन। उसके स्वर्गीय दादा- दादी की बदौलत ही आज वह और उसकी सभी बहनें समाज में गर्व के साथ जी रही हैं। इसीलिए उनका यह फाउंडेशन उनके नाम पर समर्पित है और चाहता है कि हर साल इस आश्रम को कुछ डोनेशन दिया जाय। वह आश्रम को तीस लाख का बैंक ड्राफ्ट देती है। पीहू एक भारतीय से शादी करके ऑस्ट्रेलिया की नागरिकता हासिल कर लेती है। उपन्यास में लेखक ने यह दिखाने का कार्य किया है कि अपनी बची ज़िंदगी को बेटों के सहारे चैन से गुजारा जाए इस मंशा से समाज में लोग बेटों के जन्म की चाहत रखते हैं और उसके लिए मनौती माँगते हैं, वहीं दशरथ-भगवती की पोतियाँ अपने वृद्ध होते माता – पिता का ख्याल रखती हैं, उन्हें अहसास ही होने नहीं दिया जाता कि वे अकेले हैं - "साल में कुछ दिन तो अब भी ऐसे आ ही जाते हैं,जब स्वर्गीय दशरथ – भगवती के घर की मोखियाँ और रोशनदान, उनकी इन चिड़ियों की नाद से कई दिनों तक गूँजते रहते हैं। इनके निश्छल नाद ने दशरथ – भगवती के आशियाने को वीरानी में तब्दील होने से बचा लिया।"4 पीहू भी विदेश में जाकर अपना फर्ज नहीं भूलती। वह हर साल भारत आती है और हर साल अपने जन्मदिन पर फाउंडेशन की तरफ से आश्रम को डोनेशन भेजना भी नहीं भूलती। वहीं बेटों का वियोग उग्रसेन को निगल लेता है और पति की मृत्यु के बाद दुर्गा भी जैसे-तैसे अपना जीवन गुज़ारकर चल बसती है। उनकी मौत के बाद उनके बेटे उनका मकान किसी बिल्डर को बेच देते हैं। इसप्रकार इंसानियत के पैरोकार के रूप में उपन्यास में लेखक ने सिया, गार्गी, बुलबुल और पीहू को चित्रित किया है।

लड़कों के जन्म पर जश्न मनाने वाला समाज लड़की के जन्म पर चुप्पी साधे रहता है। लड़का पैदा होने पर कुआँ पुजवाने का रस्म किया जाता है। वही रस्म पीहू के लिए किया जाता है। पीहू और बुलबुल दोनों का जन्म दिन बडे धूमधाम से मनाया जाता है। यह पूरे मुहल्ले में चर्चा का विषय बन जाता है। पाँचवें दिन इसकी खबर एक अख़बार के स्थानीय संस्करण के पहले पन्ने पर सबसे नीचे छपकर आती है। इसप्रकार वे रस्मो –रिवाज को ताक में रखते हैं। समाज में उनके द्वारा एक नई पेशकश की जाती है।

गोया कि लड़के के जन्म की चाहत रखनेवाले दशरथ, भगवती उग्रसेन, दुर्गा की हालत देखकर दंग रह जाते हैं। उन्होंने जिनके लिए अपनी पूरी जवानी स्वाहा की, वे ही उन्हें वृद्धावस्था में अकेला छोडकर चले जाते हैं। वहीं चिड़ियों की तरह चहकती, दशरथ और भगवती की पोतियों की किलकारियाँ सुनते ही उनमें बेटी की चाहत जाग उठती है। दुर्गा के कहने पर ही भगवती का बेटा रूपेश अनाथालय से एक लड़की पीहू को गोद लेता है। उनकी पोतियाँ पढ़ लिखकर बड़े ओहदों पर आसीन होकर अपने घर का नाम रोशन करती हैं। अपने जीवन के द्वारा यह प्रमाणित करती हैं कि बेटियाँ भी माता-पिता के बुढ़ापे का सहारा बन सकती हैं, ज़रूरत हैं उन्हें पढ़ा-लिखाकर अपने पैरों पर खड़े करने की। परंपरा के घेरे का अतिक्रमण कर हमें लड़कियों की परवरिश इन्सान की तरह करनी है ताकि वे भी अपने हक की ज़िंदगी जी सकें, अपने हक की लड़ाई लड़ सकें।

000

संदर्भ-

1 . डॉ मधु खराटे-उपन्यासकार भगवानदास मोरवाल – भूमिका, 2.भगवानदास मोरवाल – शकुन्तिका - पृ:22, 3 .वही-वही –पृ:62, 4. वही-वही –पृ: 120,

(शोध आलेख)

संगठनों के लिए आपदा प्रबंधन के लिए सिस्टम ऑडिटर

शोध लेखक : डॉ. अजय डी पटेल
सहायक प्रोफेसर
शासकीय कला एवं वाणिज्य
महाविद्यालय जादर

सूचना प्रणालियों का आपदा प्रबंधन किसी भी संगठन के लिए महत्त्वपूर्ण है जो अपनी व्यावसायिक प्रक्रियाओं को संचालित करने के लिए प्रौद्योगिकी पर निर्भर है। यहाँ कुछ प्रमुख कारण बताए गए हैं कि क्यों सूचना प्रणालियों का आपदा प्रबंधन आवश्यक है- 1.डाउनटाइम को न्यूनतम करना: सूचना प्रणालियों का आपदा प्रबंधन किसी आपदा की स्थिति में डाउनटाइम को कम करने में मदद कर सकता है। महत्त्वपूर्ण प्रणालियों और डेटा को कैसे पुनर्प्राप्त किया जाए, इसके लिए एक योजना बनाकर, एक संगठन किसी विघटनकारी घटना के बाद वापस उठने और चलने में लगने वाले समय को कम कर सकता है। 2.डेटा की सुरक्षा: सूचना प्रणालियों का आपदा प्रबंधन महत्त्वपूर्ण डेटा को हानि या भ्रष्टाचार से बचाने में मदद कर सकता है। बैकअप और पुनर्प्राप्ति प्रक्रियाएँ स्थापित करके, एक संगठन यह सुनिश्चित कर सकता है कि वह किसी आपदा की स्थिति में महत्त्वपूर्ण डेटा पुनर्प्राप्त कर सकता है। 3.व्यवसाय की निरंतरता सुनिश्चित करना: सूचना प्रणालियों का आपदा प्रबंधन व्यवसाय की निरंतरता सुनिश्चित करने में मदद कर सकता है। किसी आपदा के दौरान और उसके बाद परिचालन कैसे जारी रखा जाए, इसके लिए एक योजना बनाकर, एक संगठन अपनी व्यावसायिक प्रक्रियाओं और ग्राहकों पर एक विघटनकारी घटना के प्रभाव को कम कर सकता है। 4.ग्राहक विश्वास बनाए रखना: सूचना प्रणालियों का आपदा प्रबंधन ग्राहक विश्वास बनाए रखने में मदद कर सकता है। किसी आपदा का जवाब देने के लिए एक योजना बनाकर, एक संगठन अपने ग्राहकों को प्रदर्शित कर सकता है कि वह संकट की स्थिति में भी अपने संचालन और सेवाओं को बनाए रखने के लिए तैयार और प्रतिबद्ध है। 5.अनुपालन सुनिश्चित करना: सूचना प्रणालियों का आपदा प्रबंधन नियामक और कानूनी आवश्यकताओं के अनुपालन को सुनिश्चित करने में मदद कर सकता है। कई उद्योग उन नियमों के अधीन हैं जिनके लिए उन्हें किसी आपदा का जवाब देने के लिए एक योजना बनाने की आवश्यकता होती है, और अनुपालन में विफलता के परिणामस्वरूप जुर्माना, कानूनी कार्रवाई या संगठन की प्रतिष्ठा को नुकसान हो सकता है। 6.लचीलेपन में सुधार: सूचना प्रणालियों का आपदा प्रबंधन विघटनकारी घटनाओं के प्रति संगठन के लचीलेपन को बेहतर बनाने में मदद करता है। उचित आपदा पुनर्प्राप्ति प्रक्रियाओं और प्रक्रियाओं को लागू करके, संगठन अपने संचालन और ग्राहकों पर प्रभाव को कम करते हुए, आपदाओं के लिए बेहतर तैयारी कर सकता है और प्रतिक्रिया दे सकता है।

आपदा के दौरान, एक सूचना प्रणाली लेखा परीक्षक संगठन की जानकारी की उपलब्धता, अखंडता और गोपनीयता सुनिश्चित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वे महत्त्वपूर्ण सूचना प्रणालियों, बैकअप प्रक्रियाओं और आपदा पुनर्प्राप्ति योजनाओं की पहचान करने के लिए आपदा पुनर्प्राप्ति टीमों के साथ काम करते हैं जिन्हें संचालन बनाए रखने और सामान्य स्थिति बहाल करने के लिए सक्रिय किया जा सकता है। आपदा के बाद, एक सूचना प्रणाली लेखा परीक्षक क्षति का आकलन करने और आपदा से उबरने के उपायों को लागू करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वे आपदा पुनर्प्राप्ति योजना की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करते हैं और सुधार के लिए क्षेत्रों की पहचान करते हैं ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि संगठन भविष्य की आपदाओं के लिए बेहतर ढंग से तैयार है। एक सूचना प्रणाली लेखा परीक्षक किसी आपदा की स्थिति में संगठन की सूचना प्रणाली की अखंडता, सुरक्षा और उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए जिम्मेदार है। वे यह सुनिश्चित करके आपदा प्रबंधन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं कि संगठन आपदाओं का सामना करने और उससे उबरने के लिए तैयार है, संचालन और संगठन की प्रतिष्ठा पर प्रभाव को कम करता है।

यहाँ कुछ तरीके दिए गए हैं जिनसे एक सूचना प्रणाली लेखा परीक्षक आपदा प्रबंधन योजना और विकास में योगदान दे सकता है- 1.जोखिम मूल्यांकन: सूचना प्रणाली लेखा परीक्षक किसी आपदा के दौरान संगठन की सूचना प्रणालियों के लिए संभावित खतरों और कमजोरियों

डॉ. अजय डी पटेल
सहायक प्रोफेसर (जीईएस कक्षा II)
शासकीय कला एवं वाणिज्य
महाविद्यालय जादर

की पहचान करने के लिए जोखिम मूल्यांकन कर सकते हैं। इससे संगठनों को अपने संचालन पर आपदा के प्रभाव को समझने और आकस्मिकताओं के लिए योजना बनाने में मदद मिल सकती है। 2.आपदा पुनर्प्राप्ति योजना: सूचना प्रणाली लेखा परीक्षक आपदा पुनर्प्राप्ति योजनाओं को विकसित करने और परीक्षण करने में मदद कर सकते हैं जो यह सुनिश्चित करते हैं कि किसी आपदा की स्थिति में संगठन की सूचना प्रणालियों को जल्दी और कुशलता से बहाल किया जा सके। आपदा पुनर्प्राप्ति योजनाओं में डेटा हानि और सिस्टम डाउनटाइम के प्रभाव को कम करने के लिए डेटा बैकअप, बहाली और अतिरेक की प्रक्रियाएँ शामिल होनी चाहिए। 3 . संचार योजना: सूचना प्रणाली लेखा परीक्षक यह सुनिश्चित करने के लिए संचार योजना विकसित करने में सहायता कर सकते हैं कि संगठन के हितधारकों को आपदा के दौरान और उसके बाद की स्थिति के बारे में सूचित किया जाए। संचार योजनाओं में संपर्क सूचियाँ, अधिसूचना प्रक्रियाएँ और हितधारकों के साथ संचार के लिए निर्देश शामिल होने चाहिए। 4 . प्रशिक्षण और जागरूकता: सूचना प्रणाली लेखा परीक्षक आपदा प्रबंधन रणनीतियों और प्रक्रियाओं पर कर्मचारियों को प्रशिक्षित और शिक्षित करने में मदद कर सकते हैं। इसमें आपदाओं पर प्रतिक्रिया देने के तरीके पर प्रशिक्षण के साथ-साथ आपदा तैयारी और योजना के महत्त्व के बारे में जागरूकता बढ़ाना शामिल हो सकता है।

आंतरिक पर्यावरणीय कारक- 1.प्रबंधन कारोबार: प्रबंधन टीम में बदलाव से प्राथमिकताओं, लक्ष्यों और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में बदलाव हो सकता है। सिस्टम ऑडिटरों को इन परिवर्तनों के बारे में जागरूक होने और तदनुसार अपनी योजनाओं और सिफारिशों को समायोजित करने की आवश्यकता है। 2 . सूचना प्रणालियों में परिवर्तन: सूचना प्रणालियों में परिवर्तन, जैसे सॉफ़्टवेयर अपडेट, हार्डवेयर अपग्रेड, या क्लाउड-आधारित सिस्टम में माइग्रेशन, संगठन की आपदा प्रबंधन रणनीतियों पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाल सकते हैं। सिस्टम ऑडिटरों को इन परिवर्तनों के प्रभाव का आकलन करने और यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि आपदा वसूली योजनाओं को तदनुसार अद्यतन किया जाए। 3.प्रमुख परियोजनाओं और कार्यक्रमों में नियंत्रण: सिस्टम ऑडिटर को प्रमुख परियोजनाओं और कार्यक्रमों की समीक्षा करनी चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि धोखाधड़ी, बर्बादी और दुरुपयोग को रोकने के लिए पर्याप्त नियंत्रण मौजूद हैं। इससे यह सुनिश्चित करने में मदद मिलेगी कि परियोजनाएँ और कार्यक्रम समय पर और बजट के भीतर पूरे हो जाएँ।

बाहरी पर्यावरणीय कारक - 1 . विनियामक और वैधानिक परिवर्तन: संघीय, राज्य और स्थानीय कानून और विनियम परिवर्तन के अधीन हैं, और सिस्टम ऑडिटरों को किसी भी नए नियमों पर अद्यतन रखने की आवश्यकता है जो संगठन की आपदा प्रबंधन रणनीतियों को प्रभावित कर सकते हैं। इन विनियमों का अनुपालन करने में विफलता के परिणामस्वरूप महत्त्वपूर्ण दंड और प्रतिष्ठा को नुकसान हो सकता है। 2.बदलते बाज़ार: बाज़ार की स्थितियाँ, जैसे उत्पादों या सेवाओं की माँग, तेजी से बदल सकती हैं। सिस्टम ऑडिटरों को इन परिवर्तनों के बारे में जागरूक होने और संगठन की सूचना प्रणालियों और आपदा प्रबंधन रणनीतियों पर उनके प्रभाव का आकलन करने की आवश्यकता है। 3.वैश्विक वित्तीय और आर्थिक स्थितियाँ: वैश्विक आर्थिक और वित्तीय स्थितियाँ संगठन के संचालन और वित्तीय स्वास्थ्य पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाल सकती हैं। सिस्टम ऑडिटरों को इन स्थितियों से अवगत होने और संगठन की आपदा प्रबंधन रणनीतियों पर उनके प्रभाव का आकलन करने की आवश्यकता है। 4.प्रतिस्पर्धी विचार: संगठन के प्रतिस्पर्धी और उनके कार्य संगठन के संचालन और वित्तीय स्वास्थ्य पर प्रभाव डाल सकते हैं। सिस्टम ऑडिटरों को संगठन की सूचना प्रणाली और आपदा प्रबंधन रणनीतियों पर इन कारकों के प्रभाव का आकलन करने की आवश्यकता है। 5.नई तकनीक: नई तकनीक की शुरूआत संगठन की सूचना प्रणाली और आपदा प्रबंधन रणनीतियों पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाल सकती है। सिस्टम ऑडिटरों को इन परिवर्तनों के प्रभाव का आकलन करने और यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि आपदा वसूली योजनाओं को तदनुसार अद्यतन किया जाए। संक्षेप में, एक सिस्टम ऑडिटर द्वारा योजना और विकास में, आंतरिक और बाहरी दोनों पर्यावरणीय कारकों पर विचार करना आवश्यक है जो संगठन की सूचना प्रणाली और आपदा प्रबंधन रणनीतियों को प्रभावित कर सकते हैं। सिस्टम ऑडिटरों को इन कारकों के बारे में जागरूक होने और तदनुसार अपनी योजनाओं और सिफारिशों को समायोजित करने की आवश्यकता है।

गुणवत्ता आश्वासन चरण - गुणवत्ता आश्वासन आपदा प्रबंधन का एक अनिवार्य पहलू है, और एक सिस्टम ऑडिटर यह सुनिश्चित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है कि आपदा प्रबंधन प्रक्रियाएँ और प्रक्रियाएँ उच्चतम गुणवत्ता की हैं। यहाँ कुछ तरीके दिए गए हैं जिनसे एक सिस्टम ऑडिटर आपदा प्रबंधन में गुणवत्ता आश्वासन में योगदान दे सकता है- 1.आपदा प्रबंधन योजनाओं का ऑडिट करना: सिस्टम ऑडिटर संगठन की आपदा प्रबंधन योजनाओं की समीक्षा कर सकता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे व्यापक, अद्यतन और उद्योग मानकों और सर्वोत्तम प्रथाओं के अनुरूप हैं। ऑडिटर यह भी सुनिश्चित कर सकता है कि संगठन के संचालन और बाहरी वातावरण में बदलावों को प्रतिबिंबित करने के लिए इन योजनाओं को नियमित रूप से अद्यतन किया जाता है। 2.जोखिम प्रबंधन प्रक्रियाओं का आकलन करना: सिस्टम ऑडिटर संगठन की जोखिम प्रबंधन प्रक्रियाओं की समीक्षा कर सकता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे संभावित जोखिमों की पहचान करने और उन्हें कम

करने में प्रभावी हैं। ऑडिटर संगठन की जोखिम उठाने की क्षमता का मूल्यांकन भी कर सकता है और यह सुनिश्चित कर सकता है कि यह संगठन के लक्ष्यों और उद्देश्यों के अनुरूप है। 3.आपदा प्रतिक्रिया प्रक्रियाओं का मूल्यांकन: सिस्टम ऑडिटर यह सुनिश्चित करने के लिए संगठन की आपदा प्रतिक्रिया प्रक्रियाओं का आकलन कर सकता है कि वे प्रभावी और कुशल हैं। ऑडिटर यह सुनिश्चित करने के लिए संगठन के संचार प्रोटोकॉल का भी मूल्यांकन कर सकता है कि किसी आपदा के दौरान हितधारकों को सूचित रखा जाता रहे। 4.आपदा रिकवरी योजनाओं का परीक्षण: सिस्टम ऑडिटर संगठन की आपदा रिकवरी योजनाओं का नियमित परीक्षण कर सकता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे प्रभावी हैं और वे इरादे के अनुसार काम करते हैं। ऑडिटर यह भी सुनिश्चित कर सकता है कि ये योजनाएँ परीक्षण के परिणामों और संगठन के संचालन और बाहरी वातावरण में परिवर्तनों के आधार पर नियमित रूप से अपडेट की जाती हैं। 5.आपदा के बाद की समीक्षा करना: सिस्टम ऑडिटर किसी आपदा के प्रति संगठन की प्रतिक्रिया का मूल्यांकन करने और सुधार के लिए क्षेत्रों की पहचान करने के लिए आपदा के बाद की समीक्षा कर सकता है। ऑडिटर यह भी सुनिश्चित कर सकता है कि इन समीक्षाओं का उपयोग संगठन की आपदा प्रबंधन योजनाओं और प्रक्रियाओं को अद्यतन करने के लिए किया जाता है।

कार्यान्वयन चरण - कार्यान्वयन चरण आपदा प्रबंधन में एक महत्त्वपूर्ण चरण है, और एक सिस्टम ऑडिटर यह सुनिश्चित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है कि आपदा प्रबंधन योजना प्रभावी ढंग से लागू हो। यहाँ कुछ तरीके दिए गए हैं जिनसे एक सिस्टम ऑडिटर आपदा प्रबंधन में कार्यान्वयन चरण में योगदान दे सकता है- 1 . अनुपालन सुनिश्चित करना: सिस्टम ऑडिटर यह सुनिश्चित कर सकता है कि आपदा प्रबंधन योजना सभी प्रासंगिक कानूनों, विनियमों और मानकों के अनुरूप है। ऑडिटर यह भी सुनिश्चित कर सकता है कि संगठन के पास आपदा की स्थिति में काम करने के लिए आवश्यक परमिट, लाइसेंस और प्रमाणपत्र हैं। 2.संचार की सुविधा: सिस्टम ऑडिटर आपदा प्रबंधन योजना के कार्यान्वयन में शामिल विभिन्न हितधारकों के बीच संचार की सुविधा प्रदान कर सकता है। ऑडिटर यह सुनिश्चित कर सकता है कि संगठन के भीतर विभिन्न विभागों के साथ-साथ बाहरी हितधारकों, जैसे सरकारी एजेंसियों, प्रथम उत्तरदाताओं और जनता के बीच स्पष्ट संचार हो। 3.प्रगति की निगरानी: सिस्टम ऑडिटर आपदा प्रबंधन योजना के कार्यान्वयन की प्रगति की निगरानी कर सकता है ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि यह सही रास्ते पर है और अपने उद्देश्यों को पूरा कर रहा है। ऑडिटर किसी संभावित मुद्दे या क्षेत्र की पहचान भी कर सकता है जहाँ सुधार की आवश्यकता है। 4.प्रदर्शन का मूल्यांकन: सिस्टम ऑडिटर आपदा प्रबंधन योजना के कार्यान्वयन के दौरान संगठन के प्रदर्शन का मूल्यांकन कर सकता है। ऑडिटर यह आकलन कर सकता है कि क्या योजना प्रभावी ढंग से लागू की गई थी और क्या संगठन की प्रतिक्रिया उचित और प्रभावी थी। 5.सुधारों की सिफारिश: कार्यान्वयन चरण के मूल्यांकन के आधार पर, सिस्टम ऑडिटर आपदा प्रबंधन योजना और प्रक्रियाओं में सुधार की सिफारिश कर सकता है। ऑडिटर कार्यान्वयन चरण के दौरान पहचानी गई किसी भी कमी को दूर करने के बारे में मार्गदर्शन भी प्रदान कर सकता है।

मूल्यांकन चरण - मूल्यांकन चरण आपदा प्रबंधन का एक अनिवार्य हिस्सा है, और एक सिस्टम ऑडिटर आपदा प्रबंधन योजना की प्रभावशीलता और किसी आपदा के प्रति संगठन की प्रतिक्रिया का मूल्यांकन करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। यहाँ कुछ तरीके दिए गए हैं जिनसे एक सिस्टम ऑडिटर आपदा प्रबंधन में मूल्यांकन चरण में योगदान दे सकता है - 1.आपदा के बाद की समीक्षा करना: सिस्टम ऑडिटर किसी आपदा के प्रति संगठन की प्रतिक्रिया का मूल्यांकन करने के लिए आपदा के बाद की समीक्षा कर सकता है। ऑडिटर यह आकलन कर सकता है कि क्या आपदा प्रबंधन योजना आपदा के प्रभाव को कम करने में प्रभावी थी और क्या संगठन की प्रतिक्रिया उचित और प्रभावी थी। 2.का विश्लेषण : सिस्टम ऑडिटर रुझानों और पैटर्न की पहचान करने के लिए किसी आपदा की प्रतिक्रिया के दौरान एकत्र किए गए डेटा का विश्लेषण कर सकता है। ऑडिटर इस विश्लेषण का उपयोग उन क्षेत्रों की पहचान करने के लिए कर सकता है जहाँ संगठन भविष्य की आपदाओं के प्रति अपनी प्रतिक्रिया में सुधार कर सकता है। 3.नियंत्रणों की प्रभावशीलता का आकलन: सिस्टम ऑडिटर किसी आपदा की प्रतिक्रिया को प्रबंधित करने के लिए लगाए गए नियंत्रणों की प्रभावशीलता का आकलन कर सकता है। ऑडिटर यह मूल्यांकन कर सकता है कि क्या नियंत्रण उचित थे और क्या वे आपदा के प्रभाव को कम करने में प्रभावी थे। 4.नीतियों और प्रक्रियाओं की समीक्षा करना: सिस्टम ऑडिटर संगठन की आपदा प्रबंधन नीतियों और प्रक्रियाओं की समीक्षा कर सकता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे प्रभावी और अद्यतित हैं। ऑडिटर किसी भी अंतराल या क्षेत्र की पहचान भी कर सकता है।

संक्षेप में, नियमित सिस्टम ऑडिट जोखिमों की पहचान करके, आपदा रिकवरी योजना का मूल्यांकन, योजना का परीक्षण, बैकअप और रिकवरी प्रक्रियाओं का मूल्यांकन और अनुपालन सुनिश्चित करके प्रभावी आपदा रिकवरी का समर्थन कर सकता है। संभावित कमजोरियों और कमजोरियों की पहचान करके और उन जोखिमों को कम करने के लिए सिफारिशें प्रदान करके, एक सिस्टम ऑडिटर यह सुनिश्चित करने में मदद कर सकता है कि संगठन किसी आपदा से उबरने और विघटनकारी घटना के प्रभाव को कम करने के लिए तैयार है।

000

(शोध आलेख)

जनजातीय क्षेत्र भरमौर के धार्मिक पर्यटन स्थल : स्थिति एवं संभावनाएं

शोध लेखक : भरत सिंह, नवनीत कौशल
शोधार्थी हिंदी, पर्यटन एवं यात्रा प्रबंधन विभाग, हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय धर्मशाला

भरत सिंह, नवनीत कौशल
शोधार्थी हिंदी, पर्यटन एवं यात्रा प्रबंधन विभाग, हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला
हिप्र 176215
मोबाइल- 8219775906
ईमेल- bharat.singh85000@gmail.com

हिमाचल प्रदेश हिमालय की तराई में बसा प्राकृतिक सुषमा से सम्पन्न पर्वतीय भू-भाग है। हिमालय के इस पवित्र भू-भाग में अनेकानेक देव-स्थल, शक्ति पीठ, विशालकाय गहन वन, पुष्प वाटिकाएँ, नृत्यशील मनोरम नदियाँ एवं झरने और सुरम्य घाटियों के परिणामत: यह प्रदेश स्वत: ही धार्मिक, सांस्कृतिक, पारम्परिक (मेले एवं त्योहार), ग्राम या लोक संस्कृति विषयक तथा व्यावसायिक पर्यटन आदि के क्षेत्र में अनेक संभावनाएँ लिए हुए है। ज़्यादातर पर्यटक विशिष्ट ऐतिहासिक-धार्मिक स्थलों की प्रामाणिक जानकारी एकत्रित करने और उन्हें निहारने के परम इच्छुक होते हैं। इसी के निमित्त पश्चिमी हिमालय के 'मणिमहेश कैलाश पर्वत' के पाँव तले बसे जनजातीय क्षेत्र भरमौर (ब्रह्मपुर) हिमाच्छादित पर्वत, सघन वन, हरी-भरी चरागाह, कल-कल करते नदी-नाले, ऐतिहासिक-पौराणिक मन्दिर एवं मूर्तियाँ, स्थानीय लोकसंस्कृति एवं परम्पराएँ अपने ऐतिहासिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और प्रकृति पर्यटन के रूप में समृद्ध है। यहाँ के प्राचीन मन्दिर एवं सुरम्य वातावरण हर किसी को अपनी ओर आकृष्ट करता है। भरमौर के प्राचीन ऐतिहासिक मन्दिर एवं मूर्तियाँ तत्कालीन साम्राज्य और लोककलाकारों की अद्भुत प्रतिभा के परिचायक हैं। इस भूभाग में सनातन संस्कृति के समस्त देवी-देवताओं का निवास स्थान है।

विविध मन्दिरों और देवी-देवताओं के सानिध्य में रहने वाली गद्दी समुदाय की सम्पूर्ण जीवन धुरी धार्मिक आस्था के इर्द-गिर्द घूमती है। गद्दी समुदाय हिन्दू धर्मावलम्बी हैं और विशेष रूप से भगवान् शिव के उपासक हैं। इनके संस्कारों, सांस्कृतिक परम्पराओं तथा क्रियाकलापों में हिन्दू धर्मभीरु प्रवृत्त होता है। गद्दी जनजाति के लोग प्रकृति और धार्मिक प्रवृत्ति के लोग हैं। यह जनजाति अपने पूर्वकाल से ही आधुनिक सुख-सुविधाओं से वंचित रही है। अत: पूर्वकाल से लेकर वर्तमान काल के वैज्ञानिक युग तक यह जनजाति ईश्वर और प्रकृति के आश्रय और विश्वास में निर्भर रही है। इसलिए अपने प्रत्येक सुख-दु:ख में लोग स्वयं तथा उनके आस-पास इन्हीं आस्था, विश्वासों और श्रद्धा में जिया है। विवेच्य शोधालेख जनजातीय क्षेत्र भरमौर के धार्मिक पर्यटन की स्थिति और संभावनाओं को लक्षित करके लिखा गया है जिसमें पाया गाया है कि यह जनपद धार्मिक पर्यटन की दृष्टि से अद्वितीय है। यदि इस जनपदीय क्षेत्र के धार्मिक पर्यटन को और अधिक विकसित किया जाए तो यह भू-भाग वैश्विक स्तर अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाएगा।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्रकृति ने हिमाचल प्रदेश के जनजातीय क्षेत्र भरमौर को ख़ूब संवारा है। यहाँ की रजतधवल पर्वत शृंखलाओं में हिंदु मान्यताओं के समस्त देवी-देवताओं का वास है। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार इस जनपद में भगवान् शिव की गद्दी (आसन) थी। इसी स्थल से भगवान् शिव समूची सृष्टि का संचालन करते थे। इस जनपद में गद्दी समुदाय का निवास है जिन्हें भगवान् शिव के 'गण' अर्थात सेवक माना जाता है। यह समुदाय देवी-देवताओं के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा भाव रखते हैं। भरमौर के चौरासी मंदिर, लखणा मन्दिर, उत्तर में ब्रह्माणी मंदिर, मणिमहेश कैलाश, बन्नी भगवती, कुगती का कैलंग (कार्तिक) मन्दिर, दिगनपाल, कुठेडपाल, शिवशक्ति छतराड़ी मन्दिर, नाग, सिद्ध तथा अन्य अनेक स्थानीय देवी-देवताओं के आधार पर जगमोहन बलोखरा ने अपनी पुस्तक 'अलौकिक हिमाचल प्रदेश' में इस जनपद में पाए जाने वाले देवी-देवताओं को पाँच वर्गों में विभाजित किया है- "पहले वर्ग में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेश और वीर हैं, जबकि स्त्री श्रेणी में माता काली, सती, और ब्राह्मणी हैं। विष्णु को ठाकुर या लक्ष्मीनारायण जबकि शिव को महादेव, कैलाशवासी, त्रिलोचन महादेव, चंद्रशेखर तथा मणिमहेश के नाम से भी जाना जाता है। नाग जाति में वासुकी, पढ़ौल, मंदौर, डलनाग व इन्द्रू नाग इत्यादि देवता हैं तो वीर जाति में गुग्गा, पड़लोक, अजियापाल, लखदाता, कैलू आदि प्रमुख हैं। इसी प्रकार स्त्री वर्ग में काली, आदि शक्ति चौंड, शीतला, बन्नी भगवती, जालपा तथा बणखंडी की मान्यता है। दूसरे वर्ग में अर्द्धमानव आकृति के भैरों और नरसिंह आते हैं। तृतीय वर्ग राक्षसी श्रेणी का है जिसमें जल बैताल, चुंघू, लैंकड़ा, मतड़ा, रागस व जट्टीधार तोरल हैं तो

नारी श्रेणी में जोगणी, बला और चुड़ैल। चौथे वर्ग में पितृ देवता आते हैं जिनमें औतर मुख्य हैं। पाँचवा वर्ग नौंण देवताओं का है जिसमें पनिहारों, बावडियों इत्यादि के ऊपर या आसपास बड़ी पत्थर शिलाओं पर देवी-देवताओं की मूर्तियाँ उकेरी रहती हैं। इसमें विष्णु भगवान् के 10 अवतार, 9 ग्रह सूर्य, वरुण, पंच पाँडव, लव-कुश, राम-लक्ष्मण और 7 नदियों के नमूने यहाँ आम देखे जा सकते हैं।"

जनजातीय क्षेत्र भरमौर के प्रमुख धार्मिक पर्यटन स्थल और इनकी वर्तमान स्थिति और संभावनाओं का विवेचन विश्लेषण निम्न प्रकार से है- मणिमहेश कैलाश पर्वत-भगवान् शिव गद्दी समुदाय के वैदिक अथवा पौराणिक अधिष्ठाता देव हैं, जो जनजातीय क्षेत्र भरमौर के कण-कण, सर्व-विधाता, कर्णधार और रक्षक रूप में आस्था लिए हुए ब्रह्मपुर जनपदीय लोगों के मुख्य आराध्य इष्ट देव हैं। "शिवजी का स्थायी निवास 'कैलाश' है जिसका वर्णन महाभारत के द्रोण पर्व में किया गया है। शिव-शंभू एक है परन्तु कैलाश अनेक-अनंत हैं। भूतभावक, 'महेश' जहाँ कहीं उत्तंगशिखरों-शृंगों पर ठहर गए, वहीं कैलाश बन गया। रजत धवल हिमालय की पर्वत शृंखलाओं के बीच जहाँ कहीं प्राकृतिक जल स्त्रोतों-कुण्डों-सरोवरों में शिव तथा जगदंबा 'पार्वती' ने स्नान-ध्यान किया, वहीं पावन 'डल'(झील) व तीर्थ बन गया।" अत: मणिमहेश, लम्म डल, गडासरू, नाग-डल तथा खुंडी मराल सहित आदि जलकुण्ड पूर्वकाल से ही प्रसिद्ध रहे हैं, जहाँ पर भगवान् शिव का वास रहा है।

भरमौर जनपद से लगभग 26 किलोमीटर सुदूर हिमालय पर्वत की धौलाधार पहाड़ियों पर बुड्ढ़ल घाटी के पूर्वी देशांतर में स्थित 13 हज़ार फुट की ऊँचाई पर मणिमहेश पर्वत तथा अलौकिक झील विराजमान है, जो गद्दी समुदाय के लिए धार्मिक आस्था का प्रतीक है। इसके अतिरिक्त भरमौर जनपद के चौरासी परिसर, अनेक ग्रामांचलों में अनेक शिव स्थल, मन्दिर, शिवलिंग आदिकाल से प्रतिष्ठित हैं। "14000 की ऊँचाई पर स्थित मणिमहेश झील से कैलाश पर्वत दिखाई देता है जो समुद्रतल से 18000 फुट की ऊँचाई पर हिमाच्छादित शिखर है।" जन्माष्टमी से लेकर राधाष्टमी तक इस पवित्र झील में न्हौण (शाही स्नान) होता है जिसमें देश तथा प्रदेश के लाखों यात्री आते हैं। अतएव धार्मिक यात्रा और पर्यटन की दृष्टि से मणिमहेश यात्रा पूर्वकाल से समृद्ध हैं। यदि इस तीर्थ-स्थल को और विकसित किया जाएगा तो इसमें पर्यटन की अपार संभावनाएँ होगी।

भरमौर के चौरासी मन्दिर- हिमाचल प्रदेश के जिला चम्बा से लगभग 65 कि.मी. की दूरी पर स्थित 'शिव-भूमि' के नाम से विख्यात भरमौर का पुरातन नाम ब्रह्मपुर था। इस रियासत की स्थापना सन् 550ई. में मारू ने की थी। लोकमान्यताओं के अनुसार चौरासी प्रांगण में पहले माता 'ब्राह्मणी' (भरमाणी) का वास था जहाँ पर पुरुषों का रात्रि विश्राम वर्जित था। इस संबंध में प्रो. मोहन मैत्रेय का मन्तव्य अत्यंत सार्थक है- "इस स्थल के 'सिद्ध स्थल' बनने का एक वृत्त है। लोक विश्वास है कि मणिमहेश की यात्रा को निकले चौरासी सिद्ध रात्रि विश्राम हेतु इस सुरम्य स्थान पर ठहर गए। उनके सम्मुख एक रूपवती कन्या ने उप्स्थित होकर अनुरोध किया कि वह वे किसी अन्य स्थान पर चले जाएँ क्योंकि इस स्थान पर पुरुषों का रात्रि विश्राम वर्जित है। कन्या के अनुरोध तथा परम्परा पालन को उद्यत सिद्ध यहाँ से प्रस्थान करने ही वाले थे कि भगवान् शिव प्रकट हो गए। उन्होंने ब्राह्मणी देवी को आदेश दिया कि वह अपना स्थान बदल ले। ब्राह्मणी देवी ने उपदेश का पालन किया। प्रात:काल भरमौर नरेश साहिल वर्मन ने जब वर्जित स्थल पर सिद्धों की समाधिस्थल देखा, तो वह आश्चर्य में पड़ गए। इन सिद्धों में योगी चर्पटनाथ भी थे, जिनका नरेश कालान्तर में अनुयायी बन गए। इन्हीं के आदेशों पर नरेश ने राजधानी को भरमौर से चम्बा स्थानांतरित किया। नरेश ने सिद्धों के विश्राम-स्थल पर मन्दिर-निर्माण का भी आदेश दिया। भरमौर के 84 सिद्धों तथा नौ 'नाथों' के मन्दिर हैं।"

चौरासी परिसर में सिद्धों तथा नाथों के अतिरिक्त अनेक मन्दिरों का समूह है जिसमें प्रमुख रूप से सूर्य-मुखलिंग मन्दिर 'मणिमहेश' है जो भगवान् शिव को समर्पित है। इस मन्दिर का निर्माण सातवीं शताब्दी में राजा मेरु वर्मन में करवाया था। इसके साथ ही एक ओर मन्दिर है जो नृसिंह को समर्पित है। इसके अतिरिक्त चौरासी परिसर में देवी लखणा (महिषासुरमर्दिनी) तथा धर्मराज का भव्य मन्दिर है।

लखणा देवी - भरमौर के चौरासी परिसर में लखणा देवी का भव्य मन्दिर है, जिसका निर्माण ब्रह्मपुर रियासत के तात्कालीन राजा मेरुवर्मा ने सातवीं शताब्दी में किया था। लखणा देवी महिषासुर मर्दिनी का रूप हैं। शिवशक्ति छतराड़ी मन्दिर की भाँति इस मन्दिर की काष्ठकला और कलाकृति अद्वितीय है। मन्दिर के मुख भाग पर काष्ठ की खुदाई कर असंख्य हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित हैं, जिसमें यक्ष, गंधर्व और किन्नरों तथा नवग्रह, नदियाँ (गंगा, यमुना) आदि उनके वाहनों सहित खोदी गई हैं।

ब्रह्माणी (भरमाणी) माता - भरमौर और ब्रह्माणी का अन्योन्याश्रित संबंध है। "भरमौर का प्राचीन नाम ब्रह्मपुर था। मन्दिर प्रांगण को चौरासी से भी सम्बोधित किया जाता है। यहीं से दो किलोमीटर चढ़ाई चढ़कर देवी ब्राह्मणी का पवित्र जलाशय है।" मणिमहेश कैलाश यात्री सर्वप्रथम इसी जलाशय में स्नान करने के उपरांत कैलाश यात्रा की ओर प्रस्थान करते हैं।

स्थानीय मान्यताओं के अनुसार पूर्वकाल में भरमौर जनपद में केवल भरमाणी देवी का ही मन्दिर था। परन्तु चौरासी सिद्धों और नौ-नाथों के मणिमहेश झील में स्नान करने के उद्देश्य से एक रात्रि के लिए चौरासी परिसर में अपना डेरा डाल दिया। भरमौर की सुन्दरता और शांत वातावरण से प्रभावित होकर सिद्धों-नाथों ने अनेक दिनों तक इस स्थल पर अपना डेरा जमाए रखा। वास्तव में ब्रह्माणी माता को ब्रह्मचरणी का रूप माना जाता है। अत: अपने स्वभाव के प्रतिरूप भरमाणी माता ने उन चौरासी सिद्धों तथा नौ-नाथों से रुष्ट होकर उन्हें श्राप दिया जिससे वह पिण्डी रूप में

चौरासी परिसर में समा गए और स्वयं भगवान् शिवजी के परामर्श पर अपना निवास स्थान पर्वत श्रृंखला की तलहटी में स्वीकार किया जहाँ से कैलाश-पर्वत और चौरासी परिसर नहीं दिखता। भगवान् शिव ने भरमाणी माता को वरदान दिया और कहा कि मेरी मणिमहेश यात्रा और पवित्र झील में स्नान करने के पूर्व प्रत्येक श्रद्धालुओं को पहले आपके दर्शन करने होगें तभी मणिमहेश यात्रा पूर्ण होगी। अत: परम्परा का अनुसरण करते हुए वर्तमान में भी प्रत्येक श्रद्धालुओं को मणिमहेश जाने से पूर्व भरमाणी माता के मन्दिर में दर्शन और पवित्र जल कुण्ड में स्नान करना अपरिहार्य है।

शिवशक्ति छतराड़ी मन्दिर- प्राकृतिक सुषमा से सम्पन्न सुदूर पर्वतीय क्षेत्र छतराड़ी में माता 'शिवशक्ति' विराजमान हैं। शब्दों से ही स्पष्ट हो रहा है कि यह देव-स्थल शिव और शक्ति को समर्पित है। मणिमहेश न्हौण भाद्रपद राधाष्टमी को होता है। उसके दूसरे दिन शिव-शक्ति छतराड़ी जात्रा आरम्भ हो जाती हैं। जहाँ पर 7-8वीं शताब्दी में राजा मेरु वर्मन के कार्यकाल में प्रसिद्ध गुग्गा शिल्पी द्वारा निर्मित अष्टधातु से बनी चार फीट ऊँची और छ: इंच लम्बी शिव-शक्ति की मूर्ति है, जो अपने एक हाथ में लांस (शक्ति, ऊर्जा), दूसरे हाथ में कमल, घंटी तथा एक हाथ में साँप पकड़े हुए है।

जैविक गाँव कुगती में केलंग (कार्तिक) मन्दिर - भरमौर से 28 कि.मी. की दूरी पर प्राकृतिक सुषमा से सम्पन्न जैविक गाँव कुगती की पहाड़ी तलहटी पर बसे 'केलंग' (कार्तिकेय) तथा माता 'मराली' भगवती का भव्य मन्दिर है। आध्यात्मिक दृष्टि से यह क्षेत्र अत्यंत प्रसिद्ध है। कार्तिक स्वामी मन्दिर के पास ही थोड़ी चढ़ाई चढ़कर माता मराली का निवास है। माता मराली को अशोकसुन्दरी भी कहा जाता है। श्रद्धालु केलंग बजीर के मन्दिर में दर्शन करने के उपरांत माता मराली के मन्दिर में भी पूजा-अर्चना करते हैं। माता मराली कार्तिकेय स्वामी की बहन है और जहाँ भी कार्तिक स्वामी का मन्दिर होता है उसके समीप माता मराली का मन्दिर भी अवश्य होता है। कुगती में स्थित कार्तिक स्वामी एवं माता मराली का मन्दिर दर्शनीय है। अत्यधिक हिमपात के कारणवश 'केलंग' मन्दिर के कपाट छ: महीने तक बंद रहते हैं। अत: छ: महीने पश्चात जब मन्दिर के कपाट खुलते हैं तो स्थानीय चेले (गुर) तथा पुजारी द्वारा विधिवत रूप से पूजा-अर्चना की जाती है। केलंग-यात्रा असौज तथा भादो मास की सक्रांति पर जात्राओं का आयोजन किया जाता है। जिसमें दूर-दूर से लोग श्रद्धा लिए आते हैं और कार्तिकेय देव के समक्ष आशीष प्राप्त करते हैं।

अन्य धार्मिक पर्यटन स्थल- मणिमहेश कैलाश पर्वत, भरमौर जात्रा (यात्रा), छतराड़ी जात्रा तथा कुगती जात्रा की भाँति भरमौर में असंख्य देवालय हैं जो धार्मिक पर्यटन की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध हैं। अन्य प्रमुख धार्मिक स्थलों में बन्नी (महाकाली) भगवती, दिगनपाल, कठेडपाल तथा रणहू कोठी के सामरा गाँव में इन्द्रूनाग, क्वार्सी के नाग मन्दिर सहित अनेकों स्थानीय देवी-देवताओं का निवास स्थान है। यदि इन धार्मिक पर्यटन स्थलों को राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक विकसित किया जाए तो स्थानीय लोगों के स्वरोज़गार के साथ-साथ पर्यटन को बढ़ावा मिलेगा।

जनजातीय क्षेत्र भरमौर के धार्मिक पर्यटन को बढ़ावा देने हेतु सुझाव- 1.जनजातीय क्षेत्र भरमौर के विवेच्य धार्मिक पर्यटन स्थलों को चिन्हित कर उनका जीर्णोद्धार कर उन्हें वैश्विक पर्यटन मानकों के आधार पर विकसित किया जाना चाहिए। जिसके फलस्वरूप प्रादेशिक तथा देश-विदेश के पर्यटकों को आकर्षित किया जा सकता है। 2.जीर्णोद्धार हुए धार्मिक स्थलों में पुन: मूलभूत सुविधाएँ यथा- यातायात, यात्रियों के ठहरने आदि की व्यवस्था, जनसंचार तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ प्रदान कर पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए उनकी विशेषताओं आदि का प्रचार किया जा सकता है। 3.अन्य उपेक्षित तीर्थ स्थलों के उन्नयन हेतु सरकार अपने बजट से कुछ धनराशि आवंटित कर ऐसे तीर्थ स्थलों का विकास कर सकती है। 4.विवेच्य धार्मिक स्थलों पर यातायात एवं यात्रियों के ठहरने आदि की पूर्ण व्यवस्था का दायित्व सम्बन्धित राज्य सरकार अथवा उनके द्वारा बनाए गए ट्रस्ट आदि को होना चाहिए ताकि ऐसे पर्यटकों को उचित मूल्यों पर सुविधाएँ मिल सकें। 5.धार्मिक यात्रियों की सुरक्षा-व्यवस्था एवं प्राथमिक स्वास्थ्य व्यवस्था आदि का उचित प्रबंध किया जाना चाहिए ताकि धार्मिक यात्रियों को कोई समस्या न हो। 6.जनजातीय क्षेत्र भरमौर प्राकृतिक खेती, फलदार पौधे तथा स्थानीय लघु उद्योग के लिए प्रसिद्ध है। सरकार द्वारा स्थानीय लोगों को इन विषयों से आवगत करवाकर इनका उत्पादन कर इनकी आय में वृद्धि हो सकती है।

निष्कर्ष- यद्यपि समय ने कई बदलाव किए हैं, किन्तु ब्रह्मपुर अर्थात भरमौर अपनी पुरातन परम्पराओं और देवी-देवताओं के प्रति निष्ठावान है। इस जनपद में धार्मिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक तथा प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण पर्यटन के लिए अपार संभावनाएँ लिए हुए है। यदि वर्तमान परिप्रेक्ष्य की बात करें तो यातायात की उचित सुविधा, मन्दिरों का रखरखाव और पर्यटकों को आधुनिक सुविधाएँ प्रदान की जाए तो यहाँ के धार्मिक पर्यटन की स्थिति में सकारात्मक परिवर्तन होगा।

000

संदर्भ- बलोखरा, जगमोहन, अलौकिक हिमाचल प्रदेश, पृ.- 186, कुमार, नंद कुमार, गद्दी जनजीवन, ऐतिहासिक एवं सामाजिक परम्परा, पृ.- 82, व्यथित, गौतम शर्मा, हिमाचल की जनजाति गद्दी देव परम्परा और संस्कृति, पृ. 41-42, रणपतिया, अमर सिंह, गद्दी भरमौर की लोक संस्कृति एवं कलाएं, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी शिमला, संस्करण 2010, पृ.-73, मैत्रेय, प्रो. मोहन, हिमाचल प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक पर्यटन, के.के. पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010, पृ. 154, व्यथित, गौतम शर्मा, हिमाचल की जनजाति गद्दी देव परम्परा और संस्कृति, पृ. 49, वहीं, पृ. 62

(शोध आलेख)

उच्च-शिक्षा में मध्यप्रदेश के आदिवासी महिलाओं के सशक्तीकरण की चुनौतियाँ और संभावनाएँ

शोध लेखक : अनुज कुमार पाण्डेय
शोधार्थी, शिक्षा विभाग
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)
शोध निर्देशक : डॉ. देवी प्रसाद सिंह, सहायक प्राध्यापक,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

अनुज कुमार पाण्डेय
मकान नंबर 325, भीटी, मऊ,
उत्तरप्रदेश, पिनकोड-275101
मोबाइल- 9415821205

सारांश - 104 मिलियन लोग, या भारत के 1211 मिलियन लोगों में से 8.6 प्रतिशत को आदिवासी के रूप में वर्गीकृत किया गया था। देश की सभी जनजातियों में से एक चौथाई मध्य प्रदेश और राजस्थान राज्यों में रहती हैं। राज्यों की यह जोड़ी आदिवासी आबादी मध्य प्रदेश के झाबुआ और राजस्थान के बाँसवाड़ा जिलों में बहुत अधिक केंद्रित है। इन क्षेत्रों में एक प्रमुख उद्योग खेती है। देश में 137.8 मिलियन कृषि जोत हैं, जिनमें 12.0 मिलियन जनजातीय खेत शामिल हैं। 1.2 करोड़ जनजातीय कृषि जोत (एफएचएफएच) में से 1.33 मिलियन महिलाओं के प्रबंधन में हैं। महिला मालिकों वाले 1.33 मिलियन कृषि व्यवसायों में से 1.09 मिलियन छोटे या सीमांत खेत हैं। यह अध्ययन इस बात पर ध्यान देता है कि भारत में आदिवासियों की उच्च शिक्षा तक पहुँच कैसे हो सकती है। सरकारी पहलों को सकारात्मक कार्रवाई कार्यक्रमों के दायरे में लाने की संभावना पर चर्चा की गई है। यह अलग-अलग का भी प्रतीक है उच्च शिक्षा में जनजातीय भागीदारी विभिन्न कारकों से प्रभावित होती है। पाँच खंड कागज का संगठन बनाते हैं। जनजातियों और उनकी स्थिति का एक संक्षिप्त विवरण अनुभाग (1) में दिया गया है। उच्च शिक्षा का मूल्य खंड 2 में शामिल है। उच्च शिक्षा और मानव संसाधनों का विकास खंड 3 के मुख्य विषय हैं। आदिवासी विकास के लिए सरकार के प्रयासों को खंड (4) में वर्णित किया गया है। उच्च शिक्षा में स्वदेशी लोगों की वर्तमान स्थिति को खंड (5) में प्रस्तुत करने का इरादा है। अंत में, नीति कार्यान्वयन की समीक्षा खंड (6) को समाप्त करती है।

मूल शब्द- उच्च शिक्षा, आदिवासी महिलाएँ, स्वदेशी प्रौद्योगिकियों, जनजातीय विकास

प्रस्तावना - भारत एक बहुजातीय, बहुभाषी और बहुसांस्कृतिक देश है। वहाँ विभिन्न जातियों, समुदायों और सामाजिक समूहों का प्रतिनिधित्व किया जाता है। 574 आदिवासी संगठनों को अनुसूचित जनजाति के रूप में वर्गीकृत किया गया है। उन्हें देश के स्वदेशी लोग या आदिवासी माना जाता है। उन्हें स्वदेशी लोग, गुफावासी, आदिवासी, वनजाति, गिरिजन आदि के रूप में लेबल किया गया है। दुनिया की कुल जनजातीय आबादी के 9.7 प्रतिशत के साथ, भारत में अब तक की सबसे अधिक जनजातीय आबादी है। भारत में, आदिवासी समुदाय मुख्य रूप से उत्तर-पूर्वी और मध्य क्षेत्रों में पाए जाते हैं। वे देश के सबसे कम विकसित क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षिक सहित सभी मोर्चों पर आदिवासी लोग शेष सभ्यता से कटे हुए हैं। उनके जीने का तरीका बहुत अलग है। वे पूरी तरह से चारागाह, वानिकी उत्पादों और भूतिया पर निर्भर हैं।

भारत में उच्च शिक्षा का इतिहास - भारतीय उच्च शिक्षा प्रणाली चीन और संयुक्त राज्य अमेरिका के बाद दुनिया में तीसरी सबसे बड़ी है। किसी देश के विकास के आवश्यक घटकों में से एक उच्च शिक्षा है। यह 21वीं सदी के ज्ञान आधारित समाज के निर्माण के लिए एक शक्तिशाली हथियार है। बारहवीं योजना रही है उच्च शिक्षा में तीन मुख्य मुद्दे हैं, जो पहुँच, इक्विटी और उत्कृष्टता हैं। उच्च शिक्षा को संयुक्त राष्ट्र आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संगठनों (यूनेस्को) द्वारा वर्णित किया गया है, जिसमें सभी प्रकार के अध्ययन, प्रशिक्षण और अनुसंधान प्रशिक्षण शामिल हैं। ईस्ट इंडिया कंपनी ने ब्रिटिश प्रशासन की शुरुआत में भारत में उच्च शिक्षा की आवश्यकता को नहीं पहचाना। लेकिन कुछ अंग्रेजी विचारकों के उत्साह के कारण भारत में उच्च शिक्षा अब एक वास्तविकता है। शिक्षा की स्थिति का आकलन करने के लिए, लॉर्ड रिपन ने 1882 में एम. डब्ल्यू हंटर की अध्यक्षता में एक आयोग का गठन किया। यह आयोग उच्च शिक्षा की देखरेख करता है। प्रोत्साहित किया गया कि लॉर्ड क़र्ज़न ने 1904 में उच्च शिक्षा को बढ़ाने के लिए भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम पर हस्ताक्षर किए। कई भारतीय शिक्षाविद, जिनमें आर.एन. टैगोर, जेएल नेहरू और राधाकृष्णन ने भारत में उच्च शिक्षा के महत्त्व पर ज़ोर दिया है। भारत में, उच्च शिक्षा को राधाकृष्णन द्वारा एक अलग आकार दिया गया था। उन्होंने उच्च शिक्षा के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन को लागू करने का प्रयास किया।1 1948 में, उन्होंने विश्वविद्यालय शिक्षा पर आयोग की स्थापना की। उन्होंने कॉलेजों में

तकनीकी और व्यावसायिक विषयों को पढ़ाया। राधाकृष्णन ने विश्वविद्यालयों को व्यक्तिगत विकास करने की स्वतंत्रता दी।

उच्च शिक्षा और मानव संसाधनों का विकास - सतत विकास और प्रगति के लिए उच्च शिक्षा महत्त्वपूर्ण है। डॉ. राधाकृष्णन ने स्पष्ट तस्वीर खींची कि शिक्षा और मानव संसाधन विकास कैसे संबंधित हैं। एचआरडी विकास परियोजनाओं को बनाने और चलाने की प्रक्रिया से संबंधित है। यह एक प्रक्रिया है जो घटनाओं का निर्माण करती है और लोगों को अवसर प्रदान करती है। वैश्वीकृत आबादी की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए बुनियादी और माध्यमिक शिक्षा में सुधार किया जाना चाहिए। विकासात्मक गतिविधियों को पूरा करने के लिए ज्ञान और कौशल की आवश्यकता होती है। उच्च शिक्षा की एक शाखा वैज्ञानिक अध्ययन, सांस्कृतिक पहचान निर्माण, मध्य और उच्च स्तर के पेशेवर प्रशिक्षण, तकनीकी और प्रबंधकीय गतिविधियों, अनुसंधान के माध्यम से नए ज्ञान का विकास, लोकतांत्रिक प्रक्रिया का लोकतंत्रीकरण आदि है। यह राष्ट्र के संसाधन विकास का समर्थन करता है। जीवन के सभी क्षेत्रों में उच्च शिक्षा नींव है। यह महत्त्वपूर्ण योजना, डिजाइनिंग, निर्देशन और अनुसंधान प्रदान करता है।2 उच्च शिक्षा स्वदेशी प्रौद्योगिकियों, कृषि क्षमताओं, खाद्य सुरक्षा, बुनियादी ढाँचे के विकास और आर्थिक विस्तार के विकास का एकमात्र मार्ग है। यह अंतर्निहित धारणाओं की व्याख्या करता है और नई समझ को आगे बढ़ाता है। समाज से दूरी बंद हो गई है, मानव संसाधन विकास उच्च गुणवत्ता वाली उच्च शिक्षा के परिणामस्वरूप विकास के घटक पर ज़ोर देता है।

स्वतंत्रता के बाद उन्नत अध्ययन और जनजातियाँ - स्वतंत्रता के बाद, भारतीय संविधान ने आदिवासियों के लाभ के लिए कुछ सकारात्मक बदलाव किए। 1968 में, शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति ने शैक्षिक अवसर को अधिक समान और समावेशी रूप से समान करने के लिए महत्त्वपूर्ण प्रयास किए। उच्च शिक्षा में वंचित वर्गों की भागीदारी को बढ़ावा देने के लिए, भारत सरकार ने समय-समय पर कई योजनाओं और कार्यक्रमों की शुरुआत की है। उच्च शिक्षा संस्थानों में सरकार ने अब एसटी के लिए 7.5 प्रतिशत सीटें आरक्षित कर दी हैं।3 सरकार उन लोगों के लिए छात्रवृत्ति भी प्रदान करती है जो विदेश में उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं। भारत भर के विभिन्न राज्यों में, चौदह जनजातीय अनुसंधान संस्थान स्थापित किए गए हैं। तीसरी योजना ने स्वदेशी लड़कियों के लिए लड़कियों के छात्रावास कार्यक्रम की शुरुआत की, जो सभी छात्रों के लिए उच्च शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए एक सहायक उपकरण है। एससी और एसटी के लिए उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए, राजीव गांधी राष्ट्रीय फैलोशिप कार्यक्रम की स्थापना की गई थी।उच्च शिक्षा मानकों को बनाए रखने और स्थापित करने के लिए एक राष्ट्रीय आयोग उच्च शिक्षा संस्थान विधेयक 2011 के लिए राष्ट्रीय प्रत्यायन नियामक प्राधिकरण के तहत प्रदान किया गया है। यूजीसी ने अविकसित और ग्रामीण क्षेत्रों में कॉलेजों को विकास निधि देने के नियमों को भी ढीला कर दिया है।4 1950 के दशक के बाद चीजें बदलने लगीं। सामाजिक और आर्थिक समानता को आगे बढ़ाने के लिए कई सकारात्मक कार्रवाइयाँ अपनाई गईं। 1970 के दशक की शुरुआत में उच्च शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण निवेश क्षेत्र के रूप में उभरा। पहली और पाँचवीं योजना में उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा पर ध्यान केंद्रित किया गया था। इन रणनीतियों के तहत कुछ हस्तक्षेपों से आदिवासियों को सक्षम बनाया गया। 1990 के दशक के बाद आर्थिक पुनर्गठन द्वारा उच्च शिक्षा लाई गई है। ज्ञान के प्रभाव में, आर्थिक प्रगति परिपक्व हुई। एलपीजी मॉडल का शिक्षा पर बड़ा प्रभाव पड़ा। दसवीं योजना अवधि के समापन पर राष्ट्रीय साहित्य मिशन का उद्घाटन किया गया था। 12 प्रतिशत छात्रों ने इस कार्यक्रम के तहत उच्च शिक्षा प्राप्त की। तब से यह 17.50 प्रतिशत चढ़ गया है।5 तथापि, महानगरीय क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में सकल नामांकन अनुपात (जीईआर) कम है। भारत में वर्तमान में 18067 से अधिक कॉलेज हैं। हालाँकि, आदिवासी छात्रों का असमान प्रतिनिधित्व देश के लिए एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा है।6

निष्कर्ष - आदिवासी विकास का रहस्य उच्च शिक्षा है। हालाँकि, बहुत कम आदिवासी बच्चे उच्च शिक्षा में दाखिला लेते हैं। राष्ट्र में जनजातीय छात्र उच्च शिक्षा में पर्याप्त अच्छा प्रदर्शन नहीं करते हैं। संपूर्ण आदिवासी शैक्षिक वातावरण के साथ सँरेखित नहीं होता है, गुणवत्ता के लिए वैश्विक बेंचमार्क। यह ज़ोरदार तर्क दिया गया है कि भारत को आदिवासी आबादी के बीच उच्च शिक्षा के लिए अपनी प्राथमिकता बढ़ाने की ज़रूरत है, इसलिए सरकार को उनके विकास के लिए कुछ कठोर उपाय करने चाहिए।7 इन कदमों में उचित परामर्श के माध्यम से माता-पिता के रवैये में सुधार, आदिवासी लड़कियों की सामाजिक सुरक्षा की गारंटी, उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा प्रदान करना और एकीकृत सेवाएँ प्रदान करना शामिल होना चाहिए।

000

संदर्भ-

1.All India Survey on Higher Education. (2013 - 2014). Government of India, Ministry of Human Resource Development, Department of Higher Education, New Delhi., Ch. 2. 2.Bhasin, V. (2007). Status of Tribal Women in India, Department of Anthropology, University of Delhi, Delhi, India. 3.Cadler, R. and Huda, K. (2013). Adolescent Girls and Education: Challenges, and Gaps. Pathways Perspectives on Social Policy in International Development, 13, 1-7. 4.Chatterjee, P. (2014). Social and Economic status of tribal women in India-The challenges and the Rod Ahead. International Journal of Interdisciplinary and Multidisciplinary Studies, vol. 2, 55-60. 5.Kumari, S. (2018). Challenging Issue of Tribal Women Education in India. International Journal of Interdisciplinary Research in Arts and Humanities, ISSN: 2456-3145, Vol 3, Issue 1. 6.Pradhan, N. (2018). 'Issues and Challenges of Education in Tribal Areas'. file:///C:/Users/User1/Downloads/issuesandchallengesofeducationintribalareas-150130220955- conversion-gate02.pdf. 7.Majumdar, R. & Sikdar, D. P. (2018).'Participation of Tribal Women in Higher Education in India'. International Journal of Arts, Humanities and Management Studies, ISSN: 2395-0692.

(शोध आलेख)

निराला की कहानियों में सामाजिक स्वातन्त्र्य संघर्ष

शोध लेखक : हरिओम कुमार द्विवेदी
शोध छात्र
बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झाँसी
शोध निर्देशक : प्रोफेसर नवेन्द्र कुमार सिंह
हिन्दी विभाग, बुंदेलखंड कॉलेज, झाँसी

हरिओम कुमार द्विवेदी
37/219 एफ़, अमृतपुरी
मधुनगर रोड, बुन्दुकटरा
आगरा, उत्तर प्रदेश, 282001
मोबाइल- 7007023726
ईमेल- hariomdwivedi001@gmail.com

निराला प्रत्येक मानवीय इकाई के सामाजिक समरसता प्राप्त करने की स्थिति को ही वास्तविक स्वतंत्रता मानते हैं हमारे देश में सामाजिक समरसता का अपेक्षाकृत अभाव है। इसी सामाजिक समरसता को प्राप्त करने के लिए निराला सामाजिक स्वातन्त्र्य संघर्ष को अत्यंत महत्त्वपूर्ण मानते हैं। निराला ने भारतीय समाज के विभिन्न रूपों का दृश्य अपनी 'देवी' शीर्षक नामक कहानी में बड़ी सजीवता से दिखलाया है। इस कहानी में निराला ने समस्या का कोई समाधान प्रस्तुत नहीं किया है बल्कि पगली रूपी दर्पण में समाज के सभी वर्गों के लोगों का प्रतिबिंब यथार्थ रूप से सबके सामने रख दिया है। निराला लिखते हैं-" मुझे बराबर पेट के लाले रहे। पर फाके मस्ती में भी मैं परियों के ख्वाब देखता रहा - इस तरह अपनी तरफ से मैं जितना लोगों को ऊँचा उठाने की कोशिश करता गया, लोग उतना मुझे उतारने पर तुले रहे और चूँकि मैं साहित्य को नरक से स्वर्ग बना रहा था, इसीलिए मेरी दुनिया भी मुझसे दूर होती गई।"(1)

निराला के उक्त कथ्यों से उनके जैसे व्यक्तित्व की सामाजिक स्थिति का आकलन सहज किया जा सकता है निराला एक होटल में ठहरे हुए थे। होटल के सामने रास्ते के किनारे पर बैठी हुई एक स्त्री पर निराला की नज़र पड़ी। वे लिखते हैं "प्रकृति की मारों से लड़ती हुई मुरझाकर, मुमकिन है किसी को पच्चीस साल से कुछ ज़्यादा जेंजे, पास एक लड़का डेढ़ साल का खेलता हुआ, बच्चे की शिक्षा परवरिश क्या इसी तरह रास्ते पर होगी। यह क्या सोचती होगी ईश्वर, संसार, धर्म और मनुष्यता के संबंध में ?"(2)

निराला ने होटल के नौकर संगमलाल को बुलाकर उस स्त्री के विषय में पूछा। संगमलाल ने बताया –"वह तो पागल है और गूँगी भी है, आप लोगों की थालियों से बची रोटियाँ उसे दे दी जाती हैं "(3)

निराला सामाजिक सुधार करने वाले ठेकेदारों और सामाजिक संतुलन की वकालत करने वाले ढोंगीयों पर करारा व्यंग करते हुए लिखते हैं – "देश में शुल्क लेकर शिक्षा देने वाले बड़े-बड़े विश्वविद्यालय हैं। पर इस बच्चे का क्या होगा ? संसार में उसे जगह नहीं दी- उसे नहीं समझा, पर संसारियों की तरह वह भी है उसका भी बच्चा है।" (4)

निराला पुन: लिखते हैं – "एक रोज़ मैंने देखा नेता का जुलूस उसी रास्ते से जा रहा था। हजारों आदमी इकट्ठे थे। जय-जयकार से आकाश गूँज रहा था। मैं उसी बरामदे पर खड़ा स्वागत देख रहा था पगली भी उठ कर खड़ी हो गई थी। बड़े आश्चर्य से लोगों को देख रही थी रास्ते पर इतनी बड़ी भीड़ उसने नहीं देखी। मुँह फैला कर भोंहे सिकोड़कर, आँखों की पूरी ताक़त से देख रही थी। समझना चाहती थी वह क्या था। क्या समझी आप समझते हैं ? भीड़ में उसका बच्चा कुचल गया और रो उठा। पगली बच्चे की गर्द झाड़ कर चुमकारने लगी। और फिर कैसी ज्वालामई दृष्टि से जनता को देखा। मैं यही समझता हूँ। नेता दस हज़ार की थैली लेकर गरीबों के उपकार के लिए चले गए – ज़रूरी-ज़रूरी कामों में खर्च करेंगे।"(5)

निराला ने उपरोक्त अंतिम पंक्तियों में देश के नेता वर्ग की वास्तविक स्थिति का चित्रण कर दिया है। गरीबों के नेता है। पैसे ले जाकर ग़रीबों पर खर्च करेंगे। किंतु सामने एक स्त्री व उसका डेढ़ वर्ष का बच्चा उन्हें दिखाई नहीं देता है। नेताजी के ज़लूस से हाथ दब जाने पर बच्चे की रोने की आवाज़ नेता जी को नहीं सुनाई पड़ती है। हमें अंग्रेज़ों से स्वतंत्रता तो मिल जाएगी किंतु यदि हमारी मनुष्यता मर गई तो हमें पुन: ग़ुलाम बनने में देर नहीं लगेगी। हमें अपने अंदर की मनुष्यता को जीवित रखना पड़ेगा।

नेता वर्ग के पश्चात निराला ने धार्मिक लोगों का यथार्थ प्रस्तुत किया है। पगली स्त्री सड़क के किनारे जहाँ रहती थी वहीं पास में रामायण की कथा हो रही थी। लोग कथा समाप्त होने के पश्चात अपने-अपने घर के लिए चले। निराला लिखते हैं – " पाठ सुनकर मंजकर भक्त मंडली चली। दुबली-पतली ऐश्वर्य-श्री से रहित पगली बच्चे के साथ बैठी हुई मिली। एक ने कहा इसी संसार में स्वर्ग और नरक देख लो। दूसरे ने कहा कर्म के दंड है। तीसरा बोला सकल पदारथ है। जग माही कर्म - हीन नर पावत ना ही। सब लोग पगली को देखते शास्त्रार्थ करते चले गए।"(6)

ये सारे लोग धार्मिक प्रवृत्ति के लोग हैं। रामायण की कथा सुनकर आ रहे हैं। ये वही रामायण की कथा है, जहाँ एक राजा एक नाविक को गले से लगाता है। वही राजा शबरी के जूठे बेर खाता है। किंतु यहाँ पर उस पगली स्त्री को गले लगाने वाला कोई नहीं है। केवल उसके बारे में निरर्थक बातें करते हुए लोग अपने घरों को चले गए। धार्मिक लोगों के पश्चात निराला समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के विषय में भी लिखते हैं– "मैंने हिंदू, मुसलमान, बड़े - बड़े पदाधिकारी, राजा रईस सबको उस रास्ते में जाते समय पगली को देखते हुए देखा। जिन्हें अपने को देखने दिखाने की आदत पड़ गई है, उनकी दृष्टि में दूसरे की सिर्फ तस्वीर आती है, भाव नहीं. यह दर्शन मुझे मालूम था।" (7)

नेता धार्मिक प्रवृत्ति के लोग, प्रबुद्ध वर्ग के लोग, सभी वर्गों के लोग सबको निराला ने उस पागल स्त्री के समक्ष खड़ा खड़ा करके सब की वास्तविकता सामने लाकर समाज को मनुष्यता का आइना दिखाया।

डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं– "देवी का व्यंग इतना प्रभावपूर्ण इसलिए है कि उसका लक्ष्य व्यक्ति विशेष नहीं है, वरन् वह सामाजिक व्यवस्था है जिसमें मुफ्त खोर पूजे जाते हैं, और जिन्हें पूजना चाहिए वे ठोकरें खाते हैं। यहाँ पर निराला जी ने भारतीयता के नाम पर जो अन्याय लीला होती है। उसकी हकीकत बयान कर दी है।" (8)

निराला ने अपनी एक अन्य कहानी 'हिनी' में उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग पर किए जाने वाले शोषण एवं अत्याचार को दिखाया है। हिरनी सिंहपुर के रानी की दासी है हिरनी बहुत तेज़ और बुद्धिमान है इसी कारण रानी अन्य दासियों की तुलना में हिरनी को ज़्यादा मानती थी। रानी द्वारा हिरनी को ज्यादे मानने के कारण अन्य दासिया हिरनी से जलती थी। एक दिन हिरनी की लड़की की तबीयत ख़राब हो जाने के कारण हिरनी राज महल में नहीं आई। मौका अच्छा देखकर एक अन्य दासी श्यामा और स्याही ने रानी से कहा – "सरकार को हिरनी ने आज फिर धोखा दिया; मैं गई थी, उसकी लड़की को जुड़ी- बुखार कहीं कुछ भी नहीं।"(9) जबकि लड़की के बीमार होने के कारण हिरनी दो दिन की छुट्टी लेकर गई थी। रानी साहिबा ने चापलूस दासी की बात को सुनकर हिरनी को तुरंत पकड़ कर ले आने का आदेश दिया। दासी एक अन्य नौकर बूटा सिंह से बोली– "सरकार कहती है हिरनी का झोटा पकड़कर ले आओ, अभी ले आओ बहुत जल्द।" (10)

बूटा सिंह जब हिरनी के घर पहुँचता है तो हिरनी वैधजी की दवा दूध में घोल रही थी। हिरनी द्वारा लड़की को दवा पिलाकर चलने के लिए कहने पर बूटा सिंह हिरनी को घसीटते हुए कहता है– "लौटकर दवा पिला चाहे ज़हर, सरकार ने इसी वक्त बुलाया है।" (11)

हिरनी जब रानी साहिबा के सम्मुख पहुँचती है तब निराला लिखते हैं– "रानी साहिबा क्रोध से काँपने लगी। दूसरी दासियों को पकड़ लाने के लिए भेजा। इच्छा थी उसका सर दबा कर स्वयं प्रहार करें। दासियाँ पकड़ कर ले चलीं, तो रानी साहिबा को आँसुओं से देखती हुई, उसी अनिन्ध हिन्दी में हिरनी छमा प्रार्थना करती हुई बोली, सरकार मेरा कसूर नहीं है।

पर कौन सुनता है, उससे रानी साहिबा की सेवा में कसर रह गई है। जब पास पहुँची, उसको झुका कर मारने के लिए रानी साहिबा ने घूँसा बाँधा। हिरनी के मुख से निकला,'हे राम जी!' रानी साहिबा की नाक से खून की धारा बह चली।" (12)

निराला की इस कहानी के माध्यम से यह संदेश दे रहे हैं कि गरीबों की हाय कभी नहीं लेनी चाहिए। गरीबों की हाय जब लगती है तो वह सब कुछ ख़त्म कर देती है। चाहे सामने वाला राजा ही क्यों न हो।

निराला ने अपनी कहानी 'परिवर्तन' में भी यह दिखाया है कि राजा महेश्वर सिंह और उनकी पुत्री परी कैसे ग़रीब शत्रुघ्न सिंह से और उसके पुत्र सूरज का शोषण करते हैं। परी सदैव सूरज को नीचा दिखाने का उद्यम करती रहती है। इसी कारण सूरज परी से मिलना नहीं चाहता है। "सूरज इस समय मिडिल क्लास का विद्यार्थी है। परी के स्नेह - लेश रहित तेज़ स्वभाव के कारण हुआ उसे नहीं मिलता। परी से वह ऊँचे दर्जे में ज़्यादा पढ़ा हुआ है इसका विचार परी नहीं करती, जो काम उससे करवाती है उसके कारण वह लाज से मुरझा जाता है।" (13)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, वह एक व्यवस्थित ख़ुशहाल जीवन व्यतीत कर सके इसलिए सामाजिक संरचना को कई आयामों द्वारा सुसज्जित किया गया पर बड़ी विडंबना है कि व्यक्तिगत निहितार्थ को तुष्ट करने के लिए मनुष्य ही मनुष्य का पाशविक शोषण करने में भी तनिक संकोच नहीं करता। अपने-अपने जीवन प्रवाह के मदांध में बहते मानव के पास जहाँ इस विचारणीय प्रश्न के लिए अवकाश ही नहीं, निराला की संवेदना उसे आत्मसात करती हुई उनके अंतर्मन को व्यथित करती है। निराला अपने उपन्यासों व कहानियों और उनके पात्रों के माध्यम से न सिर्फ इन प्रश्नों की पड़ताल करते हैं। वरन मानव और उसकी सामाजिक व्यवस्थाओं के बीच मनुष्य के सामाजिक बनने हेतु सामाजिक स्वातंत्र्य संघर्ष करते हैं। निराला के उपन्यास इसके साक्ष्य हैं।

000

संदर्भ-

1. नन्द किशोर नवल-निराला रचनावली 3-पृष्ठ 25, 2. नन्द किशोर नवल-निराला रचनावली 3 - पृष्ठ 31, 3. नन्द किशोर नवल-निराला रचनावली 3 - पृष्ठ 31, 4. नन्द किशोर नवल-निराला रचनावली 3 -पृष्ठ 31, 5.विवेक निराला-निराला साहित्य में प्रतिरोध के स्वर -पृष्ठ 307, 6.विवेक निराला-निराला साहित्य में प्रतिरोध के स्वर - पृष्ठ 307, 7.नन्द किशोर नवल-निराला रचनावली 3 -पृष्ठ 10, 8.गया प्रसाद गुप्त-निराला के गध्य साहित्य मै प्रगतिशील चेतना -पृष्ठ 58, 9.नन्द किशोर नवल-निराला रचनावली 3 -पृष्ठ 147, 10. विवेक निराला-निराला साहित्य में प्रतिरोध के स्वर -पृष्ठ 310, 11. विवेक निराला-निराला साहित्य में प्रतिरोध के स्वर -पृष्ठ 311, 12. नन्द किशोर नवल-निराला रचनावली 3 -पृष्ठ 256-57, 13. नन्द किशोर नवल-निराला रचनावली 3 -पृष्ठ 352

(शोध आलेख)

कोरोना काल में प्रसारित 'रामायण' टी.वी. सीरियल का ग्रामीण समाज पर प्रभाव

उत्तर प्रदेश के अवध क्षेत्र का एक अध्ययन

शोध लेखक : डॉ. अरुण कुमार एवं डॉ. राजीव रंजन कश्यप
(असिस्टेंट प्रोफेसर- जनसंचार एवं पत्रकारिता विभाग, आई.आई.एम.टी.कॉलेज ग्रेटर नोएडा- उत्तर प्रदेश)

डॉ अरुण कुमार, डॉ राजीव रंजन कश्यप, असिस्टेंट प्रोफेसर
जनसंचार एवं पत्रकारिता विभाग,
आई.आई.एम.टी.कॉलेज
प्लॉट 19-20, नॉलेज पार्क,
ग्रेटर नोएडा- उत्तर प्रदेश 201310

सार- कोरोना महामारी ने धीरे-धीरे पूरी दुनिया को अपनी गिरफ्त में ले लिया है। इसकी शुरूआत चायना के वुहान प्रांत से हुई और मौतों पर मौतों की तह लगने लगी। अमेरिका, इटली, फ्रांस, जर्मन में दफन करने के लिये जगह कम पड़ने लगी जिससे भारत भी अछूता न रहा। भारत में भी सम्पूर्ण रूप से लॉकडाउन कर दिया गया। लोग अपने-अपने घरों में कैद हो गए। कोरोना के ख़ौफ़ से लोगों में अवसाद, निराशा, हताशा का माहौल छाने लगा। इसी बीच भारत सरकार के प्रसारण मंत्रालय ने दूरदर्शन के माध्यम से रामानंद सागर कृत रामायण टीवी सीरियल का प्रसारण चालू किया। जिससे लोगों में खुशी की लहर दौड़ गई।

मुख्य शब्द- रामायण' टी. वी. सीरियल, कोरोना वायरस, लॉकडाउन, महामारी।

शोध समस्या- हमारे देश की आधी आबादी से अधिक जनसंख्या आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। ऐसे में शोधार्थी यह जानना चाहता है कि उत्तर प्रदेश के अवध क्षेत्र में लॉकडाउन के दौरान कोरेना काल में प्रसारित 'रामायण' टी.वी. सीरियल का ग्रामीणों पर क्या प्रभाव पड़ा?

शोध का उद्देश्य- 1.कोरोना काल में लॉकडाउन के दौरान प्रसारित 'रामायण' टी.वी. सीरियल का ग्रामीण निवासियों पर स्वास्थ्य, मानसिक व्यवहार, भय एवं कोरोना से लड़ने की क्षमता के प्रभाव का अध्ययन। 2.कोरोना काल में लॉकडाउन के दौरान प्रसारित 'रामायण' टी.वी. सीरियल में रामायण के संचार सिद्धातों का अध्ययन। 3 पुरानी पीढ़ी जिसने रामायण के प्रथम प्रसारण (1987) को देखा एवं नई पीढ़ी जिसने कोरोना काल में लॉकडाउन के दौरान रामायण टी.वी. सीरियल के पुन: प्रसारण को देखा, दोनों पीढ़ियों के रामायण के प्रति विचारों का अध्ययन।

शोध पद्धति- यह शोध अध्ययन पूर्ण रूप से धर्म, स्वास्थ्य एवं संचार विमर्श पर केन्द्रित है। शोधार्थी ने समस्या समाधान के लिए शोध पद्धति का निर्माण किया है, जिसके अनुसार वह अपनी समस्या का समाधान करेगा। उत्तर प्रदेश के अवध क्षेत्र में शहरी जनसंख्या के साथ भारी ग्रामीण जनसंख्या भी निवास करती है। क्षेत्र में हिन्दू धार्मिक अनुयायियों की संख्या औसतन अधिक है। ऐसे में हिन्दू धार्मिक टी.वी. सीरियल का चलन स्वत: ही देखने को मिलता है। शोधार्थी का यह प्रयास है कि उत्तर प्रदेश के अवध ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले परिवारों पर कोरोना काल में लॉकडाउन के दौरान प्रसारित 'रामायण' टी.वी. सीरियल का क्या प्रभाव पड़ा, यह पता लगाया जा सके। इस संबंध में समस्या के समाधान के लिए शोध पद्धति इस प्रकार है- शोध क्षेत्र - शोधार्थी की समस्या उत्तर प्रदेश के अवध क्षेत्र के ग्रामीण परिवारों से जुड़ी है। ऐसे में शोध क्षेत्र उत्तर प्रदेश का अवध क्षेत्र होगा, जहाँ ग्रामीण परिवार निवास करते हैं। अवध क्षेत्र का एक सामान्य परिचय -अवध का इतिहास अनादिकाल से है। यहाँ के सर्वप्रसिद्ध राजा मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्री राम थे जिनके पूर्वजों ने ही अवध की स्थापना की थी। अवध क्षेत्र की जनसंख्या- वर्तमान में अवध क्षेत्र में शामिल किए जाने वाले जिलों की जनसंख्या पर गौर करें तो 2011 की जनगणना के अनुसार विभिन्न जिलों को मिलाकर लगभग 6 करोड़ है।

शोध उपकरण - आँकड़ों का संकलन करने के लिए प्रश्नावली शोध उपकरण का प्रयोग किया गया है।

1.प्रश्नावली- प्रश्नावली में शोधार्थी कुल 10 प्रश्नों को शामिल करेगा जिसके माध्यम से ग्रामीण परिवारों से आँकड़ों का संकलन किया जाएगा। न्यादर्श पद्धति-शोधार्थी सम्पूर्ण अवध क्षेत्र के जिलों की जनसंख्या को शामिल करने में असमर्थ होगा। ऐसे में अपनी समस्या को हल करने के लिए न्यादर्श पद्धति का उपयोग करेगा ताकि आँकड़ों का संकलन कर विश्लेषण किया जा सके। न्यादर्शों का इस प्रकार चयन किया गया है। न्यादर्शों का चयन -'सम्भाव्यता निदर्शन' के अंतर्गत, 'यादृच्छिक निदर्शन' के अंतर्गत 'समान अनुपात पद्धति' द्वारा चयन।

चयन की प्रक्रिया - अवध क्षेत्र में आने वाले जिलों में से 5 ज़िलों का यादृच्छिक पद्धति से चयन किया गया है। चयनियत ज़िलों को 'समान अनुपात पद्धति' द्वारा न्यादर्श का चयन किया

गया है। इस प्रकार पाँच ज़िलों में प्रत्येक से 20 का चयन किया किया गया है। इस प्रकार कुल न्यादर्श 100 का चयन किया गया है। प्रत्येक ज़िले का 20 अनुपात निर्धारित किया गया है। जो इस प्रकार है। 5 जिला×20 कुल 100 न्यादर्श

आँकड़ों का संकलन - अध्ययन की समस्या जिले में रह रहे ग्रामीण परिवारों से संबंध रखती है। ऐसे में उनसे जानकारी प्राप्त करनी आवश्यक होगी। इसलिए प्राथमिक आँकड़ों का संकलन किया गया है।

प्रस्तावना- दुनिया के महान् खोजकर्ताओं का टेलीविजन एक महत्त्वपूर्ण उपहार है, जिसकी शुरूआत 26 जनवरी, सन् 1926 को लन्दन में बी.बी.सी. द्वारा नियमित दूरदर्शन सेवा प्रारम्भ से हुई, और धीरे-धीरे पूरी दुनिया में टेलीविजन की आम जन-मानस में पैठ बनने लगी। दुनिया का पहला टेलीविजन सीरियल 'Faraway Hill' 1946 में यू.एस.ए. से प्रसारित हुआ। इसी कड़ी में भारत में 15 सितम्बर, 1959 से दिल्ली टेलीविजन सेंटर के कार्यक्रम प्रसारित होने लगे और भारत का पहला टेलीविजन सीरियल सन् 7 जुलाई 1984 में "हम लोग" प्रसारित हुआ,साथ ही साथ रामायण एवं महाभारत के जरिये टेलीविजन में सिनेमा का प्रारम्भिक धार्मिक दौर लौटा। विभिन्न शोधों से यह सिद्ध किया गया है कि श्रव्य माध्यम की तुलना में दृश्य माध्यम अधिक प्रभावी होते हैं। ऐसे में टेजीविजन ने हिन्दू धार्मिक टी.वी. सीरियल को प्रदर्शन कर हिन्दू धार्मिक गाथाओं को नया आयाम दिया। क्योंकि टेलीविजन पूरे विश्व में संचार के लिए विशेष स्थान रखता है और अपनी बात को कहने का अप्रत्यक्ष तरीका अपनाता है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में समझे तो इसे एक उदाहरण के तौर पर समझ सकते हैं जैसे 'हिन्दू धार्मिक ग्रंथ' रामचरित मानस जोकि तुलसीदास द्वारा रचित है, उसमें बताया गया कि हनुमान इतने बलशाली थे कि जड़ी-बूटी का पूरा पहाड़ अपने हाथ में रखकर उड़ते हुए एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले गए।"हिन्दू धार्मिक ग्रंथ' के इस चित्रण को या सिर्फ पढ़ा गया और या तो सिर्फ सुना गया। लेकिन कभी दृश्यात्मक रूप से प्रदर्शित नहीं किया गया, परंतु जब टेजीविजन में यह दृश्य दिखाया गया तो आस्था और गहरी हो चली। इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि टेजीविजन के द्वारा प्रेषित किया जाने वाला संचार प्रभावी होता है, और अन्य माध्यमों की तुलना में इस माध्यम को हमेशा सराहा जाता है। वैश्वीकरण और पाश्चात्य शैली तथा अन्य विचारधाराओं के प्रभाव के बाद 'हिन्दू धार्मिक' टी.वी. सीरियल का चित्रण प्रभावी होने लगा और धार्मिक-पौराणिक टी.वी. सीरियल का चित्रण प्रभावी हुआ। टेजीविजन मनोरंजनात्मक तंत्र के रूप में देखा ज़रूर जाता है, लेकिन जनसंचारकों की माने तो टेजीविजन हमेशा से संदेश का माध्यम रहा है।

सांख्यिकीय विश्लेषण- 1.कोरोना काल में लॉकडाउन के दौरान प्रसारित 'रामायण' टी.वी. सीरियल का ग्रामीण परिवारों के स्वास्थ्य एवं मानसिक व्यवहार पर प्रभाव पडा़। हाँ 90 प्रतिशत, नहीं 10 प्रतिशत। 2.कोरोना काल में लॉकडाउन के दौरान प्रसारित 'रामायण' टी.वी. सीरियल से क्या ग्रामीण निवासियों को कोरोना जैसी महामारी से बचाव में मदद की। हाँ 90 प्रतिशत, नहीं 10 प्रतिशत। 3.कोरोना काल में लॉकडाउन के दौरान प्रसारित 'रामायण' टी.वी. सीरियल से क्या ग्रामीण युवाओं में अभिरुचि देखने को मिली?हाँ 90 प्रतिशत, नहीं 10 प्रतिशत। 4.कोरोना काल में लॉकडाउन के दौरान पुन: प्रसारित 'रामायण' टी.वी. सीरियल ने क्या कुछ नए प्रतिमान गढ़े हैं ? हाँ 90 प्रतिशत, नहीं 10 प्रतिशत। 5.कोरोना काल में लॉकडाउन के दौरान प्रसारित 'रामायण' टी.वी. सीरियल देखकर क्या आपके मन मस्तिष्क पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है या नहीं ? हाँ 90 प्रतिशत, नहीं 10 प्रतिशत। 6.कोरोनाकाल में लॉकडाउन के दौरान प्रसारित 'रामायण'धारावाहिक ने आपकी दिनचर्या को प्रभावित किया या नहीं ? हाँ 90 प्रतिशत, नहीं 10 प्रतिशत। 7.आधुनिक जीवन शैली को सुदृढ़ करने में 'रामायण'धारावाहिक का प्रभाव रहा? हाँ 90 प्रतिशत, नहीं 10 प्रतिशत। 8.जब लोग कोरोना काल में सामाजिक दूरी की बात करते थे,उस निराशा के समय में 'रामायण'धारावाहिक ने सभी को एक साथ बैठने एवं दुख -दर्द बाँटने का अवसर दिया या नहीं? हाँ 90 प्रतिशत, नहीं 10 प्रतिशत। 9.'रामायण'धारावाहिक को देखने के बाद लोगों की जीवन के प्रति विश्वसनीयता बढ़ी? हाँ 90 प्रतिशत, नहीं 10 प्रतिशत। बच्चों एवं वृद्धों के मन-मस्तिष्क पर 'रामायण'धारावाहिक का सचमुच कुछ प्रभाव दिखा ? हाँ 90 प्रतिशत, नहीं 10 प्रतिशत।

निष्कर्ष- टेजीविजन हमेशा से एक लोकतांत्रिक प्रभावी संचार माध्यम के तौर पर देखा जाता रहा है। भारतीय टेजीविजनने पौराणिक गाथाओं के प्रदर्शन को नया आयाम दिया। क्योंकि अभी तक हिन्दू पौराणिक गाथाओं को हम या तो पढ़ते आए या फिर सुनते आए। टेजीविजन ने पौराणिक हिन्दू गाथाओं को दृश्यात्मक परिदृश्य दिया, जिसने आम जन-मानस पर धार्मिक संचार की विशेष छाप प्रस्तुत की। इसी क्रम में कोरोना काल में लॉकडाउन के दौरान प्रसारित 'रामायण' टी.वी. सीरियल का ग्रामीण समाज पर प्रभाव अत्यधिक देखने में आया है,जिसे नकारा नहीं जा सकता है। शोध के आधार पर रामायण टीवी सीरियल का दर्शकों के मन मस्तिष्क पर सकारात्मक प्रभाव अत्यधिक देखने में आया है, जिसे नकारा नहीं जा सकता है।

000

संदर्भ- 1.कुमार, केवल जे.(2017) भारत में जनसंचार: जायको पब्लिशिंग हाअस, फोर्ट, मुंबई। 2.गुप्ता, आर. (2009). पापुलर मास्टर गाइड: रमेश पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली। 3. सागर, आर., डायरेक्टर (1987) रामायण, बॉम्बे: सागर इंटरप्राइजेज। 4.रिचमैन, पी. (1991) मैनी रामायनाज: दी डायवर्सिटी ऑफ नैरेटिव ट्रैडिशन इन साउथ एशिया वर्कले: युनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, 1991। 5.पारख, जवरीमल्ल. (2006). हिन्दी सिनेमा का समाजशास्त्र. दिल्ली: ग्रन्थ शिल्पी इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, 21. 6.श्रीनेत, दिनेश. (2012). पश्चिम और टेजीविजन. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 42.

(शोध आलेख)

सामाजिक यथार्थ और निराला

शोध लेखक : डॉ. ज़रीना सईद
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर
करामत हुसैन मुस्लिम गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, लखनऊ।

डॉ.ज़रीना सईद
101, द्रोसिया अपार्टमेंट, चाँदगंज गार्डन रोड, चाँदगंज, अलीगंज, लखनऊ
226024 उप्र
मोबाइल- 9839946984
ईमेल- zarinasayeed37235@gmail.com

परंपराओं और रूढ़ियों को छोड़ कुछ नया करने वाले साहित्यकार को आरम्भ से ही विरोधों का सामना करना पड़ता है। निराला जी की छंद मुक्त कविता, उनकी दार्शनिकता और बौद्धिकता साहित्य जगत् के लिए सहज ग्राह्य नहीं थी। निराला समाज की उस भयंकर विषमता को देख उद्विग्न थे जिसके कारण कुछ लोग ऊँची अट्टालिकाओं में सुख-सुविधापूर्ण जीवन बिताते हैं तो कुछ दिन रात ख़ून-पसीना बहा कर दो जून की रोटी भी नहीं जुटा पाते हैं। विषम परिस्थितियों में पत्थर तोड़ने वाली श्रमिक युवती के जीवन की कथा को कविता का रूप देने के लिए कवि को बाध्य किया है, जो इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़कर जीवन-यापन करती है। वह जहाँ बैठती है, वहाँ न कोई छायादार पेड़ है, न ही छाया का कोई दूसरा साधन है, तेज धूप में आँखें झुकाए हाथ में हथौड़ा लेकर वह पत्थर तोड़ती है। जब दोपहर में ऊँची अट्टालिकाओं में रहने वाले सुविधा संपन्न लोग भोग-विलास का जीवन व्यतीत करते हैं, तो वह गर्मी में झुलसती हुई पत्थर तोड़ रही होती है- वह तोड़ती पत्थर; / देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर / वह तोड़ती पत्थर। / कोई न छायादार / पेड़ जिसके तले बैठी हुई स्वीकार; / श्याम तन, भर बँधा यौवन, / नत नयन प्रिय-कर्म-रत मन'1

आगे वह उस युवती की दीनता, विवशता तथा कातर दृष्टि का सजीव चित्र प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं- देखते देखा मुझे तो एक बार / उस भवन की ओर देखा चिन्नतार / देख कर कोई नहीं / देखा मुझे उस दृष्टि से / जो मार खा रोई नहीं2

'बादल राग' कविता में कवि बादल से समाज में नवीन क्रांति उत्पन्न करने के लिए लोगों के हृदय में उथल-पुथल मचाने का आग्रह करता है। दूसरे बादल राग' में वह समाज में विषमता उत्पन्न करने वाले और समस्त वैभव का अपने लिए संग्रह करने वाले शोषकों को छिन्न-भिन्न करने हेतु आह्वान करता है। बादल राग में रोग-शोक में हँसने वाले शिशुओं के विषय में वे कहते हैं- अट्टालिका नहीं है रे / आतंक भवन, / सदा पंक पर ही होता / जल- विप्लव प्लावन / शूद्र प्रफुल्ल जलज से / सदा छलकता नीर, / रोग शोक में भी हँसता है / शैशव का सुकुमार शरीर।3

निराला जी ने ऐसे काव्य का सृजन किया, जिसमें समाज की व्यथा और वेदना अभिव्यक्त हुई है। उसमें सामाजिक विषमता से पीड़ित मानव का चित्रण है। इसी प्रकार उनका मन उस भिक्षुक को देखकर अत्यंत व्यथित हो उठता है, जो इतना कृशकाय है कि भूख के कारण उसके पेट और पीठ मिलकर एक होते जान पड़ते हैं। 'भिक्षुक' शीर्षक कविता में वे भिक्षुक की दशा का जीवन्त चित्र उपस्थित कर देते हैं- वह आता- / दो टूक कलेजे के करता / पछताता पथ पर आता। / पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक, / चल रहा लकुटिया टेक, / मुट्ठी भर दाने को भूख मिटाने को / मुँह फटी-पुरानी झोली का फैलाता- / दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।'4

कवि ने देश में नवजीवन के संचार की कामना की है। निराला के काव्य-संसार में उपेक्षितों के उन्नयन, उनके प्रति गहन करुणा और आमजन को प्रतिष्ठित करने वाली रचनाएँ मिलती हैं। हमारे समाज में प्राचीन मान्यताओं और रूढ़ियों की जड़ें बहुत गहरी हैं। किसी टूटे पेड़ की डाली के समान स्थिति वाली विधवा की दीन दशा को देख निराला जी अत्यंत व्यथित होकर 'विधवा' शीर्षक कविता में लिखते हैं- यह दुख वह जिसका नहीं कुछ छोर है, / दैव अत्याचार कैसा घोर और कठोर है! / क्या कभी पोछे किसी ने अश्रु जल / या किया करते रहे सबको विकल? / ओस-कण-सा पल्लवों से झड़ गया / जो अश्रु भारत का उसी से सर गया।5

निराला जी ने सामाजिक क्रांति के स्वर को तीव्रता एवं प्रखरता प्रदान करते हुए अपने देश की उन सोई हुई शक्तियों को जगाने का प्रयास किया है, जो ग़ुलामी की निद्रा में सो रही थीं और जिन्हें अपने अतीत के गौरव का तनिक भी स्मरण नहीं था। निराला जी की रचनाओं में कहीं न कहीं अतीत से मुक्त होने का आग्रह है। निराला प्राचीनता को त्याग कर नवीनता की कामना करते हुए कहते हैं- नव गति, नव लय, ताल छंद नव। / नवल कंठ नव जलद मंद्र रव, / नव नभ

के नव विहग-वृंद को / नव पर, नव स्वर दे!

तत्कालीन जनजीवन का कोई भी अंग निराला जी की दृष्टि से अछूता नहीं रहा है। उन्होंने तीक्ष्ण व्यंग्य-प्रहार से सामाजिक चेतना को ही नहीं जागृत किया, अपितु तथाकथित जनसेवकों, पूँजीपतियों एवं शोषकों की ख़ूब ख़बर ली है। 'कुकुरमुत्ता' शीर्षक कविता में कवि ने समाज के शोषक वर्ग पर करारा व्यंग्य किया है। निराला जी ने उनकी कड़ी भर्त्सना की है, जो ग़रीब मज़दूरों और किसानों का शोषण करते हैं और उनके बल पर विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। 'कुकुरमुत्ता' कविता में गुलाब पूँजीपति वर्ग का और कुकुरमुत्ता सर्वहारा वर्ग का प्रतीक है। जिस प्रकार गुलाब खाद का ख़ून चूस कर फूलता और डाल पर इठलाता है, उसी प्रकार पूँजीपति सर्वहारा वर्ग का शोषण करके सुख-सुविधा पूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। कुकुरमुत्ता गुलाब से कहता है- अबे सुन बे, गुलाब, / भूल मत जो पाई खुशबू रंगो आब, / ख़ून चूसा खाद का तूने अशिष्ट, / डाल पर इतराता है केपीटलिस्ट! / कितनों को तूने बनाया है गुलाम, / माली कर रक्खा, सहाया जाड़ा-घाम।

कविवर निराला ने मात्र शोषक और शोषित की बात नहीं की, उन्होंने इस स्थिति को दूर करने का प्रयास किया और शिक्षा को सामाजिक विषमता को दूर करने का साधन बताया। निराला जी ने जो कुछ कहा है, वह बहुआयामी है। जिस दलित चेतना की बात आज बड़ी तेजी से हो रही है, वह चेतना उनके काव्य में प्रखर रूप में मिलती है। शोषितों का उत्पीड़न और उनकी व्यथा निराला के मर्म को गहरा दुख देती है। आर्थिक मार का दंश झेलते हुए किसान की स्थिति का वर्णन करते हुए निराला जी ने कहा है- जीर्ण बाहु है जीर्ण शरीर / तुझे बुलाता कृषक अधीर / ओ विप्लव के वीर। / चूस लिया है उसका सार / हाड़-मात्र ही है आधार / ऐ जीवन के पारावार।7

अपनी कविता 'जल्द जल्द पैर बढ़ाओ' में वे कहते हैं- जल्द जल्द पैर बढ़ाओ, आओ, आओ! / आज अमीरों की हवेली / किसानों की होगी पाठशाला, / धोबी, पासी, चमार, तेली / खोलेंगे अधेरे का ताला, / एक पाठ पढ़ेंगे, टाट बिछाओ।"8

कविवर निराला ऐसा समाज बनाना चाहते थे, जिसमें निरक्षरता दूर हो जाए और असमानता समाप्त हो। हवेली में स्कूल खुलें, सब वैसी शिक्षा प्राप्त करें, जो भाग्यशाली लोगों को ही उपलब्ध है। डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना के अनुसार- "निराला की काव्यानुभूति में तत्कालीन द्वंद्वग्रस्त जीवन और जगत की विविधता भरी हुई है । उसमें क्रांतिकारी विचारों की तीव्र ज्वाला भी धधक रही है और प्रेयसी के प्रेमालापों की शीतल हिम-सरिता भी प्रवाहित हो रही है।"9

निराला के काव्य में जनजीवन के प्रति गहरी संवेदना है। उसमें सामाजिक परिवर्तन तथा सांस्कृतिक क्रांति के लिए वर्ग चेतना तथा आत्म-संघर्ष के तत्व विद्यमान हैं। उनके काव्य में मिलने वाले तत्वों के आधार पर विचारको ने उनको कठोर और कोमल दो रूपों में देखा है। रामविलास शर्मा के शब्दों में निराला के दो मन थे...-एक थका हुआ.... दूसरा मन अपराजेय, सतर्क और विवेकपूर्ण निराला मानो अर्धनारीश्वर थे। देखने में सुंदर बड़ी-बड़ी आँखें, लहरियादार बाल... वह स्वयं अपने रूप पर मुग्ध थे। इनके साथ पुरुषत्व, आसक्ति, आक्रामक व्यवहार यह सब भी उनमें था । मार्ग की कठिनाइयाँ जितना ही बढ़तीं, निराला का भिक्षुक मन उतना ही अधीर हो उठता। सौभाग्य से निराला पहलवान, संन्यासी, महाकवि, राजनीतिज्ञ सब कुछ एक साथ बनना चाहते थे; इसलिए उनकी ऊर्जा विभिन्न कल्पना- चित्रों में बिखर गई थी।10

तोड़ने वाले दुख की कविताओं में निराला की सबसे यादगार कविता 'सरोज-स्मृति' है। राजेंद्र कुमार के शब्दों में 'सरोज-स्मृति' जैसी कविता केवल सरोज की ममता से जुड़ने का परिणाम नहीं हो सकती थी। दुख ही जिस जीवन की कथा रही, उस जीवन में दुख के सामाजिक कारणों से टकराते हुए, कविता की ममता से जुड़ने की मुसलसल जद्दोजहद निराला की इस कविता में दर्ज है।11

निराला के काव्य में विषमता का जो रेखांकन किया गया है, वह हर संवेदनशील व्यक्ति के मर्म को छूता है। उन्होंने जो कुछ कहा वह एकांगी नहीं है। उनके लिए दुखियों के दुख की कथा कहना पर्याप्त नहीं है, वे उसका उत्तर भी चाहते हैं। वे कहते हैं- सारी संपत्ति देश की हो / सारी आपत्ति देश की बने / जनता जातीय वेश की हो / वाद से विवाद यह तने, / काँटा काँटे से कढ़ाओ।12

इस प्रकार अपने काव्य के माध्यम से निराला सामाजिक क्रांति का आह्वान करते हैं। परमानंद श्रीवास्तव के शब्दों में- "निराला की कविता सामाजिक परिवर्तन के पक्ष में है पर वह सामाजिक यथार्थ का बाह्य निरूपण मात्र नहीं करती, व्यक्तित्व और परिवेश के जटिल द्वंद्वों को भी अभिव्यक्त करती है।13

000

संदर्भ-

1 .राग-विराग: सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सम्पादक राम विलास, शर्मा, संस्करण-2 0 1 4 लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ-118, 2.वही, पृष्ठ-119, 3. वही, पृष्ठ-56, 4. अपरा: सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' संस्करण : 2017 राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ-66, 5. वही पृष्ठ-56, 6. कुकुरमुत्ता: सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला, संस्करण : 2017, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ-- 49, 7. परिमल : सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' पृष्ठ-139, 8. राग-विराग सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला संस्करण: 2014, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ-1 3 7 , 9 . हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि :डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, संस्करण 1986 / 87, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, पृष्ठ-197, 10. निराला की साहित्य-साधना, प्रथम खंड : राम विलास शर्मा, संस्करण 1969, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-440, 11. निराला का काव्य: विविध संदर्भ: डॉ. राजेन्द्र कुमार, संस्करण 2001, हिन्दी परिषद प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ-115, 12. भारतीय साहित्य के निर्माता: निराला, परमानंद श्रीवास्तव, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, संस्करण 1974, पृष्ठ- 32, 13. वही, पृष्ठ-32

(शोध आलेख)

हिन्दी ग़ज़ल की सामाजिक चेतना

शोध लेखक : विनीत कुमार यादव (शोधार्थी), लखनऊ विश्वविद्यालय
शोध निर्देशक : डॉ. क्षमा मिश्रा, लखनऊ विश्वविद्यालय

शोध-सार: आज की हिन्दी ग़ज़ल समाज में हो रहे सूक्ष्म तम बदलाव पर भी पैनी नज़र बनाए हुए हैं। चाहे राजनीति हो या विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, वंचित समुदाय का शोषण हो या उनके उत्थान के लिए किए जा रहे प्रयास, सांप्रदायिक हिंसा हो या अकेलापन, आतंकवाद हो या अध्यात्म, हिन्दी ग़ज़ल इन सभी विषयों को समाहित करने में सक्षम है।

बीज-शब्द : हिन्दी ग़ज़ल, समाज, वंचित वर्ग, पर्यावरण, स्त्री विमर्श

मूल लेख :

साहित्य के संबंध में संस्कृत में एक उक्ति है - 'स हितकर इति साहित्य:।' अर्थात जो हितकर है, वही साहित्य है। साहित्य की उपादेयता में ही साहित्य की प्रासंगिकता है। साहित्यिक रचना के निर्माण काल में, उस काल की युगभावना का समावेश रचना को जीवंत भी बनाता है। हिन्दी साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने अपनी पुस्तक हिन्दी साहित्य का इतिहास में लिखा है कि-

''प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है। अत: कारण स्वरूप इन परिस्थितियों का किंचित् दिग्दर्शन भी साथ ही साथ आवश्यक होता है।''

ग़ज़ल एक आयातित विधा है। इसने अरब से चलकर ईरान होते हुए भारत की यात्रा की है। तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों के कारण भारत में ग़ज़ल पहले राज दरबारों में, फिर आम आदमी तक पहुँची। डॉ. रोहिताश्व अस्थाना ने हिन्दी ग़ज़ल के उद्भव और विकास पर टिप्पणी करते हुए कहा है

विनीत कुमार यादव
403, टावर 1, बी बी डी ग्रीन सिटी,
लखनऊ, उत्तर प्रदेश 226028
ईमेल- vinit.edu@gmail.com

एक स्वतंत्र साहित्यिक विधा के रूप में हिन्दी ग़ज़ल की शुरुआत अमीर खुसरो (1253 ई. - 1325 ई.) से मानी जाती है। दरबारी कवि होने के कारण उनकी रचना की विषय वस्तु पूर्णत: स्वतंत्र नहीं थी। अपने सुल्तान को ख़ुश रखने के लिए उनकी तारीफ में कसीदे पढ़ना, समय गुज़ारने के लिए मनोविनोद करना, पहेलियाँ बुझाना, इश्क और मुहब्बत की ग़ज़लें कहना उनका कवि - धर्म था। डॉ. रोहिताश्व अस्थाना ने हिन्दी ग़ज़ल के उद्‌भव और विकास पर टिपण्णी करते हुए कहा है– "उर्दू - फारसी ग़ज़ल के समानांतर हिन्दी में भी वह परंपरा तेरहवीं शताब्दी से ही स्फुट रूप में विकसित होती आ रही है। अमीर खुसरो की अनेक ग़ज़लों में निहित हिन्दी रंग ने हिन्दी ग़ज़ल की संभावनाओं को गहरा रंग प्रदान किया।"

अमीर खुसरो के बाद लगभग 800 वर्षों तक हिन्दी ग़ज़ल की विषय वस्तु लगभग एक सी रही। इनमें प्रेमी प्रेमिका के बीच का वार्तालाप, नारी सौंदर्य, संयोग वियोग आदि से संबंधित ग़ज़लें कही गईं। इतने लंबे समय तक सिर्फ एक ही विषय पर ग़ज़लें कहने का प्रभाव यह हुआ कि ग़ज़ल का अर्थ ही रूढ़ हो गया। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और तकनीकी प्रगति की तरफ हिन्दी ग़ज़ल उदासीन रही।

साहित्य की कोई भी विधा जब तक अपने वातावरण और उस में हो रहे बदलावों को समाहित नहीं करती तब उसकी प्रासंगिकता सीमित हो जाती है। हिन्दी ग़ज़ल के साथ भी यही हुआ।

सन 1975 के आस-पास भारत के राजनीतिक और सामाजिक वातावरण में बड़े बदलाव हुए। 28 वर्ष पुराने लोकतंत्र को आपातकाल का सामना करना पड़ा। परिवार नियोजन सम्बन्धी कड़े फैसलों से जनता आहत हुयी। दुष्यंत कुमार ने इस उथल-पुथल भरे सामाजिक और राजनैतिक ताने-बाने को अपनी ग़ज़लों का विषय बनाया। दुष्यंत कुमार ने यह साबित किया कि हिन्दी ग़ज़ल में भी साहित्य की अन्य विधाओं की तरह समसामयिक विषयों को प्रभावी ढंग से व्यक्त किया जा सकता है। दुष्यंत कुमार ने हिन्दी ग़ज़ल को एक नई दिशा देते हुए यह सिद्ध किया कि हिन्दी ग़ज़ल में भी समकालीन मुद्दों को अभिव्यक्त करने की असीम क्षमता है।

वे कर रहे हैं इश्क पे संजीदा गुफ्तगू / मै क्या बताऊँ मेरा कहीं और ध्यान है

दुष्यंत कुमार ने कोमलांगी विधा मने जाने वाली ग़ज़ल में उन्होंने क्रांति का स्वर भरा। दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों में उनके समय की परिस्थितियों का वर्णन मिलता है। दुष्यंत कुमार से समकालीन हिन्दी ग़ज़ल की जो नई परम्परा विकसित हुई उसमें मुन्नवर राणा, अदम गोंडवी, बल्ली सिंह चीमा, विनय मिश्र, ममता किरण, प्रदीप साहिल, गौतम राजऋषि, ज्ञान प्रकाश विवेक, गिरिराजशरण अग्रवाल, रामकुमार कृषक, राम मेश्राम, जहीर कुरेशी, कमलकिशोर श्रमिक, राहत इंदौरी, माधव कौशिक, देवेन्द्र आर्य, मधुवेश, महेश अग्रवाल, हरेराम समीप, इंदुश्रीवास्तव, विनय मिश्र, राजेश रेड्डी, किशन तिवारी, शिवओम अम्बर, डी.एम. मिश्र आदि हिन्दी ग़ज़लकारों ने समकालीन परिस्थितियों को अपनी ग़ज़लों का विषय बनाया।

मुनव्वर राणा ने हिन्दी ग़ज़ल को एक नई पहचान दी। परंपरागत रूप से ग़ज़लें सिर्फ महबूब के सौंदर्य वर्णन, वार्तालाप, प्रेम निवेदन, मिलन-वियोग आदि तक सीमित थी। मुनव्वर राणा ने हिन्दी ग़ज़ल के माध्यम से माँ, बुज़ुर्ग, भाई-बहन, बच्चे, बेटी आदि रिश्तों को अपनी ग़ज़लों का विषय बनाया।

दुआएँ माँ की पहुंचाने को मीलों मील जाती हैं / कि जब परदेस जाने के लिए बेटा निकलता है /

इस रेत के घरौंदे को बेटे महल समझ / मैं जो भी लिख रहा हूँ उसी को ग़ज़ल समझ

गौतम राजऋषि की ग़ज़लों में नए मुहावरों और नए बिम्बों के माध्यम से समकालीन पत्रकारिता, देश भक्ति, पर्यावरण जैसे तमाम समकालीन मूल्यों की अभिव्यक्ति हुयी है। गौतम राजऋषि के पहले ग़ज़ल संग्रह 'पाल ले इक रोग नादां' की भूमिका में डॉ राहत इंदौरी ने लिखा है कि "जो बात गौतम को अपने समकालीन शायरों से अलग करती है, एक नई पहचान देती है वह है गौतम की इमेजरी, रोज़मर्रा की ज़िंदगी में इस्तेमाल होने वाली चीजें और आम ज़ुबान में पुकारी जाने वाली बातें जैसे कि चाय, मोबाइल, कैडबरी, हैंगओवर, बालकोनी वगैरह कुछ इस कदर उनके आसार में घुल मिलकर उभरते हैं कि बस दाद निकलती रहती है पढ़ने के बाद।" हिन्दी ग़ज़ल में अपने अनूठे प्रयोगों द्वारा गौतम राजऋषि ने हिन्दी ग़ज़ल के आयाम को काफी विस्तृत किया है। जैसे -

चीड़ के जंगल खड़े थे देखते लाचार से / गोलियाँ चलती रही इस पार से उस पार से

मिट गया एक नौजवान कल फिर वतन के वास्ते / चीख तक उठी नहीं एक भी अख़बार से /

कितने दिन बीते कि हूँ मुस्तैद सरहद पर इधर / बाट जोहे है उधर माँ पिछले ही त्यौहार से

भारत में ज़्यादातर लोग अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाते हैं। इसका दुष्प्रभाव पूरे समाज पर पड़ता है। स्वस्थ बचपन, स्वस्थ समाज का आधार है। परन्तु ग़रीबी न सिर्फ शारीरिक अपितु मानसिक रूप से भी बच्चों के स्वस्थ विकास को बाधित करती है। 21वीं सदी का ग़ज़लकार इस उपेक्षा के प्रति बहुत ही संवेदनशील है। गरीबी से अभिशापित बच्चे आज भी भूखे पेट सोने को अभिशप्त हैं। मुन्नवर राणा ने रेख्ता फाउंडेशन के द्वारा आयोजित मुशायरे में शेर कहा -

फ़रिश्ते आ कर उन के जिस्म पर ख़ुश्बू लगाते हैं / वो बच्चे रेल के डिब्बों में जो झाड़ू लगाते हैं

संस्कृति एक जटिल एवं व्यापक विचार है। संस्कृति के अनुसार ही व्यक्ति की जीवन शैली और मूल्यों का विकास होता है। सांस्कृतिक मूल्य वे हैं जो विश्वासों, भाषाओं, रीति-रिवाजों, परंपराओं और रिश्तों के एक समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं। मानव को मानव बनाने का श्रेय उन सांस्कृतिक मूल्यों को जाता है, जिनके माध्यम से वह अपना जीवन व्यतीत करता है। ये मूल्य ही उसे उच्च

से उच्चतर विकास की ओर ले जाते हैं। इसी तरह, सांस्कृतिक मूल्य लोगों की सांस्कृतिक पहचान, उनकी आदतों, दृष्टिकोण और सामाजिक विशेषताओं को स्थापित करना संभव बनाते हैं। हिन्दी ग़ज़ल में प्रकृति को विषय बनाकर भी ग़ज़लें कही जा रहीं हैं। ममता किरण ने कहा हैं -

चाँद तारे नदी पेड़ पौधे / ख़ूब कुदरत के भी काफिये हैं।

सदियों से भारत में नदियों की पूजा करने की परम्परा रही है। धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, व्यापारिक, पर्यटन, स्वास्थ्य, कृर्षि, शैक्षिक, औषधि और न जाने कितने क्षेत्र हैं जिनसे कि हमारी नदियाँ सीधे-सीधे जुड़ी हुई हैं।

जीवन का आधार हैं नदियाँ / सपनों का संसार हैं नदियाँ /

राह में आते कंकड़ - पत्थर / सहती नित्य प्रहार हैं नदियाँ /

तहज़ीबों की जन्म दात्री / बाँटे शिष्टाचार हैं नदियाँ /

धर्म, कर्म और मोक्ष का संगम / जीवन का उद्धार हैं नदियाँ /

सागर से मिलने की खातिर / मीलों जाती पार हैं नदियाँ

सदियों से मनुष्य अपनी रोज़मर्रा की अनेकों ज़रूरतों के लिए पेड़-पौधों पर निर्भर रहा है। पेट की भूख मिटाने से लेकर सुगंध, सुरक्षा और औषधियों के लिए मानव समुदाय पेड़-पौधों पर निर्भर रहा है। परन्तु इन्हीं पेड़ - पौधों को आज सबसे बड़ा खतरा मानव समुदाय से ही है। पर्यावरण संकट की विडंबना को प्रदीप चौबे ने कुछ यूँ बयाँ किया है – चाहता है पेड़, बस / धूप, पानी और क्या

वर्तमान समय में स्त्री विमर्श पर काफी चर्चा हो रही है। राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मंचों पर स्त्रियों ने अपनी बराबरी के अधिकार को लेकर कई आंदोलन किए हैं। हिन्दी ग़ज़ल भी इस आंदोलन से अछूती नहीं है। भारत में 73वें संविधान संशोधन के द्वारा पंचायती चुनाव में 33 प्रतिशत सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित की गई है। यह सत्य है कि हर तीसरी पंचायत प्रतिनिधि एक महिला है परंतु उसके दायित्वों का निर्वहन आज भी पुरुषों के द्वारा किया जा रहा है। ग़ज़लकार डीएम मिश्र ने इसे अपनी ग़ज़ल का विषय बनाते हुए कहा है-

लछमिनिया थी चुनी गई परधान मगर / उसका पति - प्रधान देखकर आया हूँ

समकालीन समस्याओं में ग़रीबी को दुनिया की सबसे बड़ी समस्याओं में से एक माना जाता है। वर्तमान में देश की बड़ी आबादी ग़रीबी रेखा से नीचे रहने को मजबूर है। गरीबी से अभिशापित बच्चे आज भी भूखे पेट सोने को अभिशप्त हैं। भारत में ज़्यादातर लोग अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाते हैं। इसका दुष्प्रभाव पूरे समाज पर पड़ता है। स्वस्थ बचपन, स्वस्थ समाज का आधार है। परन्तु गरीबी न सिर्फ शारीरिक अपितु मानसिक रूप से भी बच्चों के स्वस्थ विकास को बाधित करती है। आज का ग़ज़लकार इस उपेक्षा के प्रति बहुत ही संवेदनशील है। ग़ज़लकार शिवओम अम्बर ने कहा है –

फूल जैसे सुबह गए घर से, राख हो शाम आ गए बच्चे /

बन गया एक और शीशमहल, नींव में काम आ गए बच्चे

भारत के संविधान में वंचित वर्गों के लिए विशेष प्रबंध किए गए हैं। भारत में जनजातीय समूह अपने अधिकारों को लेकर आज ज़्यादा सतर्क है। हिन्दी ग़ज़ल ने जनजातीय समूह की संवेदना ओं को समेटे हुए इसे अपना कथ्य बनाया है। पूजीपतियों द्वारा जनजातीय समूह के संसाधनों को हड़पने के लिए लगातार प्रयास किए जाते रहे हैं। बल्ली सिंह चीमा ने अपने इस शेर में इस मानसिकता पर गहरा कटाक्ष किया है- "जंगल को साथ लेकर ये घेरेंगे शहर को, / इन आदिवासियों की सियासत तो देखिए

आज की हिन्दी ग़ज़ल समाज में हो रहे सूक्ष्म तम बदलाव पर भी पैनी नज़र बनाए हुए हैं। चाहे राजनीति हो या विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, वंचित समुदाय का शोषण हो या उनके उत्थान के लिए किए जा रहे प्रयास, सांप्रदायिक हिंसा हो या अकेलापन, आतंकवाद हो या अध्यात्म, हिन्दी ग़ज़ल इन सभी विषयों को समाहित करने में सक्षम है। हिन्दी ग़ज़ल हजारी प्रसाद द्विवेदी के इस कथन को सार्थकता प्रदान कर रही है-

"मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ। जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षिता से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजोद्दीप्त न बना सके, जो उसके हृदय को परदु:खकातर और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।" निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि हिन्दी ग़ज़ल का भविष्य उज्जवल है।

000

संदर्भ-

रामचंद्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 2009, पृ. 5, रोहिताश्व अस्थाना : हिन्दी ग़ज़ल उद्भव और विकास, सुनील साहित्य सदन,संस्करण 2017, पृ. 10, दुष्यंत कुमार : साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, चौंसठवाँ संस्करण, 2016, पृ. 59, मुन्नवर राणा : माँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पृ. 55, मुन्नवर राणा : माँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पृ. 105, गौतम राजऋषि : पाल ले इक रोग नादाँ, हिन्दी युग्म नई दिल्ली, संस्करण 2017, पृ. 66, मुन्नवर राणा, साभार : रेख़्ता फाउंडेशन, ममता किरण : आँगन का शज़र, किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2020, पृ. 49, ममता किरण : आँगन का शज़र, किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2020, पृ. 52, कमलेश्वर : हिंदुस्तानी ग़ज़लें, राजपाल, संस्करण 2018, पृ 128, डी. एम. मिश्र : आईना दर आईना, नई दिल्ली, 2016, पृ. 29, शिवओम अम्बर : विष पीना विस्मय मत करना, पाँचाल प्रकाशन, फर्रूखाबाद, 2018, पृ. 36, बल्ली सिंह चीमा : उजालों को खबर कर दो, सेतु प्रकाशन, दिल्ली, 2019, पृ. 47, हजारी प्रसाद द्विवेदी : मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है, नया ज्ञानोदय (सं. लीलाधर मंडलोई), अंक 180, फरवरी 2018, पृ. 7

(शोध आलेख)

वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में भारतीय भाषा, साहित्य और संस्कृति

शोध लेखक : कविता
शोधार्थी
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक
शोध निर्देशक : डॉ. कृष्णा देवी
एसोसिएट प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

कविता, शोधार्थी
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

परिचय - 'वैश्वीकरण' शब्द अपने आप में व्याख्यात्मक है। यह पूरी दुनिया में लोगों के रीति-रिवाजों,परंपरा और उनकी संस्कृतियों के बीच समरूपता बनाए रखने के लिए एक अंतरराष्ट्रीय मंच है। वैश्वीकरण दुनिया भर में विचारों और संस्कृतियों के विभिन्न पहलुओं के आदान-प्रदान का द्योतक है। "वैश्वीकरण वह सैद्धान्तिक अवधारणा और व्यवहारिक कार्ययोजना है जो जीवन के प्रत्येक आयाम को विश्वस्तरीय स्वरूप प्रदान करने की समर्थक है। इसमें सेवाओं, वस्तुओं और विचारों के विश्वव्यापी प्रवाह के द्वारा समस्त विश्व को एक छोटे से गाँव का स्वरूप प्रदान किये जाने की संकल्पना अन्तर्निहित है।"1 वैश्वीकरण ने अन्य भौगोलिक क्षेत्रों की यात्रा करने वाले लोगों के साथ अन्वेषण की शुरुआत की और दुनिया भर में विभिन्न रोज़गारपरक अवसर भी दिये। मानवीय दृष्टिकोण की हर उन्नति के साथ, वैश्वीकरण ने हर जगह पर अपने पैरों के निशान जड़ने शुरू किए।

वैश्वीकरण के प्रसार में आज के युग में दूरसंचार, सोशल मीडिया और इंटरनेट की बड़ी भूमिका है। दुनिया भर में भूमंडलीकरण की व्यापक भूमिका है। इसने जीवन के हर क्षेत्र में अपने पैरों के निशान छोड़ दिए हैं। न केवल भारत में, बल्कि विश्व के अन्य देशों में भी लोगों की जीवन शैली और जीवन स्तर में बड़ा बदलाव आया है। भारत की समृद्ध सांस्कृतिक पृष्ठभूमि है और इसकी संस्कृति का गौरव दुनिया भर में प्रसिद्ध है। परंतु हमारी परंपराओं और रीति-रिवाजों ने भी वैश्वीकरण के उद्भव के साथ अपनी पकड़ खो दी है।

प्रमुख शब्द: वैश्वीकरण, संस्कृति, आधुनिकीकरण, आदि।

भारतीय संस्कृति पर वैश्वीकरण का प्रभाव - जब हम भारतीय संस्कृति का वैश्वीकरण के दृष्टिकोण से विश्लेषण करते हैं, तो हम देखते हैं कि पाश्चात्यकरण ने हमारी रीति-रिवाज, परंपरा और शिक्षा के साथ-साथ मानव जीवन के नैतिक मूल्यों पर भी अपना प्रभाव व्यक्त किया है। पाश्चात्य संस्कृति ने भारतीय जीवन के समस्त पहलुओं विशेषकर वर्ग, कला, साहित्य, सामाजिक और पारिवारिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तनों को उत्पन्न किया। इससे जाति प्रथा के नियमों में पर्याप्त ढिलाई आई, छुआछूत और पवित्रता अपवित्रता के आधार पर भेदभावों में कमी आई और व्यक्तिवाद, भोगवाद, अधार्मिकता, भौतिकवाद आदि प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिला।"2

डॉ. मनोज कुमार गौतम का मत है कि "भारतीय ग्रामीण समुदाय में जो परिवर्तन हुए हैं उनके परिणामस्वरूप उसका अधिक व्यापक आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक और धार्मिक व्यवस्थाओं से अधिक प्रभावी एकीकरण हुआ है। पिछले कुछ दशकों, विशेषकर दूसरे महायुद्ध के बाद से ग्रामीण संचार साधनों में व्यापक सुधार, राष्ट्र से लगाकर ग्राम तक विभिन्न स्तरों पर सर्वव्यापी बालिग मताधिकार और स्वशासन का प्रारम्भ, अस्पृश्यता का उन्मूलन, देहाती जनता में शिक्षा की बढ़ी हुई लोकप्रियता और सामुदायिक विकास योजना-इन सबसे गाँव वालों की आकांक्षाएँ और धारणाएँ बदलती जा रही हैं।"3

आइए हम भारतीय संस्कृति पर वैश्वीकरण के प्रभावों का बारीकी से विश्लेषण करें, जिसका वर्णन निम्नलिखित है-

ग्रामीण लोगों की जीवन शैली में बदलाव - भारत की वास्तविक संस्कृति अभी भी ग्रामीण जीवन में संरक्षित है। प्रौद्योगिकी की नई प्रगति का ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक प्रभाव नहीं है, लेकिन जैसे-जैसे समय का पहिया आगे बढ़ रहा है वैसे ही वैश्वीकरण का प्रभाव बढ़ रहा है। पहले इंटरनेट के बारे में कम ही लोग जानते थे। लेकिन अब परिवारों द्वारा डीटीएच और डिश टीवी सुविधाओं का लाभ उठाया जा रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में मोबाइल कनेक्शन बढ़ रहे हैं। शिक्षित युवाओं को रोज़गार देने के लिए गाँवों में कोई भी लघु उद्योग नहीं हैं। गाँव में अधिकतर लोग अभी भी पुराने फैशन के कपड़े पहनना पसंद करते हैं और पुरानी शैली में त्योहार मनाते हैं, लेकिन जिन परिवारों में शिक्षा का स्तर बड़ा है उनके रहन-सहन, तीज त्यौहार के रंग-ढंग बदलने लगे हैं। डॉ. मनोज कुमार गौतम के अनुसार "इस शिक्षा से ही उनका विवेक फिर से

जाग्रत हुआ है अपने धर्म के कठोर और अन्धविश्वास व नियमों का फिर से मूल्यांकन करने के लिए जागरूक हुए। इसके अतिरिक्त उनके अन्दर वैज्ञानिक मनोवृत्ति और तर्क शक्ति ने जन्म लिया है। अब वे केवल धर्म के नाम पर ही व्यवहारों को नहीं करते, वरन् उनमें कुछ व्यावहारिकता का भी पुट देखते हैं।"4

लोक नृत्य और लोक गीत आज भी ग्रामीणों के बीच लोकप्रिय हैं लेकिन नए ज़माने की पीढ़ी के युवा पॉप म्यूजिक या फिर माइकल जैक्सन, शकीरा के स्तर के म्यूजिक को पसंद करते हैं। जहाँ तक सामाजिक मूल्यों की बात है वैश्वीकरण का ग्रामीण जीवन पर भी प्रभाव पड़ा है। नई पीढ़ी के लोग भारतीय रीति-रिवाजों को महत्त्व कम देते हैं और पाश्चात्य दिवस जैसे ब्रदर डे, फादर डे या फिर वैलेंटाइन डे को ज़्यादा तवज्जो देने लगे हैं जो जीवन स्तर मानकों और भारत की सनातन सभ्यता के समतुल्य नहीं हैं।

परिवार संरचना का विघटन-

संयुक्त परिवार टूटन की यह समस्या वर्तमान में बहुत विकराल रूप धारण कर चुकी है। पश्चिमी सभ्यता में एकल परिवार या फिर 'न्यूक्लियर फैमिली' कह लीजिए अच्छा माना जाता है। लेकिन अब भारतीय समाज भी पश्चिमी संस्कृति के अनुकरण पर जीवन जीने की राह देख रहा है। इसीलिए वर्तमान में यह परंपरा भारत में भी बड़ी तेज़ी से विकसित हो रही है।

सयुंक्त परिवार विघटन के विषय में डॉ राजेन्द्र यादव लिखते हैं कि "आज़ाद भारत को संविधान ने जिस समता बंधुता, न्याय, समाजवाद के रूप में जनतंत्र की स्थापना का सपना दिखाया था वह उन्नीस सौ सत्तर यानी आजादी के पहले दो दशक में ही टूट गया। भारतीय समाज की सबसे मजबूत इकाई संयुक्त परिवार था जिसे पूँजीवाद ने बिखेर दिया।"5 हमने संयुक्त परिवार में समायोजित होने, बड़ों के मूल्यों को आत्मसात करने और युवा लोगों को अपने दादा-दादी की छाया के नीचे लाने के लिए धैर्य खो दिया है। इस पर रामधारी सिंह दिनकर का मानना है कि "जब पश्चिम के लोग समुद्र के पार से यहाँ आए, तब भारत के दरवाज़े एक ख़ास दिशा की ओर खुल गए। आधुनिक औद्योगिक सम्पता बिना किसी शोर-गुल के, धीरे- धीरे, इस देश में प्रविष्ट हो गयो। नए भावों और नए विचारों ने हम पर हमला किया और हमारे बुद्धिजीवी अंगरेज-बुद्धिजीवियो को तरह सोचने का अभ्यास करने लगे। यह मानसिक आन्दोलन, बाहर की ओर वातायन खोलने का यह भाव, अपने ढंग पर अच्छा रहा, क्योंकि इससे हम आधुनिक जगत् को थोड़ा-बहुत समझने लगे। मगर, इससे एक दोष भी निकला कि हमारे ये बुद्धिजीवी जनता से विच्छिन्न हो गए, क्योंकि जनता विचारों की इस नई लहर से अप्रभावित थी परंपरा से भारत में चिन्तन की जो पद्धति चली आ रही थी, वह टूट गई।"6

वैवाहिक मूल्यों में स्थिरता का न रहना और 'लिव इन रिलेशनशिप' जैसे नए रिश्तों को जन्म - हिंदू धर्म और संस्कृति के अनुसार विवाह को सोलह संस्कारों में से एक माना जाता है। हिंदू धर्म और संस्कृति में विवाह को पति-पत्नी के बीच जन्म-जन्मांतर का संबंध माना जाता है जिसे किसी भी परिस्थिति में तोड़ा नहीं जा सकता। यह मिलन उन दो लोगों के बीच न होकर उसके साथ-साथ परिवारजनों के साथ भी होता है। जैसे-जैसे पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव भारतीय लोगों पर बढ़ रहा है। वैसे ही विवाह नामक संस्था के विचार और सिद्धांत विलुप्त होते जा रहे हैं।

वर्तमान आधुनिक युग में विवाह के संस्कृतिपरक और सांस्कारिक मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है। आधुनिक पीढ़ी द्वारा भारतीय धर्म और संस्कृति के निर्धारित वैवाहिक रीति-रिवाजों और संस्कारों का उचित पालन नहीं किया जा रहा है। इसी तरह, विवाह ने भी अपने मूल्यों को खो दिया है। "इतना ही नहीं आधुनिक शिक्षा ने सह-शिक्षा का अवसर प्रदान कर दिया एक और अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहित किया है तो दूसरी ओर छुआछूत, अस्पृश्यता, पवित्रता अपवित्रता आदि भावनाओं को निरुत्साहित किया है। कहना न होगा ये सभी लौकिकीकरण के ही लक्षण है जो कि आधुनिक शिक्षा का ही प्रत्यक्ष परिणाम हैं।"7 भारतीय युवाओं में अहंकार का कारक भी वैश्वीकरण का एक उत्पाद है। वैश्वीकरण और पश्चिमी संस्कृति के उद्भव के साथ, युवाओं ने एक-दूसरे के साथ अच्छी तरह से मिश्रण करना शुरू कर दिया है। मैत्रीपूर्ण दृष्टिकोण और सामाजिकता की विशेषता प्रशंसनीय है। लेकिन प्रतिबंधों के टूटन ने भारतीय मानसिकता में शारीरिक संबंध के साथ भी खिलवाड़ किया है। इसने भारत में 'लिव-इन रिलेशनशिप' जैसे नए रिश्तों को जन्म दिया है। बलात्कार और यौन दुर्व्यवहार के मामलों में भी वृद्धि होना भी परिणाम है।

भोजन, वस्त्र और भाषा में बदलाव- भारतीय भोजन, कपड़े और भाषाएँ विभिन्न राज्यों के संबंध में भिन्न हैं। भोजन अपने स्वाद में भिन्न होता है, लेकिन हर भोजन का अपना पोषक मूल्य होता है और हर क्षेत्र घरेलू उपचार के साथ अपनी औषधीय तैयारियों में निर्दिष्ट और समृद्ध होता है। यहाँ तक कि कपड़े अलग-अलग राज्यों में भिन्न होते हैं जो महिला की गरिमा को बनाए रखने में बहुत विशेष है। दुनिया भर के व्यंजन अलग-अलग होते हैं। हालाँकि अलग-अलग स्वादों को जोड़ना है, फिर भी जिन खाद्य पदार्थों ने बहुत लोकप्रियता हासिल की है। वे 'जंक फूड आइटम' हैं जिन्होंने देश में स्वास्थ्य विकारों को बढ़ाया है। फिर से पुरुषों के लिए सूट की तरह ड्रेसिंग भारतीय प्रकार की जलवायु के लिए एक अनुचित मेल है। यहाँ तक कि भारतीय भी अपनी मातृभाषा या हमारी राष्ट्रीय भाषा को बढ़ावा देने के पक्ष में नहीं हैं। इसकी बजाय आज युवा अपनी राष्ट्रीय भाषा हिन्दी में बात करने में सकुचाते हैं। जिस तरह से स्कूली स्तर से फ्रेंच, जर्मन और स्पैनिश जैसे विदेशी भाषाएँ भारत में प्रचलित हो रही हैं, वह इस बात का उदाहरण है कि विदेशी लोगों की तुलना में हम भारतीय भाषाओं को कितना महत्त्व देते हैं।

भारतीय भाषाओं पर वैश्वीकरण का प्रभाव- औद्योगिकरण के युग ने भारतीय भाषाओं को स्कूली भाषाओं और शिक्षा के माध्यम के रूप में उपयोग करने के लिए

प्रेरणा दी थी। लेकिन समय के साथ राजनीतिक और अन्य स्तरों पर भारतीय भाषाओं के बढ़ते सशक्तिकरण के साथ ऐसा नहीं होना चाहिए। एनसीईआरटी द्वारा आयोजित अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण इंगित करता है कि विद्यालयों में उपयोग की जाने वाली भाषाओं की संख्या पिछले 25 वर्षों में 81 से घटकर 41 हो गई है। इसी प्रकार शिक्षा के माध्यम में प्रयुक्त भाषाओं की संख्या भी इसी अवधि के दौरान 47 से घटकर 18 हो गई है। गौरतलब है कि नए दौर के आगमन के साथ अंग्रेज़ी भाषा का प्रभाव बढ़ता जा रहा है।

मातृभाषा शिक्षा से मोहभंग- "औद्योगिकरण के युग में लोग स्कूली शिक्षा की भाषा और शिक्षा के माध्यम में अपनी मातृभाषा से दूर जा रहे हैं। यदि संचार और शासन के व्यापक उद्देश्यों के लिए एक भाषा को मातृभाषा के रूप में नहीं सीखा जाता है तो संबंधित भाषा धीरे-धीरे प्रभावी माध्यम के रूप में समाज से ग़ायब हो जाती है और केवल एक पहचान चिह्न की भूमिका ग्रहण करेगी।"8

भारतीय भाषाओं के माध्यम से उच्च शिक्षा में नगण्य उत्पादन- स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी, प्रमुख भारतीय भाषाओं में उच्चतर विज्ञान और तकनीकी शिक्षा उपलब्ध नहीं है। भारतीय भाषाओं के माध्यम से प्रसारित अनुसंधान उत्पादन नगण्य है। उदाहरण के लिए, नेशनल मैपिंग ऑफ साइंस: अर्थ साइंस रिसर्च इन इंडिया पर एक अध्ययन कहता है कि भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा सभी प्रकाशन चार रूसी लेख, दो हिन्दी लेख, एक जापानी और एक फ्रेंच लेख को छोड़कर अंग्रेजी में थे।

भारतीय भाषाओ की अनदेखी करना - हिन्दी हितार्थक समिति और अन्य बनाम भारत संघ से जुड़े मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने कहा, "यह हो सकता है कि हिन्दी या अन्य क्षेत्रीय भाषाएँ बहुत से लोगों को शिक्षा प्रदान करने का अधिक उपयुक्त माध्यम हो और परीक्षा आयोजित करना ज़्यादा उचित हो सकता है। प्रवेश, या अन्यथा, किसी विशेष क्षेत्रीय या हिन्दी भाषा में, या यह हो सकता है कि उस भाषा के विकास के कारण हिन्दी या अन्य क्षेत्रीय भाषा, अभी तक उस ज्ञान या क्षमता को प्रसारित करने या परीक्षण करने के लिए उपयुक्त माध्यम नहीं है जो चिकित्सा में हो सकती थी।

निष्कर्ष - निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि पाश्चात्य संस्कृति ने भारतीय समाज को बहुत अधिक प्रभावित किया ये प्रभाव अच्छे और बुरे दोनों ही थे जहाँ पाश्चात्य संस्कृति ने भारतीय समाज की परम्पराओं, रीति-रिवाजों, संस्कारों, उनके आचार-विचार, रहन-सहन आदि की खिल्ली उड़ाई। वहीं दूसरी ओर भारतीय समाज में व्याप्त अनेक कुप्रथाएँ यथा-बाल विवाह, सती प्रथा, विधवा विवाह आदि जिनसे समाज त्रस्त था का विरोध कर भारतीय समाज को इन कुप्रथाओं से मुक्ति दिलाई।

"पाश्चात्य विचारों में भारत का जो विश्वास जगा था, अब तो वह भी हिल रहा है। नतीजा यह है कि हमारे पास न तो पुराने आदर्श है, न नवीन और हम बिना यह जाने हुए बहते जा रहे हैं कि हम किधर को या कहाँ जा रहे है। नई पीढ़ी के पास न तो कोई मानदण्ड है, न कोई दूसरी ऐसी चीज़, जिससे वह अपने चिन्तन या कर्म को नियंत्रित कर सके।"9 जब भारतीय औद्योगिकरण का युग शुरू हुआ तो भारतीय भाषा, साहित्य और संस्कृति के विकास और उपयोग के साथ देशभक्ति और राष्ट्रवाद को जोड़कर, भारतीय भाषा, साहित्य और संस्कृति के लिए सुरक्षा के एक मज़बूत कवच के रूप में कार्य किया। हालाँकि, वैश्वीकरण के वर्तमान युग में, लगभग सभी भारतीय भाषा, साहित्य और संस्कृति को असहाय रक्षा की स्थिति में ले जाया गया है, क्योंकि ढाल उनसे दूर है। "ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था वाले डिजिटल समाज में, सभी भारतीय भाषा, साहित्य और संस्कृति खतरे में है, अगर वे नई भारतीय भाषा, साहित्य और संस्कृति की रणनीतियों के साथ सामना नहीं करते हैं। मुझे नहीं लगता कि उदारीकरण, निजीकरण, और वैश्वीकरण भारतीय भाषाओं के लिए और भारतीय भाषा, साहित्य और संस्कृति के उपयोगकर्ताओं के लिए कोई सुरक्षित पैदल मार्ग प्रदान करने जा रहे हैं।"10 वैश्वीकरण वास्तव में भारतीय भाषा, साहित्य और संस्कृति के बीच असमानता को बढ़ाता और पुष्ट करता है।

अंत में, हम कह सकते हैं कि वैश्वीकरण एक धीमी गति से फैलने वाले जोखिम कारक के रूप में हैं जिसने लगभग पूरे देश को इसकी गंभीरता से प्रभावित किया है। दुनिया भर में संस्कृति का सामान्यीकृत ज्ञान होने और विश्व स्तर पर होने और घटने की सकारात्मकता के साथ, अभी भी प्रमुख नकारात्मक प्रभाव हमारे देश के लिए काफी खतरनाक हैं। इसलिए, हमें अपने राष्ट्र के गौरव को संरक्षित करने और अपनी सांस्कृतिक प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए वैश्वीकरण की प्रक्रिया के साथ और अधिक सतर्कता की आवश्यकता है।

000

संदर्भ- 1.आलोक कुमार, पुखराज जैन,समकालीन राजनीति में प्रमुख मुद्दे, एस पी बी डी प्रकाशन, पृष्ठ 18, 2.डॉ. मनोज कुमार गौतम, भारतीय समाजशास्त्रीय चिन्तक, श्री विनायक पब्लिकेशन, आगरा, प्रथम संस्करण 2019, पृष्ठ 47, 3.वही, पृष्ठ 55, 4.वही, पृष्ठ 46, 5.राजेन्द्र यादव, अशोक वाजपेयी की कविता का जनतंत्र, मध्य भारती, अंक-70, जनवरी-जून, 2012, पृष्ठ 72, 6.रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, जनवाणी प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, कोलकाता, प्रथम संस्करण 1962, पृष्ठ 13, 7.डॉ. मनोज कुमार गौतम, भारतीय समाजशास्त्रीय चिन्तक, श्री विनायक पब्लिकेशन, आगरा, प्रथम संस्करण 2019, पृष्ठ 46, 8.डा.प्रमोद कुमार अग्रवाल, आईएएस, निबंध महासागर, संघ एवं राज्य लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित प्रतियोगी परीक्षाओ हेतू, पृष्ठ 25, 9.रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, जनवाणी प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, कोलकाता, प्रथम संस्करण 1962, पृष्ठ 13, 10.पुरुषोत्तम अग्रवाल, संस्कृति : वर्चस्व और प्रतिरोध, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, स. 1995, पृष्ठ 90

(शोध आलेख)

समकालीन हिन्दी कविता और परिवार का बदलता स्वरूप

शोध लेखक : डॉ. प्रियंका कुमारी

समकालीन हिन्दी कविता बड़ी सावधानी से पारिवारिक सम्बन्धों में हो रहे बदलावों को अभिव्यक्ति दे रही है। सभी समाज शास्त्री परिवार और सामाजिक संरचना के मूल में स्थानीय' अंतरंग समुदाय को बहुत महत्त्व पूर्ण मानते हैं। स्थानीय अंतरंग समुदाय उन लोगों का कमूह होता है, जो एक-दूसरे को भाली-भाँति परिचित होते हैं और जीवित बने रहने के लिए एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं। लोक संस्कृति और राष्ट्रीय संस्कृति का मूल उत्स' भी यह स्थानीय अंतरंग समुदाम ही रहा था। औद्योगिक क्रांति के बाद परिवार और सामाजिक संरचना में क्रांतिकारी परिवर्तन आया। स्थानीय अंतरंग समुदाय कल्पित समुदाय में बदल गया। कल्पित समुदाय को समाज नहीं कह सकते हैं, क्योंकि उसमें आपसी संबंध नहीं होते। इसलिए 'वह सिर्फ झुण्ड मात्र रह जाता है। झुंड ने बाज़ार को जो वरीयता दी है उसकी वजह परिवार, संस्कृति और समाज का ढाँचा बदल गया है। भीड़ में परिणित ऐसे समाज की अपनी कोई सांस्कृति नहीं, उसे झुंड सांकृति कहना ही ठीक होगा। कविता इसके विरुद्ध संघर्ष करती है, वह मनुष्य की गरिमा को कायम रखने का अपना दायित्व निभाती आ रही है।

आज भारतीय पारिवारिक संबंध इस तरह बदल गया है कि व्यक्ति से लेकर समूह तक केहर स्तर पर बदलाव को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। पूरा पारिवारिक ढाँचा इस तरह बदल गया है कि बदलाव को समझने का मौका भी हमें नहीं मिल रहा है। समकालीन कविता में बदलते इक घर का बिम्ब विभिन्न स्तरों पर उजागर हुआ है। मनमोहन समकालीन कविता के बारे में लिखते हैं- 'मनुष्य और उसकी रचनामक ऊर्जा के अवमूल्यन और उसके स्वत्व और उसकी गरिमा की तिरस्कार पूर्ण अवहेलना के जिस अपृश्य से इस समय हम सु-ब-रू हैं उसे देखने और खड़े रहने के लिए भी काफी जीवट चाहिए कहा जा सकता है कि समकालीन रचनाशीलता ख़ासकर कविता ने जीवट का परिचय दिया है और इस अपमान पूर्ण परिस्थिति से कोई ख़ास समझौता नहीं किया है।'1 समकालीन कविता की यही जीवट हमारी साँझी संस्कृति की जड़ और स्रोतों से समिधा जुड़ी रही है जो बदलाव की तेज़ आँधी ने भी मानवता की गरीमा की रक्षा करती है। संयुक्त परिवार की धारणा अब प्राय: ख़त्म हो चुकी है। राजेश जोशी ने एकल परिवार की त्रासद स्थिति को यथार्थ रूप में चित्रित किया है - "यह छोटा सा एकल परिवार / कोई एक बाहर चला जाए तो दूसरों को / काटने को दौड़ता है घर / कम हो रहा है मिलना - जुलना / कम हो रही है लोगों की जान-पहचान / सुख-दुख में भी पहले की तरह इकट्ठे नहीं होते लोग / तार से आ जाती है बधाई और शोक संदेश।'2

वर्तमान समय में बाज़ार परिवार को नष्ट कर दिया है। आज पूरे घर के माहौल में खाली जगह इस कदर बढ़ गई है कि उसे पाटने के लिए हम बाज़ार की तरफ देखते हैं। पर हमें इसका एहसास नहीं होता कि बाज़ार की वजह से ही परिवार के बीच खाली जगह बढ़ी है। विनय विश्वास का मत है कि सम्पर्कों के बीच से रिश्ते निकल रहे हैं। जैसे मुट्टी से रेत निकलता है। मंगलेश डबराल ने अमीर खुसरो की एक फारसी रचना की नई व्याख्या की तुम और मैं इस तरह एक हैं कि तुम्हारे और मेरे बीच कोई 'बीच' नहीं है। आज ऐसी स्थिति कल्पना में भी लगभग असंभव है। दो व्यक्तियों के बीच आज बीच ही बीच है। इसकी सबसे बड़ी वजह जीवन में अतिरिक्त और गैर ज़रूरी बढ़ता महत्त्व है। अतिरिक्त वस्तुएँ, अतिरिक्त विलास, अतिरिक्त बनावट; अतिरिक्त सुन्दरता, अतिरिक्त धन। तरह-तरह से बढ़ता यह अतिरिक्त जीवन को कुरूप बना रहा है। सम्बन्धों से, जीवता से रहित कर रहा है।'3 राजेश जोशी की कविता 'खिलौना' इसी बाज़ारवादी एकल परिवार की तरफ इशारा करती है- 'कुछ ही समय बाद उसने देखा कि खिलौनों का बाज़ार / प्लास्टिक की नकली बंदूकों, मशीन गनों, पिस्तौलों टैंक जैसे /

डॉ. प्रियंका कुमारी
सर गणेश दत्त नगर, रोड नं.-4
भाया-पताही, मुजफ्फरपुर (बिहार)
पिन कोड: -843113

खिलौनों से भर गया / बच्चों के अकेलेपन एक नकली और हिंसक उत्तेजना / से भरने की एक भयावह कोशिश की जा रही थी / हमारा अन्याय और हमारी हिंसा जो हमेशा ही / ग़रीब बाल मज़दूरों और भिखारी बच्चों के सामने / एक दुत्कार की तरह प्रकट होती है / अब हमारे खिलौनों में प्रकट हो रही थी।'4

घर के माहौल में बाज़ार और विज्ञापन सबसे पहले बच्चों को अपना निशाना बनाता है। बुजुर्गों के मन में अब भी सामूहिक संस्कृति के चिह्न शेष रह जाने के कारण, उन्हें बाज़ार के अनुकूल परिवर्तित करना उतना आसान नहीं है। व्यक्ति के पूरे सामूहिक स्मृति बोध को मिटाकर उसे बाज़ार के अनुकूल गढ़ना बाज़ार के लिए बेहद जरूरी है। इसी कारण वे बच्चों पर ज़्यादा केन्द्रित होते हैं। बच्चों के माध्यम से पूरे घर के माहौल को बदलना ही उनका लक्ष्य है। पहले परिवर्तन बहुत धीमा था पर साइबर युग में परिवर्तन इतनी तेज़ रफ़्तार पा चुका है कि कुछ भी सहेजने का मौका नहीं मिलता है और हम पहचान भी नहीं पाते कि कुछ बदला है या नहीं। इस बदलाव के क्रम में पारिवारिक सम्बन्धों के बीच खाली जगह बढ़ती चली आ रही है। इसे जितेन्द्र श्रीवास्तव ने उद्घाटित किया है- 'हमें मिला भी एक घर / जिसमें कई खिड़कियाँ थीं / और जगह हमारी सोच से ज़्यादा / इतना ज़्यादा / कि दो जनों के बीच / अब जगह ही जगह थी / वहाँ सपने / हवा के साथ मिलकर / खाली जगह में / बवंडर की तरह मँडरा रहे थे।'5

नारी मुक्ति का परिवेश तो वैरिक सन्दर्भ में लगातार उभर रहा है, पर उसकी पहुँच भारतीय गृहस्थी की देहली लाध नहीं पा रही है। पुरुष वर्चस्ववाद ने स्त्री के लिए सदियों पहले जो मर्यादा निश्चित की थी उसका दायरा इक्कीसवीं सदी में और अधिक सिमट गया है। नव जागरण के समय में हमने जिस समता मूलक जीवन दृष्टि को अजमाया था उसका क्षरण इक्कीसवीं सदी में तेज़ी से हो रहा है। आज उसे क़ायदे में रहने की सीख पति, समाज और सत्ता भी लगातार देते रहते हैं। परम्परा, सांस्कृति और मूल्य के नाम पर स्त्री को घर की चारदीवारी के अन्दर बंद रखने की साज़िश आज इतनी है कि उसका प्रतिरोध करना उतना आपल नहीं रह गया है। कात्यायनी परिवार और नारी को समाज के लिए आवश्यक मानते हुए लिखती है - 'घर के अलावा / जिसमें रहते हुए औरत औरत बने रहे और / घर घर भी बना रहे / यानी वह न हो घर का हिस्सा / बल्कि उसकी एक बाशिंदा हो / बस इतनी-सी बात हुई थी कि / उसका पासपोर्ट ज़ब्त कर लिया गया / और दुनिया के हर घर की / नागरिकता के लिए उसे अयोग्य घोषित कर / दिया गया।'6

अरुण कमल की कविताओं में भी लगातार बेदखल हो रहे घर का गृहातुर स्मृति बोध सधन है। दिग्भ्रमित समय में जहाँ हर स्तर पर घर का वजूद गिरता चला जा रहा है वहाँ कवि जद्दोजहद में अपना घर तलाश रहे हैं। निराशा से भरे माहौल में भी कवि की उम्मीद है कि कहीं से घर का पता बताने वाली आवाज़ सुनाई देगी। 'यहाँ रोज़ कुछ बन रहा है। रोज़ कुछ घट रहा है। यहाँ स्मृति का भरोसा नहीं। एक ही दिन में पुरानी पड़ जाती है दुनिया। जैसे वसंत का गया पतझड़ को लौटा हूँ। जैसे बैशाख का गया भादों को लौटा हूँ। अब यही उपाय कि हर दरवाज़ा खट खटाओ और पूछो। क्या यही है वो घर? समय बहुत कम है तुम्हारे पास। आचला पानी ढहा आ रहा आकाश / शायद 'पुकार' ले कोई पहचाना ऊपर से देखकर।'7 यहाँ घर पूरे मानवीय सम्बन्धों का प्रतीक बन कर उभरा है। कृत्रिम संस्कृति की चपेट ने आज घर के अंतरंग सम्बन्धों को बिगाड़ दिया है। लगातार उभर रही छवियों के बीहड़ में से वजूद की उष्मा को बरकार रखना' समकालीन कविता की सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है। अरुण कमल की कविता लगातार इस उष्मा को बरकार रसने के लिए समिधा इकट्टी करती नज़र आती है। उनकी 'उर्वर प्रदेश' कविता मानवीय सम्बन्धों की उष्मा को सँजोये एक ऐसे प्रदेश की ओर संकेत करती है जिसकी ओर लौटना मानवीयता के लिए आज नितांत आवश्यक है - 'आज मैं लौटा हूँ अपने घर / दो दिनों के बाद घूमती पृथ्वी के अक्ष पर / फैला है सामने निर्जन प्राप्त का उर्वर प्रदेश / सामने है पोखर अपनी छाती पर / जल कुम्भियों का द्यना संसार मेरा।'8

घर को बनाये रखने की माँ का यत्न बेश कीमती है। पिता घर को सँभाल तो सकते हैं पर एक रोटी से ही सही घर भर के पेटों को भरे रखने की काबिलियत तो माँ को ही हासिल है। हताश और निराश होने पर अनायास माँ की शरण में दौड़ना तो मनुष्य का जैविक चरित्र है। सम्बन्धों के विखराव के समकालीन दौर में भी मातृ छवि हमें आश्वस्त करती हुई दिल की गहराई में कहीं रची-बसी हुई है। समकालीन कविता लगातार इस मातृ छवि को उभार कर मानवीयता के स्रोतों को सूखने से बचा रही है। माँ दरअसल एक पुल है जो को इस छोर से उस छोर तक बाँधे रखता है। उस पर चलते हुए हमें कभी उसके वजूद का एहसास नहीं होता हैं। नरेन्द्र पुण्डरीक का कहना है- 'पिता' के बाद हम भाइयों के बीच। पुल बनी माँ। अचानक नहीं टूटी। धीरे-धीरे टूटती रही। हम देखते रहे और/ मानते रहे कि। बूढ़ा रही है माँ/ उसके बार बार कहने को। हम मान कर चलते रहे। उसके बूढ़े होने की आदत और। अपनी हर आगज में। धीरे-धीरे टूटती रही माँ।'9 तिल-तिल कर टूट रही थी इसका अहसास कवि को उसके चले जाने के बाद ही होता है। दर असल यह समकालीन मनुष्य की विडम्बना है। जीवन में लगातार तरक्की करते जाने की ज़िद से जीवन का मूल्य ही नष्ट कर देता है। इसका अहसास उसे बाद में होता है - 'जब तक जीवित रही माँ / हम बदलते रहे अपने कंधे / माँ आख़िर माँ ही तो है / बार-बार हमें कंधे बदलते देख / हमारे कंधों से उतर गई माँ / और माँ के कंधों से उतरते ही / उतर गए हमारे कंधे।'10

घर के अन्दर धीरे-धीरे आ रही इस तबाही को हम पहचान नहीं पा रहे हैं। फिर भी उसकी गति कभी भी धीमी नहीं रही। हमारी सोच ही धीमी है जो इसकी गति को पहचान नहीं पा रही है। रोज़-रोज़ आ रहे इस बदलाव को पहचानने पर ही उसकी गति का अनुमान लगाया जा सकता है। बदलाव हमारे पूरे स्मृति बोध को आच्छादित करते हुए जगह बना

"रहा है। ऐसे हालातह में हमारे स्मृति बोध हो वह संबल है जिसकी बदौलत मानवीयता को बरकरार रखा जा सकता है। इसी कारण समकालीन कवि कठिन जद्दोजहद से घर के स्मृति बोध को मानवीयता से खाली हो रही जगहों में भरने की कोशिश करते हैं। घर के माहौल में लगातार घर करते जा रहे संबंध विहीनता को विनोद कुमार शुक्ल अपनी कविता 'तथा' में बेहद संवेदनात्मक घरातल पर चित्रित करते हैं- 'घर के लोगों से घर का संबंध नहीं / तथा यह समाज सामाजिक समाज नहीं / तथा थोड़ी दूर पर रहने वाला मेरा भाई / कई दिनों से मिला नहीं / तथा सड़क से जाते हुए वह मुझे दिया / उसने भी देखा / पर चला गया।'11

'तथा' कविता में कवि ने मात्र पारिवारिक सम्बन्धों का ही नहीं पूरे माहौल की बेचैनी को शब्दबद्ध किया है। सामाजिक संरचना की किसी एक इकाई में होने वाला परिवर्तन अनिवार्य रूप से अन्य इकाइयों को भी परिवर्तित कर देगा। समग्र रूप से उसे उद्घाटित करना सभी कवियों की बात नहीं हैं। एकांत श्रीवास्तव की कविता 'खाली घर' भी दिनों दिन बदल रहे घर के स्वरूप को गहरी संवेदनात्मक ढंग से उभारती है। कवि खाली घर का पेड़ में बदलने के विश्व द्वारा लगातार उजड़ रहे घर को फिर से बसाने की हर नाकाम कोशिश करता नज़र आता है - 'पेड़ों और परिंदों के साथ / रहते-रहते बरसों-बरस / बदलने लगती है घर की काया / वह बनने लगता है धीरे-धीरे पेड़ / उसकी दीगरों की दरारों में उग आते हैं / कितने-कितने पौधे / हो सकता है कि बरसों बाद / जब मैं लौटूँ परदेश से थक हारकर / बहुत बूढ़ा होकर इस घर में / तो यहाँ घर नहीं पेड़ हों।'12

घर केवल ईंट-पत्थर से बना मकान नहीं। मानवीय संवेदनात्मक क्षमता का आदिम स्रोत घर के अस्तित्व में इस तरह रचे बसे हुए होते हैं कि ईंट-पत्थर के अभाव में भी घर संवेदन की ठोस नींव पर बन सकता है। महानगरीय जीवन में ईंट-पत्थर जोड़कर मकान तो बहुत बन रहे हैं पर घर कहीं रूपाकार ग्रहण करता हुआ नहीं दिखता। तेज़ी से बदल रहे मानवीय संबन्धों के बीच कवयित्री नीलेश रघुवंशी अपने बचपन के दिनों को याद करती है- 'इस मकान की पहली बरसात / याद आ गई घर की / छोटे भाई-बहनों को न निकलने की। हिदायत देती हुई। / जल्दी जल्दी बाहर से कपड़े / समेट रही होगी माँ। पिता चढ़ आए होगे छत पर / भाई निकल गया होगा / साइकिल पर बरसांती लेने / पानी ज़रा ठहरो छत को ठीक होने दो ले आने दो भाई को बरकाती।'13 कवयित्री यहाँ विभिन्न दृश्यों द्वारा आर्थिक अभाव में भी पारिवारिक सम्बन्धों की उष्मा को संवेदनात्मक धरातल पर उभार रही है। महानगरीय जीवन का सुविधा सम्पन्न मकान बरसात में टपकने वाले पुराने घर के सामने कोई मायने नहीं रखता है। तेजी से बदल रहे पारिवारिक सम्बन्धों के कृत्रिम बीहड़ में आज का कवि स्वयं को खोना नहीं चाहता है।

मानवीय सम्बन्धों के लिए बहुत ज़रूरी कुछ न कुछ दिनों दिन समकालीन जीवन से झर रहा है। अपने वजूद से खाली हो रहे परिवार के सदस्य भी यह सब जानते हैं। पिता की आदिम संस्कृति को निभाना यानी अपने सर ज़मीन से वास्ता रखना पिछड़ेपन का लक्षण माना जाने लगा है। उत्तर सांस्कृति की यह जड़ विहीनता कोई अनिवार्य परिणाम के रूप में नहीं वरन एक प्रायोजित परिणाम के रूप में पनप रही है। समकालीन कविता जड़ो से कर रहे हमें पिता के बिम्ब में भी अवगत करवाती है। पुरानी चीज़ें नई पीढ़ी के लिए कुछ ख़ास मायने नहीं रखतीं। नित नवीन तकनीकों से लैस समकालीन समय के लिए आउट डेटेड होने का डर अब घण्टों में बदल गया है। ऐसी स्थिति में पुरानी चीज़ों की क्या हैसियत है। इसके बारे में विष्णु खरे कहते हैं - पुरानी चीज़ों की दुकान के जँगले के पास / मुड़कर खड़ा हुआ बूढ़ा / दूरबीन बेच रहा है / 'बेच रहा है' कहना शायद ग़लत है / वह सिर्फ हाथ में दूरबीन लिए खड़ा हुआ है / और हर नए देखने वाले के आने पर थोड़ा हिलाता है / बस इतना कि उस संभावित ग्राहक को / वह और उसके हाथ में लचकी दूरबीन दिख जाए / जो टिकाऊ और भारी है पुरानी, उपयोगी चीजों की तरह / भले ही उसका पट्टा समय की दीमकों ने इधर- उधर से कुतर लिया है।'14

निष्कर्षत: समकालीन करिता में बाज़ारवाद और वैश्विकृत परिवार का विवेंचन दिखाई पड़ता है। आज के दौर में परिवार एक ईंटों का घर बन कर रह गया है। प्रत्येक सदस्य अपने आप में खोया हुआ है। उसको मोबाइल और मॉल संस्कृति ने अलेला कर दिया है। माँ-पिता अब पुरानी वस्तुएँ हो गई है। कविता ने समकालीन आदमी की व्याख्या बाज़ारवाद के रुप में करते हुए उसे मशीनी करण की भी संज्ञा दी है। कवि इस बदलते मानव जीवन से आहत है उसे लगता है कि परिवार की संस्कृति आने वाले समय में पूर्णत: नष्ट हो जाएगी और परिवार का प्रत्येक सदस्य अकेला, स्वार्थी और मूल्य हीन होगा। निश्चित तौर पर समकालीन कविता परिवारबाद का जहन दर्शन पस्तुत करते हुए उसके मूल्यों का भी अन्वेषण करती है।

000

संदर्भ- 1. जिल्लत की रोटरी - मनमोहन, राजकमल प्रकाशन, 2006, पृ. 8, 2. दो पंक्तियों के बीच राजेश जोशी, राजकमल प्रकाशन, 2000, पृ. 54-55, 3. आज की कविता विनय विश्वास, राजकमल प्रकाशन, 2009, पृ. 381, 4. चाँद की वर्तनी - राजेश जोशी, राजकमल प्रकाशन, 2006, पृ. 105-106, 5. असुन्दर-सुन्दर - जितेन्द्र श्रीवास्तव, भारतीय ज्ञानपीठ, 2008, पृ. 115, 6. इस पौरुष पूर्ण समय में - कात्यायनी, वाणी प्रकाशन, 1999, पृ. 69, 7. अपनी केवल धार- अरुण कमल, वाणी प्रकाशन, 1999, पृ. 13-14, 8. वही, पृ. 75, 9. इन हाथों के बिना- नेन्द्र पुण्डरीक, बोधी प्रकाशन, जयपुर, 2015, पृ.23, 1०. वही, पृ. 23, 11. अतिरिक्त नहीं विनोद कुमार शुक्ल, वाणी प्रकाशन, 2001, पृ.15, 12. बीज के फूल तक- एकांत श्रीवास्तव, राजकमल प्रकाशन, 2003, पृ.36-37, 13. घर निकासी, नीलेश रघुवंशी, किताब घर प्रकाशन, 1997, पृ.11, 14. पिछला बाकी - विष्णु खरे, राधा कृष्ण प्रकाशन, 1998, पृ.79

(शोध आलेख)

संत साहित्य में जीवन-मूल्य : एक विवेचन

शोध लेखक : डॉ. भरत लाल
सहायक प्रोफेसर (हिन्दी)
चौ. मनीराम राजकीय महिला महाविद्यालय,

डॉ. भरत लाल
सहायक प्रोफेसर (हिन्दी)
चौ. मनीराम राजकीय महिला महाविद्यालय,
भोडिया खेड़ा, (फतेहाबाद) 125050

शोध सार- हिन्दी साहित्य में भक्ति युग का विशेष महत्त्व है। इसे हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग भी कहा जाता है। इस युग में रचित साहित्य मुख्य आधार जनसाधारण की जीवन-शैली को बनाया गया। जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण संतों का मूल उद्देश्य था। सामाजिक विकृतियों को दूर करने के लिए जातिवादी तथा संप्रदायवादी विषमताओं को मिटाने के लिए संतों ने निर्गुण ब्रह्म को आधार बनाया। संतों ने बंधुत्व और मानवतावादी विचारधारा की दृष्टि को अपनाया। कबीर, रविदास, गुरु नानकदेव, जंभेश्वर जी जैसे महापुरुषों ने गृहस्थ आश्रम में रहते हुए भी समाज के सामने ऐसे आदर्श प्रस्तुत किए जो आज के संदर्भ में भी प्रासंगिक हैं। धर्म का मूल उद्देश्य मानवता की सेवा करना है। धर्म वही है, जो समाज को मानवता का पाठ पढ़ाए और अंधविश्वासों से दूर रखें, अन्यथा उसे धर्म नहीं कहा जा सकता। संतों ने अध्यात्म का एक ऐसा मार्ग खोजा, जो लोक मर्यादाओं के विरुद्ध नहीं था। वर्तमान परिवेश में वैज्ञानिक प्रगति हुई है लेकिन मनुष्य संवेदनशून्य होता जा रहा है,जो कि चिंता का विषय है। संतों-महापुरुषों की विचारधारा कालजयी होती है। समाज आर्थिक रूप से कितना ही संपन्न हो जाए, मानवीय मूल्यों के अभाव में महत्त्वहीन है।

बीज शब्द- मनीषियों, गृहस्थ, उपेक्षित, आर्थिक अंधानुकरण, देशाचार, संवेदनशून्य।

हिन्दी साहित्य में भक्ति युग का विशेष महत्त्व है। इसे हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग भी कहा जाता है। इस युग में रचित साहित्य मुख्य आधार जनसाधारण की जीवन-शैली को बनाया गया। आदि काल में जिस साहित्य की रचना हुई, वह दरबारी संस्कृति से प्रभावित था। उसमें आश्रयदाताओं की प्रशंसा तथा जनसाधारण की उसमें उपेक्षा की गई थी। भक्ति युग का साहित्य उपेक्षित, वंचित लोगों की आवाज़ बनकर उभरा। संतों ने अपने जीवन को आदर्श रूप में स्थापित किया, ताकि समाज उसका अनुसरण कर सके। जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण संतों का मूल उद्देश्य था। इसलिए उन्होंने काव्य को अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र बनाया। तत्कालीन सामाजिक विकृतियों को दूर करने के लिए जातिवादी तथा साम्प्रदायिक विषमताओं को मिटाने के लिए संतों ने निर्गुण ब्रह्म को आधार बनाया। संतों ने बंधुत्व और मानवतावादी विचारधारा की दृष्टि को अपनाया।

मूल्य सम्बन्धी अवधारणा- 'मूल्य' शब्द संस्कृत की 'मूल' धातु में यत् प्रत्यय लगाने से निर्मित है, जिसका अर्थ किसी वस्तु के विनिमय में दिया जाने वाला धन, दाम, बाज़ार आदि से

है।" 1

महादेवी वर्मा के अनुसार, "जीवन के मूल्य वास्तव में संस्कृति के अंगीभूत हुआ करते हैं। संस्कृति से अलग करके जीवन के मूल्यों को नहीं देखा जा सकता।" 2

भारतीय मनीषियों ने मूल्यों को मुख्य रूप से चार भागों में विभक्त किया है – धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। इन सब का आधार मानवता है। यदि किसी साहित्य में मानवता के प्रति संकीर्ण दृष्टिकोण है तो उसे साहित्य की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। जहाँ तक भक्ति युग के संतों की दृष्टि का प्रश्न है तो उन्होंने समाज की सभी परिस्थितियों का गहन विश्लेषण किया और जिन विषमताओं को उन्होंने समाज में देखा, उन्हीं विषमताओं को अपने साहित्य का आधार बनाया। संतों का मुख्य उद्देश्य उपेक्षित, पीड़ित जनता के हृदय में जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण पैदा करना था। विषम परिस्थितियों के बावजूद भी संतों ने अनेक प्रकार के कष्ट सहन किए, लेकिन उन्होंने मानव कल्याण की भावना को साहित्य के माध्यम से निरंतर आगे बढ़ाया। भक्ति युग के आधारभूत मूल्यों का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है -

कर्म साधना पर बल- भक्ति युग का मूल सिद्धांत 'मनसा वाचा कर्मणा' है। इस परम्परा में गुरु रविदास, कबीरदास जी, गुरु नानक देव जी और प्रसिद्ध पर्यावरणविद् संत गुरु जंभेश्वर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त और भी ऐसे संत पैदा हुए हैं, जिन्होंने कर्म करने की विचारधारा को अपनाने पर विशेष बल दिया। जसबीर सिंह महे गुरु नानक देव जी की कर्म संबंधी धारणा के विषय में लिखते हैं, "गुरु साहिब का आदेश है कि मनुष्य को जन्म के आधार पर नहीं, उसके कर्म के आधार पर पढ़ना चाहिए। मनुष्य जैसे कर्म करता है, उसे उस आधार पर ही देखना चाहिए। उसका जन्म किसी भी कुल में क्यों न हुआ हो। कर्म ही मनुष्य की असली पहचान है।" जाति जनमु नह पूछीअै सच कर लेहु बताइ / सा जाति सा पाति सांप है जेहे करम कमाइ।।

अर्थात् किसी भी व्यक्ति को जाति का अहंकार नहीं करना चाहिए, क्योंकि किस जाति में जन्म होगा, यह किसी के बस की बात नहीं है। इसलिए श्री गुरु नानक देव जी ने ऐसे व्यक्तियों को मूर्ख-गँवार कहा है। ऐसे अहंकार के कारण समाज में बहुत कमियाँ आती हैं, जिससे समाज की हानि होती है। 3

गुरु रविदास जी ने भी कर्म की भावना पर विशेष बल दिया। उनका मानना था कि हमें अच्छे कार्य करना करने चाहिए, ताकि हमें जीवन में किसी प्रकार की कठिनाई ना हो। वे व्यक्ति को जाति से नीच नहीं मानते थे, बल्कि उनका मानना था कि बुरे कार्य करने वाला व्यक्ति नीच होता है। रविदास जी की कर्म सम्बन्धी विचारधारा को स्पष्ट करते हुए डॉ. सूरजमल सितम लिखते हैं, "व्यक्ति को उसके ओछे कर्म नीच बनाते हैं और कुशल कर्म ऊँचा कहलवाते हैं। मैं तो यहाँ तक मानता हूँ कि गुणहीन ब्राह्मण के चरण स्पर्श नहीं करने चाहिए और यदि भंगी गुणों में प्रवीण है तो उसके चरणों की पूजा कीजिए।"4

सदाचार पर बल- संतों ने सदाचार पर विशेष बल दिया है। उनकी यह धारणा वर्तमान परिवेश में भी प्रासंगिक है, क्योंकि आज मनुष्य आर्थिक अंधानुकरण के कारण जीवन-मूल्यों को धीरे-धीरे भूलता जा रहा है। वह मानवता के स्थान पर धन को प्राथमिकता देने लगा है। ऐसी अवस्था में यदि हम संतों के आदर्शों को अपनाकर आगे बढ़ते हैं तो निश्चय ही समाज में भक्ति भाव तथा सदाचार जैसी भावनाएँ फलीभूत हो सकती हैं। कबीरदास जी ने इस बात पर बल दिया है कि यदि मनुष्य संतों की संगति करता है तो उसका जीवन सफल हो जाता है - "कबीर संगति साधु की, कदे न निरफल होइ। / चंदन होसी बाँवना नीब न कहसी कोइ।" 5

गृहस्थ जीवन के प्रति संतों का दृष्टिकोण- मनुष्य घर छोड़कर भक्ति करने के लिए भी जंगलों में चला जाता है तो यह परिजनों के प्रति न्याय नहीं है। यह तो जीवन के प्रति पलायन ही कहा जा सकता है। भक्ति तो गृहस्थ आश्रम में रहकर भी भली-भाँति की जा सकती है। कबीर, रविदास, गुरु नानकदेव, जंभेश्वर जी जैसे महापुरुषों ने गृहस्थ आश्रम में रहते हुए भी समाज के सामने ऐसे आदर्श प्रस्तुत किए जो आज के संदर्भ में भी प्रासंगिक हैं। आज संयुक्त परिवार परंपरा धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही है। इसके स्थान पर एकल परिवार को बढ़ावा दिया जा रहा है। आज की युवा पीढ़ी पद और प्रतिष्ठा प्राप्ति के लिए पारिवारिक संस्कारों को धीरे-धीरे भूलती जा रही है। यदि यही दृष्टिकोण बना रहा तो भारतीय जीवन मूल्य धीरे-धीरे बदल जाएँगे।

प्रेम तत्व की प्रधानता - संतों ने प्रेम के महत्त्व पर बल दिया। उनकी यह प्रेम संबंधी अवधारणा मानव को जोड़ने वाली थी। कबीर दास ने उस समय की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए हिंदू और मुस्लिम दोनों को ही समझाया है कि राम और रहीम एक है। इस संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मानना है, "उपासना के बाह्य स्वरूप पर आग्रह करने वाले और कर्मकांड को प्रधानता देने वाले पंडितों और मुल्लों दोनों को उन्होंने खरी-खरी सुनाई और राम-रहीम की एकता समझकर हृदय को शुद्ध और प्रेममय बनाने का उपदेश दिया। देशाचार और उपासना विधि के कारण मनुष्य-मनुष्य में जो भेदभाव उत्पन्न हो जाता है, उसे दूर करने का प्रयास उनकी वाणी बराबर करती रही। यद्यपि वे पढ़े-लिखे न थे पर उनकी प्रतिभा बड़ी प्रखर थी, जिससे उनके मुँह से बड़ी चुटीली और व्यंग्य-चमत्कारपूर्ण बातें निकलती थीं।" 6

इस संदर्भ में कबीर की पंक्तियों को उद्धृत किया जा सकता है - है कोई गुरुज्ञानी जगत् महँ उलटि बेद बूझै। / पानी महँ पावक बरै, अंधहि आँखिंन् सूझै।।7

बाहरी आडम्बरों एवं अंधविश्वासों का विरोध-भक्ति युग में संतों ने इस बात पर बल दिया कि निर्गुण ब्रह्म अनुभूति का विषय है, जिसकी अभिव्यक्ति संभव नहीं। तत्कालीन समाज में अनेक अंधविश्वास फैले हुए थे। इन सब को दूर करने के लिए कबीर ने इस बात पर बल दिया कि अंधविश्वासों के कारण हम परम सत्ता के रहस्य को नहीं जान सकते। संतों की दृष्टि में धर्म व समाज दो अलग-अलग विचारधाराएँ नहीं, बल्कि दोनों एक ही हैं। धर्म

का मूल उद्देश्य मानवता की सेवा करना है। धर्म वही है, जो समाज को मानवता का पाठ पढ़ाए और अंधविश्वासों से दूर रखें, अन्यथा उसे धर्म नहीं कहा जा सकता। संतों ने अध्यात्म का एक ऐसा मार्ग खोजा, जो लोक मर्यादाओं के विरुद्ध नहीं था। अधिकतर संत कवि गृहस्थ जीवनयापन करते हुए समाज सुधार के कार्य में लगे हुए थे। गुरु नानक देव जी ने भी समाज में मूर्ति, पूजा, अंधविश्वास, अवतारवाद आदि का विरोध किया था। इस संदर्भ में डॉ. सुभाष का कथन है, "गुरु नानक ने समाज में व्याप्त मूर्ति-पूजा, अवतारवाद, अंधविश्वास रूढ़िवाद, वर्ण-व्यवस्था की ऊँची नीची व छूआछूत आदि बुराइयों का विरोध किया, जो समाज की समानता में रुकावट पैदा कर रहे थे। धर्म के नाम पर फैले पाखंडों को फैलाने वालों का उन्होंने खुलकर विरोध किया। उनका मानना था कि ईश्वर को प्राप्त करने के लिए किसी मंदिर, मस्जिद और मठ में जाने की आवश्यकता नहीं है। जो लोग अपने आपको गुरु और पीर कहलाते हैं, किंतु भीख माँगने जाते हैं, उनके चरणों पर कभी नहीं पड़ना चाहिए। वही व्यक्ति सच्चा मार्ग पहचानता है, जो स्वयं परिश्रम करके खाता है और उसमें से कुछ अपने हाथों से दे देता है।"8

गुरु पीरु सदाए मंगण जाए। ता के भूलि ना लगिऐ पाए।।

घालि खाइ किछु हथहु देइ। नानक राहु पछाणिहि सेइ।।9

पर्यावरण के प्रति दृष्टिकोण- अधिकतर संतों, महापुरुषों ने पर्यावरण के महत्त्व पर भी बल दिया है। उनका विश्वास था कि मनुष्य के अतिरिक्त इस पृथ्वी पर अन्य जीव-जंतु भी जीवनयापन करने के हकदार हैं। इसलिए हमारा कर्तव्य बनता है कि हम उनके जीवनयापन में सहायता करें। पर्यावरण के प्रति जागरूकता पैदा करने में सबसे अधिक योगदान गुरु जंभेश्वर जी का माना जा सकता है। उन्हें पर्यावरणविद् कहकर भी पुकारा जाता है। उनकी विचारधारा को आज विश्व भर में मान्यता मिल रही है और अनेक देशों के लोग उनकी विचारधारा को अपने जीवन में लागू करके पर्यावरण को नई दिशा प्रदान कर रहे हैं। उदयराज खिलेरी गुरु जंभेश्वर द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों के विषय में बताते हैं कि, "गुरु जंभेश्वर भगवान् के प्रतिपादित नियमों का विवेचन और विश्लेषण करने से पता चलता है कि, यह धर्म नियम जीवनयापन की एक उत्तम विधि है, जिसको गुरु महाराज ने 'जीया ने जुगति' कहा है। यह नियम आज भी उतने ही सार्थक हैं, जितने प्रवर्तन के समय थे। इन नियमों को सार्वभौमिक नियमों की संज्ञा दी जा सकती है। किसी भी जाति, धर्म एवं काल विशेष में नियमों को बाँधा नहीं जा सकता है। इनका पालन कर मनुष्य अपने जीवन को सफल बना सकता है। जब भी किसी ने इनकी केवल की उन्हें घोर कष्टों का सामना करना पड़ा है, इससे स्पष्ट है कि इनकी आज भी उतनी ही सार्थकता है, यह तो जीवन के मूल सिद्धांत हैं।"10

गुरु जंभेश्वर जी ने जीवों पर दया करने की बात कही है - "जीव दया पालणी रूँख लीला नहीं घावै।"11 इस सिद्धांत में पर्यावरण संरक्षण का सार छिपा है।

समतावादी विचारधारा- भक्ति युग में समाज अनेक वर्गों में बँटा हुआ था। उस समय सभी जातियों श्रेष्ठ सिद्ध करने की होड़ लगी हुई थी। ऐसी अवस्था में कबीर, रविदास, गुरु नानकदेव तथा गुरु जंभेश्वर सरीखे महापुरुषों ने सभी जाति और धर्म के लोगों को यह संदेश दिया कि समाज में मिल-जुल कर रहना चाहिए, तभी उन्नति का मार्ग प्रशस्त हो सकता है। गुरु नानक देव जी की समन्वयवादी विचारधारा तथा विश्वबंधुत्व की भावना को डॉ. हरमहेंद्र सिंह बेदी के शब्दों मेंव्यक्त किया जा सकता है -" नानक वाणी ने भटके हुए लोगों को नई राह दिखाई। संपूर्ण भारतीय समाज संस्कृति एवं आध्यात्मिक चिंतन पर गुरु नानक देव का प्रभाव है। गुरु नानक की विचारधारा से कैसे जीवन-दृष्टि का निर्माण हुआ, जिससे भारतीय समाज में काफी परिवर्तन हुए। गुरुजी ज़िंदगी के व्यावहारिक पक्ष को तरजीह देते थे। वे चाहते थे कि ज़िंदगी के हर अंधेरे को सच्चाई का सूरज अपनी उर्जा से आलोकित कर दें। दुख और सुख सभी तक आदमी को प्रभावित कर सकते हैं, जब तक वह नाम की महिमा से वंचित है। गुरु जी ने कुदरत को वह शक्ति माना आज जिसकी गरिमा सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है।"12

इसी सन्दर्भ में रविदास जी के विचार उद्धृत किए जा सकते हैं – "मैं रूखी सूखी खाऊँ। औरन की भूख मिटाऊँ।"13 अर्थात् सबका भरण-पोषण समान हो।

निष्कर्ष- उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि संत साहित्य लोकमंगल की भावना पर आधारित था। समाज में नवीन जीवन मूल्यों की स्थापना करके संत कवियों ने साहित्य धर्म का समुचित पालन किया। वर्तमान में मूल्यों का संक्रमण हो रहा है। स्वार्थ पूर्ति तथा एकांतवादी जीवन-शैली जैसी भावनाओं को बल मिल रहा है, जो कि समाज सापेक्ष नहीं है। पर्यावरण के प्रति मानवीय उदासीनता बढती जा रही है। वर्तमान परिवेश में वैज्ञानिक प्रगति हुई है लेकिन मनुष्य संवेदनशून्य होता जा रहा है,जो कि चिंता का विषय है। संतों-महापुरुषों की विचारधारा कालजयी होती है। समाज आर्थिक रूप से कितना ही संपन्न हो जाए, मानवीय मूल्यों के अभाव में महत्त्वहीन है। अत: संतों की प्रगतिवादी एवं सकारात्मक सोच को अंगीकार करना समाज सापेक्ष है।

000

संदर्भ-

1 वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत-हिन्दी शब्दकोश, पृ. 812, 2 महादेवी वर्मा, नवनीत, जुलाई अंक, 1984, पृ. 36, 3 संपा. हितेश शंकर, पांचजन्य पत्रिका, पृ. 9, 4 डॉ. सूरजमल सितम, गुरु रविदास पृ. 35, 5 संपा. डॉ. श्यामसुंदर दास कबीर ग्रंथावली, पृ. 102, 6 आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 73, 7 -वही-, पृ. 73, 8 डॉ. सुभाष चंद्र, गुरु नानक देव, पृ. 13, 9 -वही- पृ. 13, 10 डॉ. कृष्णलाल बिश्नोई, गुरु जांभोजी का जीवन दर्शन, पृ. 258', 11 –वही -, पृ. 257, 12 संपा. हितेश शंकर, पांचजन्य पत्रिका, पृ. 17, 13 डॉ. सूरजमल सितम, गुरु रविदास पृ. 28

(शोध आलेख)

पितृसत्तात्मक समाजों में महिलाओं के शोषण का चित्रण : 'वह एक पल' के संदर्भ में

शोध लेखक : पूनम सिवाच
शोधार्थी
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,
रोहतक

पूनम सिवाच,
शोधार्थी
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,
रोहतक

प्रस्तावना - भारत में पितृसत्ता इसकी संस्कृति, परंपराओं और सामाजिक संरचनाओं में गहराई से निहित है। पारंपरिक लैंगिक भूमिकाएं महिलाओं को घरेलू कर्तव्यों के लिए सौंपती हैं, जबकि पुरुषों से उम्मीद की जाती है कि वे कमाने वाले हों और प्राधिकरण के पदों पर हों, लैंगिक पदानुक्रम को मजबूत करते हों और महिलाओं के अवसरों को सीमित करते हों। घरेलू हिंसा, यौन उत्पीड़न, दहेज संबंधी अपराध और कन्या भ्रूणहत्या जैसे मुद्दों के साथ महिलाओं के ख़िलाफ़ हिंसा एक महत्त्वपूर्ण चुनौती बनी हुई है। भेदभाव और असमानता प्रचलित है, क्योंकि महिलाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, रोज़गार, विरासत के अधिकार और राजनीतिक प्रतिनिधित्व में नुकसान का सामना करना पड़ता है।

भारतीय समाज काफी हद तक पितृसत्तात्मक समाज है जिसमें घर परिवार और समाज के कार्यों में पितृसत्ता या पुरुषों की सत्ता है। न्याय और अधिकार के कार्यों में निर्णय पुरुषों के द्वारा लिए जाते हैं जिसमें औरत को केवल मात्र सहयोगी समझा जाता है। पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था में स्त्रियों के जीवन के प्रत्येक पक्ष पर पुरुषों का नियंत्रण होता है। महिलाओं की प्रजनन क्षमता पर नियंत्रण इसका सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू है। डॉ. अमरनाथ लिखते हैं कि "पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था में उत्तराधिकार में संपत्ति का हस्तांतरण पुरुषों से पुरुषों के बीच ही होता है।"1 पितृसत्तात्मक समाज में सत्ता का अधिकार पति या पिता के हाथ में रहता है। पुरुष बच्चों को वरीयता देने से कन्या भ्रूण हत्या और लिंग-चयनात्मक गर्भपात जैसी प्रथाएँ होती हैं, जिसके परिणामस्वरूप असंतुलित लिंग अनुपात होता है। महिलाओं के अधिकारों की रक्षा और लिंग आधारित हिंसा से निपटने के लिए कानूनी सुधार किए गए हैं। भारत में महिलाओं के आंदोलन और सक्रियता लैंगिक समानता की वकालत करने और महिलाओं को सशक्त बनाने में महत्त्वपूर्ण रहे हैं। प्रगति के बावजूद, पितृसत्तात्मक मानदंडों को ख़त्म करना और सच्ची लैंगिक समानता प्राप्त करना भारतीय समाज में निरंतर लक्ष्य बना हुआ है।

इस विषय पर शैलेंद्र सेंगर का मानना है कि "पितृसत्तात्मक सिद्धांत वह सिद्धांत है जो समाज का आरम्भ ऐसे पृथक परिवारों से मानता है जो सबसे अधिक आयु वाले पुरुष वंशज के नियंत्रण व छत्रछाया में एक साथ रहते हैं।"2 लेखिका ने अपनी कहानी 'रक्षा कवच' के माध्यम से पितृसत्तात्मक समाज द्वारा नारी के शोषण को दहेज की समस्या के माध्यम से पाठकों के सामने अंकित किया है। इस कहानी में दान-दहेज के लालच में सुरम्या को शोषण का शिकार बनाया जाता है। पुरुषवादी समाज अपनी सोच को सर्वोपरि मानते हैं, नारी को तुच्छ समझते हैं और उसे प्रताड़ित करते हैं। 'रक्षा कवच' कहानी में, सुरम्या अपनी माँ को यह सब बताती है कि "सब्जी में ज़रा सा नमक तेज़ हो जाने पर बेरहमी से सिर के बाल झिंझोड़ दिये जाए, चाय का प्याला पकड़ाने में तनिक सा विलंब हो जाने पर वही गरम चाय से भरा प्याला ठौर-कुठौर फेंककर देह को चोटिल कर दिया जाए और भोर साँझ की आरती की तरह अपने बेटे की दूसरी शादी की धमकी लगातार दी जाए तो बचता ही क्या है।"3

दहेज के लालच के कारण सुरम्या को अपने ससुरालवालों से मनोवैज्ञानिक और शारीरिक

शोषण का सामना करना पड़ता है। वह अपने परिवार के साथ फ़ोन पर बातचीत करने में भी प्रतिबंधित है। इसके अतिरिक्त, उसका पति, समीर, छोटी-छोटी बातों पर शारीरिक हिंसा का सहारा लेता है। फ़ोन पर बातचीत के दौरान दबी आवाज़ में, सुरम्या अपनी माँ, राधा को अपने साथ हुए दुर्व्यवहार के बारे में बताती है "माँ हम लोगों ने बहुत धोखा खाया। यह लोग बेहद लालची हैं। पक्के दहेज लोभी। मुझे और पैसा लाने के लिए रोज़ यातनाएं देते हैं। माँ किसी ने इन्हें हमारे खानदानी रईस होने की ग़लत सूचना दी थी। इसी लोभ में इन्होंने फटाफट बेटा ब्याह दिया, सोचा सब इकलौती बेटी का ही है। पर बाद में हमारे सामान्य स्थिति की सच्चाई जानकर बहुत कुढ़े। अब ले देकर तुम लोगों के पास जो मकान है। उस पर इनकी निगाह है। मैं सच कह रही हूँ माँ। मनमाफिक दहेज नहीं मिलने पर यह लोग मुझसे खार खाये हुए हैं। रात-दिन सताते हैं। फ़ोन तक उठाने नहीं देते, के कुछ बोल न दूँ।"4

उसके ससुरालवाले दहेज की अतृप्त इच्छा के कारण सुरम्या का शोषण करने में गरिमा लाँघ जाते हैं। अपने बेटी की शादी के दौरान, वे सुरम्या के अपने घर से लाये हुए सामान को भी छीनने में पीछे नहीं रहते हैं। इसमें उसके गहने, कपड़े, घरेलू उपकरण जैसे रेफ्रिजरेटर और टेलीविजन, वॉशिंग मशीन जैसी आवश्यक वस्तुएं, साथ ही साथ सोफे और बेड जैसे फर्नीचर भी शामिल हैं। इस अन्यायपूर्ण व्यवहार के पीछे का मकसद भौतिक संपत्ति तक सीमित नहीं है; बल्कि, यह सुरम्या के पैतृक घर से आगे के वित्तीय योगदान को निकालने का एक साधन है। इस धारणा को सुदृढ़ किया कि एक महिला की कीमत उस मौद्रिक संसाधनों से जुड़ी है जो वह शादी में लाती है। यह अभ्यास पितृसत्तात्मक मानदंडों को पुष्ट करता है और वैवाहिक संबंध के भीतर असमान शक्ति यानी भेदभाव की गतिशीलता को पुष्ट करता है।

डॉ. उषा यादव ने अपनी कहानी 'रक्षा कवच' के माध्यम से पितृसत्तात्मक समाज द्वारा नारी के शोषण को दांपत्य संबंधों के विघटन और दरार द्वारा भी वर्णित किया है। दांपत्य संबंधों के विघटन में जुल्म की सीमा तब पार की जाती है, जब उसका पति रात्रि में उसकी तीन महीने की बेटी ख़ुशबू को मारने के लिए छत पर ले जाता है। सुरम्या को अपने परिवार से फ़ोन पर बात करने की अनुमति भी नहीं होती है और उसे छोटी-छोटी बातों पर शारीरिक और मानसिक प्रताड़ित किया जाता है। उसके सिर के बाल बेरहमी से झटके जाते हैं और उसे दूसरी शादी की धमकी दी जाती है।

एक और कहानी 'किरण किरण मुस्काता सूरज' में भी यही विषय दिखाया गया है, जहाँ राजीव की पत्नी दिव्या विवाह के कई सालों तक माँ नहीं बन पाती है। उसकी चचेरी बहन रंभा से सहयोग लेकर वह अपने पति को पुत्र और सास को पौत्र सुख प्रदान करने के लिए राजीव के साथ रंभा के विवाह का आयोजन करती है। लेकिन, उस समय बेहद दु:ख होता है जब राजीव द्वारा दिव्या से गर्भपात करने का आदेश भी दिया जाता है। इस कहानी में दांपत्य संबंधों के विघटन का कारण तीसरा व्यक्ति अर्थात रंभा है, जो राजीव और दिव्या के जीवन में आकर उनके संबंधों को तोड़ती है। अंतत: राजीव दिव्या को गर्भपात कराने के लिए कहता है "इस घर को अब किसी और बच्चे की ज़रूरत नहीं, इसने(रंभा) विनय, विनीत, पुरवा का जन्म भले ही दिया हो, पर बड़ी माँ के नाम से वे तीनों तुम्हें अपनी सगी माँ से बढ़कर मानते हैं। मैं ख़ुद समझ नहीं पा रहा कि तुम किस असंतोष के चलते माँ बनने के फेर में पड़ी हो। खैर जो हुआ सो हुआ। डॉक्टर कंचन शहर की नामी डॉक्टर हैं वह अभी भी सुरक्षित गर्भपात करा देंगी। तुम्हारे जीवन पर कोई आँच ना आएगी।"5 इस कहानी के माध्यम से डॉ. उषा यादव जी ने पति-पत्नी के विघटित जीवन की सच्चाई को प्रकट कर पितृसत्तात्मक समाज द्वारा नारी के शोषण को चित्रित किया है। जहाँ संतान की आकांक्षा और तीसरे व्यक्ति के आगमन से दांपत्य संबंधों में दरार पैदा होती है। यह भी बताया गया है कि पति-पत्नी एक बैलगाड़ी के दो पहिए हैं और यदि इनमें से कोई एक ख़राब हो जाए, तो बैलगाड़ी नहीं चलेगी, अर्थात् पति-पत्नी के बीच अनबन होने पर दांपत्य जीवन सुखद नहीं रहेगा। हालांकि आज के आधुनिक जीवन में, दांपत्य संबंध तेजी से परिवर्तित हो रहे हैं और इसके बचाव के लिए पति-पत्नी के बीच आपसी विश्वास और भरोसे को बनाए रखना बहुत महत्त्वपूर्ण है।

डॉ उषा यादव ने 'तीसरी बेटी' कहानी में पितृसत्तात्मक समाज द्वारा नारी के शोषण की सच्चाई को 'ऑनर किलिंग' यानी 'समाज में इज्जत के नाम पर हत्या' के माध्यम से उजागर किया है; जो समाज में इज्जत के नाम पर होने वाली हत्याओं को दिखाती है। "हमारे घर की इज्जत" शब्दांश को समझने से मुझे लगता है कि इस निंदनीय अपराध के मूल कारणों को समझने के लिए यह पर्याप्त है। भारत में, जब एक पुरुष और एक महिला अपने परिवारों की इच्छाओं के ख़िलाफ़ शादी करते हैं, या यदि वे एक ही कबीले के भीतर शादी करते हैं, या यदि वे अपनी जाति के बाहर शादी करते हैं, तो वे अक्सर "सम्मान हत्याओं" के अधीन होते हैं। इन हत्याओं को परिवार के सम्मान या सामाजिक स्थिति को बनाए रखने के नाम पर किया जाता है। ये हत्याएं, जिन्हें "ऑनर किलिंग" के रूप में जाना जाता है, विशेष रूप से हरियाणा, राजस्थान, बिहार और उत्तर प्रदेश के राज्यों में प्रचलित हैं। उत्तर प्रदेश में सबसे अधिक मामले हैं, जहाँ नवविवाहित जोड़े हर दिन मारे जाते हैं। उनके मृत शरीर को अक्सर नदियों या नहरों में फेंक दिया जाता है, या जंगल में जलाया जाता है, उनकी पहचान को छिपाने के लिए।

भारतीय समाज में पैतृक विचारधारा की एक मजबूत लहर है जहाँ 'सम्मान' को अत्यंत महत्त्व का मामला माना जाता है। यहाँ के लोग अपने परिवार, जाति और समुदाय के सम्मान को संरक्षित करने के नाम पर अपने प्रियजनों को मारने में संकोच नहीं करते हैं। वे अपने ख़ुद के बेटों और बेटियों को मारने के बारे में पश्चाताप महसूस नहीं करते हैं, जिनका उन्होंने पोषण किया है और अपने हाथों से सहेजा है। यहाँ तक कि वे उन बच्चों के जीवनप्राण लेने की सीमा तक जाते हैं, जिन्हें

उन्होंने पोषित किया है। वे इन हत्याओं को अपनी सामाजिक स्थिति बढ़ाने के लिए "सम्मान हत्याओं" के रूप में घोषित करते हैं।

डॉ. उषा यादव ने अपनी कहानी 'तीसरी बेटी' के माध्यम से समाज में सम्मान की हत्याओं की वास्तविकता को चित्रित किया है, जहाँ आरती और दीपेश की हत्याएँ अपने संबंधित परिवारों की मिलीभगत के माध्यम से की जाती हैं। आरती कुशवाहा जाति से संबंधित है, जबकि दीपश ठाकुर जाति के हैं। हालांकि, पैतृक विचारधारा और जाति-आधारित मतभेदों की कठोर मानसिकता उनके मार्ग में बाधा बन जाती है। इस कहानी में 'ऑनर किलिंग' के नाम पर आरती और दीपेश दोनों की हत्या कर दी जाती है। अहंकार भरी पुरुषवादी सोच ही आरती और दीपेश की सामाजिक इज्जत के नाम पर ऑनर किलिंग करवाती है। जब छोटी बेटी चाँदनी अपने पिता से पूछती है कि "दूल्हा दुल्हन कहाँ है। अब ग्वालियर में?"6 पितृसत्तात्मक और अपने अहंवादी सोच से लबालब रामलाल कहता है "कमीनी मुँह बंद रख। जो गाँव वालों को बताया है। वही तुझे याद रखना है। कैसी और किसकी शादी। तेरी बहन आरती को बुआ के यहाँ भेज दिया गया है। इसके आगे एक शब्द भी अगर मुँह से निकला तो खाल खींच लूँगा।"7

आरती और दीपेश दोनों के मारे जाने के लिए रचे हुए षड्यंत्र के बारे में लेखिका कहानी में बताती है कि "तीसरे पहर रामलाल और जयदेवी लौट आए। कमरे का दरवाज़ा भेड़कर जयदेवी ने लाल रंग का सुहाग जोड़ा पलंग पर फैलाया। लाज और उल्लास से आरती का चेहरा अबीर सा हो उठा। सलमे - सितारों और मोतियों से जड़ा सुर्ख लाल रंग का लहंगा और उसी से मेल खाती चुनरी-चोली देखकर उसकी आँखें रिझ उठी। तभी चूड़ीदार शेरवानी का दूसरा पैकेट खोलते हुए जयदेवी बुद- बुदाई। दूल्हे राजा को सजाने की ज़िम्मेदारी भी हमारी ही रहेगी।"8

आरती और दीपेश को शादी की दूल्हे और दुल्हन की पोशाक पहनाई जाती है और एक कार में रामलाल और जयदेवी दोनों शादी कराने के नाम पर बैठा कर ले गए। वे उन्हें आगरा से बावन किलोमीटर दूर मुराना के जंगलों में एकांत स्थान पर ले जाते हैं, रात के अंधेरे का फायदा उठाते हुए आरती और दीपश दोनों को बेरहमी से मारते हैं और उनके शरीर का निपटान करते हैं। हत्या के सबूत को ख़त्म करने के लिए दंपति द्वारा दूल्हे व दुल्हन की पोशाक को पत्तियों के साथ -साथ आग लगा दी जाती है।

लेखिका बताती है कि "ऑनर किलिंग" में पुरुषों के साथ साथ महिलाओं का भी बराबरी का योगदान रहता है। तभी तो चाँदनी के पूछने पर भारती (बड़ी बहन) अनमना सा जवाब देती है। वह दबे हुए कंठ से कहती है कि "दूल्हा दुल्हन राजी तो शादी कैसी भी हो। अच्छी कहलाती है। तेरे जीजा बता रहे थे। अभी दोनों जन ग्वालियर में है। उम्मीद है कि जल्दी ही गुजरात में दीपेश की नौकरी लग जाएगी। फिर दोनों सीधे वहीं चले जाएँगे। गाँव में अब उनके लिए धरा क्या है जो आएँगे।"9 इस कहानी में आरती और दीपेश की हत्या में उसकी माँ जयदेवी और आरती की बड़ी बहन 'भारती' का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से योगदान रहा है।

इस प्रकार लेखिका ने पितृसत्तात्मक समाज द्वारा नारी का शोषण को दहेज प्रथा, विघटित दांपत्य जीवन के बीच तीसरे का आगमन और "ऑनर किलिंग" या "समाज में इज्जत के नाम पर होने वाली हत्याओं" के द्वारा यथार्थ प्रदर्शित किया है कि किस प्रकार लोग अपनी संतानों को समाज में झूठी प्रतिष्ठा और दिखावे के नाम पर मार देते हैं जिनको ख़ुद जन्म देकर,पालन- पोषण करके बड़ा किया।

निष्कर्ष - इस प्रकार लेखिका ने कहानी संग्रह 'वह एक पल' में पितृसत्तात्मक समाज के द्वारा नारी की मानसिक, शारीरिक और दैहिक शोषण की प्रताड़ना के यथार्थ को चित्रित किया है। उषा यादव ने अपनी कहानियों के माध्यम से पितृसत्तात्मक समाजों में महिलाओं के शोषण पर प्रकाश डाला, विशेष रूप से 'रक्षा कवच' कहानी में, सुरम्या जैसी महिलाओं द्वारा सामना की जाने वाली भयावहता को दर्शाती हैं, जो दहेज के लालच के कारण शारीरिक और मनोवैज्ञानिक दुर्व्यवहार के अधीन हैं। कहानियाँ विवाहित रिश्तों के विघटन को भी उजागर करती हैं, जो अक्सर तीसरे पक्षों की घुसपैठ के कारण होती हैं। ये कथाएँ विवाह के भीतर गहरी जड़ वाली लैंगिक असमानताओं और शक्ति की गतिशीलता को उजागर करती हैं। कहानियाँ महिलाओं के शोषण और दहेज के लिए सामाजिक दबाव की गंभीर वास्तविकता को प्रकट करती है। यह एक कठिन सत्य है कि सभी प्रकार की संकीर्णता और सलाह सिर्फ महिलाओं के लिए ही होती है। उनके लिए अनुचित विशेषणों का उपयोग किया जाता है। लेखक का मानना है कि परंपरागत परिवार में आर्थिक, सामाजिक और पारिवारिक नियंत्रण और गतिविधियों में केवल पुरुष के निर्णय को ही मान्यता दी जाती है, जिससे परिवार खंडित और नष्ट हो जाता है। क्योंकि परिवार किसी एक व्यक्ति की सहायता के बिना चलता नहीं है, बल्कि उसमें सभी का सहयोग आवश्यक होता है। शिक्षा और जागरूकता के माध्यम से लैंगिक समानता को बढ़ावा दिया जा सकता है। महिलाओं को आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक रूप से सशक्त बनाया जा सकता है। पारंपरिक लैंगिक भूमिकाओं और रूढ़ियों को चुनौती दें। पुरुषों को सहयोगी बनने के लिए प्रोत्साहित करें और पितृसत्ता को ख़त्म करने में सक्रिय रूप से भाग लें। महिलाओं के अधिकारों की रक्षा करने वाली नीतियों और कानूनों का समर्थन करें।

000

संदर्भ- 1. डॉ. अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2012, पृष्ठ 311, 2.शैलेंद्र सेंगर, राजनीति विज्ञान के सिद्धांत, अटलांटिक प्रकाशक और वितरक प्राइवेट लिमिटेड, प्रथम संस्करण 2008, पृष्ठ 113, 3.उषा यादव, वह एक पल, के के पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, संस्करण 2019, पृष्ठ 40, 4.वही, पृष्ठ 38, 5.वही, पृष्ठ 87, 6.वही, पृष्ठ 53, 7.वही, पृष्ठ 53, 8.वही, पृष्ठ 53, 9.वही, पृष्ठ 44

(शोध आलेख)

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और मैला आँचल

शोध लेखक : बिन्दु डनसेना
शोध निर्देशक : डॉ. बी. एन. जागृत (हिन्दी) शोध केन्द्र- शासकीय दिग्विजय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय राजनादगाँव, छत्तीसगढ़

बिन्दु डनसेना
शासकीय दिग्विजय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय
राजनादगाँव, छत्तीसगढ़

गद्य साहित्य की सबसे अधिक पठनीय विधाओं में उपन्यास का स्थान अग्रणी है। जिसमें सम्पूर्ण मानव समाज का यथार्थ चित्रण पाया जाता है। हिन्दी साहित्य में उपन्यास का उद्‌भव अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा विलम्ब से हुआ। शुरुआती दौर में उपन्यासों का सृजन मनोरंजन एवं सामाजिक उपदेशों की पूर्ति हेतु लिखा गया, परन्तु धीरे- धीरे हिन्दी उपन्यास विकास के चरणों को पार करते हुए मानव जीवन के विविध क्षेत्रों के महत्त्वपूर्ण एवं गंभीर समस्याओं को समाहित करते हुए आगे बढ़ा। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन के साथ ही देश पाश्चात्य सभ्यता के संपर्क में आया, बंगला के द्वारा अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव हिन्दी पर पड़ा। जिससे देश में नवीन जागृति की शुरुआत हुई एवं जीवन को विविध आयाम प्राप्त हुए। "स्वतंत्रता– प्राप्ति आधुनिक भारतीय इतिहास की संभवत: बड़ी घटना है।"1 स्वाधीनता के उपरांत जो परिवर्तन आया है उसे पूर्व स्थिति के साथ रखकर टूटते हुए आदर्शवाद, बढ़ते हुए अवसरवाद और ईमानदारी को कुटिलता के चक्रव्यूह में जूझते हुए दिखाना हिन्दी उपन्यासकारों की प्रवृत्ति रही है। "आंचलिक उपन्यास वह है जिसमें अपरिचित भूमियों और अज्ञात जातियों के वैविध्यपूर्ण जीवन का चित्रण हो। जिसमें वहाँ की भाषा, लोकोक्ति, लोक कथाएं, लोकगीत, मुहावरें, और लहजा, वेशभूषा, धर्म- जीवन, समाज, संस्कृति हो।" 2 "मैला आँचल का नायक पूरा अंचल है, अपनी अच्छाई और बुराइयों के साथ, जो मात्र भौगोलिक इकाई न होकर घटनाओं और पात्रों से निर्मित एक सजीव प्राणी है।" 3

"हिन्दी में उपन्यास के साहित्यिक रूप का विकास बीसवीं शताब्दी में हुआ। हिन्दी का प्रथम साहित्यिक उपन्यास देवकी नंदन खत्री का चन्द्रकान्ता है जो 1891 में प्रकाशित हुआ। इसके बाद उपन्यास का विकास बड़े वेग से हुआ और धीरे- धीरे कविता और नाटक से भी अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर वह आधुनिक साहित्य का सबसे लोकप्रिय अंग बन गया।"3

स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों को विषयवस्तु के दृष्टि से उपन्यासों को इन श्रेणियों में विभाजित किया - "प्रेमचंद के उपरांत हिन्दी उपन्यास कई मोड़ों से गुज़रता हुआ दिखायी पड़ता है, जिन्हें स्थूल रूप से तीन दशकों में बाँटा जा सकता है – 1950 तक के उपन्यास, 1950 से 1960 तक के उपन्यास और साठोत्तरी उपन्यास।"5 प्रेमचंद के उपरांत हिन्दी उपन्यास किसी एक निश्चित दिशा की ओर अग्रसर नहीं हुआ अपितु उसकी विविध धाराएँ अनेक दिशाओं की ओर प्रवाहित हुई।

सामाजिक पारिवारिक उपन्यास - इस दौर में सामाजिक पारिवारिक उपन्यासों में टूटते हुए परिवारों, स्त्री-पुरुष के नए सम्बन्धों राजनीतिक भ्रष्टाचार का पात्रों पर प्रभाव और यौन चेष्टाओं का चित्रण स्पष्टतया परिलक्षित होता है। यद्यपि कथानक प्राय: आर्थिक स्थिति एवं स्त्री-पुरुष के संबंध के ही इर्दगिर्द घूमता है। भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों 'टेढ़े - मेढ़े रास्ते, भूले बिसरे चित्र' में राजनीति मात्र को भ्रष्टाचार का स्रोत बताया गया है। मोहन राकेश का 'अँधेरे बंद कमरे' वस्तुत: नागरिक जीवन में रुढ़िग्रस्त संस्कारों की यातना की कथा है। मोहन राकेश की इस उपन्यास का प्रभाव उनके अधिकांश कहानियों के प्रभाव से भिन्न नहीं है। राजेन्द्र यादव के 'उखड़े हुए लोग' उस दम्पत्ति की कथा है जो कुटिल दांवपेंच की दुनिया में रह नहीं सकता।

मनोविश्लेष्णवादी उपन्यास - फ्रायड आदि मनोविश्लेष्णशास्त्री का प्रभाव हिन्दी कथा साहित्य पर स्वतंत्रता के पूर्व ही पड़ चुका था। इलाचंद्र जोशी, जैनेन्द्र और अज्ञेय ने मनोविश्लेष्ण शास्त्र के सिद्धांतों का उपयोग किया। इसी परम्परा में दर्शनशास्त्र के विद्वान् देवराज ने 'अजय की डायरी' लिखा। अज्ञेय के उपन्यास शेखर एक जीवनी और नदी के द्वीप राजनीति, अस्तित्ववाद और मनोविश्लेष्ण तीनों का प्रभाव है। कुलमिलाकर नदी के द्वीप यौन भावना प्रधान उपन्यास है, जो अज्ञेय के चिंतन पद्धति को ध्वनित करता है। 'अजय की डायरी' डायरी शैली में लिखा गया है। इसमें दाम्पत्य जीवन का विचलन, लड़कियों के शादी की समस्या, शिक्षा जगत् में फैला भ्रष्टाचार इन सबको एक-दूसरे से सम्बद्ध कर दिया गया है।

अस्तित्ववादी उपन्यास - अज्ञेय का एक अन्य उपन्यास 'अपने- अपने अजनबी' है, जहाँ तीन - चार लोग भयंकर बर्फीले मौसम में एक साथ रहने को बाध्य हो गए हैं मनुष्य की अंतिम नियति मृत्यु उन पर छाई रहती है। मृत्यु के सन्दर्भ में उनके अतीत एवं वर्तमान चेष्टाएँ महत्त्वहीन एवं निरर्थक लगती है, नियति और व्यर्थता बोध उपन्यास के केंद्र में है।

ऐतिहासिक उपन्यास - वृन्दावन लाल वर्मा ने 'मृगनयनी' 1950 में लिखा, वर्मा जी की कथा वस्तु में बहुत विचित्रिता एवं आकर्षण हैं। बुन्देलखण्ड का जीवन सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पन्न है। ये उनके उपन्यासों में पर्याप्त दिखाई पड़ता है। राहुल संकृत्यायन जी ने 'सिंह सेनापति' 1959 में लिखा सिंह का नाम अंगुत्तर निकाय में आया है, ओ जैन धर्म छोड़कर बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गया था। उस युग के अनेक सूत्रों को अपने युग से मिलाना इस उपन्यास का उद्देश्य जान पड़ता है। चतुरसेन शास्त्री ने 1939 में 'वैशाली की नगरवधु' नामक एक वृहद् रोमानी उपन्यास लिखा जिसमें कथा को ऐतिहासिक वातावरण में देखा गया है। लेखक ने ह्रासोन्मुख बुद्धकालीन भारत के विलासी और मादक रूप को धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक घटना ओं के बीच प्रस्तुत किया है। इस मध्य आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने चारुचन्द्र लेख 1963 में लिखा, पुनर्नवा 1993 में और अनामदास का पोथा 1999 में लिखा, इन उपन्यासों में द्विवेदी जी अधिकाधिक वस्तुनिष्ठ होते गए हैं। बाणभट्ट की आत्मकथा में वातावरण और मन:स्थितियों की तीव्रता और संयम का चित्रण प्रधान था। चारुचन्द्र लेख की मूल कथा प्रबंध चिंतामणि से ली गई है, इसमें आदिकालीन राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक आदि स्थितियाँ चित्रित है। उस काल में अनेक धार्मिक साधनाएं किस प्रकार एक दूसरे से टकरा रही थी यह देखने में आ जाता है, इस उपन्यास का मूल उद्देश्य धार्मिक कर्मकांड और रहस्यमयता की निस्सारता दिखाकर मानवीयता को प्रतिष्ठापित करना है। पुनर्नवा में लोरिक चंदा की लोक कथा को मृच्छकटिकम की कथा से जोड़कर कथा में कालिदास को भी ले आया गया है। इसमे सामाजिक विधि निषेधों की पुनर्परीक्षा की गई है। अनामदास का पोथा छान्दोग्य उपनिषद् की एक कथा पर आधारित है। इसमें परमसत्ता विषयक ज्ञान साधना और रागात्मक वृत्ति का एक प्रकार से सामंजस्य है। अमृतलाल नगर का उत्कृष्ट उपन्यास मानस का हंस 1992 में प्रकाशित हुआ, यह हिन्दी के महान् कवि तुलसी के मानसिक विकास और उस युग के विविधतापूर्ण जीवन का यथार्थ साक्षात्कार है। इन्हीं का उपन्यास खंजन नयन महाकवि सूरदास के जीवन पर आधृत है।

राजनीतिक उपन्यास – इस कालखंड में बढ़ते हुए राजनीतिक चेतना के व्यापक प्रभाव को ध्यान में रख कर ऐसे उपन्यास लिखे गए जिनसे ऐतिहासिक प्रभाव की अनुभूति पाठक को हो जाती है। इनमें सामान्य जनसमूह पर पड़ते हुए राजनीतिक दबाव को बहुत सामान्य घटनाओं और मन:स्थितियों को चित्रण के माध्यम से संकेतित किया गया है। यशपाल का झूठा सच अमृतलाल नगर का बूँद और समुद्र भीष्म साहनी का तमस 1993 ऐसे ही उपन्यास है। इनमें लेखक की परिपक्व राजनीतिक समझ राजनीति को बहुत व्यापक सन्दर्भ में प्रस्तुत करती है। झूठा सच 1958 विभाजन की महाकाव्यात्मक गाथा है। भारत विभाजन की त्रासदी कितनी भयंकर और प्रभाव में दूरगामिनी है, इस पर यशपाल जैसे पुराने क्रांतिकारी और प्रतिबद्ध लेखक का ध्यान जाना उचित ही था। पंजाब की विभाजन पूर्व स्थितियों का स्मृत रूप कृष्णा सोबती के उपन्यास ज़िंदगीनामा में दिखाई पड़ा। मन्नू भंडारी का महाभोज भी एक राजनीतिक उपन्यास है, जिसमें आधुनिक राजनीतिक और सामाजिक समस्याएँ व्यक्त हुई हैं।

व्यंग्य प्रधान एवं अन्य उपन्यास – भैरव प्रसाद गुप्त ने अंतिम अध्याय नामक उत्कृष्ट व्यंग्यपूर्ण उपन्यास लिखा इस दौर में श्रीलाल शुक्ल का रागदरबारी व्यंग्य उपन्यास की परम्परा में कालजयी व्यंग्य उपन्यास है इसका प्रकाशन 1968 ई. में हुआ। हिन्दी साहित्य में इस व्यंग्य उपन्यास को मील का पत्थर माना जाने लगा। रामचंद्र तिवारी इस उपन्यास के विषय में लिखते है - "यह एक विशिष्ट उपन्यास है। लेखक ने पूरा उपन्यास व्यंग्यात्मक शैली में लिखा है। कथा का केंद्र शिवपाल गंज है। लेकिन यह कथा भारत के किसी भी गाँव की हो सकती है। मुख्य समस्या शिवपालगंज कॉलेज की है किन्तु अन्य समस्याएँ – स्वार्थ, मूल्यहीनता, अमानवीयता, अवसरवाद, छल प्रपंच, नैतिक गिरावट, कुत्सित राजनीति- इसी के साथ जुड़ी हैं।"6 एक तरफ मनोहर श्याम जोशी, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर, कृष्णा सोबती, भीष्म साहनी जैसे वरिष्ठ उपन्यासकारों की रचनाएँ सामने हैं तो दूसरी ओर विनोद कुमार शुक्ल का नौकर की कमीज असगर वजाहत का साथ आसमान, कामता नाथ का कालकथा, भगवानदास मोरवाल का काला पहाड़ जैसे उपन्यास भी हिन्दी साहित्य में चर्चित है। इस मध्य महिला कथाकारों के अनेक सार्थक उपन्यास सामने आए हैं जिससे हिन्दी उपन्यास साहित्य समृद्ध हुआ है। मैत्रीय पुष्पा का चाक, चित्र मुद्गल का आवां, मृदुला गर्ग का कठगुलाब, अलका सरावगी का कलिकथा वाया बाईपास समकालीन हिन्दी उपन्यास साहित्य की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ है।

आंचलिक उपन्यास - "सामान्यत: 1950 के बाद के दशक को भ्रमवश आंचलिक उपन्यासों का दशक मान लिया जाता है और इन उपन्यासों को सद्य: स्वतंत्र भारत के उल्लास के साथ जोड़ कर ऐतिहासिक दृष्टि को सरलीकृत कर लिया जाता है, किन्तु वस्तुत: ये उपन्यास एक नए प्रकार के मुक्ति आंदोलनों से जुड़े हुए हैं, जो एक ओर वैयक्तिक है तो दूसरी ओर सामाजिक।"9

सन पचास से साथ के दशक में हिन्दी उपन्यास का एक नवीन स्वरूप हमारे समक्ष आया जिसे "आंचलिक उपन्यास" कहा गया।

मैला आँचल -हिन्दी उपन्यास के इतिहास में मैला आँचल 1953 उतनी ही क्रांतिकारी घटना है जितनी 1936 में प्रकाशित कृषक जीवन का महाकाव्यात्मक उपन्यास "गोदान"

का सृजन। मैला आँचल के पूर्व भी शिवपूजन सहाय का उपन्यास देहाती दुनिया 1925 में आंचलिकता की झलक स्पष्ट रूप से दिखायी दी, नागार्जुन की बलचनमा 1952 है किन्तु मैला आँचल के प्रकाशन के साथ ही आंचलिक उपन्यासों की परम्परा प्रारम्भ हुई। इस उपन्यास के सन्दर्भ में डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं- "रेणु के उपन्यास ही सही अर्थों में आंचलिक है। सत्य तो यह है कि मैला आँचल और परती परिकथा में ग्रामांचलों के जितने विशद और सवाक् चित्र देखने को मिलते हैं, उतने अन्य तथा कथित आंचलिक उपन्यासों में नहीं।"8

डॉ. विवेक शंकर तिवारी अपने पुस्तक गद्य साहित्य में लिखते हैं – "मैला आँचल पूर्णिया जिले के मेरीगंज अंचल 1935-1938 के मध्य के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और शैक्षिक जीवन इत्यादि का अंकन, यह आंचलिक उपन्यास है। 9 इस उपन्यास का प्रारम्भ 1932 के जनआंदोलनों से होता है। स्वयं उपन्यासकार के शब्दों में –"यह है मैला आँचल एक आंचलिक उपन्यास। कथानक है पूर्णिया। पूर्णिया बिहार राज्य का एक जिला है; इसके एक ओर है नेपाल, दूसरी ओर पाकिस्तान और पश्चिम बंगाल। मैंने इसके एक हिस्से के एक ही गाँव को पिछड़े गाँवों का प्रतीक मानकर –इस उपन्यास का कथा क्षेत्र बनाया है।"10

रेणु ने इस उपन्यास में अंचल के समस्त यथार्थ को उभारा है, इसमें सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक पक्षों को परत दर परत उधेड़ कर रख दिया है। मेरीगंज गाँव के सामाजिक जीवन का मुख्य अंग है "जाति व्यवस्था और अन्धविश्वास" इसी अन्धविश्वास के करण गाँव वाले मलेरिया सेंटर खुलने का विरोध करते हैं –"जोतखी जी का विश्वास है कि डाक्टर लोग ही रोग फैलाते हैं, सुई भोंककर देह में जहर दे देते हैं, आदमी हमेशा के लिए कमज़ोर हो जाता है; हैजा के समय कूपों में दवा डाल देते हैं, गाँव का गाँव हैजा से समाप्त हो जाता है।"11 मेरीगंज का एक विशेष पक्ष धार्मिक जीवन है, जिसका सीधा संबंध मेरीगंज में बने मठ और मठ के महंत सेवादास से है। मठ में गाँव के लोगों की अटूट श्रद्धा और आस्था है किन्तु महंत सेवादास ही कामासक्त हो पुत्री समान छोटी लड़की का यौन शोषण करता है। धार्मिक स्थानों में होने वाले पाखंडों को रेणु जी ने इस उपन्यास में बहुत बारीकी से दर्शया है –"रोज़ सुबह लछमी दूध लेने आती थी, उसकी आँखें कदम की फूल की तरह फूली रहती थीं। रात में रोने का कारण पूछने पर चुपचाप टुकुर-टुकुर मुँह देखने लगती थी ..... ठीक गाय की बाछी की तरह, जिसकी माँ मर गई हो..!" 12

यद्यपि इस उपन्यास में सम्पूर्ण ग्रामीण जीवन का चित्रण बहुत बारीकी से किया है किन्तु गाँव की मुख्य समस्या काला आजार को न मानकर आर्थिक समस्या को डॉक्टर प्रशांत के माध्यम से बताया है –"डॉक्टर ने रोग की जड़ पकड़ ली है ....! गरीबी और जहालत इस रोग के दो कीटाणु हैं।" 13 सात महीने के बच्चे को बथुआ और पाट के साग पर पलते देखा है, गरीबी की जिन्दगी और जहालत से भरी दुनिया को। इस उपन्यास में विशेष रूप से दो राजनीतिक पार्टियों की चर्चा की गई है – कांग्रेस और सोशलिस्ट पार्टी। कांग्रेस पार्टी की विचारधारा को दो पात्र बालदेव और बावनदास के माध्यम से रखते हैं। गाँधी जी के समस्त नैतिक मूल्यों को वहन किए हुए बावनदास दुखी और आत्मद्रवित हो कहता है –"भारथ माता अब भी रो रही है, बावनदास ने दो आज़ाद देशों की ईमानदारी को, इंसानियत को बस दो डेग में नाप लिया !" 13 डॉ. प्रशांत मेरीगंज में रहते हुए धीरे-धीरे यहाँ की समस्याओं को समझने लगता है और वह इस गाँव से भावनात्मक रूप से जुड़कर उनके विकास के लिए स्वयं को समर्पित करता है –"मैं फिर से काम शुरू करूँगा – यही, इसी गाँव में। मैं प्यार की खेती करना चाहता हूँ। आँसू से भीगी हुई धरती पर प्यार के पौधे लहलहाएंगे। मैं साधना करूँगा, ग्रामवासिनी भारतमाता के मैले आँचल तले।"15

मैला आँचल के महत्त्व को रेखांकित करने वाले प्रथम आलोचक नलिन विलोचन शर्मा हैं।

निष्कर्ष– इस प्रकार हिन्दी साहित्य में आजादी के बाद मानवीय जीवन के व्यापक फलक के विविध क्षेत्रों को समाहित करते हुए आशातीत उपन्यासों का सृजन कार्य हुआ। ग्रामांचल के सूक्ष्म जीवन का चित्रण रेणु के उपन्यासों की विशेषता है। मैला आँचल एक कालजयी उपन्यास है, यह स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास की परम्परा को समृद्ध कर हिन्दी साहित्य के लिए मील का पत्थर साबित हुई।

000

संदर्भ-

1)राजे, डॉ. सुमन, " हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास", वाणी प्रकाशन नई दिल्ली : 8 वां संस्करण 2022, पृ. सं. – 263., 2)www, hindisahity.com, 3) https://hindisahityaias.wordpress.com ,

3)सिंह, डॉ. बच्चन, " आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास", लोकभारती प्रकाशन इलाहबाद : 2009, पृ. सं. – 295., 5)डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल, "हिन्दी साहित्य का इतिहास", मयूर बुक्स नई दिल्ली : 66 संस्करण 2018, पृ. सं. – 688., 6)तिवारी, डॉ. रामचन्द्र, " गद्य साहित्य का इतिहास " विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी : 2013, पृ. सं. – 263., 9)डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल, "हिन्दी साहित्य का इतिहास", मयूर बुक्स नई दिल्ली : 66 संस्करण 2018,पृ. सं. – 696., 8)डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल, "हिन्दी साहित्य का इतिहास", मयूर बुक्स नई दिल्ली : 66 संस्करण 2018,पृ. सं. – 689., 9) शंकर, डॉ. विवेक, "गद्य साहित्य", राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर : द्वितीय संस्करण 2018 पृ. सं. – 325., 10)रेणु, फणीश्वर नाथ, " मैला आँचल" राजकमल प्रकाशन इलाहाबाद : 33 संस्करण 2019, भूमिका से., 11)रेणु, फणीश्वर नाथ, " मैला आँचल" राजकमल प्रकाशन इलाहाबाद : 33 संस्करण 2019पृ. सं. – 20., 12)रेणु, फणीश्वर नाथ, " मैला आँचल" राजकमल प्रकाशन इलाहाबाद : 33 संस्करण 2019 पृ. सं. – 28., 13) वही. पृ. सं. –199., 13) वही. पृ. सं. – 339/ 338., 15) वही. पृ. सं. – 353.

शोध आलेख

(शोध आलेख)

मोहनलाल महतो वियोगी और उनकी काव्य साधना

शोध लेखक : शालिन साहू
शोधार्थी, शा दिग्विजय महाविद्यालय राजनांदगाँव, छत्तीसगढ़
शोध निर्देशक : डाक्टर उमाकांत मिश्र (प्राध्यापक)

शालिन साहू
मितान फर्निचर मंडी रोड बलौदा बाज़ार, जिला - बलौदा बाज़ार- भाटापारा, 493332
ईमेल - shaleensahu760@gmail.com

शोध-सार - मोहनलाल महतो "वियोगी" एक महान् राष्ट्रवादी साहित्यकार थे। राष्ट्रवाद उनके कृतित्व और व्यक्तित्व का अभिन्न अंग था। वियोगी जी के काव्य निर्माल्य,एकतारा,कल्पना जहाँ छायावादी चेतना से अनुप्रमाणित हैं तो वही आर्यावर्त महाकाव्य छायावादोत्तर काल में लिखा राष्ट्रीय चेतना से युक्त महाकाव्य हैं। वियोगी जी ने अपने दीर्घकालिक साहित्य साधना में काव्य, उपन्यास, कहानी, संस्मरण, नाटक, निबंध, बाल साहित्य सहित शोधपूर्ण ग्रंथों की रचना की। इन सभी में उन्होंने भारतीय सभ्यता और संस्कृति के गौरव को चिह्नित किया हैं। इनकी साधना के महत्त्व को स्वीकार करते हुए ही आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ. नगेन्द्र, नंददुलारे बाजपेयी जैसे आचार्यों ने उनके महत्त्व को स्वीकार किया। इन सभी तथ्यों के बाद भी यह चिंतनीय विषय हैं कि वियोगी जी के साहित्य का व्यापक प्रचार प्रसार नहीं हो पाया और उन्हें और उनके साहित्य को वह महत्त्व नहीं मिल पाया जिसके वे सहज अधिकारी थे।

मूल आलेख - हिन्दी साहित्य में छायावाद के प्रमुख आधार एवं राष्ट्रवादी कवि के रूप में प्रख्यात मोहनलाल महतो गयावाल वियोगी का जन्म गया नगर (बिहार) के ऊपरीडीह मुहल्ले में कार्तिक शुक्ल षष्ठी सोमवार विक्रम संवत् 1959 अर्थात् 1902 ई. में हुआ। हिन्दी साहित्य में "मोहन लाल महतो वियोगी" ब्रजभाषा समस्यापूर्ति रचनाओं में "श्री बाबू मोहनलाल महतो गयापाल (छविनाथ)" गया के तीर्थ यात्रियों में "श्री मोतीलाल भट्ट" तथा पंडों के वंशानुगत उपाधी नाम में "मूँछवाला" से जाने जाते थे।

गया के पंडा परिवार में बिहारीलाल महतो के दो पुत्र हुए - श्यामलाल महतो और छोटे लाल महतो। उनके ज्येष्ठ पुत्र श्यामलाल महतो का विवाह गया नगर के ऊपरीडीह मुहल्ले के नान्हुलाल भट्ट की इकलौती पुत्री से हुआ। श्यामलाल महतो के पुत्र मोहनलाल महतो नान्हुलाल भट्ट के नाती हुए। वियोगी जी मात्र छह वर्ष के थे तभी उनकी माता का देहांत प्लेग से हो गया। उन्हें हृदय हीन पिता के संरक्षण में रहने का अवसर मिला जो दिन-रात पहलवानों और नर्तकियों से घिरे रहते थे और वियोगी जी के अस्तित्व को अपने लिए भार स्वरूप मानते थे। वियोगी जी द्वारा 06 दिसंबर 1947 ई. को लिखा गया एक पत्र उनके बाल्यावास्था को दर्शाता है - "जब मैंने जन्म लिया था अकेला धरती पर आया। 6 साल की उम्र में माता जी का देहांत हुआ। भाई, बहिन, नानी, दादी, चाचा कोई नहीं था। ..... परमात्मा उस समय भी था और आज भी है। मैं अकेला ही बचपन का खेल खेलता था। हालत यह थी कि 14 साल की उम्र में क, ख, ग, घ सीखने लगा-पाठशाला स्कूल कॉलेज का मुँह नहीं देखा और 3 साल पढ़कर शिक्षा से अलग हो गया। कौन था मुझे पढ़ाने वाला-शिक्षक? नहीं, वह भी परमात्मा ही प्रकाश देने वाला।"(1)

बाईस वर्ष की उम्र में वियोगी जी वैवाहिक बंधन में बंधे। उस समय देश में स्वातंत्रयोपलब्धि की लहर उत्पन्न हो चुकी थी। वियोगी जी के हृदय में यद्यपि साहित्य के अतिरिक्त और किसी विषय का स्थान नहीं था तथापि उन्होंने अनुभव किया कि देश के जीवन-मरण के प्रश्न के प्रति उदासीन रहना अनार्य बुद्धि है। राष्ट्र सेवा और साहित्य साधना दोनों एक साथ चलने लगी। प्रारंभ में उन्होंने ब्रज भाषा में समस्यापूर्ति आदि रचनाएँ की और बाद में खड़ी बोली हिन्दी में रचना करने लगे। उन्होंने बंगला साहित्य विशेषकर रवीन्द्रनाथ ठाकुर सहित मराठी, गुजराती भाषाओं के आकर ग्रंथों का मनोयोग से अध्ययन किया। जातक कथाओं के अध्ययन क्रम में उन्होंने पालि, प्राकृत एवं बौद्ध साहित्य का अध्ययन किया। 1942 ई. के आंदोलन में वियोगी जी हिमालय की गोद में कश्मीर पहुँचे वहाँ एक वर्ष बौद्ध भिक्षुक के रूप में रहे। वियोगी जी के जीवन में राजनीति के प्रति भी तीव्र आकर्षण रहा वो 12 वर्ष तक बिहार विधान परिषद् के सदस्य रहे। पटना विश्वविद्यालय के सीनेट सदस्य रहे।

इस वैविध्य पुर्ण जीवन के उपरांत भी वियोगी जी का जीवन सदैव आर्थिक संकट से घिरा रहा और जीवन के अंतिम समय में भी आर्थिक समस्याओं का सामना करते हुए माघ शुक्ल त्रयोदशी विक्रम संवत् 2046 तद्नुसार 7 फरवरी बुधवार 1990 को सरस्वती के वरदपुत्र का

कारूणिक निधन हो गया। वियोगी जी का सम्पूर्ण जीवन यात्रा कष्टों और संघर्षों के बीच मानवतावादी मूल्यों और राष्ट्रीयता के प्रतिमानों की खोज और स्थापना में व्यतीत हुआ।

कृतित्व- वियोगी जी का रचना संसार व्यापक हैं किंतु यहाँ काव्य रचनाओं को ही विवेचन का विषय बनाया गया है। इस दृष्टि से उनकी प्रकाशित काव्य रचनाओं का परिचय इस प्रकार है- प्रबंधकाव्य - आर्यावर्त (1925), गीत संग्रह- निर्माल्य (1925), एकतारा (1927), कल्पना (1935), लघुकाव्य - नरक में स्वर्ग

कविता के क्षेत्र में वियोगी जी की प्रकाशित रचना कम हैं। गद्य की विभिन्न विधाओं में दर्जनों प्रकाशित पुस्तकें हैं। काव्य की अपेक्षा उनका गद्यकार का पक्ष अत्यंत विशाल है। वियोगी जी उपन्यासकार थे, कहानीकार थे, नाटककार थे, संस्मरण लेखक थे, निबंधकार थे, चिंतक थे, शोध पूर्ण ग्रंथों के लेखक भी थे। वो 'काश' नामक हिन्दी पाक्षिक पत्रिका के प्रधान संपादक रहे। वियोगी जी ने भ्रमण साहित्य भी लिखा जैसे 'गया से पटना' शीर्षक उनका यात्रा वृत्तांत नई धारा जून 1959 में प्रकाशित लेकिन इस प्रकार की इनकी रचना कम हैं। वियोगी जी ने गया के तीर्थयात्रियों के लाभार्थ 'गया परिचय', 'गया दर्शन', 'गया श्राद्ध कब और कैसे', आदि छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ भी लिखीं। वियोगी जी ने व्यंग्य चित्र पर भी बहुत कार्य किया कवि और लेखन बनने के पूर्व व्यंग्य चित्रकार के रूप में उनकी ख्याति हो गई थी।

जातकालीन भारतीय संस्कृति (1958) और आर्य जीवन दर्शन (1971) वियोगी जी के दो अत्यंत शोधपूर्ण ग्रंथ हैं। उनकी रचना धर्मिता पर डॉ. वासुदेवनंदन प्रसाद ने सही कहा हैं- "क्या गद्य क्या पद्य सर्वत्र उनके (वियोगी जी)विराट व्यक्ति की छाप है।"(2) कान्हूलाल गुर्दा मोहनलाल महतो के काव्य गुरु थे। गुर्दा जी से उन्होंने काव्य और काव्य रचना के विभिन्न आयामों की विधिवत शिक्षा ग्रहण की थी। कान्हूलाल गुर्दा की प्रेरणा से ही समस्यापूर्ति रचनाकार के रूप में मोहनलाल महतो वियोगी जी के साहित्य जीवन का श्री गणेश हुआ। समस्यापूर्ति में वह "छविनाथ" उपनाम से लिखते थे।

1925 में वियोगी जी द्वारा विरचित सर्व प्रथम काव्य पुस्तक "निर्माल्य" का प्रकाशन हुआ। कतिपय आलोचकों का अभिमत हैं कि बिहार के किसी कवि द्वारा विरचित खड़ी बोली हिन्दी कविताओं का यह सर्वप्रथम संग्रह है। निर्माल्य शीर्षक के ऊपर पुस्तक में "संत्यम शिवं सुन्दरम्" मंत्र उल्लखित किया गया है। यह इस तथ्य का संकेत है कि वियोगी जी का सम्पूर्ण काव्य संसार सत्य शिवं सुन्दरम् पर आधारित हैं। निर्माल्य शीर्षक के उपरांत आवरण पृष्ठ पर दो पंक्तियों का एक पद्य भी हैं जो अधोलिखित है- "यदि रचना सुन्दर होगी तो स्वयं पढ़ेगा उसे सुजान।। सुमन नहीं करते सुवास के सखा शिलिमुख का आह्वान।।" (3)

उपर्युक्त पंक्तियाँ अपनी कवित्व क्षमता के प्रति तत्कालीन नवयुवक कवि के अखंड विश्वास का द्योतक है। अपने प्रथम काव्य संग्रह के प्रति यह असाधारण आत्मविश्वास भविष्य में प्रतिफलित हुआ। इस काव्य संग्रह की विज्ञप्ति में तात्कालिक प्रख्यात साहित्कार जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने लिखा था- "श्री गयाधाम के गौरव गयावालवंशावतंस ललित -कलाकुशल 'वियोगी' पंडित मोहन लाला महतो के लिए लम्बी-चौड़ी भूमिका की आवश्यकता नहीं, क्योंकि व्यंग्य चित्रों की विचित्रता के कारण वह स्वयं प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके है। महतो जी की महत्ता की सत्ता यों ही जम गई है और उनकी प्रतिभा का परिचय भी पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा प्राय: सबको मिल चुका हैं। इसलिये अब कहना केवल यही है कि इस नवीन 'निर्माल्य' के निरीक्षण से सुरसिकों को संतोष हुए बिना न रहेगा। निरवद्य पद्यरचना-चातुर्य्य और माधुर्य के अतिरिक्त सुंदर सुझ कमनीय कल्पना, भव्य भाव तथा नूतनत्व के निदर्शन का दर्शन स्थान-स्थान पर हो जाता हैं। सचमुच यह काव्य संग्रह सुन्दर और सराहा के योग्य हुआ हैं।"(4)

जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के द्वादश अधिवेश (लाहौर 1921) के अध्यक्ष थे खड़ी बोली के विरोधी थे। उनके द्वारा यह लिखना गौरव का विषय था। इस तथ्य को श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी ने भी निर्माल्य के 'कवि-परिचय' में रेखांकित किया हैं।

निर्माल्य में ईश्वर भक्ति, आस्तिकता का आलोक, एक भक्त की करूणा, भावना और दर्शन का सहज अनुभूत मिश्रण, रहस्यवाद की चाँदनी और माया के अद्भुत होने के साकारात्मक संकेत हैं। इसमें छायावाद की मौलिक विशेषताएँ अपने मानक रूप में और अत्यंत सहजता,सरलता के साथ उपस्थित है। विनय शीर्षक कविता में कवि ने निवेदन किया है- "भगवान्! भूल दास की भूल / डाल सींचता था मैं अब तक हाय! छोड़ कर मूल।/ भाग्य चक्र में बँधकर मैंने अगणित फेरे खाये। / भावुकता का कुछ न हुआ फल लाखों कष्ट उठाये।"(5)

मोहन महतो वियोगी का दूसरा काव्य संग्रह 'एकतारा' है जो 1927 में प्रकाशित हुआ। एकतारा की अधिकतर कविताएँ आकार में लघु किन्तु भावों की विदग्धता के प्रस्फुटन में दक्ष हैं। 'चित्रपट से' शीर्षक लम्बी कविता है। जिसमें कवित्व की कमनीयता का घनत्व हैं। एकतारा में जहाँ ओर उद्बोधन, सदियों की नीरवता का अंत कर देने का उत्साह है तो वहीं दूसरी ओर सौन्दर्य का वसंत और कवित्व की विशिष्टता जैसे गुण अंतरनिहीत है।

वियोगी जी का तृतीय काव्य संग्रह 'कल्पना' 1935 को प्रकाशित हुआ। कल्पना की कविताएँ जहाँ एक ओर घोर व्यक्तिवादी हैं तो वहीं दूसरी ओर समकालीन और तत्कालीन सामाज की पीड़ा से जुड़ी हुई हैं। कवि ने उक्त संग्रह की भूमिका में स्वयं भी इन दोनों विषयों को स्वीकार करते हुए लिखते हैं- "इस कल्पना में आप जो कुछ पढ़ियेगा वह नितान्त मेरी अपनी बात हैं।" (6)

तो वहीं तात्कालिक सामाजिक दुरावस्था का संकेत करते हुए लिखते हैं- "इस समय चारों ओर महानाश की ज्वाला धधक रही है। माँ बच्चे को भूनकर खा जाना चाहती है और

पुत्र पिता का सिर काट लेना चाहता है। दो मुट्ठी अन्न के लिए माता अपनी जवान पुत्री को बेच देने को उतारू हैं। मनुष्य-मनुष्य का ग्रास बना हुआ है। महाकालेश्वर का डमरू-निनाद कान के पर्दे फाड़ना चाहता हैं। खून के आँसू रोने का समय उपस्थित हो रहा है।"(7)

कल्पना की कविताओं में वेदना की विभा और चिंतन की अंतर्धारा, करुणा का कवित्व और आत्मभिव्यक्ति की आभा, स्व का विवेचन और हृदय की गहन अनुभूतियों की मंदाकिनी के साथ ही भाषा की सरल स्वच्छता देखी जा सकती है। इसकी कतिपय पक्तियाँ तो अविस्मरणीय ही हैं। यथा- "मिलन और बिछुड़न दोनों हैं जीवन के श्रृंगार"(8)

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी वियोगी जी के काव्याओं में इन विशेषताओं का मूल्यांकन करते हुए ही हिन्दी साहित्य के इतिहास में छायावाद के चार प्रमुख कवियों की चर्चा करने के पश्चात इस संवर्ग के अन्य उल्लेखनीय कवियों में पहला नाम मोहन लाल महतो वियोगी का लिया हैं। डॉ. विजयेन्द्र ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में "छायावाद" शीर्षक में वियोगी जी के विषय में लिखा है कि - "छायावाद के प्रारंभिक युग में इन्होंने निर्माल्य शीर्षक अपनी रचना प्रकाशित की थी जिसमें छायावाद की विचार वक्रताएँ, रहस्यानुभूति, वेदना आदि को प्रचुर स्थान मिला है। एकतारा और कल्पना शीर्षक उसकी रचनाओं में छायावादी युग की छाप देखी जा सकती है।"(9) किन्तु यह भी सत्य है कि वियोगी जी के काव्य में छायावाद की अपेक्षा रहस्यवाद को विशेष प्रश्रय मिला है। रहस्यवाद से उनके काव्य का गहरा संबंध होने के बावजूद छायावाद की काव्य - परिधि में भी उनका बहुमूल्य योगदान रहा है। उनकी अभिव्यंजना - शैली में हृदय को भाव - विह्वल बना देने की अद्भुत क्षमता हैं।

वियोगी जी ने राष्ट्रीय महाकाव्य 'आर्यावर्त' की रचना 1942-43 में की। 1942 अगस्त क्रांति के उत्ताप की अनुभूति इस काव्य में कि जा सकती हैं। आर्यावर्त में ऐतिहासिक बोध का सफल निर्वहन है। इसमें वर्तमान पर अतीत का अतिरंजित प्रक्षेपण नहीं अपितु अतित की अग्निशलाका से वर्तमान को उद्दीप्त-आलोकित करने की सार्थकता है। यह महाकाव्य स्वाधीनता के महायज्ञ में एक सारस्वत समिधा है। तेरह सर्गों में विभाजित आर्यावर्त के कथानक का आधार "पृथ्वीराज रासो" है। रासो की प्रमाणिकता पर सवालिया निशान लगते रहे हैं। आर्यावर्त ऐतिसाहिक तथ्यों से पूर्ण रूप से प्रमाणित नहीं है। इसमें कल्पना का अपमिश्रण भी है। ज्वलंत भारतीय आदर्श की झाँकी प्रस्तुत करना इस कृति में कवि का लक्ष्य था। इसलिए आर्यवर्त के षष्ठ संस्करण की भूमिका में कवि ने कहा- "यदि ज्वलंत भारतीय आदर्श की तनिक सी झलक भी "आर्यवर्त" दे सका, इसमें संदेह नहीं की मेरा कवि जीवन धन्य हो गया।"(10)

आर्यवर्त का सिद्धांत सूत्र है- "उदय हुआ रवि दिव्य राष्ट्रधर्म का, आज राष्ट्रीयता ही श्रेष्ठ आर्यधर्म है।"(11)

आर्यवर्त महाकाव्य राष्ट्र-धर्म की गौरवगाथा है। इस गाथा के गौरव-पुरुष महाराज पृथ्वीराज और महाकवि चंदवरदाई है। इसके पूर्व किसी भी महाकाव्य में चरितनायकत्व किसी महाकवि को प्रदान नहीं किया गया। पृथ्वीराज चौहान जहाँ भारत के पूँजीभूत गौरव के मूर्तिमान रूप हैं तो वियोगी जी ने महाकवि चंद के माध्यम से उग्र राष्ट्रीयता को हृदयबेधी वाणी दी है। वास्तव में आर्यवर्त महाकाव्य का नायक स्वंय आर्यवर्त ही है। साहित्य के संसार में यह सर्वप्रथम घटना है, जब कोई राष्ट्र ही किसी महाकाव्य का नायक हो। आर्यवर्त महाकाव्य जहाँ अमिताक्षर छंद का सर्वप्रथम महाकाव्य माना जाता है तो वहीं वीर रस के प्राधान्य की दृष्टि से भी खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है।

उपर्युक्त चार काव्य-कृतियों के अतिरिक्त भी वियोगी जी ने दशकों तक बहुसंख्यक कविताएँ लिखी जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी हुई है। इनका पुस्तकाकार प्रकाशन अब तक नहीं हो सकता है। आजीवन द्विपदियों, चतुष्पदियों और सूक्तियों रूप में वे कविताएँ करते रहे, साहित्यक गोष्ठियों में भी श्रोताओं और पाठकों के आग्रह पर वे अक्सर उनका मनोयोगपूर्वक पाठ करते थे। ऐसी उनकी समस्त रचनाओं को संगृहीत किये जाने की आवश्यकता है।

वियोगी जी के काव्य सृजन का काल भारतीय परतंत्रता के काल से स्वतंत्रता के काल तक और स्वतंत्रता के काल से स्वतंत्रता के सपनों के मोहभंग के काल तक फैला है। इस सम्पूर्ण काव्य यात्रा में कवि ने अपने युग धर्म का निर्वाह बड़ी ईमानदारी से किया हैं। किंतु श्रेष्ठ साहित्य काल के प्रवाह में भी सदैव कालजयी और प्रासंगिक होती हैं। उनके द्वारा लिखे गए शोधपूर्ण ग्रंथ भी आज की पीढ़ी को अपने जीवन मूल्यों की प्रति एक मौलिक और युगानुकूल व्याख्या की प्रेरणा प्रदान कर रहा हैं। वियोगी जी के काव्य जिस देशप्रेम की भावना और जन-कल्याण की मंजुषा से युक्त है वो आज की पीढ़ी को भी उसी प्रकार प्रेरणा देती हुई वर्तमान समय में अपनी प्रासंगिकता स्वयं सिद्ध कर रही हैं।

000

संदर्भ- (1) रामनिरंजन परिमलेन्दु, भारतीय साहित्य के निर्माता,मोहनलाल महतो वियोगी, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ 17, (2) मोहनलाल महतो वियोगी, निर्माल्य, वियोगी साहित्य परिषद्,गया,1994, आवरण पृष्ठ, (3) रामनिरंजन परिमलेन्दु, भारतीय साहित्य के निर्माता, मोहनलाल महतो वियोगी, साहित्य अकादेमी,नई दिल्ली, 2010,पृष्ठ 51, (4) मोहनलाल महतो वियोगी, निर्माल्य, वियोगी साहित्य परिषद्,गया,1994,पृष्ठ 7, (5) वही पृष्ठ 12, (6) रामनिरंजन परिमलेन्दु, भारतीय साहित्य के निर्माता, मोहनलाल महतो वियोगी, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ 65, (7) वही पृष्ठ 66, (8) मोहनलाल महतो वियोगी,कल्पना, वियोगी साहित्य परिषद्,गया,1999 पृष्ठ 42, (9) रामनिरंजन परिमलेन्दु, भारतीय साहित्य के निर्माता, मोहनलाल महतो वियोगी, साहित्य अकादेमी,नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ 68, (10) वही पृष्ठ 71, (11) मोहनलाल महतो वियोगी,ग्रंथमाला कार्यालय, पटना, 1994, पृष्ठ 1।

(शोध आलेख)

हिन्दी कविता में भूमण्डलीकरण और लोक जीवन की अवधारणा

शोध लेखक : उर्मिला
बी.आर.पी.
खंड शिक्षा अधिकारी कार्यालय

उर्मिला
बी.आर.पी.
खंड शिक्षा अधिकारी कार्यालय
भूना (फतेहाबाद) हरियाणा
ईमेल - cuverma86@gmail.com

वर्तमान प्रौद्योगिकी उदारवादी खुली अर्थव्यवस्था से नगरीकरण, शहरीकरण को जो नया समाज रचा बसा है, उससे लोक संस्कृति का रूप बदल रहा है। जीवन की व्यवस्था में नगरीय जीवन जीने वाला आदमी लोक जीवन की सभी धरोहरों को सहज पाने में नाकाम है। पुरानी सामाजिक विरासत के मिटते ही पुरानी संस्कृति भी नष्ट हो जाती है। सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले निर्णायक तथ्य संस्कृति के क्षेत्र से बाहर के होते हैं। इनका संबंध राजनैतिक अर्थशास्त्र से होता है। वर्तामान आर्थिक प्रणाली राजनीति का रूप संस्कृतिक क्षेत्र के लिए एक विराट चुनौती बनकर सामने आई है। संस्कृति का जुड़ाव लोक जीवन से होने के कारण पूँजीतंत्र के प्रभाव स्वरूप इस पर परिवर्तन होना आवश्यक है। लोक जीवन श्रम पर आधारित होता है और भूमण्डलीकरण मानव श्रम के बजाय 'मशीनी करण और कम्प्यूटरीकरण का प्रोत्साहन रहा है अत: लोक जीवन और लोक संस्कृति तो उस मछली की तरह है जो जन से अलग होते ही कृत्रिम हो जाती है। लोक जीवन में श्रम की प्रक्रिया और कलात्मक सृजन की प्रक्रिया का जो अन्योन्यश्रम संबंध है, वही उनकी ताज़गी और सजीवता का मूल स्रोत है।1

भूमण्डलीकृत होने की बेतहाशा होड़ में ज़मीन से टिके रहना और लोक बने रहना कठिन होता जा रहा है। श्रमशील एवं तथाकथित अशिक्षित-असंस्कृत जनता हमारा श्रमशील लोक है। इसकी लोक वार्ताएँ, लोक कथाएँ, लोक साहित्य सभी वैश्वीकरण से प्रभावित हुए है। सभ्यता और संस्कृति के विकृतिकरण एवं तथाकथित आधुनिकीकरण के अंधानुकरण के कारण आज का मनुष्य अपनी जड़ों में कटकर निजत्व और अस्मिता की तलाश में भटक रहा है। संक्रमण के इस दौर में वह अपने सुख-दु:ख, हर्ष-उल्लास और अंत:करण में छिपाकर असामाजिकता के अंधकूप में धँसता जा रहा है। ऐसे में संस्कृति और लोक जीवन की प्राचीन मान्यताएँ, विश्वास एवं परम्पराएँ दिन पर दिन परिवर्तित होकर एक नए रूप में सामने आ रही हैं जिनका आकार वैश्विक है।

आज की हिन्दी कविता उत्तरोत्तर विकास के साथ-साथ लोगों के जीवन में पसरती जा रही पश्चिमी सभ्यता संस्कृति के साथ-साथ लोक संस्कृति पर संजीदगी से रचनाकर्म में सन्नद्ध है। रचनाकार रोज़मर्रा की घटनाओं के महीन सूत्रों द्वारा कुछ गंभीर सत्यों को उद्घाटित करते हुए, उसके माध्यम से आदमी की आकांक्षाओं, जीवन विसंपतियों का अभिव्यस्त करते है। सर्वग्रासी वैश्विक संस्कृति के लिए देश-काल और समाज की लोकसंस्कृति पृथक-पृथक अवश्य हो सकती है परन्तु उसका लक्ष्य एक ही रहता है - देशज एवं लोक जीवन को मिटाकर अपनी योग परक संस्कृति एवं जीवनचर्या का विकास करना। लोक और संस्कृति की चिंतन करती समकालीन हिन्दी कतिवा वैश्वीकरण के प्रहार से आहत समाज के प्रति संजीदा है। अपनी सम्पन्न रचनाओं से लोक को एक नई दृष्टि प्रदान करते समकालीन हिन्दी कवि साम्राज्यवाद, पूँजीवाद, सामंतवाद एवं बाज़ार बाद के ख़िलाफ़ एक ताकतवर जन संस्कृति का निर्माण करने का उपक्रम करते है।

लोक की व्यापकता में हमारा समस्त जीवन विन्यास होता है। बाज़ार के इन वर्चस्व में नष्ट-भ्रष्ट होते संस्कृति, भौतिक सम्पन्नता और ऐशो-आराम भरी जिन्दगी का वर्णन किया है वहीं अभावों में पलते सर्वहारा वर्ग का भी चित्रण किया है। परिवेश की यात्रिकता, आदमी की निवशता और ग़मज़दा माहौल को विश्वनाथ प्रसाद तिवारी अपनी रचनाओं का विषय निर्धारित करते हैं। होली-दीवाली और बिरहा-चैती को सहेज लेने की कोशिश रचनाओं में साफ झलकती है। ताम-झाम और ग्लैमर के बीच पिसते आदमी के मन को टटोलकर गँवई गाँव में वापस लाकर विश्वनाथ तिवारी छिन भर के लिए ही सही गदगद ज़रूर होते उठते हैं - भूल गया मैं बिरहा - चैती / होली-दीवाली / मेला ताजिया / खेत की हरियाली / मुझे याद आया / सीमेंट और कंकरीत का / अपना पुख्ता शांत शहर।2

लोकगीतों की बात करें तो इसमें जीवन-जगत् के अनेक व्यापार जैसे खान-पान, रहन-सहन, पारिवारिक-सामाजिक संबंध, पारिवारिक मंत्रनाएँ, अनुशासन, नोक-झोंक, लुका-

छिपी, रूठना-मनाना तथा अनुराग वैमनस्य गूँजते हैं। नगरीय, कटी-छटी तरायी जीवन शैली के बरबस इनमें मिठास और अपनेपन की धुन सुनाई देती है। इसमें साज-सज्जा एवं बनावटी पन का बाज़ार, जीवन की अल्हड़ता, सौन्दर्य छलकते हैं। ये अद्‌भुत रस के स्रोत होते हैं। ये न कभी छीजते हैं न कभी निष्प्राण होते हैं। वैश्विक सम्पर्कों ने दीर्घकालीन परिदृश्य में आदान-प्रदान द्वारा संस्कृतियों को नए तत्व तो दिए ही साथ में अपवर्जक भी आ गए। मानव की सहजानुभूतियों से सृजित लोकगीतों का स्थान नए वाद्य यंत्रों एवं फिल्मी गीतों ने ले लिया है। विवाह गीत, मंगल गीतों का स्थान रेडीमेड गानों ने ले लिया। दादी-नानी, बुआ-मौसी की पोपली व मोठी गाली खो गई। मदन-कश्यप अम्मा द्वारा गाए जाने वाले लोक गीतों का स्मरण अपनी कविताओं में करते हैं - तीज त्योहार से जलसार तक के अंसख्य गीत / पसीने की गंध और पिसते आटे की ख़ुशबू से सने गीत / माँ की आँखों में गीतों का महासमुद्र था जैसे / दु:ख को भी गा लेती थी माँ / अनुष्ठानों की चोबों पर शामियाने की तरह तना था उसका जीवन / एक-एक अनुष्ठान के लिए कई-कई गीत / और कई-कई अनुष्ठानों के लिए एक ही गीत / गीतों के अद्‌भुत समुच्चय थे माँ के पास।3

माँ के कंठ से फूटे सुरीले लोक गीत हो या मिथिलाचंल में औरतों द्वारा हाथ से बनाए गए कोहबर। इन सब पर पूँजीकामी तंत्र का तीखा वार हुआ है। बिहार के एक क्षेत्र विशेष में चावल को पीसकर माटी की दीवार पर जो लोक चित्र उकेरे जाते हैं उन्हे 'कोहबर' कहा जाता है। रति और कामदेव की छवियों का चित्रांकन करते समय लोक गीतों की सुमधुर ध्वनि मिथिला के घर-घर में गूँजती रही है। ये अश्लीलता नहीं बल्कि लोक अभिव्यक्ति के व्यंजक स्वरूप होते हैं। देशज की सादगी, शालीनता एवं लोक संस्कृति को सहेजने की जद्‌दोजहद रमण कुमार सिंह इस प्रकार करते हैं - यहाँ किसी बहुराष्ट्रीय कम्पनी का रंग नहीं हैं / और न ही है / किसी अन्तर्राष्ट्रीय चित्रकार की तूलिका / जिसकी पेंटिंग बिकती है। ऊँची बोली पर / बाज़ार में हाथों-हाथ / घरेलू रंगों की सादगी और / अपनी मोहक मुस्कान से / कोहबर लिखती औरतें लड़ रही हैं / लोक संस्कृति की एक ज़रूरी और निर्णायक लड़ाई।4

लोक-जीवन में त्योहारों का अपना महत्त्व है। होली, दीवाली, दशहरा आदि धर्मों को मनाने का परम्परागत तरीका रहा है। दशहरा में रामलीला का मंचन होता है तो होली में वैरभाव को भुलाकर फाग में रंग जाने का उल्लास है। श्रमशील लोक के पास इनको जीवंत बनाए रखने की कसक और कोशिश है। भूमण्डलीकरण ने इनको नए परिवर्तित रूप में प्रस्तुत किया है लेकिन क्षेत्रीयता का दायरा समाप्त करके सब के लिए गणेश पूजा, दूर्गा पूजा और दही हांडी को मनाने का अवसर भी दिया है। अब क्षेत्रीय त्योहार सीमित न रहकर सार्वभौमिक हो गए हैं। वसंत का झोंका बूढ़ों को भी जवान बनाकर होली के सुर्ख रंगों में जीवन की सभी पीड़ाओं को बिसार कर ढोल की थाप के साथ फाग खेलने को विवश कर देता रहा हैं। भागम-भाग में दो चुटकी रंग लगाकर त्योहार की खाना पूर्ति पर अशोक वाजपेयी चिंता व्यक्त करते हैं। अपनी कविता 'दौआ बाबा' में कवि एक सोने बूढ़े व्यक्ति का चित्रांकन करता है जो कि विकलांगता के बावजूद होली में ढोल की थाप सुनकर जैसे पूर्ण नृत्य करने लगता है- होली में पूर्णांग होते दौआ बाबा / इस अचरज को अपने सामने होते सब देखते / और देवताओं का आंभार मानते / कोई नहीं जान पाता कि वर्ष में एक बार / पूरे हो जाने के लिए दौआ बाबा वर्ष भर / पूर्णता की इच्छाओं को कैसे जलाए रखते थे / पूरी इच्छा होती है, पैर नहीं।5

लोक जीवन में आनन्द की इन तंरगों से लहराती लोक कला शनै:-शनै: लुप्त होती जा रही है। सभ्यता तथा संस्कृति की अन्त: सलिला ही लोक कथाओं और लोक गाथाओं में जीवंत होकर सदियों तक उन्हें प्राणवान रखती है। लोक सत्य का उद्‌घाटन करता है। यहाँ बाजीगिरी नहीं चलती क्योंकि यहाँ की समझ सब की समझ से अलग होती है। रिश्तों की ज़मीन में वैश्वीकरण के दौर में किस प्रकार लोरी कहानी एवं लोक साहित्य का पतन हो रहा है इसका उद्‌घाटन हरजेन्द्र चैधरी की कविता में साफ देखा जा सकता हैं - मेरी माँ / मेरा अकेलापन / लोरी कहानी / किताबें / मैं / हम सब / 'बड़े बे आबरू होकर' निकल जाते हैं बाहर बच्चों के कूचे से जैसे ही टेलीविजन होता है ऑन।6

जीवन में लोक कला, लोक-राग की बजाय, वैभव भरा प्रदर्शन, सेटेलाइट तंरगों द्वारा प्रक्षेपित उत्सव, नृत्य-संगीत नाटक भले ही सुदूर गाँवों, पर्वतीय क्षेत्रों तक पहुँच रहे हों, परंतु जन सामान्य इन बनावटी जीवन तरंगों से अपने आपको ताजा एवं चिन्तन मुक्त अनुभव नहीं करता है। लुप्त होती जा रही दादी-नानी की कहानियों के कारण इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और सेटेलाइट टी.वी. चैनल चल रहे हैं। कृपाशंकर चौबे का मत है कि 'विदेशी आग्रह चैनलों के जरिए भारत के सांस्कृतिक जीवन में साम्राज्यवादी संस्कृति का दबाब इतना गया है कि इसे सिर्फ पश्चिमी संस्कृति का हमला कहा जा सकता है।7

दादा-दादी के हितोपदेश अब बच्चों को प्राप्य नहीं हैं। बचपन और अल्हड़ता नष्ट-सी हो गई है। तमाम भौतिकता के बावजूद जैसे लकड़कपन खाली सा हो गया है। यतीन्द्र मित्र दूध-भात की बजाय पिज्जा, बर्गर और नूडल्स के आने से संशक्ति हैं। वे समाज को सावधान करते हुए कहते हैं - इस दुनिया में तमाम दुनियावी चीज़ों के बीच / न अब चंदा मामा हैं / न उनके पास हमें देने के लिए / दूध-भात की कटोरी / हमारे स्वप्नों में अब सुनाई नहीं देती बचपन की आवाज़ें / हितोपदेश,पंचतंत्र की बातें / कितना हित और किसके लिए उपदेश / नींद टूटती नहीं / होश न रहने से टूट रहा परिवेश।8

समकालीन हिन्दी कविता के पिछले दो दशक सामर्थ्य के उस विकल्प को रखते हैं जिसमें भारतीय समय और विडम्बनाओं से भरे एक व्यापक यथार्थ की गहरी समझ है। यथार्थ की संश्लिष्ट संरचना के प्रसंगों, वस्तुओं, पात्रों और उसकी अन्त क्रियाओं को अचूक कौशल के साथ उठाकर अपना काव्य

लोक रचने की अनूठी सृजनशीलता हमारे गाँव, लोक के मामूली मनुष्यों की एक विशाल दुनिया का लोक जीवन परत पर खोलता है। कवयित्री नीलेश रघुवंशी की रचनाओं में लोक तत्व गहरे स्तर पर मौजूद है। घर से निकलते समय शुभ मुहूर्त का विचार और दही गुड़ आदि खाने की परम्परा के विलप्तीकरण पर उनका रेखांकन विचित्र है - कितने शुभ मुहूर्त में दही गुड़ खाकर देहरी पार की थी / और अब तो बनते काम भी बिगड़ेंगे / इसलिए सड़क किनारे खड़ा आदमी / प्रतीक्षा में हैं कि पार कर जाय कोई उससे पहले रास्ता / अपने हिस्से की सारी मुसीबतें, भयावह अंदेशे और अपशुकन / किसी और के हवाले कर, निकले फिर वह भी / बिल्लियाँ काटती हैं रास्ता बार-बार।9

भूमण्डलीकरण, अर्थनीति और पूँजीकामी संस्कृति पर सीधे चोट करती कविताएँ कवि के लक्ष्य को ज़्यादा विस्तार और गहराई देती है। चारों तरफ झुंड संस्कृति का झंडा फहरा रहा है। इस पर कुमार अबुंज ने टिप्पणी करते हुए लिखा हैं - टेलीविजन, सिनेमा और अख़बार भी / रोज़ एक ही दुश्वारी में डालते हैं / टूथपेस्टों, ब्लेडों, साबुनों और जूतों ने भी / मुसीबत में इजाफा ही किया है / एक जैसी पूँजी है एक जैसी दास प्रथा / चारों तरफ हैं एक सी तस्वीरें / एक सी दिशाएँ / अब और आशंकाओं की आहर से भरी हुई / एक ही सूचनाओं और एक से ज्ञान के बीच।10

अबुंज के यहाँ औद्योगीकरण के कारण स्थानीय रंगों के मिला जाने का अनुभव दिखाई देता हैं। ग्रामीण परिवेश को उर्वरता प्रदान करने वाले कुमार अबुंज लोक जीवन की रीतियों और परम्पराओं को ज़िंदा रखते हुए भेड़ चाल में शामिल होने से रोकते हैं।

ऋतु राज की कविता बदलती परिस्थितियों, शोषक संस्कृति और आदमी को आदमी द्वारा मार डालने की सभ्यता पर विरोध दर्ज करती हैं। अपनी रचना 'आशा नाम नदी' में कवि लोक के करीब पहुँच जाता है। ऋतुराज एक ऐसा चैनल लॉन्च करना चाहते हैं जिसमें समाज की वह संस्कृति दिखाई जाएगी जोकि समाज का सच है। कवि नगरीय-शहरी दृश्य नहीं दिखाना चाहता क्योंकि वहाँ उजाले से ज़्यादा अंधकार पर बहसें होती हैं, जहाँ उजली आँखें, रंग-बिरंगे होठ और गोरे-चिट्टे बेहद लुभावने आकर्षक शरीर तो हैं, परंतु आशा की कई नदियों का संगम नहीं हैं। ऋतुराज लोक जीवन का चित्रण इस प्रकार करते हैं - यह मेरा चैनल होगा / जिस पर रोटी छीनते दिखलाऊँगा उन्हें / सुबह-सुबह चैराहे पर इकट्ठे हुए मज़दूरों की / बोली लगते हुए देखोगे / और कप प्लेट धोता लड़का स्कूल बस में बैठे / बच्चों को हसरत से निहारता होगा।'11

निलय उपाध्याय की कविताएँ उस महानगरीय वर्चस्व का चित्रांकन करती हैं, जो कि हमारे ऊपर होता जा रहा है। 'इस बार छठ' कविता में निलय छठ पर्व के आधुनिक रूप पर कटाक्ष करते हैं जहाँ गाए जाने वाले छठ मैया के गीत अब कैमरे और सीडी से बजाए जाते हैं। पूजा पद्धति का परम्परागत रूप खोता जा रहा है। घाट किनारे की साज-सज्जा परम्परागत फूल-पत्रों के वंदनवार के बजाय टिमटिमाती विद्युत लड़ियों और बनावटी फूलों से की जाती हैं। यद्यपि यह पहले से कहीं ज़्यादा चमकीला है पर इसमें देशजता ख़त्म हैं - इस बार छठ में / जाने क्या हुआ कि नहीं मिला / टी-सीरिज का, छठ गीतों वाला / अनुराधा पौड़वाल का कैसेट / भाभी ने ना कहा / और नहीं गई घाट पर, बहनें / गईं और नहीं गाया कोई भी गीत / माँ और दादी के स्वर जैसे विलाप में तब्दील हो गए थे।12

आज जीवन का हर क्षेत्र या तो बाज़ार से आतंकित है या बाज़ार से संचालित प्रभावित। बाज़ार की माँग के अनुसार हाइजेक मनोरंजक कार्यक्रमों में ऐसे दृश्यों और प्रंसगों की संख्या बढ़ती चली गई जो उत्तेजना परक और क्रेज भरने वाले हैं जिसके लिए निर्माणकर्ता नवीनता का तर्क प्रस्तुत करते हैं।

निष्कर्षत: भूमण्डलीकरण और वैश्वीकरण की अवधारणा ने लोक जीवन को नष्ट करने का काम किया है। लोक जीवन हमारे लिए अच्छे-बुरे की कसौटी नुमा होता है। वह संस्कृति का महत्त्वपूर्ण पहलू है। भूमण्डलीकरण ने लोक संस्कृति और लोक जीवन के सामने एक नई चुनौती प्रस्तुत की है। इसके प्रभाव से जन-मानस एक-दूसरे से करने लगा है। आधुनिकरण ने लोक जीवन एवं लोक सभ्यता-संस्कृति को झकझोर कर रख दिया है। सामूहिकता के ह्रास, लोक गीतों, पर्वों, त्योहारों के स्वरूपों को बदल दिया है। पूँजीकामी संस्कृति ने लोक कलाओं तथा लोक संस्कृति पर प्रबल प्रहार किए। आर्थिक प्राविधिक क्रांति ने उत्पादन का स्वरूप तो बदला ही साथ ही उत्पादन से जुड़े परम्परागत मूल्यों को भी अस्त-व्यस्त कर दिया हैं। आधुनिक सभ्यता के मूक प्रहार से जर्जर हो रहे लोक रंजन और संस्कृति के विखराव को हिन्दी कवियों ने अपनी शैली में उभारने का यत्न किया हैं।

000

संदर्भ- 1.परिवर्तन और विकास के सांस्कृतिक आयाम-पूरन चन्द्र जोशी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999, पृ. 237, 2.कवि एकादश - सं. लीलाधर मंडलोई, अनिल जनवि जय, मेघा बुक्स, दिल्ली, 2008, पृ. 186, 3.नीम रोशनी में - मदन कश्यप, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2000, पृ. 14, 4.बाघ दुहने का कौशल - रमन कुमार सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ. 35, 5.तत्पुरूष - अशोक वाजपेयी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1989, पृ. 112, 6.जैसे चाँद पर से दिखती धरती - हरजेन्द्र चैधरी, राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ. 26, 7.समाज संस्कृति और समय - कृपा शंकर चैबे, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2008, पृ. 62, 8.ड्योढ़ी पर आलाप - यतीन्द्र मिश्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1989, पृ. 43, 44, 9.पानी का स्वाद - नीलेश रघुवंशी, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 54, 10.अतिक्रमण - कुमार अबुंज, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ. 60-61, 11.आशा नाम नदी - ऋतुराज, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. 42, 12.कटौती - निलय उपाध्याय, राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000, पृ. 18

(शोध आलेख)

हिन्दी कविता में भूमण्डलीकृत रिश्तों का सामाजिक विवेचन

शोध लेखक : संतोष कुमारी

संतोष कुमारी w/o श्री रामपाल
गाँव व डाकघर - मोहब्बतपुर
तहसील - मंडी आदमपुर
जिला हिसार (हरियाणा)
पिन- 125052
ईमेल - san9467246059@gmail.com

वर्तमान हिन्दी कविता भूमण्डलीकरण के खतरे को बार-बार व्याख्यायित करते हुए इसे सामाजिक-सांस्कृतिक रिश्तों के हमले के रूप में देखती हैं, जहाँ सब कुछ बाज़ार द्वारा तय किया जाता है। यहाँ सब कुछ बिकाऊ होता है और सब कुछ खरीदा जा सकता है। मॉल संस्कृति आने से सामाजिक और पारिवारिक रिश्ते चटक गए हैं। सामाजिक मूल्यों का ह्रास, स्वार्थपरता, संयुक्त परिवार प्रणाली का विघटन, नैतिकता का पतन, पति-पत्नी के ओच दरकता प्रेम, विघटनकारी शक्तियों की सक्रियता आदि सामाजिक विसंगतियाँ उभरकर सामने आ रही है। ऐसे विघटित एवं टूटे समाज का प्रभाव समकालीन कवियों में विद्रोह, अस्वीकार, नकार आदि के तेवर लाने के लिए विशेष रूप से उत्तदायी है। वैश्विक पूँजीवाद के आने के पश्चात् मोह भंग, अनास्था, दिशाहीनता पैदा हुई है। चरित्र के नाम पर स्वार्थ, हल-प्रंपच, बेईमानी, कर्म के नाम पर षड़यंत्र, हत्या, प्रवंचना, सामाजिक कल्याण के नाम पर काले धन को प्रतिष्ठित किया गया हे। समाज में जो संवेदन हीनता की स्थिति व्याव्त हुई हैं उससे भाव शून्यता बढ़ने के साथ-साथ पारिवारिक ताने-बाने को धक्का पहुँचा है तथा रिश्तों की गर्माहट कम हुई है।

मानव और जानवर में विभेद करने वाली भाव प्रवणता मापक होती है। भाव शून्य, संवेदनहीन, व्यक्ति न तो मानव रह जाता है और न ही सामाजिक प्राणी। जन्म से दिए गए संस्कार आजीवन फलीभूत होकर उसे जीवन-यापन की कला सिखाते हैं। परिवार प्रथम विद्यालय एवं माता-पिता पहले शिक्षक होते हैं। घर-परिवार और समाज से व्यक्ति जो कुछ सीखता-समझता है वही आजीवन आचरित करता है। नगरीकरण, शहरीकरण और जगतीकरण ने समाज की मूल संस्था परिवार पर भोगवाद, व्यक्ति परकता एवं वैश्विक पूँजीवाद की जो खाद डाली हैं उससे यह बिरवे कुम्हला रहा हैं। दूषित-प्रदूषित मनोवृत्तियों में उसका साँस लेना दुश्वार हो गया है। इसे ग्लोबलाइजेशन के बगीचे से उठाकर पुन: घर-आँगन में रोपित करने की ज़रूरत है। वास्तव में समाज और व्यक्ति का संबंध परिवार की पुनर्संचरना से होता है। समाज से चोटिल आदमी परिवार में ही आश्रय पाता है। पूँजीवाद के जन्मस्थान पश्चिम और अमेरिका में भी पारिवारिक ताने-बाने के टूटने पर सामाजिक चितेरे चिंतित दिखाई देते हैं। परिवार को पुन: संजोकर ईसाई जीवन की सशक्त व्यवस्था को विकसित करने का प्रयास वहाँ दिखाई देता हैं।

बीते दो दशकों में संयुक्त परिवार प्रणाली तेज़ी से क्षरित हुई है। वैश्विकता ने व्यक्ति का दायरा 'स्व' तक सीमित कर दिया है। आज परिवार के मायने बदल गए हैं। मैं, मेरी पत्नी तथा मेरे बच्चे परिवार की नई परिभाषा के रूप में अवतरित हुए हैं। पत्नी और बच्चों तक सिमटे एक परिवार से संयुक्त परिवार की उदात्त परम्परा स्खलित हो रही है। भूमण्डलीकरण के दौर में बदलते रिश्तों का वर्णन राजेश जोशी इस तरह करते हैं - बाबा को जानता था सारा शहर / पिता को भी चार मोहल्ले के लोग जानते थे / मुझे नहीं जानता मेरा पड़ोसी मेरे नाम से / अब सिर्फ एलबम में रहते हैं / परिवार के सारे लोग एक साथ / टूटने की इस प्रक्रिया में क्या-क्या टूटा है / कोई नहीं सोचता।1

घर अब घर नहीं रह गया है। वह एक मकान है जहाँ ईंट, पत्थर और गारे का कबाड़ है। रिश्तों में बनावट हैं, औपचारिकताएँ हैं, उपहार-आदान-प्रदान करने की सौदेबाज़ी है। बनावट और दिखावे के इस घर में वैश्वीकरण के कुमण्डु में चमक रहे हैं। भूमण्डलीकरण के कारण

प्यार बिकाऊ हो गया है। अशोक वाजपेयी ने बाज़ारवाद की चपेट में आए रिश्तों का चित्रण यथार्थ रूप में किया है - हर मकान दूकान में बदलने की होड़ में हैं - / उस भीड़ और हाहाहूती में खोजना मुश्किल होगा / बचपन का बस्ता, संगाती, छुपकर खायी चाट / आकाश नीम के मिथुनों के रूप का नीलाकाश / वह घर / असंभव हैं। उस तक पहुँचना / वह है / पर उस तक जाने का रास्ता / किसी को नहीं मालूम / कहाँ है वह घर ?2

कवि वर्तमान की उन विसंगतियों की ओर इंगित करता है, जिनका बोध सामान्यत: हमें नहीं होता परिवार हमारी अंत: संरचना का प्रतिनिधि होता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और परिवार इस सामाजिक ढाँचे की नींव। संत्रास, निराशा और भय, आतंक के समसामयिक परिवेश में परिवार हमारे साहस, संकल्प, आत्म विश्वास और जीवनता को संजीवनी देता है। मनुष्यता की जिजीविषा कुंटुब में ही रहती है। घर-परिवार और समाज के जीवित बने रहने के कारण ही हमारा अस्तित्व बरकरार है। कृष्ण मोहन झा ने बदलते परिवार-परिवेश को मनुष्यता के सन्दर्भ में वर्णित किया हैं - घर में मौजूद / सैकड़ों वर्ष पहले की गई / प्रार्थनाओं की पवित्रता / इस घर में नर भेड़ियों के ख़िलाफ़ उठाए गए / खड्ग का संकल्प सुरक्षित है / इस घर में बची हैं / नदियों की खोज में की गई / अनगिनत यात्राओं की महक / मनुष्य बने रहने का संघर्ष जीवित हैं।3

पारिवारिक विघटन का त्रासद दृश्य सबसे अधिक महानगरों में दिखाई देता हैं। बुज़ुर्ग अकेलेपन से तंग आकर जीवन समाप्त करने के लिए कानूनी मान्यता माँगने लगे हैं। यद्यपि मृत्यु तो मृत्यु है परन्तु जैसी मौत की तलाश आधुनिक इंसान कर रहा है। उसमें और सामान्य मृत्यु में गुणात्मक भेद आया हैं। आधुनिक समाज में सफल लोगों के लिए मृत्यु एकांकीपन और सन्नाटे की एक दुनिया से सीमा हीन शून्य की ओर दूसरी एकांकी यात्रा है। दिखावे और एक दर्जा ऊपर स्थापित होने की होड़ में जहाँ एक ओर माता-पिता परिव्यक्त किए गए हैं वहीं उनके न रहने पर अत्येष्टि और क्रिया कर्म में दिखावा किया जाने लगा है। देवताले जी ने बदलती धारा को करुणा के साथ उद्घाटित करने में सफलता प्राप्त की हैं - वैसे अपने यहाँ मृतकों को सम्मान के साथ याद करने का / पखवाड़ा भी होता हैं / जीते जी उनके साथ क्या-क्या किया गया ? / यह याद करना कतई आवश्यक नहीं होता / अंत्येष्टि धूम धड़ाके से होती हैं।4

वैसे तो भूमण्डलीकरण से रिश्तों में दरार आई है तथापि आज की पीढ़ी में माता-पिता से दूर रहने के कारण श्रद्धा व लगाव भी देखा जाता हैं। रचनाकार अव्यवस्थाओं को उघाड़ कर समाज में चैरस और समतल वातावरण सृजित करने का पक्षधर होता हैं अत: वह उन कारकों की पड़ताल अधिक करता है जिनसे आत्मीयता में कसैलापन आया है। आज की तरुण संस्कृति की तमाम विसंगतियों पर कठोर आघात करती समकालीन हिन्दी कविता खोखली सहानुभूति का विलक्षण पर्दाफाश करती हैं। विनय विश्वास ने तो समाज की उस लिजलिजी सभ्यता को नंगा कर दिया है जहाँ माता-पिता यह मानकर घर में रखे जाते हैं कि इनसे घर का काम होता रहेगा। यही वैश्विक भोगवादी सभ्यता रिश्तों को ख़त्म कर रही हैं - आख़िर मर गया बूढ़ा / वो बड़ा अच्छा था / आटा पिसवाता था / सफाई वाली से अच्छी तरह सफाई करवाता था / सादगी से रहता था / बच्चों को खाना सिखाता था / उसके रहते घर को ताला नहीं लगाना पड़ा कभी।5

एक पिता, बेटे के जोरू का गुलाम बन जाने से आहत है और करे भी तो क्या ? बहू का क्या दोष ? वैश्वीकृत बयार ने स्नेह के वसंत को पतझड़ कर दिया। पूर्व में पिता को घर का मुखिया, नियंता माना जाता था और उसकी इच्छा शिरोधार्य करना परिवार के प्रत्येक सदस्य का कर्तव्य था। समय और हालात में परिवर्तन के परिणाम स्वरूप माता-पिता के जो कर्तव्य थे वे 'लाइबेल्टी' बन गए। वर्तमान समय में यदि किसी श्रवण कुमार के पास माता-पिता रहते भी हैं तो वे रहते नहीं वरन् जीवन निर्वाह करते हैं - पिता जानते हैं वे घर में हैं अपने बेटों के / मगर उस तरह नहीं जैसे बेटे थे उनके घर में / पिता की दबंगई के बारे में याद है सबको / पिता अब भी हैं / सिर्फ दबंगई छूट गई है सत्तावनवीं सीढ़ी पर / मैं जब भी पिता का चेहरा देखता हूँ / पाता हूँ - / उनकी काली पनीली आँखों में मोतियाबिंद पक रहा हैं।'6

अशोक वाजपेयी उस घर परिवार और समाज को सहेज लेना चाहते हैं जहाँ निबोरी थीं, बचपन की शरारतें थीं, दादा-दादी का स्नेह, ताऊ की डाँट और बड़ी माँ का दुलार था। ग्लोबलाइजेशन के नियाबान में तरुण संस्कृति ही नहीं बुज़ुर्ग वर्ग भी दारुण विलाप करता दिखाई देता है। वह इसकी काली छाया से व्यथित है जिसने बुढ़ापे की लाठी छीन ली, माँओं से उनके बेटे, बेटी से अधिक आदर-स्नेह देने वाली वधू और पोते-पोतियों से गुलज़ार आँगन की किलकारी लुप्त हुई हैं। बुआ का दुलार, मौसी की मनुहार, नाना-नानी का दूध-भात, मामा का घूँसा तथा बड़े बुज़ुर्गों के सामाजिक दृष्टांत अब लुप्त प्राय हो गए हैं। त्रासदी ऐसी कि परिवार के निखर जाने पर घर का मुखिया, बुज़ुर्ग फफक कर रो उठता हैं। देवताले इसे भूमण्डलीकरण की देन मानते हैं - कहाँ गया बाबू / खो गया मेरा बच्चा / मशीनों के बियाबान में / जोरू का पेटी कोट / कहते हुए वे फफक-फफक कर रोने लगे / एक दिन मुझे भी करना है विलाप / इसी तरह कल्पते हुए / अपने बच्चों के खो जाने के बाद।7

संयुक्त परिवार परम्परा को विखंडित करने के साथ-साथ जगती करण ने अन्य रिश्तों पर भी दीमक लगाया है। युग और व्यक्ति की मन: स्थिति बदलती गई है। भोगवादी संस्कृति का दुष्परिणाम यहाँ तक फलित हुआ कि आदमी अपनी सह भागिनी तक को बदल देने में भी नहीं हिचकता है। कुछ परिवार आर्थिक संत्रस्ता के कारण टूटे और कुछ शारीरिक भोग की कुत्सित इच्छाओं के कारण। इसमें पुरुष के साथ-साथ स्त्री भी अलगाव की पक्षधर बनकर सामने आई। बाज़ारवाद के शक्ति सम्पन्न दौर में अग्नि को साक्षी मानकर पत्नी के साथ लिए गए सात फेरों तक को धता..... बताने से गुरेज नहीं

किया जाता हैं समकालीन कवि एकांत श्रीवास्तव इस थोथे सामाजिक रिश्तों का बयान कुछ यूँ करते हैं - जिसे थामा है अग्नि को साक्षी मानकर / साक्षी मानकर तैंतीस करोड़ देवी देवताओं को / एक अधूरी कथा है वह / जिसे पूरा करना हैं / इसे छोड़ूँगा तो धरती डोल जाएगी।'8

भूमण्डलीकरण के इस दौर ने आदमी का समय खा लिया हैं। संवादहीनता, मशीनीकरण और जीवन की तमाम प्रतिस्पर्धाओं के कारण घर-परिवार के लोगों के लिए समय ही नहीं बचता है। अनेक तनावों को झेलते रहने के कारण माँ को हर घटना बताई नहीं जाती और न बताना वाजिब लगता हैं। देवी-देवताओं से प्रार्थना के रूप में नहीं वरन् विद्रोह के अनगढ़ स्वर में कायरता.... और निरीहता से बचते हुए अपनी बात कहने वाले कवि देवी प्रसाद मिश्र अंतर की छटपटाहट का ब्यौरा देते हैं कि जीवन की मुसीबतों से तंग आकर इंसान आत्महत्या तक की बात सोच लेता है परन्तु माँ को कुछ भी नहीं बताता। संवाद हीनता इस वैश्विक और बाज़ारवाद में बढ़ती दिखाई देती हैं – माँ मुझे आते-जाते देखती हैं / वे नहीं जानती कि मैं सिगरेट पीने लगा हूँ / वे नहीं जानती कि मैंने शराब भी पी है / वे नहीं जानती कि किस-किस से मैं उधार लेता हूँ / वे नहीं जानती कि मैं कहाँ-कहाँ किस-किस तरह से अपमानित होता हूँ / वे नहीं जानती कि कितनी बार मैंने आत्महत्याओं के निर्णय मुल्तवी किए हैं।

समकालीन कविता क्रूर अमानवीय ताक़तों के विरुद्ध सार्थक कारवाई का उद्घोष हैं, चाहे वे ताक़तें पूँजीवाद की हों, भूमण्डलीकरण की हों, उपभोक्तावाद की हों या उदारीकृत अर्थव्यवस्था की। कविता अपने समय की अनुगूँज होती हैं जिसमें परस्पर विरोधी परिस्थितियों के बीच जी रहे आदमी की अंतर्वेदनाओं और आस्थाओं की ध्वनियाँ समाहित होती हैं। कवि समाज की पीड़ा को अनुभव करता है और उसका कोई भी दर्द निजी नहीं होता है। परिवार का चित्रण करते समय समकालीन हिन्दी कविता अवलोकित करती हैं कि घर की रीढ़ माँ का दर्द बढ़ा है और वह व्यथित है। माँ केवल एक शब्द नहीं, एक सम्पूर्ण भाषा है। उसकी इच्छाओं में आकाशगामी उड़ाने नहीं होती वरन् विश्रांति का एक ठौर होता है। वैश्विकरण ने अपना स्वार्थ पूर्ण करने के लिए माँ को बेटे से दूर का दिया हैं। माँ की ममता नहीं बदली बल्कि बेटों का व्यवहार बदल गया हैं। वे भौतिकता का शिकार हो गए हैं - वे दिन बहुत दूर हो गए हैं / जब माँ के बिना परसे / पेट भरता ही नहीं था / वह मेरी भूख और प्यास को / रत्ती-रत्ती पहचानती थी / और मेरे अक्सर अधपेट खाए उठने पर / बाद में जूठे बर्तन अबेरते / चैक में अकेले बड़बड़ाती रहती थी / अपने बीवी बच्चों के साथ खाते हुए / अब खाने की वैसी राहत और बेचैनी / दोनों ही गायब हो गई हैं / अब सब अपनी-अपनी ज़िम्मेदारी से खाते हैं / और दूसरे के खाने के बारे में एकदम निश्चिंत रहते हैं।'10

बाज़ारवाद की चपेट में आने से पहले माँ, बेटे के आधा पेट खाने की स्थिति में चिंता व्यक्त करती थी। पत्नी, बच्चों के साथ भोजन करते समय न तसल्ली है न मिठास। अब तो सब अपनी-अपनी थाली पर ध्यान देते हैं न कि इस बात पर कि परिवार में कौन खाया और कौन अधपेट खाया। भागम-भाग में आदमी को समय ही नहीं है कि वह माँ तक पहुँच पाए। रात में थका-हारा जब वह लौटता है तो उसे मालूम नहीं पड़ता कि माँ कितना पिसी है और कितना उदास है। बेटा अपनी तरक्की के चक्कर में रिश्तों को खोखला कर चुका हैं - माँ आज तू उदास है / पर तेरी उदासी देखने का समय किसके पास है / बूढ़ी हड्डियों के लिए / तू भले ही पिसती रहे चूल्हे-चक्की में / मैं तो व्यस्त हूँ / सिर्फ अपनी तरक्की में।11

निष्कर्षत: वर्तमान कवि प्रश्नांकित करते हैं कि क्या पारिवारिक रिश्तें अवांछनीय हो चले हैं या कोई नई अवधारणा पनप गई हैं कि हम अपनी जड़ों से कटकर शून्य में विचरण करने लगे हैं। भोगवादी कल्चर में हमारा संबंध उन्हीं लोगों से हैं जिनसे हमारा काम बन सकता है। बोझ बन गए रिश्तों से छुटकारा पा लेना आज के आधुनिक समाज में पश्चिमी देशों की नकल है। भारतीय संस्कृति अपनाये..... और परहितार्थ वाली रही है परन्तु वैश्विक संक्रमण से मानव मूल्यों और पारिवारिक मूल्यों का ह्रास हुआ है। मनुष्य अपना स्वत्व, अपनापन मानवीय गरिमा भूलकर केवल आर्थिक लाभ पाने के लिए कुछ भी करने को तैयार है। मूल्यहीनता से सामाजिक परिवेश का कोना-कोना भर उठा है। प्यार, सहानुभूति और भाईचारे जैसे मानवीय गुण अब छल-प्रपंच में बदल गए हैं। वैश्विकरण और भूमण्डलीकरण ने समाज और परिवार के मूल्यों को परिवर्तित किया है। उसने रिश्तों में तनाव और कुण्ठा व्यक्त की हैं। समकालीन कवि इससे अछूता नहीं है वह समान को वैश्विक परिदृश्य में प्रस्तुत कर परिवार और समाज के जीवंत रिश्तों को बनाये रखने का आह्वान करता है।

000

संदर्भ-

1.दो पंक्तियों के बीच- राजेश जोशी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ. 55, 2.घास में दुबका आकाश- अशोक वाजपेयी, वाजी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998, पृ. 30, 3.समय को चीरकर- कृष्ण मोहन झा, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 1998, पृ. 20, 4.उजाड़ में संग्रहालय- चन्द्र कांत देवताले, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003, पृ.127, 5.पत्थरों का क्या है- विनय विश्वास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 39, 6.किवाड़-कुमार अंबुज, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 1996, पृ. 85, 7.लकड़बग्घा हँस रहा है- चन्द्रकांत देवताले, वाजी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000, पृ. 46, 8 . मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद- एकांत श्रीवास्तव, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2003, पृ. 89, 9.प्रार्थना के शिल्प में नहीं- देवी प्रसाद मिश्र, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007, पृ. 78, 10.लकड़बग्घा हँस रहा है- चन्द्रकांत देवताले, वाजी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000, पृ. 54, 11.पत्थरों का क्या है- विनय विश्वास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 16

(शोध आलेख)

सुभद्रा कुमारी चौहान की कहानियों में दाम्पत्य जीवन की विसंगति का यथार्थ निरूपण

शोध लेखक : दिग्विजयसिंह सी. झाला
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
हेम. उत्तर गुजरात यूनिवर्सिटी

दिग्विजयसिंह सी. झाला
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
हेम. उत्तर गुजरात यूनिवर्सिटी
पाटन- 384265(गुजरात)
ईमेल - digvijaysinhzalat@gmail.com

स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की सबसे महत्त्वपूर्ण कड़ी दाम्पत्य जीवन ही है। भारतीय सामाजिक जीवन में दाम्पत्य संबंध था विवाह, वासना पूर्ति का साधन नहीं है। वह जीवन का बंधन, त्याग एवं समर्पण का प्रतीक है। विवाह बंधन के पीछे हृदय की धार्मिक वृत्ति काम करती है जो जीवन में पति-पत्नी के बीच विश्वास और अपनत्व बनाये रखती है। पारिवारिक जीवन का विकास ही राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना को विकास की ओर ले जाता है। अत: समाज तथा राष्ट्र के संगठित संचालन के लिए पारिवारिक शांति की आवश्यकता है और वह शांति पारिवारिक दाम्पत्य संबंध के सुचारूपन से ही आ सकती है।

दाम्पत्य जीवन के बदलते जीवन मूल्यों का बड़ा तेज़ी से प्रभाव पड़ा है। आधुनिक नारी-पुरुष अपनी-अपनी जगह पूर्ण व्यक्तियों की खोज में क्रियाशील दिखाई देते हैं। खोज की प्रत्येक दिशा उनके व्यक्तित्वों को खण्डित कर रही है। आधुनिक स्त्री को अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की रक्षा के लिए अनेक स्तरों पर संघर्ष करने पड़ रहे हैं, तथा कथित आधुनिक पुरुष स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व का हिमायती होकर भी उसे पुरुष संस्कारों से मुक्ति दिलाना नहीं चाहता। वह स्त्री के प्रति अपने उत्तर दायित्व को पूर्णत: निभा नहीं पा रहा है। वह अपनी वासना, विकृति इच्छा और सुखचैन के लिए स्त्री की आजादी की घोषणा करता हुआ नज़र आता है। पर स्त्री के साथ संबंध जोड़ने में उसे कोई हिचक और संकोच नहीं होता। लेकिन वही पुरुष अपनी पत्नी पर पुरुषों के साथ सम्बन्धों को बर्दाश्त नहीं कर पाता दूसरी ओर स्त्री परिवार की जड़ता, संत्रास, घुटन, ऊब और जीवन की जटिलताओं से बाहर निकलकर मुक्ति की साँस लेना चाहती है। जिस रंगीन और सुखी जीवन की उसने कल्पनाएँ की होती है। उसका मोहभंग होने पर वह टूटती नज़र आती है, उसमें एक ठण्डेपन का अहसास भर गया है। सुभद्रा जी की कहानियों में इसकी पूर्ण सच्चाई मिलती है। दाम्पत्य जीवन की टूटन और ठण्डेपन के अहसास को कुछ कहानियों के माध्यम से सुभद्रा जी ने वाणी प्रदान की है।

आधुनिक परिवेश ने मानवीय सम्बन्धों में अभूत पूर्व परिवर्तन उपस्थित किये हैं उनसे दाम्पत्य सम्बन्धों को भी धक्का लगा है। डॉ. क्षिजित धुमाल के मतानुसार- "अर्थाभाव की विकटता, अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव, बेरोकटोक जीवन यापन करने की प्रवृत्ति, स्वतंत्र रहने की चाह ने पारिवारिक सम्बन्धों में तनाव की स्थितियों का निर्माण किया है।"1 डॉ. प्रेमलता गाँधी लिखती हैं- "सम्बन्धों की मधुरता पति-पत्नी दोनों की एक-दूसरे के प्रति निष्ठा, सहयोग, अपनत्व एवं सुझावों से उत्पन्न होती है। कभी पति-पत्नी के बीच किसी कारणवश तालमेल नहीं

हो पाता तो उनके संबंध अधूरे होने लगते हैं।"2 आपसी रिश्तों का पुराना ढाँचा आज खोखला हो चुका है। पुरानी सामाजिक व्यवस्था के टूटने एवं नई सामाजिक आस्था के जन्म लेने के इस संधिकाल में आज नैतिक बन्धनों की कोई मान्यता नहीं है। नारी के स्वतंत्र जीवन में पुरुष वर्ग द्वारा अपने परम्परागत संस्कारों एवं अधिकारों को छोड़ न पाना तथा आर्थिक दृष्टि से नारी का आत्म निर्भर होना, अविश्वास, बताकर आदि ऐसे कारण हैं, जिनकी वजह से दाम्पत्य सम्बन्धों में कटुता आ रही है। डॉ. टेस्सी जार्ज के अनुसार- "जहाँ पारिवारिक संबंध मूल्य विघटन के आधार पर जड़वत् बन जाते हैं वहाँ व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़ने वाला संबंध भी शिथिल बन जाता है।"3 इस दृष्टि से सुभद्रा जी की कहानियों में दाम्पत्य जीवन की विसंगतियाँ यथार्थ क्रम में परिलक्षित होती है।

'भग्नावशेष' कहानी में नारी अपने पति के साथ ख़ुश नज़र नहीं आती। इस कहानी की प्रमुख नायिका एक साहित्यिक नारी है जो विडम्बना के चलते एक अधेड़ उम्र के सथा ब्याह दी जाती है। यहाँ उसकी पढ़ाई लिखाई सब छूट जाती है। वह अपने पति के साथ मजबूरीवश ही रहती है। अपने पति के साथ वह बिल्कुल भी ख़ुश नहीं है। तत्कालीन समय की यह भी विडम्बना थी कि पति चाहे तो पत्नी को त्याग सकता था परन्तु पत्नी ऐसा नहीं कर सकती थी। यहाँ दाम्पत्य जीवन विसंगति से भरा हुआ है। इसका कारण नारी स्वतंत्रता तथा उम्र में अन्तर होना भी प्रमुख कारण रखता है। "उन्होंने मेरी तरफ एक बड़ी ही बोधक दृष्टि से देखा। दृष्टि में न जाने कितनी करुणा, कितनी विवशता और कितनी कातरता भरी थी। वे अपने पति के पीछे-पीछे चली गई।"4

'होली'-कहानी में दाम्पत्य जीवन की विसंगति उजागर हुई है। करुणा के साथ जगत् प्रसाद एक पति के रूप में प्रस्तुत न होकर जल्लाद के रूप में पेश आता है। वह पत्नी को प्रेम नहीं करता। पति के द्वारा जुआ खेलना और शराब पीना उसे अच्छा नहीं लगता। फलत: दोनों का जीवन तनाव ग्रस्त है। दोनों एक दूसरे से ऊबे हुए हैं। पत्नी जहाँ पति को उपदेश देती है आदर करती है वहीं पति के द्वारा उलाहना, अपमान, तिरस्कार ही मिलता है। सुभद्रा जी ने यहाँ दाम्पत्य जीवन की विसंगति को आधुनिकबोध से सम्बन्धित किया है। पति को जब पत्नी की कोई फ़िक्र नहीं रहती है तो दाम्पत्य जीवन में खटास तो आती ही है। पत्नी पति से ख़ुश नहीं है इसलिए वह होली का त्योहार भी मनाना नहीं चाहती। करुणा की इस पंक्ति से स्पष्ट होता है कि उनका दाम्पत्य जीवन सुखी नहीं है- "तो भी क्या कहूँ? क्या तुम नहीं जानते, होली या कोई भी त्योहार वही मनाता है जो सुखी है। उसके जीवन में किसी प्रकार का सुख नहीं, वह त्योहार भला किस? पर मनाये?"5

'मँझली रानी' कहानी में तारा और उसका पति दात्पत्य विसंगतियों से घिरे हुए हैं। इसका पति विलासी होने के कारण कई-कई दिनों तक महल में ही नहीं आता। रानी अपने पति को पाने के लिए तरसती रहती है। दूसरी तरफ उसकी सास भी पति-पत्नी के सम्बन्धों को ख़राब करने में अहम भूमिका अदा करती है। वह मँझली रानी पर भ्रष्ट आचरण का झूठा इल्जाम लगाकर दाम्पत्य जीवन का सत्यानाश कर देती है। आज भी भारतीय परिवारों में ऐसी कई नारियाँ हैं जो अपने बेटों का घर उजाड़ देती हैं। स्वयं मँझली रानी अपने दाम्पत्य जीवन की बढ़ती विसंगति और प्रेम का चित्रण इस प्रकार से करती है- "मेरे पति मँझले राजा, बड़े ही विलास प्रिय, मदिरा सेवी, शिकार के शौकीन और न जाने क्या-क्या थे, मैं क्या बताऊँ। वे बहुत सुन्दर भी थे। किन्तु उनके दर्शन मुझे दुर्लभ थे। चार छ: दिन में कभी घंटे-आध घंटे के लिए वे मेरे कमरे में आ जाते तो मेरा अहोभाग्य समझो। उसकी रूप माधुरी को एक बार जी भर के पीने के लिए मेरी आँखें आज तक प्यासी हैं किन्तु मेरे जीवन में वह अवसर कभी न आया।"6

'दृष्टिकोण' कहानी में स्त्री हक-अधिकार के प्रश्न को लेकर दरार आ जाती है। इस कहानी की मुख्य नायिका निर्मला को जब पति और सास स्त्री अधिकार नहीं देते हैं तो दाम्पत्य जीवन में विसंगति आ जाती है। फलत: पति-पत्नी का विधान तो नहीं होता पर दोनों के मन खट्टे हो जाते हैं। इस कहानी में नारी अपने अधिकारों की रक्षा करना चाहती है पर कर नहीं पाती। वह केवल अन्दर ही अन्दर घुटकर रह जाती है। 'बिट्टन' को घर में रखने के प्रश्न से जो विसंगति खड़ी होती है उससे नारी अस्मिता जाग जाती है। उसे पहलीबार यह अहसास होता है कि मैं स्वतंत्र नहीं हूँ। इसी स्वतंत्रता के कारण वह अब स्वयं को एक दासी समझने लगी थी- "हाँ उसमें एक ही परिवर्तन था कि अब उसके व्यवहार में हुकूमत की झलक न थी। वह अपने को इन्हीं दो तीन नौकरी में से एक समझती थी, जो घर में काम करने के लिए होते हैं मगर जिनका कोई अधिकार नहीं होता।"7

'कदम्ब' के फूल' कहानी में सास-बहू के कारण दाम्पत्य जीवन में दरार आते-आते बच जाती है। मामा के द्वारा की गई मज़ाक मामा को उल्टी पड़ जाती है। मिठाई की बात को लेकर सास-बहू में तकरार हो जाती है। शाम को जब गंगा प्रसाद आते हैं तो सास-बहू की बातें अपने बेटे से कहती है जिससे वे भड़क उठते हैं और मामा को मारने के लिए तत्पर हो जाते हैं। ठीक उसी समय मोहन के आने से मामला रफा-दफा हो जाता है। दाम्पत्य जीवन में खटास आते-आते रह जाती है। लेखिका ने इस कहानी में इस बात को स्पष्ट किया है कि ज़रा-सी बात या मज़ाक के कारण पूरा दाम्पत्य जीवन बिखर सकता है।

'गंगा प्रसाद' अब न सह सके, बोले-वह तुझे मारेगी माँ मैं ही न उसके हाथ-पैर तोड़कर डाल दूँगा। कहते हुए वे हाथ की लकड़ी उठाकर बड़े गुस्से से भीतर गए। मामा को डाँटकर पूछा - "क्या मंगाया था तुमने मोहन से।" गंगा प्रसाद के इस प्रश्न के उत्तर में 'कदम्ब के फूल थे, भैया!' कहते हुए मोहन ने जब घर में प्रवेश किया तब मामा ने दोना उठाकर गंगा प्रसाद के सामने रख दिया था। दोने में आठ-दस पीले-पीले गोल बेसन के लड्डुओं की तरह कदम्ब के फूलों को देखकर गंगा प्रसाद को हँसी आ गई। मोहन ने दोने में से एक फूल उठाकर कहा - "कितना सुन्दर है यह फूल भौजी।"8

'किस्मत' कहानी में राम किशोर और उनकी पत्नी की बात-बात पर अनबन होती रहती है दोनों का दाम्पत्य जीवन सुखी नहीं है। राम किशोर की पत्नी का स्वभाव ठीक न होने की वजह से दोनों एक-दूसरे से ऊबे रहते हैं। पत्नी अपनी खीझ पति पर उतारती है। ''राम किशोर अपनी इस पत्नी से बहुत दबते थे। इन सब बातों को जानते हुए भी वह किशोरी पर किये जाने वाले अत्याचारों को रोक न सकते थे। इसलिए बहुधा वे चुप ही रह जाया करते थे।''9 जिस घर में पति-पत्नी के विचारों का सन्तुलन नहीं होता वहाँ दाम्पत्य जीवन कभी सुखी नहीं रह सकता।

'आहुति' कहानी में कुन्तला और राधेश्याम की जिन्दगी में अखिलेश्वर आ जाने से दाम्पत्य जीवन विसंगति से भर जाता है। अखिलेश्वर कुन्तला को साहित्यिक शिक्षा देता है, जिसके कारण राधेश्याम दोनों के सम्बन्धों पर शंका करने लगता है। राधेश्याम इसी के चलते कुन्तला की डायरी, पेन आदि भी जला देता है। दोनों के बीच एक मनमुटाव की रेखा खींच जाती हैं। पति देव पत्नी के इस संबंध को अनैतिक मानते हैं। वे ईर्ष्या के भाव भी अपने हृदय में प्रज्वलित करते हैं एक अच्छी खासी पारिवारिक जिन्दगी में केवल सन्देह करने से ही खटास आ जाती है। ''अखिलेश्वर निष्कपट और निस्वार्थ भाव से ही कुन्तला का शिक्षण कर रहे थे। उन्हें कुन्तला से कोई विशेष प्रयोजन न था। कुन्तला के इस शिक्षण से उन्हें इतना ही आत्म संतोष था कि वे साहित्य की एक सेविका तैयार कर रहे हैं जिसके द्वारा कभी न कभी साहित्य की कुछ सेवा अवश्य होगी। राधेश्याम के हृदय में इस प्रकार उनके प्रति ईर्ष्या के भाव प्रज्वलित हो चुके हैं, इसका उन्हें ध्यान भी न था।''10

'जाती' कहानी में पति-पत्नी के मध्य जमीदार के लड़के के आने के कारण दाम्पत्य जीवन में विसंगति आ जाती है। घरवाले बहू को यह ताकीद कर देते हैं कि वह जमीदार के लड़के से बातचीत न करे लेकिन फिर भी दोनों में कभी-कभी बातचीत हो जाती, जिससे पति के द्वारा पत्नी को पीटा जाता है। दाम्पत्य जीवन में खटास या दरार लगभग किसी तीसरे के आने से ही पैदा होती है। तत्कालीन समय में इस विसंगति के कारण हजारों घर तवाह हो जाते थे तब पुरुष जीवन पर तो इतना असर न पड़ता था पर नारी जीवन तो पूरी तरह बर्बाद हो जाता था। नारी इसी विसंगति के चलते या तो घर से निकाल दी जाती थी या वह आत्महत्या कर लेती थी। इस कहानी में इसी तीसरे के कारण नारी की स्थिति पागलों जैसी हो जाती है। दाम्पत्य जीवन को सुधारने के लिए नारी पर अत्याचार भी होते हैं जिससे जीवन सुधरता तो नहीं और बिगड़ता चला जाता है- ''उसके बाद क्या बताऊँ कि क्या-क्या हुआ? ज्यों-ज्यों उनसे बोलने को रोका गया, त्यों-त्यों एक बार जी भरकर इनसे बात करने के लिए मेरी उत्कंठा प्रबल होती गई। किन्तु मेरी यह साध कभी न पूरी हुई। वे जाते-जाते एक दो बातें बोल दिया करते, जिसके उत्तर में मैं केवल हँस दिया करती थी, लेकिन लोग यह भी न सह सके और तिल का ताड़ बन गया।''11

'ग्रामीण' कहानी में कोना और विश्व मोहन के बीच छोटी-छोटी बातों को लेकर विवाद होता रहता है। पड़ोस में रहने वाले फैजू के कारण दाम्पत्य जीवन की विसंगति इतनी बढ़ जाती है कि सोना को आत्महत्या करनी पड़ती है। विश्व मोहर फैजू को लेकर अपनी पत्नी पर शक करने लगता है। सोना को वह चार दीवारी में कैद रखना चाहता है परन्तु ऐसा नहीं हो पाता। विश्व मोहन सोना की प्रकृति नहीं समझ सके। वे उसे एक भ्रष्ट आचरण की नारी समझ लेते हैं- ''तीन दिन के बाद विश्व मोहन लौटे। जाने के पहले उनमें सोना में जो कुछ बातचीत हुई थी, वे उसे प्राय: भूल से गए थे। सोना के लिए अच्छी सी साड़ी, एक जोड़ी पैरों के लिए सुन्दर से स्लीपर और कुछ हेयर स्लिप लिये हुए वे घर आए, किन्तु सामने ही चबूतरे पर उन्हें फैजू बैठा हुआ मिला। पास की हरी-हरी घास पर वह अपना तीतर चुगा रहा था। विश्व मोहन उसे देखते ही तिलमिला से उठे। सन्देह और भी गहरा हो गया। सारी बातें ज्यों-त्यों फिर ताजी हो गईं। उनका हृदय बड़ा ही विचलित और व्यथित हुआ, न जाने कितने प्रकार की शंकाएँ उन्हें व्याकुल करने लगीं। उनका चेहरा फिर गंभीर हो गया। घर आकर वे सोना से एक बात भी न कर सके। माँ से एक दो बातें कर, बिना भोजन किये ही वे ऑफिस चले गए। सोना से यह उपेक्षा न सही गई।''12 परिणाम यह होता है कि स्त्री उपेक्षा के चलते सोना आत्महत्या करने अपने ऊपर लगे कलंक को धो डालती है। दाम्पत्य जीवन पूरी तरह से बिखर जाता है।

इस प्रकार सुभद्रा जी की कहानियों में दाम्पत्य जीवन की विसंगतियों के चित्र यथार्थ रूप में अंकित हुए है। दाम्पत्य जीवन की टूटन और ठण्डेपन के अलावा पति के बेवजह शक करना इनकी कहानियों में कई स्तरों पर देखा जा सकता है। कभी-कभी नारी को जीवन के घृणित पक्ष से इस तरह दो-चार होना पड़ता है कि बाद में अनुकूल परिस्थितियाँ प्राप्त होने पर भी वह अपना मानसिक सन्तुलन नहीं सँभाल पाती। फलस्वरूप दाम्पत्य जीवन सुख और सफलता की सीढ़ी पर चढ़ते-चढ़ते अचानक फिसलकर लंगड़ा हो जाता है। सुभद्रा जी ने अपने दाम्पत्य पात्रों का परिवेश और देश काल के सन्दर्भ में ही चित्रित हुए हैं। इन्होंने दाम्पत्य जीवन की विसंगतियों के विवेचन में नारी विमर्श को गति देते हुए आगे आने वाले कहानीकारों का भी मार्ग प्रशस्त किया है।

000

संदर्भ- 1. बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों का प्रवृत्ति मूलक अनुशीलन - डॉ. क्षितिज धुमाल, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, 1992, पृ. 60, 2.नरेश मेहता के उपन्यासों का सांस्कृतिक अनुशीलन - डॉ. प्रेम लता गाँधी, भारतीय ग्रन्थ निकेतन, नई दिल्ली, 1996, पृ. 264, 3.स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में मूल्य परिवर्तन - डॉ. टेस्सी जॉर्ज, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 2006, पृ. 26, 4.सुभद्रा कुमारी चौहान ग्रन्थावली (भाग-दो)-सं.व.स. रूपा गुप्ता, स्वराज प्रकाशन नई दिल्ली, 2015, पृ. 59, 5.वही, 60, 6.वही, 71-72, 7.वही, 91, 8.वही, 95, 9.वही, 97, 10.वही, 116, 11.वही, 120, 12.वही, 138

(शोध आलेख)

शिवमहिम्नः स्तोत्र में शिवतत्व

शोध लेखक : डॉ. आर. डी. पटेल
(संस्कृत विभागाध्यक्ष)
विजयनगर आर्ट्स कॉलेज

स्तोत्र शब्द स्तु धातु में से निष्पन्न हुआ है। 'स्तुयते अनेन इति स्तोत्रम्। '1 जिसके द्वारा भक्तिभाव पूर्वक आराध्यदेव की स्तुति या प्रार्थना की जाती है, वह 'स्तोत्र' है। किसी भी देवता के स्वरुप या गुणों का काव्यमय शब्दो में किर्तन किया जाय उसे 'स्तोत्र' कहा जाता है। सुख की प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करनेवाला मनुष्य जीवन की आधि-व्याधि और उपाधि से हारकर दीन-हीन बन जाता है तब अपने उद्धार के लिए परमात्मा से आर्त स्वर में बिनती करता है।

संस्कृत का स्तोत्र साहित्य काफी विशाल है। वेदों, पुराणों, तन्त्रग्रन्थों, रामायण, महाभारत तथा महाकाव्यों में विशिष्ट इष्ट देव की स्तुतिवाले अनेक श्लोक मिलते हैं। भिन्न-भिन्न देवों के भक्त कवियोने वैविध्यपूर्ण भावों से अपने अपने इष्टदेवों की हृदयंगम एवं भक्तिभावपूर्ण मधुर स्तुति की है। इसी तरह से पदभ्रष्ट गंधर्वराव कवि पुष्पदन्त ने 'शिवमहिम्नः स्तोत्रम्' की रचना कर शिव स्तुति द्वारा दिव्य तेज को पुनः प्राप्त किया था। यह स्तोत्र काव्य संस्कृत स्तोत्र साहित्य में लोकप्रिय एवं सुप्रसिद्ध है। प्रस्तुत स्तोत्र काव्य में कवि पुष्पदंतने शिव के सगुण एवं निर्गुणरुप को शिखरिणी छंद में आबद्ध किया है। इस स्तोत्र काव्य की एक विशेषता यह है कि इसमें भगवान् शिव के प्रति सच्ची भक्तिभावना के साथ वेदान्तदर्शन के महत्त्व के सिद्धांतों के सारतत्व को भी गूँथ लिया है। शिव की अपार करुणा, भक्तजनों के प्रति वात्सल्य, उनकी लीलाओ एवं उदात्त गुणों का वर्णन सगुण भक्ति के अंतर्गत द्रष्टिगोचर होता है। इस स्तोत्र काव्य में शिव की अपार करुणा का वर्णन करते हुए कवि भावविह्वल बन जाता है – महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिन भस्म फणिनः / कपालं चेतीयत्तव वरद तंत्रोपकरणम्। / सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद्भ्रूप्रणिहितां / न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति।।2

अर्थात् बड़ा नंदी, खटवांङ्ग, परशु, मृगचर्म, भस्म सर्प एवं मानव कपाल जैसी नगण्य वस्तुओं को धारण करनेवाले शिव अत्यंत दरिद्र लगते हैं, फिर भी उनकी अपार महिमा तो देखो! उनकी एक कृपा दृष्टि दी गई विपुल समृद्धि का समस्त देवता उपभोग करते हैं। भक्तजनों पर उनकी अनन्य कृपा बनी रहती हैं। इसका वर्णन करते हुए कवि इस स्तोत्र काव्य के १३ (तेरह) वें श्लोक में लिखते हैं कि शिव की कृपासे बाणासुर इन्द्र को भी इर्ष्या हो ऐसे विपुल वैभव का स्वामी बन गया तथा तीनों भुवनों को अपने सेवक की तरह आज्ञांकित बना दिया। प्रस्तुत स्तोत्र काव्य के श्लोक – 11 (ग्यारह) में वर्णन हैं कि रावण को त्रिलोक का साम्राज्य प्राप्त हुआ वह भी शिव की अनन्य भक्ति का ही फल है। इस प्रकार शिवजी अपनी अनन्य करुणा के कारण देव, दानव और मानव सब के परम आराध्य बन गए हैं। विष्णु की शिवभक्ति का वर्णन करते हुए कवि कहता है - हरिस्ते साहस्त्रं कमलबलिमाधाय पदयो –/र्यदेकोने तस्मिन् निजमुदहरन्नेत्रकमलम्। / गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा / त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम्।।३

अर्थात् भगवान् विष्णु एक सहस्र कमलों का उपहार शिव के चरणों में रखकर शिवपूजा शुरू करते हैं इस में एक कमलपुष्प कम पडने पर विष्णुने अपना नेत्ररुपी कमल शिवजी को आर्पित किया। उनकी ऐसी उत्कट भक्ति से प्रसन्न होकर शिवजी ने उन्हें सुदर्शन चक्र दिया। त्रिभुवन की निरंतर रक्षा करनेवाला सुदर्शन चक्र भगवान् शिव की अनन्य कृपा का ही प्रमाण है। भक्त कवि पुष्पदंत ने शिव के विराट स्वरूप का महिमागान किया है - तवैश्चर्यं यत्नाद् यदुपरि विरिचिर्हरिरधः / परिच्छेत्तुं यातावनलमनलस्कधवपुषः। /ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश यत् / स्वयं तस्थे ताभ्यां तब किमनुवृत्तिनं फलति।।४

अर्थात् शिवजी के दिव्य लिंग स्वरूप का पता लगाने के लिये ब्रह्मा आकाश में और विष्णु पाताल में गए पर दोनों में से किसी को उसका छोर नहीं मिला। अंत में हार कर दोनों ने श्रद्धापूर्वक शिव की स्तुति की तब उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर शिवजी उनके सम्मुख प्रकट हुए। शिव की परमकृपासे उन्हें परमतत्त्व का साक्षात्कार हुआ। यहाँ शिव की सर्वोत्कृष्टता व्यक्त होती है।

शिवलीला का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि अपने अमोध बाणों से देव, दानव एवं

डॉ. आर. डी. पटेल
संस्कृत विभागाध्यक्ष, एसोसियेट प्रोफेसर
विजयनगर आर्ट्स कॉलेज, विजयनगर
जिला साबरकांठा (उत्तर गुजरात)

मानव को पराजित करनेवाले कामदेव के गर्व को नष्ट करने के लिए शिवजीने पलभ र में उसे भस्मीभूत कर दिया यह उनकी अदभुत लीला है (शिवमहिम्न: स्तोत्रम् श्लोक – 15, 23) त्रिपुरद्दहन के वर्णन द्वारा शिव की कल्पनातीत महिमा का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि परमेश्वर शिव के लिए त्रिपुरों का दहन करने के लिए कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं थी। इच्छामात्र से ही उनका विनाश पलभर में हो सकता था किन्तु त्रिपुरारी (शिवजी) ने तारकासुर के पुत्रों के तीन नगरों के नाश के लिए पृथ्वीरूपीरथ, ब्रह्माजी को सारथी, मेरुपर्वत का धनुष, सूर्य और चन्द्र को रथ का चक्र और विष्णु को बाण बनाया। त्रिपुरदहन तो शिवजी के लिए सामान्य सी बात थी फिर भी उन्होंने इस काम के लिए कल्पनातीत आयोजन किया। इसमें स्वाधीन साधनों के साथ लीला करते हुए सर्वेश्वर की महिमा प्रकट होती है। (श्लोक – 18) भक्तजनों पर सदैव वात्सल्य रखनेवाले शिव का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि भक्तवत्सल भगवान् शिव ने रावण को उसकी तपश्चर्या से प्रसन्न होकर त्रिलोक का राज्य दिया। तत्पश्चात् वह अभिमानी हो गया और कैलाश को हिलाने का प्रयत्न करने लगा। यह देखकर भयभीत पार्वती को आश्वस्त करने हेतु शिवने अंगुष्ठ के अग्रभाग से कैलाश के शिखर पर थोड़ा सा दबाव डाला तो गर्विष्ठ रावण पाताल में पहुँच गया। अन्तत: शिव कृपा से ही वह बच भी गया। इस प्रकार भगवान् शिव ऐसे कृतज्ञ और उद्धत भक्तों पर भी कृपादृष्टि रखते है। (श्लोक – 12)

भगवान् शंकर तो 'आशुतोष भी हैं और 'आषुरोश' भी हैं। 'आशुतोष' का अर्थ होता है 'शीघ्र ही प्रसन्न होनेवाला' और 'आशुरोष' का अर्थ होता है 'शीघ्र ही क्रोधित होनेवाला'। इस प्रकार उनका व्यक्तित्व असाधारण है वे करुणानिधी होने के बावजूद भी कभी कभी रौद्ररुप धारण कर लेते हैं। और अधर्म का नाश करने के लिए तत्पर रहते हैं। पिता ब्रह्मा द्वारा भ्रष्ट होने की आशंका से उनकी पुत्री संध्या हिरनी बनकर भागने लगी तो ब्रह्मा भय रहित होकर रोहित मृगका रूप धारण कर उसके पीछे दौड़े। ब्रह्मा के इस कृत्य के लिए कहा जा सकता है कि 'कामातुराणां न भयं न लज्जा' उस समय ब्रह्मा को सज़ा देने हेतु पिनाकपाणि शिव ने उन पर बाण चलाया था। (शिवमहिम्न: स्तोत्रम् श्लोक – 22) इसी प्रकार शिव के रौद्र स्वरूप का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि - "सर्व शरणदाता, स्वयं यज्ञफलदाता एवं परम आराध्य देव होने के बावजूद अपने श्वसुर दक्ष प्रजापति के श्रद्धारहित यज्ञ का विध्वंस करवाया। इस प्रकार उन्होंने यज्ञ एवं धर्म के सत्व की रक्षा की।"5 श्मशान में निवास करने वाले, भूत पिशाच जैसे अनुचरों के स्वामी, शरीर पर भस्म को धारण करनेवाले, कंठ में मुंडमाला धारण करनेवाले शिव का स्वरुप अमंगल होने के बावजूद वे भक्तजनों के लिए मंगलकारी ही सिद्ध होते हैं। (श्लोक – 24) समुद्रमंथन में से निकले कालकूट विष का पान करके नीलकंठ बने शिवजी ने विश्व के संकट दूर किये। (श्लोक – 14) इस प्रकार शिवमहिमा का गान करते हुए कवि शिवतत्व के साथ तादात्म्य स्थापित करता है।

शिव के निर्गुण स्वरूप का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि - "भगवान् शिव का निर्गुण स्वरूप वर्णनातीत है। मन उसके भेद को समझ नहीं पाता है। उनका महिमागान करने में श्रुति भी विस्मित हो जाती है। पर उनकी अपार कृपा तो देखो ! भक्तों की भक्ति का आलंबन बनने के लिए वे निर्गुण निराकार में से सगुण-साकार बन गए।"6

स्तोत्र के पच्चीसवें से तीसवें श्लोक में निरूपित शिव के सर्वव्यापक ऊँकार स्वरूप, परब्रह्ममय, 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' या 'तददूरे तदन्तिके' तथा सर्वमय, फिर भी सर्वातीत स्वरूप के वर्णन में निर्गुण भक्ति की मस्ती दिखायी देती हैं। सर्व श्रुति-स्मृति का तात्पर्य केवल निर्गुण ब्रह्म में ही है और यह सत्य है ऐसा कवि कहते हैं। श्लोक – 26 में अष्टमूर्ति युक्त शिव का वर्णन शिव सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान एक ब्रह्मतत्व है ऐसा फलित होता है। इस प्रकार शिव के तात्विक वर्णन से कवि ने दार्शनिक सिद्धान्तों को पृथक किया है।

ॐ की व्याख्या करते हुए कवि कहता है – / त्रयीं तिस्त्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा – / नकाराधैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्ण विकृति।/ तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभि: / समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम्।।७

अर्थात् ब्रह्म का वाचक मंत्र ॐ अ, उ, म्, वर्णो में क्रमानुसार त्रि-देव, त्रि-लोक, तीन अवस्थाएँ त्रि-वेद और इन सबसे परे ऐसा अजन्मा, अनादी, अक्षरब्रह्म वहीं शिवतत्व है। व्यस्त या समस्त रुप में परमतत्व एक ही हैं। 'सर्व खल्विदं ब्रह्म'। उसे शिव, हर या मृड कुछ भी कहो किन्तु समस्त नाम और रूप एकमेवाद्वितीय परमेश्वर के ही है। इस प्रकार स्तोत्र के अन्त में अद्वैत सिद्धांत का प्रतिपादन हुआ है। प्रस्तुत स्तोत्र में अधिकतर शिव के सगुण स्वरूप का वर्णन हुआ है फिर भी कतिपय श्लोकों में निर्गुण स्वरूप का वर्णन भी दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार इस स्तोत्र में शिव की सगुण एवं निर्गुण दोनों प्रकार की भक्ति मार्मिक रूप से अभिव्यक्त हुई है। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि कवि ने इस स्तोत्र में शिव के समस्तगुणों, शिवतत्व की सर्वव्यापकता का मुक्त कंठ से गान किया है।

000

संदर्भ- 1.वामन शिवराम आप्टे – संस्कृत – हिन्दी कोश, पृष्ठ - 1137, 2.पुष्पदन्त-शिवमहिम्न: श्लोक – 8 पृष्ठ -10, सरस्वती पुस्तक भंडार, अहमदाबाद, 3.वहीं, श्लोक – 19, पृष्ठ - 23, 4.वहीं, श्लोक - 10, पृष्ठ - 13, 5.क्रियादक्षो दक्ष: क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता – मृषीणामात्विज्यं शरणद सदस्या: सुरगणा:। क्रतुभ्रंशस्त्वत्त: क्रतुफलविधानव्यसनिनो ध्रुवं कर्तु: श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखा:।। (शिवमहिम्न: स्तोत्रम् – श्लोक – 21), ६.अतीत: पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो – रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि। स कस्य स्तोतव्य: कतिविधगुण: कस्य विषय: पदे त्ववाचीने पतति न मन: कस्य न वच:।। (शिवमहिम्नन: स्तोत्रम् – श्लोक – 2), 7.पुष्पदन्त-शिवमहिम्न:स्तोत्रम्, श्लोक - 27, पृष्ठ – 26, पार्श्व प्रकाशन, अहमदाबाद

(शोध आलेख)

हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में चित्रित आदिवासियों की समस्याएँ

शोध लेखक : सोलंकी दक्षा बहन प्रतापसिंह, आसिस्टेंट प्रोफेसर, आर्ट्स कॉलेज बामणा

सोलंकी दक्षा बहन प्रतापसिंह
आसिस्टेंट प्रोफेसर, आर्ट्स कॉलेज बामणा
ईमेल- dakshab1485@gmail.com

शोध-सार - समाज हमेशा परिवर्तनशील रहता है। आदिवासी समाज में भी समाज सुधारकों, समाजसेवी संस्थाओं, सरकार की विकास नीति के कारण बदलाव आ रहा हैं। लेकिन विकास विनाश का कारण है ऐसा नारा पहाड़ी अंचलों, आदिवासियों में प्रचलित हुआ है। जब विकास शुरू होता है तब कई रुकावटें सामने आती है जो समस्या का रूप धारण कर लेती है। आदिवासी अंचलों में होने वाले विकास का पहिया आदिवासी शोषण का आयाम बना है। एक का विकास दूसरे के लिए हानिप्रद होना संघर्ष का कारण बनता है। आदिवासी समाज अविकसित अंचलों का निवासी है। भौतिक साधनों का अभाव, यातायात की कमी, सामान्य स्तर की मानसिकता उनकी ज़िंदगी है। आदिवासियों का जीवन प्रकृति के अधिक निकट रहा है। प्राचीन काल से भारतीय समाज जीवन में कई समस्याएँ आ रही हैं, कई समस्याएँ सुलझ गई हैं तो कुछ नई समस्याएँ सामने आई हैं। डॉ. धुर्ये के अनुसार "हमारे विचार से जनजातियों की समस्याएँ एक प्रकार की नहीं बल्कि अनेक प्रकार की हैं।"1

आदिवासियों का जीवन और उनकी समस्याएँ - आदिवासी समाज अविकसित है। आदिवासियों का जीवन मुक्त, प्रकृति के निकट ज़्यादा रहा है। आर्थिक, भौतिक, सामाजिक समस्याएँ उनके साथी हैं। सरकार आदिवासियों के विकास के लिए प्रयत्न कर रही है, लेकिन विकास में अक्सर उनकी समस्याएँ बाधा बनकर आती है। जिसके कारण विकास रुक जाता है। हिन्दी उपन्यासों में चित्रित आदिवासी जनजीवन की समस्याओं पर विचार-विमर्श करेंगे।

(1) अंधविश्वास की समस्या - भारतीय समाज में 'धर्म' को ज़्यादा महत्त्व दिया गया है जो समाज व्यवस्था को नियंत्रित करती है। विज्ञान इसे 'अंधविश्वास' कहता है। पंडित नेहरू के शब्दों में "भारत की अधिकांश सामाजिक समस्याओं का मूल कारण अंधविश्वास है।"2

"जिस श्रद्धा के पीछे कोई वैज्ञानिक आधार नहीं वही 'अंधश्रद्धा' कही जाती है। अज्ञान से रूढ़ि धार्मिक विचार 'अंधश्रद्धा' ही है। ग्राम जीवन में इसका अधिक प्रभाव है।"3 विवेकीराय का कथन है, "गाँवों के लोगों के अंधविश्वासों से काटकर यदि पृथक कर दिया तो गाँव नहीं रह जाता है।"4

राजेन्द्र अवस्थी के 'जंगल के फूल' में गोड द्वारा नारायण देवता को प्रसन्न करने के लिए सूअर की बलि चढ़ाना, भूत - प्रेत का खंडहर में या पेड़ों पर रहना, पेड़ के नीचे दीप जलाने से संतान की प्राप्ति होना।"5 'जंगल के आसपास' में पवित्रता के लिए स्त्री की अग्नि परीक्षा लेना, 'जाने कितनी आँखें' में संतान प्राप्ति के लिए ताबीज बाँधना, 'साँप और सीढ़ी' में संकट न आए इसलिए दरवाज़े पर जाली बाँधना, 'कब तक पुकारूँ' में आग लगाने से संतान होना, 'पहाड़ी जीव' में पुल बनाने के लिए नर बलि देना। आदि कई अंधविश्वासों का चित्रण हुआ है। हिन्दी के आँचलिक उपन्यासकारों ने जंगल वासी आदिवासियों में स्थित धार्मिक मान्यताओं को चित्रित किया है। भूत - प्रेत, चुड़ैल, डायन, मृतात्मा, ईश्वर के संबंध में डर की भावना होने से इसके ख़िलाफ़ विद्रोह नहीं है। अज्ञान के कारण आज अंधविश्वास बढ़ रहे हैं, ऐसा लगता है।"6

(2) ज़मींदारों द्वारा शोषण की समस्याएँ - आदिवासियों की आजीविका का मूल आधार जंगल और ज़मीन है। लेकिन ज़मींदार इन लोगों की ज़मीन हड़प लेना, बेगार लेना, फसल लूट कर उनका शोषण करते हैं। 'जंगल के आसपास' में राय साहब द्वारा ग़रीब किसानों से आलू, टमाटर लेना, मज़दूरी न देना।"7 ज़मींदार अपनी सत्ता, संपत्ति और अफसरों से संबंध होने के कारण आदिवासियों का शोषण करते हैं। आज ज़मींदारों के रूप में परिवर्तन हुआ है जो ठेकेदार, कारखानदार के रूप में उनका शोषण करते हैं।

(3) अज्ञान एवं शिक्षा की समस्या - समाज विकास का मूल आधार 'शिक्षा' है। डॉ. पी. आर. नायडू का कथन है, "आदिवासियों के शोषण, पिछड़ेपन, ग़रीबी का प्रमुख कारण उनका

अशिक्षित होना ही है। "8 डॉ.आंकरे कहते हैं "अज्ञान, अशिक्षा के कारण आदिवासी मंत्र - तंत्रराज, जड़ी -बूटी पर विश्वास रखते हैं।"9 रांगेय राघव के 'कब तक पुकारूँ' का सुखराम अज्ञान के संदर्भ में कहता है "जब तक करनट शिक्षित नहीं होते तब तक वे कुत्ते की मौत मरते रहेंगे।"10 राजेंद्र अवस्थी के 'जंगल के फूल' में बस्तर के गोंड नारायणपुर में खोले स्कूल को भूमकाल में उड़ा देने, बच्चों को पाठशाला नहीं भेजते। गुरुदत्त के 'बनवासी' में ईसाई द्वारा पाठशाला खोलना, बिंदु को ईसाई बनाकर अध्यापिका बनाना।"11 अब सरकारी विकास योजना के बल पर धीरे-धीरे शिक्षा का प्रसार किया जा रहा है।

(4) धर्मांतरण की समस्या - भारतीय समाज में धर्म एक शक्तिशाली संगठन रहा है। "धर्म मनुष्य की आन्तरिक चेतना के विकास, नैतिक सदाचार तथा मानवीय प्रेम, सहयोग एवं सहानुभूति का मार्ग है।"12 महात्मा गांधी के शब्दों में "ईसाई मिशनरियों द्वारा चलाई जाने वाली शिक्षा संस्थाओं, अस्पतालों को मैं अप्रत्यक्ष लाभों में गिनता हूँ। आज वे धर्म परिवर्तन की मुख्य प्रवृत्ति के सहायक साधन हैं।"13

ईसाइयों ने नौकरी आवास, संपत्ति देकर आदिवासियों को धर्मांतरण के लिए प्रेरित किया है। मध्य प्रदेश में लगभग 25 प्रतिशत आदिवासियों ने ईसाई धर्म को स्वीकारा है। मिशनरियों ने सेवा, शिक्षा का आधार लेकर अपनी कूटनीति से ईसाईकरण का कार्य किया है। हिन्दी उपन्यासकारों ने भी अपनी रचनाओं में धर्मांतरण का यथार्थ चित्रण किया है-

राजेंद्र अवस्थी के 'जाने कितनी आँखें' में करीम मियाँ के द्वारा 50 हिंदू लड़कियों को मुसलमान बनाना, गुरुदत्त के 'बनवासी' में हिंदू बड़ौज ईसाई बनकर मनचाहा विवाह रचना, 'सूरज किरण की छाँव' में बंजारी बैजो को धन देकर विलियम द्वारा ईसाई बनाना, पहाड़ी औरत का कथन है "यहाँ पैसों के बल पर ईसाई बनाया जाता है, आदमी के पास पैसे रहे तो कोई इसाई नहीं बनेगा, पैसा नहीं तो ईसाई ईसाई बनेंगे।"14 आज धर्मांतरण एक गंभीर समस्या है। बलपूर्वक किया गया धर्मांतरण अमानवीय होता है, धर्म परिवर्तन से संस्कार, मनोवृत्ति को बदल पाना कठिन है। लेकिन आज होने वाला धर्मांतरण एक कड़ी चुनौती है।

(५) विस्थापन की समस्या - भारत सरकार द्वारा अविकसित, दूरदराज अंचलों में बिजली, बाँध, कारखानों के निर्माण से हज़ारों गाँवों, करोड़ों आदिवासियों का विस्थापन हुआ। विस्थापितों का पुनर्वास एक समस्या बनी। पी.आर. नायडू का कथन है, मध्यप्रदेश में त्याग का झूठा मंच देकर आदिवासियों को श्रमजीवी, भूमिहीन बनाया। डॉ. रमणिका गुप्ता का विचार है, 90 प्रतिशत कोयला खानें, 80 प्रतिशत खनिज, 3000 विद्युत बाँध आदिवासी क्षेत्रों में होने से आदिवासी का विस्थापन हो रहा है। 1951 से 1990 तक लगभग 185 लाखआदिवासियों का विस्थापन हुआ, उनमें से 30 प्रतिशत आदिवासियों का पुनर्वास हुआ, बचे लोगों को न रोटी - रोजी है न मकान। यहाँ स्पष्ट है विकास योजना से आदिवासी लाभान्वित नहीं हुए, यही शोकांतिका बनी।"15

हिन्दी उपन्यासकारों ने अपनी रचना में इस समस्या का चित्रण किया है। महाश्वेता के 'भूख' में बिहार के ओरांव, भुईया आदिम जनजाति खेड़ा बाँध परियोजना का विरोध करती है। तीस आदिवासी गाँवों को मृत्युदंड दिया गया।"16 सुरेशचंद्र के 'बनतरी', 'संजीव की धार' में आदिवासियों का कोयला खदान में हुआ विस्थापन चित्रित किया है। सन् 1980 के पश्चात लिखे हिन्दी उपन्यासों में इस समस्या का चित्रण हुआ है।

सरकार ने योजनाएँ शुरू कीं मगर पुनर्वास की ज़िम्मेदारी छोड़ दी, जो एक मानवीय समस्या है। इसलिए आज 'पहले पुनर्वास फिर विकास' यही सूत्र बन गया है। सरकार को आदिमों की इस समस्या पर सोचना होगा, नहीं तो प्राकृतिक सौंदर्य का केंद्र पहाड़ी अंचल, विद्रोह का अड्डा बनेगा।"17

निष्कर्ष - हिन्दी उपन्यासकारों ने आदिवासी समाज जीवन की समस्याओं पर प्रकाश डाला है। आज भी आदिवासी पहाड़ी जन, अविकसित, उपेक्षित, शोषित रहे हैं। आदिवासियों का ज़मींदार, धार्मिक व्यक्ति, सरकारी अफसरों द्वारा शोषण हो रहा है। जातीयता, उच्च - नीचता से आदिवासी पीड़ित हैं। जिसमें धर्मांतरण एक नई समस्या है। हिन्दी के उपन्यासकारों ने आदिवासी जनजीवन की विविध समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है। ये उपन्यास आदिवासी जनजीवन की तस्वीर एवं दस्तावेज़ ही हैं।

000

संदर्भ- 1.डॉ. श्यामसिंह शशि, हिमालय के खानाबदोष, पृष्ठ-14, 2.नारायण दत्त पालीवाल, कुमायूँ धरती तथा जीवन, पृष्ठ-42, 3.डॉ. भरत सगरे, हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों में चित्रित आदिवासियों की समस्याएँ, दिव्य डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, 2014 ई. पृष्ठ-97, 4. विवेकीराय, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम जीवन, पृष्ठ-271, 5.राजेंद्र अवस्थी, जंगल के फूल, पृष्ठ-109, 6.डॉ. भरत सगरे, हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों में चित्रित आदिवासियों की समस्याएँ, दिव्य डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, 2014 ई. पृष्ठ-97, 7.राकेश वत्स, जंगल के आसपास, पृष्ठ-97, 8.पी. आर. नायडू, भारत के आदिवासी, पृष्ठ-106, 9.डॉ.बी. एन. आकरें, आदिवासी सामुदायिक विकासयोजना, पृष्ठ-8, 10.रांगेय राघव, कब तक पुकारूँ, पृष्ठ-352, 11.डॉ. भरत सगरे, हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों में चित्रित आदिवासियों की समस्याएं, दिव्य डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, 2014 ई. पृष्ठ-103, 12. रामलाल विवेक, आधुनिक भारत के निर्माता पंडित नेहरू, पृष्ठ-139, 13. महात्मा गांधी, मेरे सपनों का भारत, पृष्ठ-219, 14.राजेंद्र अवस्थी, सूरज किरण की छाँव, पृष्ठ-109-110, 15.डॉ. भरत सगरे, हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों में चित्रित आदिवासियों की समस्याएँ, दिव्य डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, 2014 ई. पृष्ठ-106, 16.महाश्वेता, भूख, पृष्ठ-57, 17. डॉ. भरत सगरे, हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में चित्रित आदिवासियों की समस्याएँ, दिव्य डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, 2014 ई. पृष्ठ-106

(शोध आलेख)

भारत में हिन्दी की स्थिति

शोध लेखक : डॉ. विनीता कुमारी वी, वैष्णव
एमए, एमफिल, पीएचडी

हिन्दी भाषा का उद्भव ईसवी 1000 के आसपास का माना जाता है। हिन्दी भाषा के विकास के दौरान भाषा अलग - अलग बोलियों के रूप में विकसित हुई। हिन्दी का विकास क्रम इस प्रकार माना जाता है। सर्वप्रथम आर्य भाषा का प्राचीन रूप वैदिक संस्कृत उसके बाद लौकिक संस्कृत, फिर पालि, प्राकृत और अपभ्रंश। अपभ्रंश से ही हिन्दी भाषा का जन्म हुआ है। लेकिन साहित्य में हिन्दी को स्थान 1950 के बाद मिला।

हिन्दी भाषा ने अपने साहित्य के द्वारा पूरे विश्व में महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है। आज विश्व के कई देश हिन्दी भाषा को समझते हैं और बोल सकते हैं व हिन्दी भाषा को सीखने रुचि रखते हैं। इतनी सफलता प्राप्त करने के बाद भी भारत में हिन्दी का स्थान आज भी वही है जैसा 1950 में था। भारत में लगभग 70 प्रतिशत लोग हिन्दी भाषा का प्रयोग बोलचाल की भाषा के रूप में करते हैं। फिर भी हिन्दी भाषा को भारत में राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकार नहीं किया गया है।

हिन्दी 19 वीं शती में जन भाषा बन चुकी थी। आज़ादी से पहले देश पर अंग्रेज़ों का शासन था। जिस कारण अंग्रेज़ीं भाषा ने भी भारत में अपनी जड़ें जमा दी थीं। आज़ादी के बाद संविधान सभा ने लम्बी चर्चा के बाद 14 सितम्बर सन् 1949 को हिन्दी को भारत की राजभाषा स्वीकारा गया। इसके बाद संविघान में अनुच्छेद 343 से 351 तक राजभाषा के संबंध में व्यवस्था की गई।1 राजभाषा स्वीकारने के कारण ही 14 सितम्बर का दिन हिन्दी दिवस के रूप में मनाया जाता है।

संविधान के अनुसार हिन्दी की धारा 343 (1) के तहत राजभाषा तो स्वीकारा गया लेकिन साथ ही संविधान में यह भी प्रस्ताव जारी किया गया कि संघ के कार्यकारी न्यायिक और वैधानिक प्रयोजनों के लिए हिन्दी के साथ अंग्रेज़ीं भाषा को भी राजभाषा के रूप में 1965 तक मान्य रहेगी। संसद का समग्र कार्य हिन्दी या अंग्रेज़ी दोनों भाषों में किया जा सकेगा। 1965 के बाद भी अंग्रेज़ी भाषा को राजभाषा के रूप में यथावत रखा गया जिसका परिणाम आज की बीसवीं व इक्कीसवीं शती में साफ दिखाई देता है।

आज अंग्रेज़ी भाषा भारत में अपना स्थान इतना मज़बूत कर चुकी है कि हिन्दी भाषा अपना प्रभुत्व कमज़ोर नज़र आ रहा है। अंग्रेज़ी का रूप इतना व्यापक है कि अधिकांश दस्तावेज़ों के लिए अंग्रेजी भाषा का ही प्रयोग होता है। भारत में लगभग 125 करोड़ भारतीयों में से 10 प्रतिशत लोग ही अंग्रेज़ी बोल या समझ पाते है।2 इसका मतलब है कि लगभग 90 प्रतिशत लोग अंग्रेज़ी भाषा को समझ व बोल नहीं पाते हैं। फिर भी भारत में हिन्दी की जगह अंग्रेज़ी भाषा को अधिक महत्त्व दिया जाता है। यहाँ तक कि शिक्षण पद्धति में बड़ी-बड़ी डिग्रियों के पाठ्यक्रम की भाषा भी अंग्रेज़ी ही रखी गई। भारत में शिक्षण का स्तर नीचे जाने का यह भी एक मुख्य कारण नज़र आता है। भाषा का सदैव रूप क्षेत्र के माध्यम से विकसित होता है। आज स्कूलों में जा रहे बच्चों के लिए उनके क्षेत्र व माध्यम की भाषा ही प्रथम भाषा बन जाती है। क्षेत्र की दृष्टि से भाषा को देखते हुए दूसरी भाषा के रूप में हिन्दी भाषा की स्थिति दयनीय होती जा रही है। यहाँ तक कि जहाँ हिन्दी भाषा का अधिक प्रयोग होता है जो क्षेत्र हिन्दी भाषी है, उन क्षेत्र में भी अंग्रेज़ी माध्यम

डॉ. विनीता कुमारी वी, वैष्णव
एमए, एमफिल, पीएचडी

मे ही शिक्षा प्रदान की जा रही है, जिस कारण हिन्दी माध्यम स्कूल श्मशान भूमि बन चुके है। परिणामत सह-भाषा ही मुख्य भाषा हो गई और मुख्य भाषा सह या गौण भाषा बन गई है।

भारत की भौगालिक विस्तार के अनुसार भाषा को हिन्दी और अहिन्दी (क) एवं (ख दो भाषा में बाँटा गया है।

(क) - हिन्दी क्षेत्र हिन्दी क्षेत्र मुख्यत:- हरियाणा, राजस्थान, मध्यप्रदेश, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, उत्तरप्रदेश तथा बिहार आते है। पंजाब व महाराष्ट्र भाग के कुछ भाग भी इसमें आते हैं।3

(ख) - अन्य भाषा के क्षेत्र में गुजरात, कर्नाटक, आंधप्रदेश

हिन्दी भाषी क्षेत्र मे विकास के प्रयास निरन्तर किये जा रहे हैं। जबकि अहिन्दी भाषी क्षेत्र में हिन्दी की स्थिति बद से बदतर होती जा रही है। लोग हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा न मानकर क्षेत्रीय भाषा मानने लगे हैं। वे शिक्षण के रूप में हिन्दी को अस्वीकार कर अंग्रेज़ी को अधिक महत्त्व देने लगे हैं। कुछ अहिन्दी राज्यों में तो लोग ना हिन्दी समझ सकते हैं और ना पढ़ लिख सकते है। संविधान में भी अभी तक हिन्दी को राष्ट्र भाषा का स्थान नही दिया है। यही कारण है कि आज हिन्दी जो सच में हमारी राष्ट्रीय भाषा है उसे उसका स्थान नहीं मिला है। जन की भाषा मात्र मनोरंजन की भाषा बन कर रह गई है। यहाँ तक कि अहिन्दी राज्यों में हिन्दी भाषा को स्कूलों व कॉलेजों में भी वैकल्पिक कर दिया गया है।

अहिन्दी राज्यों मे तो हिन्दी को बहुत ही ख़राब दृष्टि से देखा जा रहा है। वे लोग अपने बच्चों को उनकी मात्रभाषा एवं अंग्रेज़ी भाषा में ही शिक्षा देने पसंद करते हैं। आज के आधुनिक युग में अंग्रेज़ी का जो प्रभुत्व है उसे देख छात्र भी हिन्दी की जगह ना चाहते हुए अंग्रेज़ी भाषा का चुनाव करते हैं। भले ही वह पूरी तरह अंग्रेज़ी भाषा पर अपना प्रभुत्व न जमा सकें।

गांधीजी स्वयं अंग्रेज़ी भाषा के ख़िलाफ़ थे। वे भाषा को माता मानते और चाहते थे कि हर भारतीय अपनी माता समान हिन्दी भाषा से प्रेम तथा उसका सम्मान करे। गांधीजी ने अपने एक लेख में लिखा था कि आज अंग्रेजी पर प्रभुत्व करने के लिए हम जितनी मेहनत करते हैं उसका आठवाँ हिस्सा भी हिन्दी सीखने में करें तो सारी समस्याएँ हल हो जाएँगी। परन्तु अफसोस के साथ कहना पड़ रहा है कि बापू का यह सपना पूरा नहीं हो पाया। आज भारत में हिन्दी की जो स्थिति है उसे देख बापू अवश्य ही दु:खी हो रहे होंगे।

कुछ बुद्धिजीवी लोग हिन्दी भाषा को जड़ से ख़त्म करना चाहते हैं। आज हमारे देश के विद्वानों ने कहा है कि आज के युवावर्ग में संस्कार तथा संस्कृति के ज्ञान की कमी है तो क्या ये संस्कार और संस्कृति का ज्ञान हमे उन्हे अंग्रेज़ीं भाषा के माध्यम से देंगे। हमारी भारतीय संस्कृति और उसकी भाषा ही हमारी विशेषता है। क्या आने वाली पीढ़ी को हिन्दी और भारतीय संस्कृति से वंचित रखना ठीक होगा। हिन्दी मात्र एक भाषा नही है वह भाषा के रूप में भारत की तथा हमारे भारतीय संस्कृति की पहचान है। हमारे संस्कार, हमारा धर्म, हमारी संस्कृति सभी भाषा के ही संवाहक है। हिन्दी का अंत मतलब इन सभी का अंत होना संभव है।

सवाल यह है कि क्या हम आने वाली पीढी को रामायण तथा महाभारत का ज्ञान मूल भाषा हिन्दी में न देकर अंग्रेज़ी या अन्य भाषा के माध्यम से देंगे। आज भारत में 90 प्रतिशत लोग बोलचाल व व्यवहार की भाषा के रूप में हिन्दी का प्रयोग करते हैं, लेकिन हिन्दी को अपने तथा अपने बच्चों के लिए शिक्षण क्षेत्र में पसंद नहीं करते हैं। हमारे राष्ट्रपति जी भी अपने भाषण व सभाएँ हिन्दी में करना पसंद करते है लेकिन उसे राष्ट्र भाषा का स्थान प्राप्त हो इस पर कुछ नहीं हो रहा, आख़िर हिन्दी के प्रति ऐसा व्यवहार क्यों हो, इस पर कुछ नहीं हो रहा।

हिन्दी के अंत व विलीनीकरण का अर्थ है भारतीयता का अंत। हिन्दी भारत की तथा भारतीयों की भाषा है। यदि वह ही इसका अनादर करेगें तो वो दिन दूर नहीं जब हमारी संस्कृति के साथ हमारी भारतीयता का भी अंत हो जाएगा। आधुनिकीकरण तथा क्षेत्रवाद ने जनता को अंधा बना दिया है, वे समझ ही नहीं पा रहे हैं कि वे किस रास्ते पर चल पड़े हैं। यह समग्र भारत तथा आने वाली पीढी के लिए एक भयानक समस्या साबित होने वाली है।

संपूर्ण भारत को एकसूत्र में बाँधे रखने के लिए, और भारत की अस्मिता को बनाये रखने के लिए, जनता को प्रेरणा देने के लिए सभी विद्वानों, साहित्यकारों एवं राजनेताओं को हिन्दी को राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकार करना चाहिए। आज पाश्चात्य प्रभाव ने भारत को पूरी तरह अपने वश में कर लिया है, हमारे युवा पाश्चात्य संस्कृति के साथ पाश्चात्य अंग्रेज़ी भाषा को भी पूरी तरह अपनाने को तैयार हैं। चाहे ज्ञान हो या मनोरंजन अंग्रेज़ी भाषा का वर्चस्व चारों तरफ छाया है। प्रश्न यह है कि क्या विकास व ज्ञान के लिए हिन्दी भाषा को कोई मूल्य नहीं है। हिन्दी भाषा मात्र एक भाषा नहीं है बल्कि गौरव की बात है। अंग्रेज़ी भाषा ने आधुनिकीकरण का अर्थ ही बदल दिया है।

अगर अंग्रेज़ी के प्रति हम भारतीयों का इतना प्रबल मोह बढ़ता गया तो एक दिन हमारी युवा एवं भावी पीढ़ी हिन्दी भाषा से वंचित होगी साथ ही साथ संस्कार, चरित्र, भारतीयता और विश्वगुरू की उपाधि से विभूषित देश के गौरव से भी वंचित हो जाएगी। अत: हम सबका यह कर्तव्य है कि हिन्दी के प्रति आत्मिक प्रेम रखते हुए सरकार से इसे राष्ट्र भाषा घोषित करने हेतु आग्रह करे। अपने बच्चों को हिन्दी माध्यम की स्कूलों से शिक्षा प्रदान करे तथा अंग्रेज़ी को एक विषय के रूप में पढ़े। हिन्दी के विकासार्थ, प्रचार- प्रसारार्थ विभिन्न प्रयत्न कर इसे गौरवपूर्ण स्थान दे।

यह निश्शंक है कि वर्तमान में संपूर्ण भारत मे हिन्दी की दशा और दिशा संतोषजनक तो नहीं कही जा सकती परन्तु आशावादी बनें और इस स्थिति में परिवर्तन करने हेतु सभी मिलकर प्रयत्न करें।

000

संदर्भ- 1-Hi.m.wikipedia.org, 2-www.hindikunt.com, 3.भाषा विज्ञान एवं हिन्दी भाषा,रॉयल प्रकाशन,पृष्ठ 93

शोध आलेख

(शोध आलेख)

भारत में सांस्कृतिक परिवर्तन और जनसंचार माध्यम

शोध लेखक : पवन कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी)
चौ. मनीराम राजकीय महिला महाविद्यालय

शोध सार :- भारतीय संस्कृति आदि काल से ही सम्पूर्ण विश्व के लिए प्रेरणा-स्रोत रही है। भारत ने संसार को शांति सहनशीलता और भाईचारे का पाठ पढ़ाया है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति के प्रति विशेष सम्मान है। साहित्य, संगीत, कला, नृत्य आदि भारतीय संस्कृति के विविध अंग हैं। विविधता में एकता भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता है। भारत में सगुण और निर्गुण दो प्रकार की विचारधाराएँ विद्यमान रही लेकिन इनके मूल में भारतीय परंपरा और संस्कृति को ही विकसित करना था। जनसंचार माध्यमों ने भारतीय संस्कृति इतिहास और परंपरा को नए आयाम प्रदान किए हैं। मनुष्य, रोटी, कपड़ा और मकान जैसी मूलभूत सुविधाओं के साथ-साथ सूचनाएँ पाने के लिए हर समय उत्सुक रहता है। संसार के प्रत्येक स्थान से उसका परिचय हो, ऐसी अवस्था में संचार माध्यमों ने उसे समस्त संसार की सूचनाओं से अवगत करवाया है। सारा संसार आज एक 'ग्लोबल गाँव' के रूप में विकसित हो गया है, जिसमें सूचनाओं का आदान-प्रदान बहुत ही तीव्र गति से हो रहा है। अत: भारतीय संस्कृति और संचार दोनों का गहरा संबंध है और मानवता की मूलभूत विचारधारा को विकसित करने में प्रयासरत हैं।

बीज शब्द :- ग्लोबल, संस्कृति, रूबरू, वसुधैव कुटुम्बकम्, नवाचार, सोशल मीडिया।

भूमिका- विश्व में भारत की संस्कृति और विरासत दोनों ही विविध रूपों में मिलती है। संस्कृति किसी भी देश से अलग है तो उसकी भिन्नता का आकार भी नहीं दिखाई देता है। आज भारत भिन्न-भिन्न भागों में बँटा हुआ है। भारत में वैविध्य के दर्शन होते हैं। भारतीय जीवन मूल्य विश्व के कोने-कोने तक पहुँच कर नव निर्माण में। अगर पहाड़ी क्षेत्रों की तरफ एक नज़र दौड़ाई जाए तो वहाँ की संस्कृति, वातावरण पूरे विश्व में अनुपम है। अगर मरुस्थल की तरह देखा जाए तो वहाँ पर सर्दी तथा गर्मी का अत्यधिक प्रभाव लोगों के जनजीवन पर अलग ही अपना प्रभाव जमा हुए है। अगर हम समुद्री इलाके की तरफ नज़र दौड़ाते हैं तो वहाँ सम्पूर्ण भारत की जलवायु को अनुभव किया जा सकता है। आज भारत संचार की दृष्टि से अपने आप में एक अलग पहचान पूर्व विश्व में बना रहा है। यहाँ की संस्कृति, खानपान, वातावरण आदि में विविधता के बावजूद एकता का परिचय मिलता है। "संचार मनुष्य के जीवन का एक अभिन्न अंग है। मनुष्य द्वारा शब्द, हाव-भाव, संगीत इत्यादि अनेक रूपों से होने वाली संप्रेषण प्रक्रिया संचार का एक अंग है। संचार मानव समुदाय के जीवन की धुरी है, जिसके द्वारा मानव के सामाजिक संबंधों का निर्माण एवं विकास होता है। संचार के बिना मनुष्य मानव के सामाजिक जीवन की कल्पना नहीं कर सकते हैं। संचार ही मानव समाज की संचालन प्रक्रिया को संभव बनाता है।" 1

भारत की वैश्विक पहचान- भारत प्राचीन काल से अब तक अपने आप में अलग नज़र तो आता है। यहाँ लोगों की खान-पान और पहनावा अगर देखा जाए तो हम स्पष्ट तौर पर यह कह सकते हैं कि हमने केवल भारतीय परिवेश का ही नहीं एक बल्कि पूरे विश्व का भ्रमण कर लिया है। भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र 'वसुधैव कुटुम्बकम्' है, जो कि सम्पूर्ण विश्व की संस्कृति को संजोए हुए है। दूसरी तरफ अगर हम संसार और भारतीय संस्कृति को दोनों को मिला करके देखें तो हमें देखने में एक अलग ही नज़ारा दिखाई देता है। बढ़ते संचार माध्यमों ने सम्पूर्ण विश्व को एक सूत्र में बाँध दिया है। जब एक सूत्र में बाँधने का कारण संचार का माध्यम हो सकता है तो नि:सन्देह बहुत ही सौभाग्य की बात रहेगी। भारत के कोने-कोने में रहने वाले लोगों को संचार के माध्यम से हम एक दूसरे के इतने करीब आ गए हैं कि वह दूरियाँ सिमट गई हैं। ओमप्रकाश सिंह के अनुसार – "सूचना का संप्रेषण मात्र ही संसार नहीं वरन उस पर एक प्रभावी प्रतिक्रिया का होना भी है जिसे संचार प्रक्रिया में प्रतिपुष्टि के रूप में जाना जाता है।"2

भारतीय संस्कृति और संचार माध्यम- संचार के माध्यम समाचार-पत्र, टी.वी. हो मोबाइल फ़ोन, इंटरनेट आदि भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं से रूबरू कराते हैं। जिस प्रकार माला के भिन्न-भिन्न मोती एक धागे के अंदर पिरो दिए जाते हैं तो वह एक संपूर्ण माला ही नज़र आती है, उसी प्रकार संचार माध्यम भी हमें विश्व की संस्कृतियों से जोड़ने का काम कर रहे हैं। विशेष

पवन कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी)
चौ. मनीराम राजकीय महिला महाविद्यालय, भोडिया खेड़ा,
(फतेहाबाद) 125050
ईमेल - pawanvachher@gmail.com

रूप से भारतीय संस्कृति में जब भी परिवर्तन आया है तो संचार की अपनी अलग ही भूमिका रही है। भारत में सूचना क्रांति पर नज़र डाली जाए तो क्रांति का सूत्रपात तभी हो पाया जब संचार ने अपनी भूमिका निभाई थी। हमारे देश भक्तों ने भिन्न-भिन्न दिशाओं में जन्म लेकर के अपनी एक विचारधारा के कारण भारत को आजादी दिलाने का कार्य किया था। एन. पी, चतुर्वेदी के शब्दों में - "साक्षरता प्रसार जैसे सघन अभियान को प्रसारित कर रहे हैं उस माध्यम ने अभी हाल ही के वर्षों में महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश, तथा उड़ीसा के गाँव में जागरूकता फैलाने के अभियानों को हवा दी है।" 3

आज़ादी के आन्दोलन में संचार माध्यमों की विशेष भूमिका रही है। हम एक दूसरे की बातों को हम समझ पाए तथा उन तमाम सूक्ष्मताओं से परिचित होने का अवसर मिला। अगर देखा जाए तो भगत सिंह और सुखदेव भिन्न-भिन्न दिशाओं में रहते थे, परंतु एक विचारधारा का सामंजस्य सिर्फ संचार के माध्यम से हो पाया जनसंचार ने देशभक्तों को एकता के सूत्र में पिरोने का कार्य किया है।

भारतीय कला और संस्कृति- भारतीय प्राचीन कला की आधुनिकता की यात्रा में बहुत से परिवर्तन हुए। भारत को एक सूत्र में बाँधने का कार्य संचार के माध्यम से ही किया गया। कला में धर्म तथा आध्यात्मिकता का बाहुल्य हुआ करता थी। आधुनिक समय में उसकी जगह आज सामाजिक सरोकारों ने ले ली है। वीर सेनानियों ने तिरंगे के साथ भारत के स्वाधीनता संग्राम में भाग लिया था। जब क्रांतिकारियों ने भारत माता की तस्वीर को देखकर उनके सामने हम अपनी माता को आज़ाद करा करके ही दम लेंगे। तब से लेकर आज तक जितने भी क्रांतिकारी हुए, उन्होंने भारत माता का नारा देकर अपने देश की रक्षा की थी। सारा वातावरण संचार का माध्यम भी बना रहा। भारतीय संस्कृति पूरे विश्व में अलग नज़र आ रही है क्योंकि भारत माता का चित्र तथा तिरंगा हमारे गौरव के प्रतीक हैं।

जनसंचार माध्यम और संगीत- संगीत संस्कृति के साथ गहराई से जुड़ा हुआ है। संगीत की अपनी अलग ही पहचान है। चाहे तानसेन हो या अन्य कोई संगीतकार, उन्होंने अपने राग और अपने भावों से भारत की संस्कृति को अनूठी पहचान दिलायी है। भारतीय संस्कृति का लगाव प्रकृति से भी गहरा जुड़ा हुआ है। बहती हवाएँ,नदी, झरने जनमानस में एक नया संगीत गुगुनाते हैं। संगीत सीधा जनसंचार माध्यमों के साथ जुड़ा हुआ है। वर्तमान परिवेश में तो ऐसी प्रतिभाएँ उभर कर सामने आ रही हैं, जिनका संगीत प्रभावशाली है लेकिन उचित मंच न मिल पाने के कारण इनकी प्रतिभा से समाज वंचित रहा। संचार माध्यमों के कारण ही आज उन्हें उचित मुकाम मिला है। संगीतकार अपने गीतों के माध्यम से जनता की आवाज़ उठाता है। सुमित मोहन के शब्दों में – "वास्तव में संचार अनिश्चित और अनेकार्थक तो है ही, सर्वव्यापी भी है। जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है, जो संसार की परिधि में न हो। यह ऐसी प्रक्रिया है जो हमेशा लगातार चलती रहती है। लोकतांत्रिक अर्थ में यह मनुष्य का मनुष्य द्वारा के लिए किया जाने वाला सद्भावना पूर्ण कार्य है।" (4)

संचार माध्यमों एवं नृत्य कला- भारतीय संस्कृति में नृत्य का विशेष महत्त्व रहा है। उत्तर प्रदेश, बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात और राजस्थान के पारंपरिक नृत्य प्रत्येक व्यक्ति के दिलो-दिमाग़ में खुशियाँ समर्थ लाने में हैं। पंजाब की संस्कृति तो लाजवाब है। भारत के प्रत्येक कोने में पंजाबी नृत्य और संगीत दोनों ने अपनी एक अलग पहचान बना ली है। चाहे व्यक्ति को पंजाबी गीत या भजन समझ में आए या ना आए, परंतु संगीत एक ऐसा मत जिसके माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति अपने कदमों को रोक नहीं पाता। आज उत्तर भारत का व्यक्ति दक्षिण भारत के अंदर भ्रमण तो नहीं कर सकता परंतु टी.वी. के माध्यम से या किसी अन्य जनसंचार के माध्यम से वहाँ की संस्कृतियों से रूबरू ज़रूर होता है। इस संस्कृति से रूबरू होता है तो वहाँ की परंपरा, वेशभूषा तथा पहनावे को अपने अनुसार ढाल लेता है। जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'ध्रुवस्वामिनी' का एक प्रसंग उद्धृत किया जा सकता है – "यौवन ! तेरी चंचल छाया / इसमें बैठ घूँट भर पी लूँ जो रस तू है लाया / मेरे प्याले में मद बनकर कब तू – छली समाया / जीवन- वंशी के छिद्रों में स्वर बनकर लहराया / पल भर रुकने वाले कह- तू पथिक कहाँ से आया ?" 5

सोशल मीडिया और संस्कृति- सोशल मीडिया ने आज अपनी विशेष पहचान बना ली है। इसके कारण समाज के कोने-कोने में नए आयामों की स्थापना हुई है। संगीत, कला, राजनीति, साहित्य कोई भी क्षेत्र आज सोशल मीडिया से अछूता नहीं रहा है।

निष्कर्ष- समग्र विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि भारत के सांस्कृतिक परिवर्तन में संचार महती भूमिका है। संचार के माध्यम से साहित्यकार ऑनलाइन संवाद रचा रहा है। व्यक्ति घर बैठे अपनी बातें दूसरों से सांझा कर रहा है। मीडिया एक ऐसा माध्यम है, जिससे प्रत्येक व्यक्ति घर बैठे अपनी बातों का आदान-प्रदान कर सकता है। समस्या और समाधान की जड़ तक पहुँच पाता है। ऐसा मंच प्रदान किया गया है, जिसके माध्यम से व्यक्ति लेखनी के माध्यम से मन के भावों को उजागर कर सकता है। पुस्तकों का अध्ययन भी इसी श्रेणी में आता है, जिसमें व्यक्ति अपने समय का सदुपयोग करता है और व्यर्थ धन से बच पाता है। जो व्यक्ति इस भागदौड़ की दुनिया में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से मिल नहीं पाता, वह मीडिया के माध्यम से इतना जुड़ गया है कि उसे छोड़ भी नहीं पाता है। अत: कहना समीचीन होगा कि चाहे मुद्रित माध्यम हो या इलेक्ट्रॉनिक माध्यम सभी अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम बने हुए हैं। संचार और संस्कृति का संगम वैचारिक क्रांति का आधार बनेगा।

000

संदर्भ- 1. संचार माध्यमों का प्रभाव, ओमप्रकाश सिंह, पृ. 35, 2. संचार माध्यमों का प्रभाव, ओमप्रकाश सिंह, पृ. 37, 3. जनसंचार एवं पत्रिका, एन. पी, चतुर्वेदी, पृ. 120, 4. मीडिया लेखन, सुमित मोहन पृ. 13-14 ,5. ध्रुवस्वामिनी, जयशंकर प्रसाद पृ. 25

Research Article

(Research Article)

Russia Ukraine War: The Role of G20

Research Author :
Dr. Pareshbhai J. Rabari
(M.A. M.Phil. G SET, Ph.D.)
Assistant Professor

Abstract –

India will host over two hundred meetings in over fifty cities across thirty-two different work streams. The guests and delegates of G20 will get a glimpse of India's rich cultural heritage and a yearlong experience. The theme of India's G20 Presidency is 'Vasudhaiva Kutumbakam' or 'One Earth, One Family, One Future'.This paper attempts to explain how India will use the platform of the presidency of G20to sort-out Russia Ukraine dispute.The present paper brings up how G20 will become an intermediate in the issue of Russia-Ukraine war.The economic growth and infrastructural development will be possible due to the presidency of G20. This paper also highlights India's priorities in G20 like Green Development, Climate, Finance and Life. India has made a new image by getting world's one of biggest presidencies of G20.The paper also focuses onthe challenges and opportunities for India as the host country of G20.

Keywords – Troops, border crisis,internal security, sustainable development goal, finance track. engagement groups, NATO etc.

The Group of Twenty (G20) is an intergovernmental forum including nineteen countries and one union. The nineteen countries of G20 are Argentina, Australia, Brazil, Canada, China, France, Germany, India, Indonesia, Italy, Japan, Republic of Korea, Mexico, Russia, Saudi Arabia, South Africa, Turkey, United Kingdom, United States and European Union.After the Asian financial crisis in 1997, there was a meeting for the Finance Ministers and Central Bank Governor to discuss the global economic and financial issues. They decided to establish a union to face economic crisis and issues in future. This is how, The G20 was founded in 1999. It is focusing on the financial, environmental and social issues of thesecountries. The G2O members represent around 85% of the global GDP. It contributes 75% in the global trade and consists of two-third of the world population. The G20 performed a wonderful job in the financial crisis of 2007 and 2009.

The summit of G20 is held annually under the leadership of a rotating presidency. India holds the presidency of the G20 from 1 December 2022 to 30 November 2023.India will host over two hundred meetings in over fifty cities across thirty-two different work streams. The guests and delegates of G20 will get a glimpse of India's rich cultural heritage and a yearlong experience. The theme

Dr. Pareshbhai J. Rabari
(M.A. M.Phil. G SET, Ph.D.)
Assistant Professor
Department of English, HNG University, Patan
Email : pjdesai650@gmail.com

of India's G20 Presidency is 'Vasudhaiva Kutumbakam' or 'One Earth, One Family, One Future'.India has made a new image among the powerful countries like USA, UK, Russia by getting world's one of biggest presidencies of G20. The following words are spoken by The Prime Minister of India, Shri Narendra Modi, after getting the presidency of G20:

"India's G20 Presidency will work to promote this universal sense of one-ness. Hence our theme – 'One Earth, One Family, One Future"

The slogan 'Vasudhaiva Kutumbakam was originated from Maha Upanishad in Sanskrit literature. The literal meaning of the Sanskrit sloka isthat "This is mine, that is his, say the small-minded people. The wise believe that the entire world is a family." It means the entire world is a single family. All the countries should have a single agenda that, every country should work for the welfare of the people of the world. India has given the message of peace and compensation to the world. Any countrywill not get anything except casualties in wars. Only way for the peace of the world is to developVasudhaiva Kutumbakamthinking.This is how, India has created a way of peace for the world. In a true sense, the theme of G20 shows the true identity of Indian people and its culture.

India has an opportunity to contribute to the global agenda on pressing issues of international importance. This is how, India will lead to the world to get solution of international issues like managing relations with China, balancing ties with United States and Russia, combating terrorism, securing energy needs, protecting Indian interests in the Indian Ocean Region etc. The presidency of G20 has provided a platform to solve all these international issues. With a good diplomacy, India can make a dialogue to sort-out all these external issues.

During the presidency of G20, India will hold about two hundred meetings in different sectors. This is a big opportunity to make an ideal image of India among the various countries of the world. It will make India as a powerful country among the other powerful countries like USA, Russia, France, UK, China etc. India has received a big opportunity to make its proposal before the members of G20 to get a permanent membership in United Nations Security Council.

As per the US intelligence report, there is a major security crisis for the region on the border of Russia and Ukraine. Sometimes before, Russia amassed around nighty thousands of troops at the border. The war of Russia and Ukraine has shattered the world and its economy. The crises of Russia and Ukraine has a long history. It is not a matter of present time. Russia and Ukraine share hundreds of years of culture, linguistic and familial links.

USSR (Union of Soviet Socialist Republics) was divided into fifteen countries in 1991. Russia became the biggest country among these fifteen countries.The other fourteen countries are Estonia, Latvia, Lithuania, Belarus, Ukraine, Moldova, Georgia,Armenia, Azerbaijan, Kazakhstan, Uzbekistan, Turkmenistan, Kyrgyzstan and Tajikistan. The dispute between Russia and Ukraine started while Russia annexedCrimea in 2014. After losing Crimea, Ukraine started to make distance from Russia. After Russia's annexation of Crimea, the members of G8 outcasted Russia from the union. This is how, G8 becomes G7.

The first and most important cause of the Russia Ukraine crisis is balance of power. Even after divided from Soviet Union, Russia and the West have vied for greater influence in Ukraine to keep the balance of power in the region in their favour. Ukraine is the source of economic growth for Russia as well as European Union because, it has extremely rich and complementary mineral resources in high concentrations and proximity to each other.

Ukraine as a buffer zone for western countries is the second importantreason for Russia Ukraine crisis. For US and the European Union, Ukraine is a crucial buffer zone between Russia and the West. As the tensionwith Russia rise, the US and European Union are increasingly determined to keep Ukraine away from Russian control.

Russian interest in the Black Sea is the third important reason behind Russia Ukraine crisis. Its unique geography confers the several geographical advantages to Russia. Firstly, it is an important crossroads and strategic intersection for the entire region. Secondly, it is important transit corridor for goods and energy.

Protest in Ukraine is the fourth important reason for Russia Ukraine crisis. There was the Euromaidan movement in 2013. It was a wave of demonstration and civil unrest

in Ukraine. There was a public protest in Maidan Nezalezhnosti in Kyiv, Ukraine. Moreover, The protests were sparked by the Ukrainian government's decision to suspend the signing of an association agreement with the European Union instead choosing closer ties to Russia and the Eurasian Economic Union.

The fourth important reason behind Ukraine crisis is Separatist Movement.The Donbass (Donetsk and Luhansk) region of Eastern Ukraine has been facing a pro-Russian movement since 2014. The Russian government believe that the Separatist Movement is supported by Russian government.

The fifthmost important reason behind Ukraine crisis is Russia's invasion of Crimea. Russia seized Crimea from Ukraine in 2014. It was happened for the first time after the World War II.

The last and most important reason behind Russia Ukraine War is Ukraine's demand of NATO's membership. The Prime Minister of Ukraine has requestedNATO (North Atlantic Treaty Organization). Russia has declared this kind of move as 'red line'. If Ukraine gets the membership of NATO, US Military will come to Ukraine and Russia's border and it will create a major issue of Russianborder security. Russia has to fight against USA along with thirty members of NATO. It will create a major problem for Russian people. Russia has attacked on Ukraine because it knows that Ukraine's membership with NATO is threatfor the nation.

G20 can play an important role to find out the solution the Ukraine crisis. The member of G20 have to convince Russia that, this is not the time of war but trade and business. It is not the time to show the brevity but, it is the time to make a business with the partnership of the nations of the world. In the same way, the members of G20 have to get assurance from US and European Union that, they will not give the membership of NATO to Ukraine. It would be optimal for Ukraine to have access to the four freedoms of the European Union's internal market without necessarily becoming a full member. Ukraine has to formally drop its ambition to join NATO and host foreign military bases or weaponry.This is how, the members of G20 can make a solution of the Ukraine disputes.

Moreover, the members of G20 have to revive the Mink I and Mink II agreements to stop the war between Russian and Ukraine. There was a peace agreement signed between these two countries in 2012 and 2014 which are usually known as Mink I and Mink II.

Recently, the President of Ukraine, Zelenskyy agrees to withdraw Ukraine's membership of NATO with certain conditions. The first condition is that, Russia has to call back its troops from Ukraine and its separatists' regions like Donetsk and Luhansk.The second condition is that Ukraine also wants at least one Western nuclear power nation should be involved in the talks and a legally binding document on Ukraine's security guarantees.So, the members of G20 have to convince Russia to accept the conditions of Ukraine's President. On the other side, the members of G20 have to request the President of Ukraine to stay as a neutral country in terms of NATO's membership.

To conclude, one may say that India hasthe opportunity to address the Ukraine conflict and strategizing for peace. It can create a path toward reconciliation as much as possible. A few months ago, Narendra Modi, the Prime Minister of India, has requested to Russian President, Vladimir Putin, that 'today's era must not be of war'. It is assumed that PM Modi will try to sort out the Ukraine dispute in the talks of G20.

000

References:

1. Srinivas, V. The Roadmap to Indian Presidency. New Delhi: Sapru House. 2022.
2. Chaturvedi, Sachin, Mahesh Chand, Dr. Priyadarshi Dash, Dr, Durgesh Rai(ed). G20 – A Primer: Background Note Prepared for G20 University Connect. New Delhi: RIS. 2022.
https://www.ibanet.org/Russia-invasion-of-Ukraine-Diplomatic-solutions-to-bring-conflict-to-an-end
3. .
https://www.ndtv.com/world-news/no-diplomatic-solution-to-russia-ukraine-conflict-nobel-winner-3577852
4. .
https://www.e-ir.info/2020/06/27/causes-and-potential-solutions-to-the-ukraine-and-russia-conflict/
5. .
https://www.japantimes.co.jp/opinion/2022/11/23/commentary/world-commentary/russia-ukraine-war-end/
6. .
https://pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx?PRID=1882356#:~:text=India%20holds%20the%20Presidency%20of,Summit%20in%20September%20next%20year
7 .
https://pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx?PRID=1882356#:~:text=India%20holds%20the%20Presidency%20of,Summit%20in%20September%20next%20year

Research Article

(Research Article)

Great Personality of the Worlds Mohands Karamchand Gandhi

Research Author :
Dr. Chhayaben R. Suchak
[Department of Psychology]
Arts College Vijaynagar
Sabarkantha [Guj.]

Mohandas Karamchand Gandhi was born in 1869 in India and was murded in 1948 by the fanatic Hindu Nathuram Godsey. Gandhi was a Hindu as well and born in the second highest cat. Hindus hold the belief that people get boron in a cast in which they stay their whole life. When their behaviour according to the religious rules of Hinduism is good they get in a higher cast in their next life. On the other hand, if they behave badly, they get in a lower cast. There are also the Untouchables or people without a cast. People from other casts treat them badly and very often would not even touch them. They live in the biggest poverty and have hardly any chances to live a good life.

Early Life - In the time Gandhi was born, India was a colony of the British Empire. The British ruled the country for several hundred years. Man people lived iin great poverty because the British took all the wealth. After school Gandhi went to London and studied Law in an university. He became a lawyer. Shortly after he was back in India an Indian firm wanted him to go to South Africa were he worked for them. In South Africa the Indians were not welcome by the white settlers. One day Gandhi got pushed out of the train when he refused to leave his seat for a white person. It was then that he decided never to be pushed down again and to fight for the rights of minorities. He started to lead the Indian workers in South Africa and fought for their rights. He made a very important rule for himself which he used his whole life: never to use violence in his fights, even if others would use violence against him. So he started to fight for the rights of Indian workers in South Africa and he had great success. And he never used violence.

Non-violence and Untouchability

He started a project [ashram] where people from different religions lived together in peace and freedom. He never made no secrets of anything and was a nice and friendly person throughout his whole life. When he came back to India crowds were already waiting and cheering for him at the harbour and people celebrated his arrival. But that did not make him happy. He wanted to live like most of the people in India out in the countryside and poor. He wanted to be one of them, one of the country he was born in but was away from for so long. So he started travelling through the country by train in the third class wagons. There he saw a lot of India and a lot of the ways how people lived and worked there. Very soon he became the leader of the Indian Campaign for Home Rule. The Indians loved him because he was so close to them. He lived in the country and lived an easy life of joy and satisfaction. And he started spinning. He continued spinning for the rest of his life from then on. He had the opinion that a lot of poverty in India was the result of all the clothes that were produced in and imported from Great Britain to India. Since spinning used to be a common job for people in the Indian villages, Gandhi believed that these imported goods destroyed great parts of India's economy and thus many people lost their work. Gandhi encouraged the people to start spinning again if they do not have anything better to do because so they could make some money and would produce something. One day – as a symbolic event – he asked his followers on a big meeting to throw all their British clothes on a big fire. He encouraged them not to buy

Dr. Chhayaben R. Suchak
[Department of Psychology]
Arts College Vijaynagar
Sabarkantha [Guj.]

any more British clothes but to produce and buy their own Indian clothes. After that many people started to boycott British goods. People in the British factories got unemployed but more people in India had something to do. That was only one step to India's independence from the British. Another very important step to independence was that he asked the whole nation to strike for one day. And they did. Nothing worked on that day. There was virtually no traffic, mail was not delivered, factories were not working and – for the British a very important thing – the telegraph lines did not work and the British in India were cut off their mother country. It was then that they first realised Gandhi's power in India. There was another very important event on India's way to independence. The British had control of the salt that was taken out of the sea. Indians had to pay taxes for the salt nobody could live without. Gandhi thought that the rule over the salt industry was one of the British basics to rule India. He started a march over 140 miles (about 200 kilometers) to the ocean. When he started, Gandhi had only a few hundred followers but when they reached the sea they were a group of many thousands of people. People from many villages which they came by decided to walk with them. When they arrived at the sea Gandhi took a handful of salt. That was a symbolic action and he asked everybody to do the same. After the police 'cleaned' them all away from the beach, they decided to walk into the salt factories and take salt from there. The British ordered soldiers to stand before the gate to the factories and not let anyone in. The protesters walked to them and tried to walk in, only five at a time. And the soldiers hit them all until they could not walk any further. Women picked them up and took them away. No one on the side of the protesters used violence. Most of Gandhi's actions were a great success. The reason was that the British did not know how to act against an enemy who does not use violence. But it was very important as well that the media all over the world talked about Gandhi and his actions because otherwise there would not have been enough public pressure upon the British officials. More and more people everywhere in the world agreed with Gandhi when they saw the British violence against the non-violent people. And they loved him because he was so close to the people in his country. To work together with the press and to have no secrets was one of the important things of his work. Gandhi went to jail very often in his life. He was arrested several times in South Africa as well as in India. He used the time in jail to think and plan other actions. He also used the time to think about how he could help the Untouchables. He was a religious man and believed in casts but he did not think that God wanted Untouchables to have no rights. He went for long walks through India to collect money for the Untouchables and he fought for their rights his whole life. He also fought for the peaceful understanding of different religions.

Hindu-Muslim Fights

When fights broke out between Hindu and Muslims, he tried to talk to them and when that did not help he started to fast which he did a lot of times in his life. Once he nearly fasted to death when Hindus and Muslims fought against each other. Then the fights stopped and the two religions started to live together in peace again. He also fasted when he heard of violence against the British or against soldiers or policemen. Violence made him very sad and he had more than once the feeling that all he had done was useless when people fought each other again.

When people came to him and said that it would be their right to kill someone if that person had killed their son or wife, Gandhi used to reply. “An eye for an eye makes the whole world blind”.

Indian Independence

During the Second World War Britain did not have much power to keep India as a colony any more and they started to talk about independence. After the war in 1947 India got finally independent and the British left the country. But Gandhi did not feel like celebrating because religious fights broke out again. But with his speeches to the people and finally with his fast he stopped the violence and people lived together again. But India was divided into India and Pakistan. Shortly after his last fast with which he stopped the religious violence a fanatic Hindu shot him at his daily prayer that make fuvopersons to stand a great but Mahtma Gandhi a part from attribuites society and community good considered such a Great Personalities in world.

000

References:

1. Great Personalities of the World, S. K. Ravikumar, Mangal Deep Publications, Jaipur (India.)
2. Satyana Prayogo, Gandhiji

Research Article

(Research Article)

Priti Sengupta's Travel Experiences projected in Her Travelogue 'Aparajita'

Research Author :
Dr. Priti Lavkesh Patel,
Assistant Professor,
Department of English

Dr. Priti Lavkesh Patel,
Assistant Professor,
Department of English,
Shri B. P. Brahmbhatt Arts and
M. H. Guru Commerce
College, Unjha
Email
pritilovekesh@gmail.com

Priti Sengupta is a well-known Gujarati writer and poet. She is India's first and the world's third woman traveler who solo traveled the seven continents of the world. She shared her varied travel experiences through her travelogues and poems too. She was born in 1944 in Ahmedabad, Gujarat. She studied her Master of Arts in English Literature from Gujarat University, Ahmedabad. Initially, she started her career as a lecturer of English literature from H. K. Arts College, Ahmedabad. Later on, she moved to New York, USA for further studies. There she felt an immense home-sickness as she was far away from her home, on a new, alien land. She started travelling to Europe to reduce her home sickness and that made her more and more strong and enriched with various experiences. And thus, she became a solo traveler and explored more and more new landscapes on this earth.

Priti Sengupta is truly a praiseworthy writer who earned 'Kumar Suvarna Chandrak' in 2006 for her writings. Her notable works include Juinu Jhumkhu (1982), Khandit Aakash (1985), Doorno Aave Saad (1998), Desh-deshavar (1998) and many more. To her credit, she has written several poetry collections, many travelogues, a story collection entitled Ek Swapnano Rang, a book of photography entitled Our India and shared her experiences in Women, who dared series published by National Book Trust. Generally, she wrote under her pseudonyms 'Ashakya' and 'Namumakin'. Most of her works are written in Gujarati.

The present book Aparajita presents her various travel experiences she experienced throughout her journey to seven continents of the world. The title of the book presents the passion of her adventurous nature. She preferred to choose a Bangoli word 'Aparajita' as a title of her book as she always loves this word. The meaning of this word into English is 'unconquered' or 'undefeated'. In Hindu mythological context, this word 'Aparajita' is used for Goddess Durga. So, the writer rightly used this word for her constant quest to experience the beauties of the world as a sole Indian female traveler in spite of various sufferings and insulting experiences throughout her travels. In this travelogue, she succeeded to describe various landscapes, the life styles of the people in different regions, cultures and traditions, atmosphere, varied languages, varied descriptions of beauty of the nature around the globe. She divided her travel experiences into this book through the categories of the continents she travelled. This is the collection of travel experiences of different regions located on the seven continents of the world. However she also considered the North Magnetic Pole as the seventh and a half continent in this book. Priti Sengupta is not only a traveler, but also a travel enthusiast who believes that journeys bring not only joy but enrichment within self. In Aparajita she shares, her insights about her travels around the world and the soulful experiences and lessions that each destination has taught her. Each page of this book is full of feelings, passions and joyous moments. Let us have a look into her journey around seven continents:

(1) Continent 1: Asia

In this part of the book, writer has explored her experiences with Asiatic countries. In the beginning chapter of this part, she talked

about her delightful experiences of visiting Goa. For her, Goa is the place of varied cultures and traditions. Throughout the entire chapter, she makes the readers joyful with magnificent beauty of Goa, makes the readers aware about the various interior parts of Goa to be visited once in life. She also praised sculptures, paintings and monuments she found in the visits of several churches in Goa. While writing about Goa's monuments, she also mentioned the Hindu myth described in 'Skandhpurana' and 'Bhishmparv' of 'Mahabharata' in this chapter. She observed that Goa is the land of multi-cultured people such as Portugis, Christian, Hindu, etc.

In the second chapter of this part, writer talked about her travel experiences of visiting North-East India and the places such as Manipur, Nagaland, Arunachal Pradesh, Assam, Meghalaya, Mizoram, Bangladesh, Burma, Bhutan, Sikkim, and at last North Bengal. She also mentioned the day to day life-style and nature of the people of varied landscapes. The next consecutive chapters of this part are becoming more interesting to read her passionate experiences of visiting Patan (city) of Nepal (also famous as Lalitpur), dilapidated Buddhist monuments, streets of Patan, Buddhist people, etc. Her visit to Tibet made her fortunate to see Sagarmath, uneven hills, and tallest mountains. She also talked about Bangkok, the capital of Thailand, which was considered as 'Eastern Venice' as it has been sinking slowly into the water every year like the Venice city of Italy. This part is ended with the following chapters deal with the visits of Bali (island), Indonesia, Vietnam, China, Japan, South Korea, Egypt, Jerusalem, Moscow and Leningrad, the metropolitan cities of Russia, Peris (France), etc.

(2) Continent-2: Europe

Second part of this book started with Priti Sengupta's journey to the most beautiful city of France, Paris. That was her first trip to Europe. In this first chapter, the writer mentioned the importance of Paris city by narrating the tale of origin of the city. She was much fascinated by the attractive dressings of the Parisian people, the 19th century building of Opera house and its interior steps made from Sangemarmar (marble), large dome, the interior walls painted by the greatest painter Marc Chagall. She also talked about a historic landmark of Paris, Louvre Museum, which is considered the biggest museum of the world. The next chapter talks about her travelling through Rome to Italy. She mesmerized the Italian words 'Buon Giorno, Sicilia' which means 'Good Morning, Sicily'. She talked about her memorable experiences on the island, Sicily. The following chapters deal with the visits of the classical city of Athens, and other well-known islands of Greece. Here, she experienced the life of various islands, which were in her top list to visit.

(3) Continent-3: North America

The third part of this book deals with writer's visits of the various places located into North America. The starting chapter introduced writer's work place, i.e. New York, USA. She considered it as the significant land of her workplace. She focused on some important factors of social life of America, i.e. she observed poverty, ignorance and illiteracy there in America even at that time.

Then she talked about the greatest river named Mississippi, and the city, New Orleans, located on the banks of the river Mississippi. While taking about the beauty of this town, the writer also remembered the greatest American play-writer Tennessee William who immortalized this city by writing a play named 'A Streetcar Named Desire'. She also focused on the language used in America. She observed that there were language based groups of people in America: some people used to speak pure English language, whereas the other, i.e. black people used to speak English in a slang language or tone. Through this, the writer aimed to tell the readers that in any country the colloquial language is spoken differently from one region to another of that country.

(4) Continent-4: South America

In the beginning chapter of this part, the writer talked about a country named Guatemala which is surrounded by dense forests. She also shared her scary experiences of exploring a dense forest near by her hotel. The next chapter describes the surroundings and roads of Honduras, a Central American country. Finally the writer reached to her destination, Iquitos (a Peruvian port city and a gateway to the jungle lodges and tribal villages of the northern Amazon), in the following chapter. Here we find writer's excitement to sail the river Amazon. She gave much

information about this river in the present chapter in context to its origin and its wide spread land span. For her, to sail Amazon was most adventurous, enthusiastic and much demanding experience. In the very next chapter, writer shared her visits to Brazil and a huge seaside city, Rio de Janeiro. She artistically mentioned the poverty and people of this place. She also mentioned Favela, i.e. slum of that place, foods, lifestyle, weather, atmospheric changes, poor people and their dressing, etc in this chapter.

(5) Continent-5: Africa

This part of the book begins with writer's travel experiences of Morocco, a North African country. The writer shared her experiences of her visit to Tangier, a Moroccan port, which is under threat of pretty crimes, such as pickpockets and purse-snatchers. It was considered the shelter of thieves and nasty people. She also shared her experiences of visiting Marrakesh city and its Jemma el-Fnaa, a main square of Marrakesh and a market place used by locals and tourists. She also highlighted the word Jemma el-Fnaa which means 'The Hall of Dead' as it was used for an exhibition of severed heads of criminals in the past. The next consecutive chapters are dealing with the visits of Sidi Bou Said and South Africa.

(6) Continent-6: Australia/ Oceania

In this part, Priti Sengupta shared her travel experiences on the lands of Australia and New Zealand, a country in Oceania. She mainly shared her tracking experiences, her visits to Uluru Rock, Mount Sorrow, Darling Down, Cape Tribulation, Cairns city, Queensland, her meeting with the kids named James and Sara and their family (Jefy and Helen) in the beginning chapter. The ending chapter of this part deals with her visit to New Zealand and its several famous places.

(7) Continent-7: Antarctica

This is the most awaited and demanding journey of the writer. Since ever she strongly desired to travel and explore the Antarctica continent. Here, in this part she shared her adventurous experiences on this continent. In the beginning, she shared her sailing experience from America to Antarctica. She shared how she reached to the destination after a long journey of 48 hours. She also talked about the different types of Whales and Seals and Krill fishes in the ocean during her journey. Writer talks about several species of animals and birds found in Antarctica. She also found different types of Penguins, such as Chinstrap Penguins, King Penguins, Adelie Penguins, etc. She also talked about various species of birds such as, Giant Petrels, Cape Pigeons, Albatrosses, etc. She also shared her fascinated experience to see frozen river, floating icebergs (she assumed as divine swans floating in Mansarovar), snowy white clouds in the blue sky, snowy white icebergs into Blue Ocean, etc. She considered this land as the land of paradise.

(8) Continent-7th and a Half: North Magnetic Pole

Priti Sengupta has travelled to Antarctica in the year 1989. She considered that continent as the seventh and final continent to be visited. Before that she already visited all the six continents of the world. She believed as if she visited almost all the parts of the world. Soon after, she was acquainted with North Pole and she considered it as an additional half continent. Idealistically, she began to consider North Pole as 'Seventh and a Half Continent'. In this part, she also informed the readers that an American explorer, Robert Edwin Peary was the first person to reach the geographic North Pole. She shares her observations of an arctic region. She talked about several interesting facts about this land such as the day and night on this region considered as 'Dhaval Din' (White Day) and 'Dhaval Ratri' (White Night) due to heavy snow. In winter season, It is dark for almost four months. It is like an uneven world. Here, the sun shines at midnight in summer and the moon shines at midday in winter. She shared her adventurous and exciting drive on Sledge (Sleigh), a land vehicle that slides on icy or snowy surface. While exploring the North Pole, writer and her fellow travelers reached to North Magnetic Pole too.

However it is not possible to include each and every travel experience of the writer in this paper, I tried my level best to mention all her major concerns of her world trips. One can have the glance of entire world, all the continents, and can feel frozen feelings of North Pole by reading this book. Indeed, Priti Sengupta is a complete traveler of the world in a real sense. Her travel experiences provide the sense of travelling to her readers too through her travelogues.

000

References:

1. Sengupta, Priti. Aparajita: A Collection of Representative Essays on All Seven Continents. Ahmedabad: Rangdwar Prakashan, 2007. Print.

Research Article

(Research Article)

Socio Political And Cultural Analysis Of Khushwant Singh's Train To Pakistan

Research Author :
Patel Priyankaben Manglabhai
Research Scholar
H.N.G. University, Patan
Research Guide-
Dr. Ramesh B. Patel
Principal
M. A. Parikh Fine arts and Arts College, Palanpur

Patel Priyankaben Manglabhai
Research Scholar
H.N.G. University, Patan

ABSTRACT:

The heartbreaking events that occurred during the partition of India are recounted in the film Train to Pakistan. It has brought to feelings of animosity, antagonism, and enmity among people of many groups and cultures, devaluing humanistic ideals and principles in the process. This is an examination of the novel Train to Pakistan from the point of view of the socio-political theory of multiculturalism. The decision of irresponsible and self-cantered politicians to partition the country on the basis of religious affiliation has far-reaching repercussions for the people who lived in India. The community politics that led to the division had its beginnings in the late nineteenth century, when their seeds were first planted. Some political elites were quite enthusiastic about the prospect of the country being split apart because they wanted to quench their hunger for political power by becoming the first Prime Minister of one of the new nations that would be founded.

Keywords: ethnically, multilingual, pedagogic, hybridization, escalation, prejudice, imprudent

INTRODUCTION:

The term "multiculturalism" refers to an orientation of thinking within the field of political philosophy about the appropriate method to respond to the presence of religious and cultural diversity. It involves showing equal respect to the many cultures that make up a society, promoting the upkeep of cultural variety, and ensuring that the unique characteristics of diverse cultures that coexist in the same community are maintained. India is one of the most varied countries in the world on a number of fronts, including linguistics, religion, culture, and ethnicity.

Translation plays a significant role in both the construction of writing that uses a variety of languages and ethnic groups in India, as well as in the communication between people of different cultural backgrounds and more than one language in India. This role can be explicit or implicit, intentional or spontaneous. It would appear that multiculturalism is slowly sliding into catastrophe. It is believed to have a negative impact on the strength of national identity, as well as on social cohesiveness, the formation of ethnic ghettos, and the disintegration of cultural traditions. The concept of multiculturalism has two repercussions. To begin, it shows culture as a scene of debating or arguing and endeavouring, in which the outside boundary is involved in a severe quarrel with the centre, so starting off the free play of diverse parts. The expressions "multicultural training," "multicultural curriculum," and "multicultural society" all use the word "multiculturalism" as a descriptive word rather frequently.

In his book "Rethinking Multiculturalism: Cultural Diversity and Political Theory," Bhikhu Parekh makes the following assertion.

It is neither political doctrine nor a philosophical issues but actually a perspective on as a way of viewing human life. Increasing cultural diversity focuses on the promotion of rights for different religions and cultural groups. The rights of cultural groups from basis for Multiculturalism (Houndmills: Macmillan, 2000).

SOCIO-POLITICAL ANALYSIS

The term "multiculturalism" refers to an artistic, pedagogical, and socio-political movement that emerged in the latter half of the 20th century. It is a core concept of the system that every society should be seen as a topic worthy of investigation and praise. On both a rational and an open level, the topic of multiculturalism has received much discussion in its entirety. The works of Rohinton Mistry may be understood via his perspectives on individuals of many ethnicities, languages, and religious backgrounds, as well as the status of minorities in society. The year is 1971, and the action takes place in Bombay against the backdrop of the Indo-Pakistan war and the establishment of Bangladesh as a nation. The book "Family Matters" by Rohinton Mistry offers a stunning look into multicultural viewpoints through the lens of suffering. The venue for both ethnocentric and minority speech is provided by the show Family Matter. He makes an effort to bring aspects of multiculturalism into light by using Yezad's struggles in life, his fears, his sense of alienation, and his uncertainty in the novel. Because multiculturalism views different cultures as separate entities, it creates an environment conducive to ongoing "dialogue" between them and can even make the process of hybridization simpler. Interpretation takes occur in the clearing that exists between different kinds of cultural expression. It is grounded in realism, and the topics it explores are mostly concerned with racial, socioeconomic, and gender inequalities. It shares some common themes with the writings of authors from many different cultures, such as the search for personal identity in the society, which is a symbol of multiculturalism; the formation of individual and cultural values; family relationships; childhood games; folklore of the culture; social pressures; recompense and punishment; religious background; environmental adaptations that resulted from historical factors; socioeconomic changes; contact with others; and so on.

CONCEPT OF MULTICULTURALISM

The concept of multiculturalism has expanded to encompass a wide range of topics, including sociology, politics, and the study of mankind. It acknowledges the existence of a variety of cultures and shows respect for the perspectives held by people with a wide range of individual, cultural, ethnic, religious, and national identities. In the writings of Khushwant Singh, multiculturalism functions as a mechanism for preserving societal peace by means of love, tolerance, acceptance, acknowledgement, and adaptation of many cultures. Khushwant Singh's books are analysed in terms of how they support and violate the idea of multiculturalism. An attempt is made to provide a detailed evaluation of an Indian novel written in the English language. According to new historicism,

Some advocates of cultural studies orient their writings and teaching towards the explicit political end of reforming the existing Power- relations which they claim, are dominated by a privileged gender, race, class or ethnic group. (Abrams: 1993:254)

One of the tenets of multiculturalism is that different groups and cultures should be open to one another's perspectives and willing to make accommodations in order to acknowledge the existence of social variety. When contentment becomes the norm, it inevitably gives way to resentment, hostility, and violence.

Anger alternates affection. Love alternates with hate and desire alternates with greed. The traditional, social and religious stratification is overridden by the communal feelings (P.K. Singh 2005:40).

SOCIO-CULTURAL ANALYSIS

The acceptance of individual freedom by all members of a community is an essential component of multiculturalism because it enables individuals to better preserve, expand, and exchange their religious and cultural traditions. It does not distinguish between the majority and the minority based on the numerical strength of each group. Religion helps to develop a culture's system of beliefs and practises, whereas culture is responsible for passing on religious values and beliefs from one generation to the next in order to promote greater social well-being. After all, the concepts of equality, love, respect, dedication, and peace can be found in the teachings of all world religions. In this context, unity in religious difference is regarded as a constructive step toward the promotion of the ideals of multiculturalism, which are thought to promote nature's fundamental law of equality.

In his book "Train to Pakistan," Khushwant Singh

highlights how the partition of India and Pakistan led to widespread human misery and created a cultural identity crisis for the people of both countries. Prior to the division, members of both groups had embraced diversity as a rallying cry. He wants to speak for the relevance and power of the community identity, which is a collective kind of social strength. The concept of multiculturalism acknowledges the importance of community identity values, which have to be preserved and honoured in order to preserve societal harmony and cohesion. It never stops promoting the significance of identification, regardless of whether that identity is communal, religious, or cultural. A love affair between two different communities plays a significant role in his book. Both Jugga and Nooran, in a certain sense, have held the principles of multiculturalism in high regard. As a result, Khushwant Singh brings his story to a close by highlighting the heroic deed that was performed by Juggalos in order to preserve the lives of hundreds of Muslims. A tolerant social strategy known as multiculturalism promotes the notion that multicultural communities should be united in their variety and condemns acts of hatred and violence that are motivated by factors such as a person's religion or race.

The multiethnic neighbourhood of Mano Majra is introduced in the beginning of the book Train to Pakistan by way of a description of the neighbourhood. The town of Mano Majra is quite small. There are just three brick structures there, one of which is Lala Ram Lai's residence, which is a financial institution. The mosque and the temple of the Sikh religion are the other two. They are encouraged to engage in healthy rivalry with one another because to the multicultural variety. This type of socio-religious harmony in the midst of diversity is portrayed by Khushwant Singh. It seems to support the principles of an equitable society, which is one of the objectives of multiculturalism. In certain communities that practise multiculturalism, religious variety and cultural plurality sometimes lead to communal disputes; however, in Mano Majra, notably Sikhs and Muslims regard each other to be brothers. This is in contrast to the situation in other multicultural societies. As a result, multiculturalism is not simply a philosophical doctrine, but it also has material manifestations in everyday daily life. The majority of people who live in Mano Majra exhibit a personality trait known as openness, which is defined as the readiness to recognise and accept 'the other.' A constructive move toward cultivating the value of social integrity and peace may be seen as being made via the multiculturalism that is depicted in the beginning of the novel.

"Monotheism" is not the appropriate step to take in India due to the country's many different religions and cultures since it does not address all of the societal issues that are connected to caste, culture, gender equality, and human rights. It places a high priority on conversations held between different groups and cultures. The concept of multiculturalism acknowledges the virtues of community identity and recognises the need to conserve these values in order to preserve societal harmony and integrity. Tolerance and respect for communal differences and identities are replaced in the third chapter of the series, Train to Pakistan, by hostility, intolerance, prejudice, and aversion. This is due to the fact that division was the sole factor that served to divide the population. It's possible that Khushwant Singh intends to highlight the importance of multiculturalism, which is why he concludes his story with a detailed account of Jugga's sacrifice for non-violence, love, humanism, and respect to everyone. In addition to this, he shows the socio-religious landscape of India in its distorted state.

CONCLUSION:

To summarise, the second line of study demonstrates how the socio-political and socio-cultural concepts are interrupted, degraded, and ultimately eliminated after separation. Not only does partition disrupt the harmonious way of life of the inhabitants, but it also uproots them from the land on which they were raised and brought into the world. Therefore, throughout the post-partition period, multiculturalism became less strong and more watered down.

000

References: 1.Dob Kushal: Mapping Multiculturalism Jaipur Rawat Publications, 2002, 2. Sharma, J: Multiculturalism in India Languages in India Vil. PP 1.6 , 3. Kramesh, C: Context and culture in Language Teaching. Oxford University Press, 4. Manjali, F D: "Language culture and cognition", Bahri Publication Now Delhi., 5. Jenkins L: "Biolinguistics", Cambridge University Press.

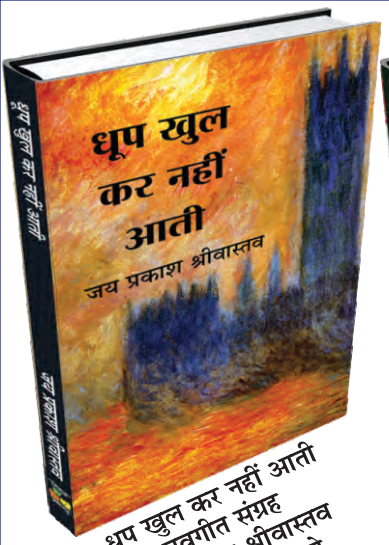

धूप खुल कर नहीं आती
नवगीत संग्रह
जय प्रकाश श्रीवास्तव
मूल्य : 200 रुपये

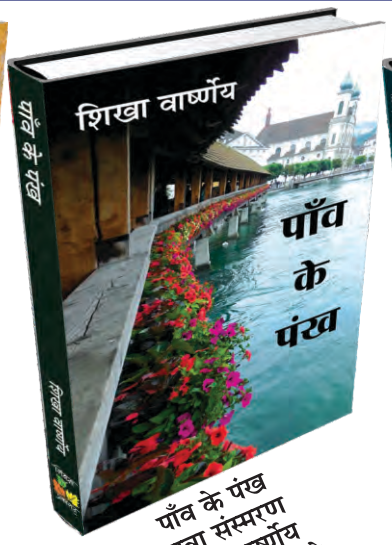

पाँव के पंख
यात्रा संस्मरण
शिखा वार्ष्णेय
मूल्य : 175 रुपये

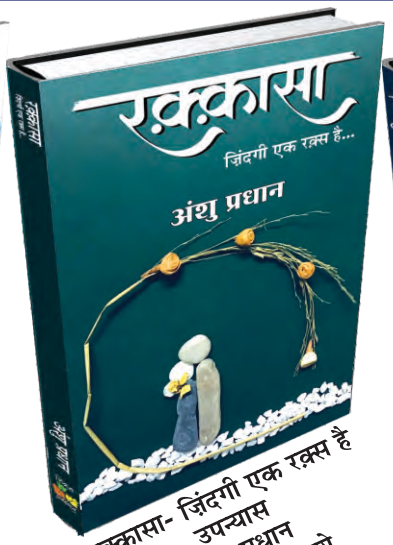

रक़्क़ासा- ज़िंदगी एक रक़्स है
उपन्यास
अंशु प्रधान
मूल्य : 250 रुपये

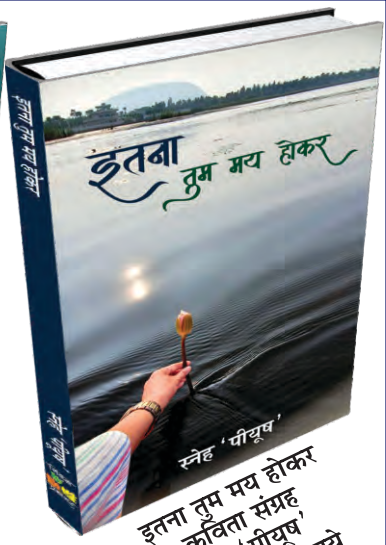

इतना तुम मय होकर
कविता संग्रह
स्नेह 'पीयूष'
मूल्य : 300 रुपये

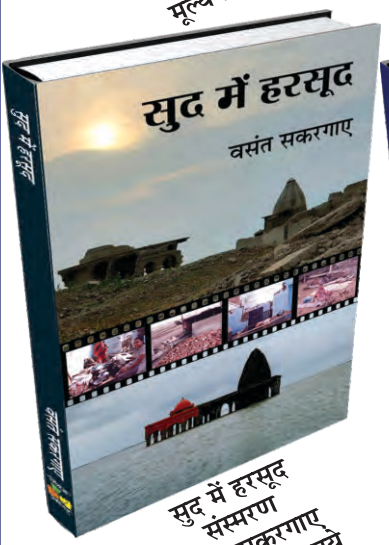

सुद में हरसूद
संस्मरण
वसंत सकरगाए
मूल्य : 200 रुपये

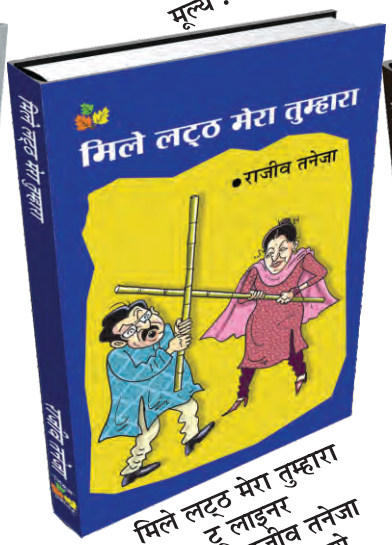

मिले लट्ठ मेरा तुम्हारा
ट्रू लाइनर
संपादन- राजीव तनेजा
मूल्य : 150 रुपये

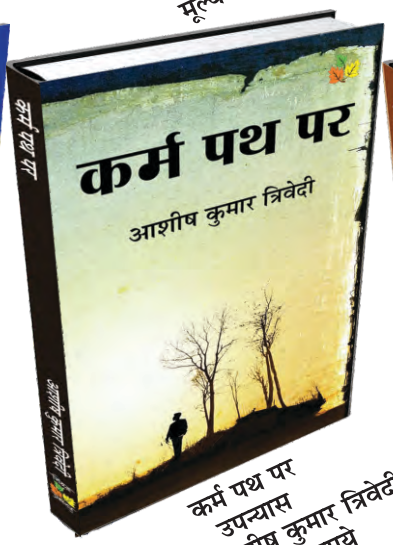

कर्म पथ पर
उपन्यास
संपादन- आशीष कुमार त्रिवेदी
मूल्य : 350 रुपये

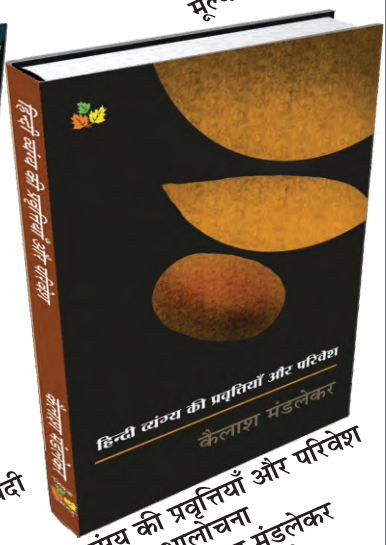

हिन्दी व्यंग्य की प्रवृत्तियाँ और परिवेश
आलोचना
संपादन- कैलाश मंडलेकर
मूल्य : 350 रुपये

हडसन तट का जोड़ा
उपन्यास
प्रबोध कुमार गोविल
मूल्य : 200 रुपये

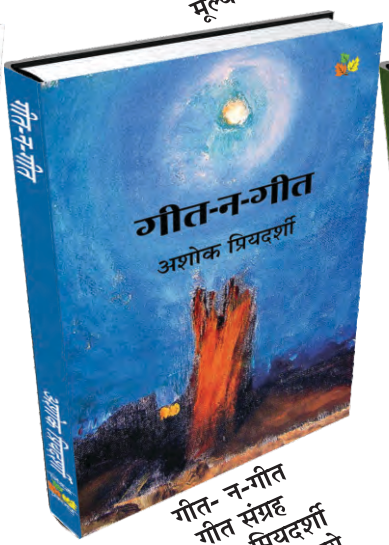

गीत- न-गीत
गीत संग्रह
अशोक प्रियदर्शी
मूल्य : 200 रुपये

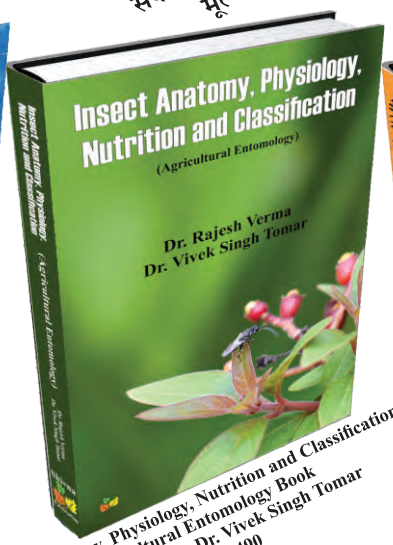

Insect Anatomy, Physiology, Nutrition and Classification
Agricultural Entomology Book
Dr. Rajesh Verma, Dr. Vivek Singh Tomar
Price : ₹490

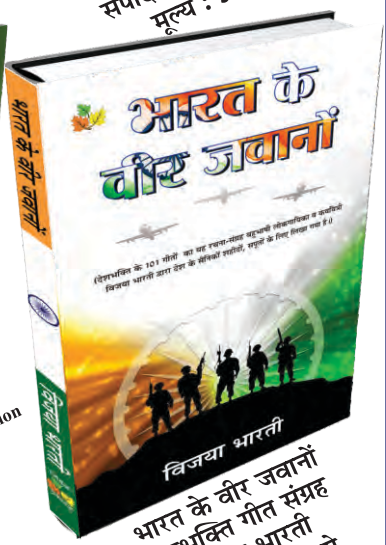

भारत के वीर जवानों
देशभक्ति गीत संग्रह
विजया भारती
मूल्य : 200 रुपये

शिवना प्रकाशन
शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in

amazon
http://www.amazon.in

flipkart.com
http://www.flipkart.com

Mobile - +91-9806162184, +91-6265665580
+91-8819806162
https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
Email- shivna.prakashan@gmail.com

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा मध्यप्रदेश के सीहोर ज़िले में सीहोर तथा आष्टा में चलाए जा रहे आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत स्थापित प्रशिक्षण केन्द्रों पर आयोजित कुछ कार्यक्रम

आष्टा में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2021-22 की बालिकाओं का डिप्लोमा वितरण समारोह प्रवासी कवयित्री सुश्री रेखा भाटिया, पत्रकार आकाश माथुर, समाजसेवी श्रीमती ममता देवी तथा केन्द्र प्रभारी सुरेंद्र सिंह ठाकुर।

आष्टा में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2021-22 की बालिकाओं का डिप्लोमा वितरण समारोह प्रवासी कवयित्री सुश्री रेखा भाटिया, पत्रकार आकाश माथुर, समाजसेवी श्रीमती ममता देवी तथा केन्द्र प्रभारी सुरेंद्र सिंह ठाकुर।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर प्रवासी कवयित्री रेखा भाटिया की पुस्तक 'मन की नदी से भीगे शब्द' का विमोचन करते ख्यात कवि श्री शशिकांत यादव, नगरपालिका अध्यक्ष श्री प्रिंस राठौर, डाइट प्राचार्य श्रीमती अनीता भालेराव।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर प्रवासी कवयित्री रेखा भाटिया की पुस्तक 'मन की नदी से भीगे शब्द' का विमोचन करते ख्यात कवि श्री शशिकांत यादव, नगरपालिका अध्यक्ष श्री प्रिंस राठौर, डाइट प्राचार्य श्रीमती अनीता भालेराव।

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।